बिट्ठलदास संस्कृत सीरीज–३

श्रीनीलकण्ठभट्टकृतः

प्रतिष्ठा मयूखः

अर्थात्

सर्व देवप्रतिष्ठापद्धतिः

डॉ. महेश चन्द्र जोशी

कृष्णदास अकादमी

भूमिका

मनुष्य को अपने शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलता है। शुभ कर्मों के पुण्य फल से ही मनुष्य इह लोक में सुखी, स्वस्थ और धन-वैभव-सम्पन्न होता है और उसकी समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं। प्राण-संकटकारी घातक और विषम परिस्थितियों में फँसा हुआ, घोर संकटापन्न मनुष्य भी अपने द्वारा पूर्वतः किये गये पुण्य कर्मों के प्रभाव से ही सुरक्षित बच पाता है, जैसा कि अधो-लिखित श्लोक में भी कहा गया है —

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥

यज्ञ, दान, तप, आदि विविध पुण्यकर्मों में देवपूजन को सर्वोपरि महत्त्व प्राप्त है। जब मनुष्य अपने जीवन के नाना संघर्षों, व्याधियों, विविध विघ्न-बाधाओं, कठिनाइयों और अनेकानेक समस्याओं का किसी भी लौकिक उपाय से समाधान न निकाल पाने पर थक-हार कर निश्छल हृदय से और सच्ची निष्ठा से परमात्मा की प्रार्थना करता है, अपने आराध्य देवों की उपासना यथेष्ट तन-मन की शुद्धता और पूर्ण भक्तिभाव से करता है तो उसे कुछ न कुछ सफलता अवश्य मिलती है।

देवपूजा का महत्त्व—

मानव कल्याण के लिए देवों की उपासना वैदिक काल से आरम्भ हो चुकी थी। यास्क ने देव शब्द की निरुक्ति में कहा है कि दान (अभीष्ट वस्तु की अभिलाषा की पूर्ति) करने, दीपन या द्योतन अर्थात् दीप्तिमान होने अथवा द्युलोक में रहने वाली शक्ति को देव या देवता कहते हैं —

देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्युस्थानो भवतीति वा।
यो देवः सा देवता। (निरुक्त ७।१५)

इसी का अनुसरण करते हुए याज्ञवल्क्य ने भी देव शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की है—

दीव्यते क्रीडते यस्माद् द्योतते रोचते दिवि ॥ ५४
तस्माद् देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदेवतैः।
बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति। ९।५४ ५५

वैदिक देवताओं की अनेक कोटियाँ हैं। यथा - पृथिवी-स्थानीय देवता—अग्नि, सोम, विष्णु आदि, अन्तरिक्षस्थानीय देवता—इन्द्र, रुद्र, मरुत् आदि और द्युस्थानीय देवता—सूर्य, मित्र, वरुण आदि। ऋग्वेद (१।१३९।११) तथा यजुर्वेद (वाजसनेयिसहिता ७।१९) में एकादश द्युस्थानीय, एकादश पृथिवी-स्थानीय और एकादश अन्तरिक्ष-स्थानीय देवता बतलाये गये हैं

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सु क्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥

शतपथब्राह्मण में आजानज देवता, कर्मदेवता तथा आजान-देवता के भेद से देवताओं की तीन श्रेणियाँ बतलायी गयी हैं। पौराणिक काल में विष्णु एवं उनके अवतारों, शिव, गणेश, सूर्य आदि अनेकानेक देवताओं तथा दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों की उपासना को लोकप्रियता प्राप्त हुई। देवी-देवताओं की संख्या वृद्धि में आगमों और तन्त्रों का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है।

देवता के नाम संकीर्तन, स्मरण, दर्शन और स्पर्श आदि से धर्म, अर्थ, काम आदि की प्राप्ति और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति भी होती है—

संकीर्तनाद् स्मरणाद् दर्शनाच्च संस्पर्शनादेव च देवतायाः।
धर्मार्थकामाद्यपवर्गमेव लभन्ति देवा मनुजाः ससाध्याः ॥
—वामनपुराण, ८९।४६

जो मनुष्य पापरहित होकर श्रद्धा और विश्वास के साथ यथाविधि देवों का पूजन करते हैं उनकी मनोकामनाएं अवश्य पूर्ण होती हैं— इस विषय में पौराणिक वचनों के अतिरिक्त अनादि काल से उपासना करके अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त करने वाले धार्मिक जनों का अन्तःकरण और आप्त पुरुषों के वचन भी प्रमाण हैं।

किन्तु अपनी पेट-पूजा या कामाग्नि की शान्ति या काम-पिपासा की तृप्ति को ही अपना कर्तव्य मानकर उसी में लिप्त रहने वालों, पापियों, चोरों, कठोर वचन बोलने वालों, हीन सत्त्व (निर्बल मनःस्थिति वाले) मनुष्यों, सर्वभक्षी तथा दुष्कर्मी मनुष्यों पर देवता कभी अनुग्रह नहीं करते, अपितु सत्यपरायण, कृतज्ञ और धर्मपरायण मनुष्य ही देवों की अनुकम्पा के पात्र होते हैं।[1]

वैदिकयज्ञों का अपकर्ष और देवपूजा की लोकप्रियता में वृद्धि—

वैदिक काल में देवों की सन्तुष्टि हेतु नाना यज्ञ किये जाते थे। सद्गृहस्थों के द्वारा प्रातःकाल और सायंकाल अग्निहोत्र किया जाता था। प्रतिदिन सम्पादनीय पञ्चयज्ञों में देवयज्ञ अन्यतम था। गौतम-धर्मसूत्र (१।८।१९-२१) में वैदिक यज्ञों का वर्गीकरण सप्त पाकसंस्था, सप्तहविःसंस्था और सप्तसोमसंस्था के रूप में किया गया है। इनमें परिगणित यज्ञों के अतिरिक्त अश्वमेधादि अनेक यज्ञ और नाना काम्य इष्टियाँ भी की जाती थीं। किन्तु वैदिक यज्ञों के लिए होता को वैतानकुशल (यज्ञविद्या का ज्ञाता) और वेदज्ञ होना आवश्यक था (द्रष्टव्य– मनु ११।३७) और यज्ञ की

---

१. शिश्नोदरे ये निरताः सदैव स्तेना नरा वाक्परुषाश्च नित्यम्।
अपेतदोषानपि तान् विदित्वा दूराद् देवाः संपरिवर्जयन्ति ॥ ३६
न वै देवा हीनसत्त्वेन तोष्याः सर्वाशिना दुष्कृतकर्मणा वा।
सत्यव्रता ये तु नराः कृतज्ञा धर्मेरतास्तैः सह सम्भजन्ते ॥
शान्तिपर्व २९९।३६-३७

दक्षिणा भी अनल्प (प्रचुर) अपेक्षित थी । अल्प दक्षिणा वाले यज्ञ की अनेक हानियाँ बतलायी गयी हैं (मनु[1] ११।३९–४०, शान्तिपर्व १६५।२३–४, विष्णु धर्मो० २।९५।२२–३)। यज्ञ में किसी भी प्रकार की त्रुटि हानिकारक बतलायी गयी है। यथा—

अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः ।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ।।

'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा' (मुण्डकोपनिषत् १।२।७) जैसी उक्तियों, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में पशुहिंसा का विरोध, नरमेध, गोमेध और अश्वमेध आदि को कलियुग के लिए वर्जित किये जाने (द्रष्टव्य—नारदपुराण २४।१५–६) आदि कारणों से वैदिक यज्ञों का प्रचलन शनैः शनैः विरल होता गया और आगमों में कथित सात प्रकार के आगम पद्धति के यज्ञों के प्रवर्तन के साथ ही पुराणों में कथित लक्ष-होम और कोटिहोमात्मक स्मार्त यज्ञों के प्रचलन के साथ ही गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से देवों के पूजन की प्रवृत्ति को अधिकाधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। विष्णु धर्मोत्तर पुराण (२।९५।३–४, ३०) में स्पष्टतः कहा गया है कि देवों का पूजन करने से ही सभी यज्ञों का फल मिल सकता है।

देवपूजा के अधिकारी—

वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के लिए असम्भव और दुष्कर था। इसीलिए सुदूर अतीत से ही जन सामान्य में देवपूजा को अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त हो गयी थी। सनातन धर्म के चारों वर्णों और चारों आश्रमों[2] के मनुष्यों को

---

१. इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून् ।
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ।। मनु ११।३९

२. द्रष्टव्य—वीरमित्रोदय, पूजाप्रकाश, पृ० १ ।

३. गरुडपुराण पू० ४९।२१ ।

देवपूजा का अधिकारी बतलाया गया है। यद्यपि कुछ प्रतिक्रियावादी आचार्य स्त्रियों और शूद्रों के द्वारा देवाराधन आदि कृत्यों को उनके पतन का कारण मानते थे,[१] किन्तु व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण वाले विष्णु और बौधायन जैसे प्राचीन आचार्यों ने स्पष्टतः स्त्रियों और शूद्रों को भी देवों के पूजन का अधिकारी बतलाया है।[२] पुराणों में अन्त्यजों, म्लेच्छों आदि के लिए भी विष्णु भक्ति के कपाट खुले रखे गये हैं और काली, दुर्गा, शिव आदि देवी-देवताओं की उपासना शबर आदि वनवासी जातियों, अन्त्यजों आदि के द्वारा किये जाने के भी अनेक उल्लेख पुराणों में प्राप्त होते हैं। वर्तमान काल में सनातन धर्मावलम्बी ही नहीं, अपितु अनेक पाश्चात्य देशों के भी श्रद्धालु भक्त हमारे देवी-देवताओं की आराधना करते हैं।

देवपूजा के लाभ—

करोड़ों धार्मिक जनों का स्वात्मानुभव और स्मृतियों तथा पुराणों के वचन इस बात के प्रमाण हैं कि देवों के पूजन से मनुष्य के पाप नष्ट होते हैं,[३] पुण्य-प्राप्ति होती है,[४] मनोकामना पूर्ण होती है,[५] सर्वविध विघ्न-बाधाओं और संकटों का निवारण, शत्रुओं का दमन, रोग-शोक और व्याधि-प्रशमन होता है,[६] सुख-शान्ति मिलती

१. जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम्।
देवताराधनं दीक्षा स्त्रीशूद्रपतनानि षट्॥ स्कन्दपुराण

२. द्रष्टव्य—वीरमित्रोदय पूजाप्रकाश पृष्ठ २ में उद्धृत वचन।

३. कूर्म उ० १८।११७, गरुड पू० ५०.७४, पद्म ५।१०६।४६।

४. द्रष्टव्य—विष्णुधर्मो० ३।१।१०।

५. पूजिताः संप्रयच्छन्ति कामान् नृणामभीप्सितान्। विष्णुधर्मो० २।३१।७।

६. विघ्न बाधाओं का प्रशमन गणपति के पूजन से, रोग-प्रशमन सूर्य की आराधना, मृत्युञ्जय जप आदि से, शत्रुओं का दमन पराम्बा पराशक्ति के स्वरूप विशेष के पूजनादि से होता है।

है, धन-वैभव आता है, मान-प्रतिष्ठा और आयुष्य की वृद्धि होती है और परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति अथवा अभीष्ट देवता के लोक की प्राप्ति होती है। किं बहुना, देवों के पूजन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है।' देवपूजा के ये लाभ प्रायः मूर्तिपूजा के प्रसंग में ही बतलाये गये हैं। शिव की पूजा वैदिक काल से ही प्रचलित थी। सिन्धुघाटी सभ्यता के काल में लिङ्गपूजा का प्रचलन था। शिवपूजा के नाना लाभ भी पुराणों में वर्णित हैं।'

प्राचीन आचार्यों ने देवपूजा का प्रवर्तन मनुष्य मात्र के हित की भावना से किया था। मानव समाज के बहुसंख्य मनीषियों का आत्मानुभव इस तथ्य का साक्षी है कि देवपूजा से देह-गेह की माया-ममता से लिप्त और कर्मबन्धन में निबद्ध मनुष्य के आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों तथा विविध विघ्न-बाधाओं का निवारण होता है और उसके लिए एक दैवी परिवेश में आध्यात्मिक उन्नति तथा परमात्मा के सान्निध्य की सुगम

---

१. (क) पूजया भोगसम्पत्तिरवश्यं जायते द्विजाः। लिङ्ग पु० ७१।७०।

(ख) नित्यं नराणां सुरपूजकानां लोका मनोज्ञाः सुलभा भवन्ति।
लोके तथाऽस्मिन् धनधान्ययुक्ताः समृद्धिभाजश्च नरा भवन्ति॥

२. पूजिताः पूजयन्त्येते चायुषा यशसा श्रिया। विष्णुधर्मो० ३।२१.६।

३. धर्ममर्थं तथा कामं मोक्षञ्च यदुनन्दन।
प्रयच्छन्ति महाराज नराणामिह देवताः॥

४. (क) पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिङ्गे पूर्णार्चनं भवेत्। अग्नि ५७।४।

(ख) लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते॥
द्रोणपर्व २०२।१४०।

(ग) न तच्छ्रेयोऽग्निहोत्रेण नाग्निष्टोमेन लभ्यते।
प्राप्नुवन्ति च यच्छ्रेया मानवा लिङ्गपूजने॥
स्कन्द ५।३।३।८५७।

अनुभूति का मार्ग प्रशस्त होता है।

किन्तु जो अभागे मनुष्य श्रद्धा-भक्ति से रहित हैं, जो पापाचरण से विरत नहीं होते और पहले किये हुए पापों का प्रायश्चित्त नहीं कर लेते, जो नास्तिक हैं, जो संशयग्रस्त और शंकालु प्रकृति के हैं तथा जो व्यक्ति कुतर्क करने वाले हैं वे देवों का पूजन करने पर भी उसके पुण्यफल के भागी नहीं होते।[1] अतः मनुष्य को उक्त दोषों से रहित होकर शुद्ध तन-मन से ही श्रद्धापूर्वक देवों का पूजन करना चाहिए।

पुनश्च परपीड़क, दुर्बुद्धि और पापी मनुष्य के द्वारा की गयी पूजा भगवान् को ग्राह्य नहीं होती है।[2] सद्बुद्धि, निष्पाप और समत्व बुद्धिवाला शुचि और श्रद्धालु मनुष्य ही पूजा के फल का भागी होता है। अशुचि व्यक्ति यदि देवों का पूजन करता है तो उसे अनेक दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।

देवों का पूजन करने वाले मनुष्य में सात्त्विक भावना और शुचिता रहती है। देवीभागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण में सन्ध्या और पूजा न करने वाले मनुष्य को पतित बतलाया गया है—

सन्ध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः।

पुराणों में यमराज ने यमभटों से कहा है कि वे देवपूजा करनेवाले मनुष्यों को नरक में न लावें। नारदपुराण में कहा गया है कि देवपूजा न करने वाला मनुष्य निश्चयमेव नरक में गिरता है—

देवपूजा विहीनो यः स गच्छेन्नरकं ध्रुवम्।

---

१. अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न पूजा भागिनः॥ पद्म ६।८५।१९।

२. न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु॥
भाग० ४।३१।२१।

देवपूजादि पुण्यकर्म करने वाला मनुष्य नरक में नहीं गिरता—

तीर्थयात्रापरो नित्य देवताऽतिथिपूजकः।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च न याति नरक नरः॥

स्कन्द ६।२६।६४

भारतीय संस्कृति की ऐसी मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में पुराणों और स्मृतियों में प्रत्येक गृहस्थ के लिए देवों का पूजन एक अनिवार्य कर्तव्य के रूप में उसके नित्य कर्मों में विहित है। यह कहा गया है कि जो मनुष्य मोहवश अथवा आलस्यवश देवों का पूजन किये बिना भोजन करता है वह नरक में गिरता है और पुनर्जन्म में सूकर की योनि में जन्म पाता है—

यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकं सूकरेष्वभिजायते॥

गीता में कहा गया है कि मनुष्य जिस देवता के अर्चा-विग्रह (मूर्ति) को श्रद्धापूर्वक पूजना चाहता है उसकी अटल श्रद्धाभक्ति भगवान् की कृपा से उसी देवता पर हो जाती है—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

कूर्मपुराणानुसार भी मनुष्य जिस देवता की पूजा करना चाहता है वही उसका अभीष्ट देव होता है—

या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता।
किन्तु कार्यविशेषेण पूजिता चेष्टदा नृणाम्॥

भविष्यपुराण में कहा गया है कि विशिष्ट व्यक्ति के द्वारा विशिष्ट देवता का पूजन ही विशिष्ट फलदायक होता है-

विशिष्टा देवता सम्यग् विशिष्टेनैव देहिना।
आराधिता विशिष्टञ्च ददाति फलमीहितम्॥

भविष्य १।४८।१२

पुराणों में ऐसे अनेक वचन हैं जिनमें कहा गया है कि विघ्नों के निवारण हेतु गणेश की पूजा करनी चाहिए, रोग प्रशमन हेतु सूर्य की, आत्मशुद्धि और धन-प्राप्ति आदि के निमित्त अग्नि की, मोक्ष-प्राप्ति हेतु विष्णु की, ज्ञान-लाभ हेतु शिव की और ऐश्वर्य-लाभ हेतु दुर्गा की उपासना करनी चाहिए—

गणेशं विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम् ।
आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे ।
संपूजने फलमिदं विपरीतमपूजने ।।
ब्रह्मवै० ३।३२।२६-२७

देवपूजा के विषय में राजा या सरकार का कर्तव्य—

भारतवर्ष का संविधान ऐसे व्यक्तियों ने बनाया जो राष्ट्र के चरित्र निर्माण में धर्म की उपयोगिता से अभिज्ञ नहीं थे। वस्तुतः परमात्मा में आस्था रखने वाले आस्तिक और धर्मपरायण नागरिक पाप, दुराचार और अपराध से दूर रहते हैं और सदाचारी तथा कर्तव्यपरायण होकर राष्ट्र के निर्माण और प्रगति में योगदान देते हैं। भारतीय लोकतन्त्र की सरकार तथाकथित धर्मनिरपेक्ष संविधान से नियन्त्रित होने के कारण न तो नागरिकों को धर्माचरण का निदेश देती है और न राष्ट्र के कल्याण हेतु देवपूजा और यज्ञ-यागादि जैसे कोई धार्मिक कृत्य ही राष्ट्रीय स्तर पर करती है। किन्तु प्राचीन काल में भारतवर्ष के राजा न केवल अपने व्यक्तिगत कल्याण हेतु अपितु समूचे राष्ट्र के कल्याण के लिए मन्दिरों का निर्माण, देवों की प्रतिष्ठा और उनकी पूजा की व्यस्था करते थे। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि राजा के द्वारा देवों की पूजा किये जाने पर वे देवता समस्त पृथिवी का पालन करते हैं।[१]

१. पालयन्ति महीं कृत्स्नां पूजिता पृथिवीक्षिता। विष्णुधर्मो० २।३१।४

देवों के पूजन से राजा के राष्ट्र की वृद्धि होती है। जिस राजा के राष्ट्र में सदैव देवों की पूजा होती है वहाँ अतिवृष्टि, अनावृष्टि, फसल को क्षति पहुँचाने वाले चूहे, टिड्डे और तोते आदि तथा राक्षस, पिशाच और पड़ोसी राष्ट्रों के शत्रु राजा एवं अन्य प्रकार की ईतियाँ (विपदायें) समाप्त हो जाती हैं।[1] राजा के लिए यह निर्देश है कि वह स्वयं भले ही किसी एक देवता का भक्त हो तथापि वह अपने राष्ट्र में समस्त देवों का पूजन करे।[2] राजा का यह भी कर्तव्य रहा है कि वह प्रजा से भी देवों का पूजन करावे। पुराणों में राजा के लिए यह निर्देश है कि उसके राष्ट्र में जो व्यक्ति धन अर्जित करके भी देवों का पूजन नहीं करता उसके सर्वस्व का अपहरण करके राजा उसको राष्ट्र से निर्वासित कर दे।[3]

भूत-प्रेतों की पूजा हानिकर—

कुछ तान्त्रिक भूत-प्रेत सिद्ध करके उनके माध्यम से कुछ कार्य सिद्ध करवा लेते हैं। वे अपने चमत्कार से सीधे-सादे मनुष्यों को प्रभावित करके उनसे तान्त्रिक अनुष्ठान के नाम पर भूत-प्रेतादि

---

१. देवसम्पूजनाद् राम वृद्धि समुपगच्छति।
राज्ञस्तु विषये यस्य पूज्यन्ते सततं सुराः ॥ ४७
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च रिपवश्च सुदारुणाः ॥ ४८
ईतयश्च तथैवान्या न भवन्ति द्विजोत्तम। विष्णुधर्मो० २।३१।४७–४९

२. एकमप्याश्रितो देवं राजा भार्गवनन्दन।
सर्वासां पूजनं कुर्याद् देवतानामसंशयम् ॥ विष्णुधर्मो० २।३१।८

३. यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेत् ब्राह्मणान् सुरान् ॥ ५९
सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत् ॥
पद्म ३।५७।५८–९, तु० कूर्म उ० २६।५८

की सन्तुष्टि हेतु अनेक तरह के घृणित कृत्यों में धन-व्यय करवाते हैं। आज की दुनिया में कुछ ऐसे मजहब हो सकते हैं जिनमें दार्शनिक चिन्तन की परिपक्वता के अभाव में धर्मकृत्यों के वैज्ञानिक परिणाम की समीक्षा नहीं के बराबर है और वे अपने सम्प्रदाय के दिवंगत सन्तों की समाधि में जाकर उनकी सन्तुष्टि को अपनी मनोकामना की पूर्ति का हेतु मानते हैं। यह भी एक प्रकार की प्रेत पूजा ही है। भूत-प्रेतादि की उपासना से कदाचित् किसी की मनोकामना पूर्ण भी हो जाय तो भी अन्ततः उसका परिणाम बहुत बुरा होता है। अतः पुराणों में भूत-प्रेतादि की उपासना को गर्हित और वर्जित बतलाया गया है क्योंकि उसका दुष्परिणाम मनुष्य को इहलोक में ही नहीं परलोक में भी भोगना पड़ता है।

देवालय निर्माण—

पुराणों में यह स्पष्टतः कहा गया है कि देवताओं की स्थापना से रहित नगर, ग्राम, दुर्ग या गृह आदि का भोग भूत, प्रेत, पिशाच आदि करते हैं और वहाँ के निवासी रोग आदि नाना कष्टों से पीडित रहते हैं। जिस नगर, ग्राम आदि में देवताओं की स्थापना की गई हो वह विजयप्रद तथा भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति में सहायक होता है। अतः नगर आदि की रक्षा हेतु इन्द्र, विष्णु आदि देवों की स्थापना करनी चाहिए।[1] नगर, ग्राम आदि के निर्माण के पूर्व वहाँ पर देवालयों का निर्माण कर लेना चाहिए।[2]

---

१. नाकेशविष्ण्वादिधामानि रक्षार्थं नगरस्य च।
निर्दैवतन्तु नगरग्रामदुर्गगृहादिकम् ॥
भुज्यते तत् पिशाचाद्यैः रोगाद्यैः परिभूयते।
नगरादि सदैवं हि जयदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ अग्नि १०६।१६–१७।

२. देवतावेश्मपूर्वाणि नगराणि कलौ युगे।
कर्तव्यानि महीपालैः स्वर्गलोकमभीप्सुभिः।
विष्णुधर्मो० ३।९३।६–७।

नगर या ग्राम में कहाँ पर और किस दिशा में किस देवता का मन्दिर बनाया जाय इस विषय में भी स्पष्ट निर्देश दिया गया है— जिसकी चर्चा स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं है। राजाओं[1] और धनी[2] व्यक्तियों के विषय में यह कहा गया है कि वे देवालयों का निर्माण करें। देवालय निर्माण से इष्टधर्म और पूर्तधर्म दोनों का पुण्यफल मिलता है।[3]

देवपूजा के विभिन्न आस्पद–

वीरमित्रोदय के पूजाप्रकाश (पृ० ८) में उद्धृत गृह्यपरिशिष्ट के एक वचन में कहा गया है कि देवों का पूजन जल या अग्नि या स्थण्डिल अथवा प्रतिमाओं में किया जा सकता है। भगवान् की पूजा के इससे भी अधिक आस्पदों (ब्राह्मण, गौ आदि) की गणना कुछ अन्य ग्रन्थों—यथा अग्निवेश्य गृह्यसूत्र, बृहत्पराशरस्मृति, वृद्धहारीतस्मृति, श्रीमद्भागवतपुराण, नारदपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि में है, जिनका विवरण स्थानाभाव के कारण मैं यहाँ नहीं दे पा रहा हूँ।

मूर्ति में देवों का सान्निध्य—

देवों की पूजा हेतु जो आस्पद (जल, अग्नि, सूर्य, स्थण्डिल, प्रतिमा आदि) गिनाये गये हैं उन सब में मूर्तिपूजन को सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। पुराणों और आगमों में अनेक स्थलों पर यह बात कही गयी है कि सम्यक् रूप से (यथाविधि)

---

१. देवालयानि कुर्वीत देवपूजारतो नृपः। अग्नि २२२।११।

२. आढ्यस्तु कारयेद् विष्णोर्मन्दिराणि दृढानि च ॥ स्कन्द २।९।२२।३८।

३. इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता।
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥
बृहत्संहिता ५६।२, विष्णुधर्मो० ३।१।३–४।

प्रतिष्ठापित मूर्ति में देवता का सान्निध्य रहता है। यथा—

चित्रसूत्रविधानेन देवतार्चां विनिर्मिताम्।
सुरूपां पूजयेद् विद्वांस्तत्र संन्निहितो भवेत्॥

विष्णुधर्मो० ३।१।७।

युष्माकं प्रीतयेऽहं वै बिम्बरूपं समास्थितः।

श्रीप्रश्नसंहिता १८।१८

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि कृत, त्रेता और द्वापर युग में आवाहन किये जाने पर देवता सशरीर उपस्थित हो जाते थे। किन्तु कलियुग में वे सशरीर उपस्थित नहीं होते—(द्रष्टव्य–विष्णुधर्मोत्तर ३।९३।१–४, १८–९) किन्तु कलियुग में द्विजों के द्वारा आवाहित किये जाने पर प्रतिमा में समाविष्ट होकर पूजा को ग्रहण करते हैं अतः कलियुग में देव-मूर्ति की प्रतिष्ठा करना ही हितावह होता है (विष्णुधर्मोत्तर ३।९३।२०–२२; द्रष्टव्य—भविष्य ४।१३०।१६–१७)।

मूर्तिपूजा की प्राचीनता—

भारतवर्ष में मूर्तिपूजा का सूत्रपात वैदिककाल में ही हो चुका था। ऐतरेय ब्राह्मण (२।८) और मैत्रायणी उपनिषद् (६।३४) के अनुसार यज्ञ में देवता के लिए आहुति देते समय उसके स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। निरुक्त ७।६–७ में देवता के आकार विषयक समीक्षा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।६।१७) में भारती, बृहती और मही नामक तीन देवियों की स्वर्ण प्रतिमाओं का उल्लेख है। सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण, मानव गृह्यसूत्र २।१५।६ और महाभारत (भीष्मपर्व ११२।११ में देवमूर्तियों के हंसने, रोने आदि को दिव्य उत्पातों में गिनाते हुए उनकी शान्ति करने का विधान बतलाया गया है। रामायण में तो देवालयों में देवों के पूजन के स्पष्ट उल्लेख हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी (४।१।५४) में और पतञ्जलिकृत महाभाष्य में तो अनेकत्र देवमूर्तियों के उल्लेख हैं।

धर्मसूत्रों में देवता की ओर मलमूत्र त्याग (गौतमधर्मसूत्र १।९।१३, आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।११।३०।२०) और देवता की ओर पैर फैलाना (गौतम ध०सू० १।९।१४, आप० ध० सू० १।११।३०।२२) वर्जित बतलाया गया है। इस तरह के वचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूर्तिपूजा सुदूर अतीत में वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। भास द्वारा रचित प्रतिमा नाटक के साक्ष्य के आधार पर तो यह कहा जा सकता है कि अयोध्या में रघुवंशी राजाओं के राज्यकाल में मूर्तिपूजा प्रचलित थी। वस्तुतः पौराणिक काल से देवों की उपासना में मूर्तिपूजा को ही प्रमुखता दी जाने लगी थी।

मूर्तिपूजा का औचित्य—

प्राचीन काल से ही कुछ नास्तिकों, विधर्मी म्लेच्छों और यहाँ तक कि आर्यसमाजियों के द्वारा भी मूर्तिपूजा के औचित्य पर टीका-टिप्पणी की जाती रही है क्योंकि उनमें देवोपासना सम्बन्धी वैज्ञानिक दृष्टिकोण और दार्शनिक चिन्तन की समग्रता का अभाव रहा है। वस्तुतः जो धर्मात्मा, साधु-सन्त और योगी उन्नत आध्यात्मिक धरातल में प्रतिष्ठित होकर निर्गुण, निराकार परमात्मा का साक्षात्कार कर चुके हैं उनको मूर्तिपूजा की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु उस स्थिति में पहुँचने के पूर्व सामान्य साधक को मूर्तिपूजा का अवलम्बन आवश्यक होता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि निर्गुण निराकार अव्यक्त परमात्मा के ध्यान-पूजन में संलग्न उपासकों को अपेक्षाकृत अधिक क्लेश उठाना पड़ता है।[1] 'विष्णुसंहिता' और विष्णुधर्मोत्तरपुराण' आदि ग्रन्थों में कहा

---

१. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

२. न च रूपं विना देवो ध्यातुं केनापि शक्यते ॥ विष्णुसंहिता २९।५५।

३. अनाकारे महाराज लक्ष्यबन्धस्तु दुष्करः। विष्णुधर्मो० ३।१०८।२३।

गया है कि निराकार परमात्मा के ध्यान में बुद्धि को केन्द्रित करना सम्भव नहीं हो पाता। पूजा और ध्यान आदि साकार परमात्मा का ही किया जा सकता है।[1] साकार का ध्यान करने में सफलता प्राप्त करने वाला ही निराकार के ध्यान में समर्थ हो पाता है।[2] अतः मूर्तिपूजा साधकों को सगुण-साकार परमात्मा के स्वरूपावबोध और ध्यान में सक्षम बनाकर निर्गुण निराकार परमात्मा को हृदयङ्गम करने के योग्य बनाती है। इसी तथ्य से मिलती-जुलती बातें देवीभागवतपुराण में भी कही गई हैं।[3] वेदान्त में भी प्रतीकोपासना का अवलम्बन आरम्भिक साधकों के लिए विहित है।[4] सनातन धर्म में मूर्तिपूजा को सभी साधकों के लिए अनिवार्य कभी नहीं बतलाया गया और यह भी कभी नहीं कहा गया कि मूर्तिपूजा के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। मूर्तिपूजा तो मात्र उनके लिए आवश्यक है जो निराकार की उपासना में सक्षम नहीं हो पाये हैं।[5]

---

१. पूजाध्यानादिकं कर्तुं साकारस्यैव शक्यते। विष्णुधर्मो० ३।४६।३।

२. द्रष्टव्य—विष्णुधर्मो० ३।१०८।२६-७, पद्म ६।१३२।१०५।

३. यावदान्तरपूजायामधिकारो भवेन्नहि।
तावद् बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत्।
देवीभाग० ७।३९।४३।

४. वेदान्तसूत्र—४।१।४ का भाष्य

५. (क) अग्नौ क्रियावतां देवो दिवि देवो मनीषिणाम्।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः॥
नरसिंहपुराण ६२.५, बृहत्पराशर स्मृति ४।११९।

(ख) अप्सु देवा मनुष्याणां दिवि देवा मनीषिणाम्।
काष्ठलोष्ठेषु मूर्खाणां युक्तस्यात्मनि देवता।
शातातप (आह्निकप्रकाश पृ० ३८२ में उद्धृत)।

(ग) उत्तमा निष्कला पूजा कनिष्ठा सकलार्चना।
मध्यमा मूर्तिपूजा स्यात् ...। अग्नि० ४७।३-४।

मूर्तिपूजा की उपयोगिता—

भारतीय ऋषियों ने मनुष्य में ही नहीं अपितु समस्त स्थावर जंगम जीवों में परमात्मा का साक्षात्कार किया है। उन्होंने ईश्वर की सत्ता को सर्वत्र अनुभव किया है और उसे सर्वव्यापी बतलाया है। किन्तु जो मनुष्य अपने अन्दर विद्यमान और बाहर सर्वत्र व्याप्त परमात्मा को देखने, जानने-समझने में अक्षम है वह उसकी मूर्ति में ही उसका दर्शन-पूजन करके कृतार्थ हो जाता है।

मूर्ति में देवता की प्राण प्रतिष्ठा हो जाने पर वह मात्र कोई भौतिक वस्तु नहीं रह जाती अपितु उसमें एक अलक्षित और अलौकिक शक्ति आ जाती है। उस मूर्ति का सान्निध्य तथा उस देव-बिम्ब का दर्शन उपासना करने वाले व्यक्ति की निरालम्ब चित्त-वृत्ति के समक्ष उस परमात्मा या देव-विशेष की धारणा और ध्यान को केन्द्रित करने में अत्यधिक सहायक होता है। अतः मूर्ति-पूजा से मनुष्य की धार्मिक आस्था की सन्तुष्टि और मनोकामना की पूर्ति जितनी सरलता से सम्भव होती है उतनी किसी अन्य माध्यम से सम्भव नहीं हो पाती। मूर्तिपूजा करने वाले उपासक को यह विश्वास रहता है कि उस मूर्ति में अधिष्ठित या प्रतिष्ठापित देवता उसकी भक्ति और पूजा को देख-समझ रहा है और उसकी प्रार्थना को सुन रहा है। और फलतः उस देवता के प्रति उसका विश्वास अवश्यमेव फलीभूत होता है।

मूर्तिपूजा करने वाले कोटि-कोटि स्त्री-पुरुषों का अनुभव साक्षी है कि उससे रोग-शोक-ताप-पाप और विघ्न-बाधा का निवारण, मनोकामना की पूर्ति तथा सुख-स्वास्थ्य और धन वैभव का लाभ होता है। यही कारण है कि परम नास्तिकता के इस युग में भी मूर्तिपूजा की लोकप्रियता कम होने के बदले निरन्तर बढ़ती जा रही है। वैदिक काल में मूर्तिपूजा का जो सूत्रपात हुआ उसका निरन्तर विकास होता जा रहा है।

मूर्तिविषयक विचार—

मूर्ति का निर्माण रत्न, सुवर्ण, रजत, ताम्र, पित्तल आदि धातुओं अथवा शिला (पत्थर) या दारु (काष्ठ) या मिट्टी से किया जा सकता है। किस उपादान से निर्मित मूर्ति के पूजन से क्या फल प्राप्त होता है और किस मूर्ति या लिङ्ग का पूजन कौन करे—इसका विवेचन आगमों, पुराणों और वास्तुशास्त्र के मूर्तिशिल्प सम्बन्धी प्रकरणों में है। अग्निपुराण (४३।१०) में कौसुमी (पुष्पमयी), गन्धजा (चन्दन आदि से लिखित) तथा मृण्मयी मूर्ति को तत्काल पूजन हेतु प्रशस्त और सर्वकामफलप्रद बतलाया गया है। आगमों में बतलाया गया है कि शिला, दारु और मिट्टी की बनी हुई मूर्ति का पूजन प्रासाद (मन्दिर) में ही करना चाहिए तथा अन्य उपादान से निर्मित प्रतिमा का पूजन घर में तथा प्रासाद में उभयत्र किया जा सकता है—(द्रष्टव्य विष्णु संहिता १४।६८–६९)। मूर्तियों के उपादान भेदानुसार नाना भेदों के समान लिङ्ग भी उपादान भेद और आकृति भेदानुसार अनेक प्रकार के बतलाये गये हैं (द्रष्टव्य—अग्निपुराण, अध्याय ५४)।

निर्माणगत भेदानुसार प्रतिमा के तीन भेद बतलाये गये हैं-(१) चित्र—अर्थात् पूर्ण बिम्ब (जिसमें प्रतिमा के समस्त अवयव निर्मित हों और उसे सभी दिशाओं से स्पष्ट देखा जा सके), (२) अर्द्धचित्र (शिला, भित्ति या लकड़ी में उकेरी गयी ऐसी प्रतिमा जिसका कि पृष्ठभाग देखा ही नहीं जा सकता) और (३) चित्राभास या हीन-चित्र (भित्ति, फलक या पट में लिखित प्रतिमा को चित्राभास या हीनचित्र कहते हैं)। विष्वक्सेन संहिता (१०।३५-६) में चित्र (पूर्णबिम्ब) को उत्तम, अर्द्धचित्र को मध्यम और चित्राभास को अधम फलप्रद बतलाया गया है।

आगमों के अनुसार एक मन्दिर में एक देवता की यदि एक ही मूर्ति स्थापित की गयी हो तो उसे एकबेर और यदि एक देवता की

मुख्य मूर्ति या मूल बिम्ब के अतिरिक्त विभिन्न कृत्यों की दृष्टि से उसी देवता की विभिन्न मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं तो उसे बहुबेर कहते हैं। एकबेर विधान में मूर्ति शिला, रत्न या लोह (सुवर्ण आदि धातु) की होनी चाहिए और बहुबेर में मिट्टी या दारु (काष्ठ) से रचित अथवा आलेख्य (पट आदि में लिखित) मूर्तियाँ भी हो सकती हैं। बहुबेर में मूल बिम्ब के अतिरिक्त कर्मार्चा, उत्सव बिम्ब, बलि बिम्ब, तीर्थयात्रा बिम्ब, शयन बिम्ब की स्थापना तत्तत् कृत्यों के अनुष्ठानार्थ होती है। बहुबेर मन्दिर विष्णु तथा उनके अवतारों-परशुराम, राम, बलराम आदि का बनाना चाहिए। बहुबेर विधान में गर्भगृह में मूलार्चा, कर्मार्चा आदि की स्थापना के लिए नियत स्थान विहित करने के साथ ही किसी बिम्ब विशेष के अभाव में तत्सम्बद्ध कृत्य किस बिम्ब में किये जा सकते हैं इस विषय में भी स्पष्ट नियम बताये गये हैं और पञ्चबेर पूजन का फल उत्तम, तीन बेर का मध्यम और एक बेर का अधम (अपेक्षाकृत कम) फल बतलाया गया है।

भक्तों के कार्यानुरोध से भगवान् के बिम्ब की अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं। यथा—स्थित, आसीन, शयान, यानग और चल या लोकविक्रम (द्रष्टव्य–विष्णुसंहिता १५.३)। इन पाँच स्थितियों के अतिरिक्त उनकी छठी स्थिति में उनके विश्वरूप विग्रह को गिनाया गया है (श्रीप्रश्नसंहिता ११।१)। इन बिम्बों का स्वरूप कैसा होगा तथा एक की अपेक्षा दूसरे में क्या अन्तर होगा तथा गर्भगृह में इनकी स्थापना किस क्रम से होगी इस विषय में नारद-संहितादि आगमों में स्पष्ट विचार किया गया है।

बहुसंख्य आगमों में चतुर्व्यूह उपासना के प्रसंग में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को चतुर्मूर्ति बतलाते हुए इनका समीकरण पुरुष, सत्य, अच्युत और नारायण से किया गया है तो कहीं परमहंस, व्योम, नाद और हंस से। शैव उपासना में शिव

की अष्टमूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। उसी तरह वैष्णवों ने विष्णु की भी अष्टमूर्ति, दशमूर्ति और द्वादशमूर्तिकी परिकल्पना की है। बहुमञ्जिले मन्दिर के विभिन्न तलों में से प्रत्येक तल में चारों दिशाओं तथा चारों कोणों में किन-किन देवताओं की स्थापना होगी इस विषय में भी पर्याप्त विचार किया गया है। स्थानाभाव के कारण इन सब उपर्युक्त विषयों पर विस्तार से नहीं लिखा गया है। किन्तु इन सब विषयों का ज्ञान प्रतिष्ठा कराने वाले आचार्यों को भी होना चाहिए।

देवमूर्ति की ऊँचाई—

देव-मूर्ति की ऊँचाई के विषय में पुराणों, आगमों और वास्तु-शिल्प सम्बन्धी ग्रन्थों में पर्याप्त विवेचन किया गया है। बृहत्संहिता (५८।३०) में भगवान् राम और बलि की मूर्ति की ऊँचाई १२० अंगुल और मत्स्यपुराण में उनकी मूर्ति की ऊँचाई दश ताल बतलायी गयी है। (अमरकोश के अनुसार प्रसारित अंगुष्ठ और मध्यमा के माप को ताल कहते हैं)। वराहमिहिर ने (बृहत्संहिता ५८।३० में) अन्य देवों की १०८ अंगुल ऊँची प्रतिमा को उत्तम, ९६ अंगुल ऊँची को मध्यम और ८४ अंगुल ऊँची प्रतिमा को अधम (छोटी) बतलाया है। जबकि विष्णुसंहिता (१४।७५-६) में दश ताल ऊँची प्रतिमा को उत्तम, नौ ताल ऊँची को मध्यम और आठ ताल ऊँची प्रतिमा को अधम बतलाया गया है। अग्निपुराण के अनुसार देवी लक्ष्मी तथा अन्य देवियों की प्रतिमा आठ ताल की होनी चाहिए। विष्णसंहिता (१४।७४-५) के अनुसार प्रतिमा की ऊँचाई का उपर्युक्त उत्तम मान मिट्टी की मूर्ति के विषय में, मध्यम मान लकड़ी की मूर्ति के विषय में और अधम मान मणि (रत्न) निर्मित मूर्ति के विषय में कहा गया है। अन्य उपादानों से निर्मित मूर्ति की ऊँचाई इच्छानुसार रखी जा सकती है।

विष्वक्सेनसंहिता (११।१०४-५) में भगवान् राम की लोह (अर्थात् सुवर्ण आदि धातु) से निर्मित बत्तीस अंगुल ऊँची प्रतिमा को उत्तम, उससे सात अंगुल कम अर्थात् पच्चीस अंगुल ऊँची प्रतिमा को मध्यम और उससे नौ अंगुल कम अर्थात् सोलह अंगुल ऊँची प्रतिमा को अधम (छोटी) बतलाया गया है। उक्त संहिता में ही भगवान् कृष्ण की मूर्ति का उत्तम, मध्यम और अधम मान राम की मूर्ति के समान ही बतलाया गया है (विष्वक्सेन संहिता ११।१२९-१३०)।

बृहत्संहिता (५८।४९) में सूर्य की एक हाथ, दो हाथ, तीन हाथ और चार हाथ तक ऊँचाई की प्रतिमा के पूजन के भिन्न-भिन्न फल बतलाये गये हैं।

मूर्ति की ऊँचाई का निर्धारण मन्दिर की ऊँचाई के अनुसार, अथवा द्वार की ऊँचाई के अनुसार अथवा गर्भगृह की ऊँचाई के अनुसार होता है। इस विषय में प्रतिष्ठा के आचार्यों तथा मूर्ति शिल्पियों को गम्भीर अध्ययन करने की आवश्यकता है।

मूर्ति-लक्षणानुसार शुभाशुभ फल—

देव-प्रतिमा का स्वरूप और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों के मानकों का निर्देश आगमों, पुराणों और वास्तुशास्त्र के मूर्तिशिल्प सम्बन्धी प्रकरणों में है।[1] मूर्ति-निर्माण करने वाले शिल्पी तथा प्रतिष्ठा-शास्त्र के ज्ञाता आचार्य और प्रतिष्ठा कराने वाले यजमान को भी

---

१. द्रष्टव्य—बृहत्संहिता अध्याय ५८; मत्स्यपुराण अध्याय २५८ से २६१ तक, विष्णुसंहिता १४।७६-१०६; विष्वक्सेनसंहिता अध्याय ११; श्रीप्रश्नसंहिता अध्याय १३; विष्णुधर्मोत्तरपुराण चित्रसूत्राध्याय ; अग्निपुराण अध्याय ४४ तथा ४९—५३ अध्याय तक। जयाख्य-संहिता २०।९-६६।

मूर्ति के स्वरूप और लक्षणों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (३।१।७-९) के अनुसार चित्रसूत्र विधानानुसार निर्मित सुन्दर, शुभ आकार की और शुभ लक्षणों से युक्त मूर्ति में ही देवता का सान्निध्य रहता है और ऐसी मूर्ति की पूजा करने वाले की सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं तथा वह इहलोक और परलोक में भी सदैव सुखी रहता है। जो मनुष्य लक्षणरहित प्रतिमा का पूजन करता है उसके जीवन में और घर-परिवार में अनर्थों की बाढ आ जाती है अतः वैसी प्रतिमा का पूजन न करे—

चित्रसूत्रविधानेन देवतार्चां विनिर्मिताम्।
सुरूपां पूजयेद् विद्वांस्तत्र सन्निहितो भवेत् ॥ ७

स्वाकारां लक्षणोपेतां यस्तां संपूजयेन्नरः।
स सर्वकामानाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
अस्मिल्लोके परे चैव सुखवान् स भवेत् सदा ॥ ८

अथार्चां लक्षणैर्हीना यस्तु पूजयते नरः।
तस्यानर्था विवर्धन्ते तस्मात् तां च विवर्जयेत् ॥ ९

लक्षणरहित मूर्ति या लिङ्ग के पूजन से हानि—

बृहत्संहिता ५८।५०-५२ के अनुसार अधिकाङ्गा मूर्ति राजभयकरी, हीनाङ्गा कर्ता के लिए विनाशकारी, शातोदरी (कृशोदरी) भुखमरी की हेतु, कृशाङ्गा अर्थनाशकारी, सक्षत (टूटी-फूटी) मूर्ति मरणकारक, बांयी ओर झुकी हुई मूर्ति पत्नीनाशक, दांयी ओर झुकी हुई मूर्ति आयुनाशक, ऊपर को उठी हुई दृष्टि वाली मूर्ति अन्धा बनाने वाली और अधोमुखी मूर्ति चिन्ताकारी होती है।

बृहत्संहिता (६०।६) में शंकु (कील) के द्वारा उपहत मूर्ति कुल के प्रधानपुरुष के साथ ही कुल के लिए भी घातक बतलायी गई है और जिस मूर्ति में गड्ढा हो (कोई अङ्ग भीतर को धँसा हो) वह रोगों और उपद्रवों की जनक बतलायी गई है। इसी तरह

बृहत्संहिता ५८।५५ में कृशता, दीर्घता आदि दोषों से युक्त लिङ्ग को देश, पुर या कर्ता—यजमान आदि के लिए घातक बतलाया गया है।

समराङ्गण सूत्रधार ७७।७-९ में कहा गया है कि रौद्र आकार की मूर्ति कारक (बनवाने वाले या यजमान) के लिए और दीन आकृतिकी मूर्ति शिल्पी के लिए घातक होती है। कृश मूर्ति व्याधि-जनक और बनवाने वाले के लिए विनाशकारी होती है। कृशोदरी मूर्ति दुर्भिक्षकरी और विरूप मूर्ति अनपत्यताकारक होती है।

मत्स्यपुराण में भी कहा गया है कि देवता की मूर्ति यदि न्यूनाङ्गी और विकराल मुख वाली हों तो वह स्वामी के लिए घातक होती है और अधिकाङ्गी मूर्ति शिल्पी के लिए घातक होती है। कृशमूर्ति अर्थनाशिनी होती है—

नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कर्तव्या देवता क्वचित् ॥ १५
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी ॥ १६

मत्स्य २५९।१५-१६

इसके आगे भी मत्स्यपुराण २५९।१७-२१ में मूर्ति में अन्य विविध दुर्लक्षणों के भी विविध दुष्परिणामों को गिनाते हुए कहा गया है कि सम्पूर्ण अवयवों वाली मूर्ति ही आयुष्प्रद और लक्ष्मीप्रद होती है। इसीलिए विष्णुधर्मोत्तर पुराण ३।१।११ में कहा गया है कि विद्वान् पुरुष लक्षणयुक्त मूर्ति का ही पूजन करे, अलक्षणयुक्त मूर्ति का नहीं।

नारदपुराण (पूर्वार्द्ध ६७।३२) में वक्र आकृति की, दग्ध, खण्डित या अन्त्यज आदि के स्पर्श से दूषित प्रतिमा का पूजन वर्जित बतलाया गया है। खण्डित, जीर्ण या अन्त्यज आदि के द्वारा दूषित मूर्ति या लिङ्ग के पूजन से भी अनेक हानियाँ होती हैं।

इसीलिए पुराणों और आगमों में दूषित प्रतिमा या लिङ्ग में पुनः प्राणप्रतिष्ठा और खण्डित, जीर्ण या दग्ध प्रतिमा या लिङ्ग का जीर्णोद्धार करके उसके स्थान पर नयी मूर्ति या लिङ्ग की प्रतिष्ठा करने के पश्चात् ही उसका पूजन विहित है।

घर में स्थापनीय मूर्ति—

घर में पूजनीय मूर्ति स्वर्णादि धातु की और एक अंगुष्ठ या अंगुष्ठपर्व[1] परिमाण से लेकर एक वितस्ति (१२ अंगुल) पर्यन्त ऊँची होनी चाहिए, उससे अधिक नहीं। प्रासाद (मन्दिर) में स्थाप्य मूर्ति एक हाथ या उससे बड़ी होनी चाहिए।[2] किन्तु प्रासाद में भी अधिकाधिक षोडश वितस्ति (आठ हाथ) ऊँची मूर्ति स्थापित की जा सकती है उससे अधिक ऊँची नहीं।[3]

पट आदि में लिखित बिम्ब की ऊँचाई २३ अंगुल तक हो सकती है।[4] यदि दारु, मिट्टी या शिला निर्मित मूर्ति के अतिरिक्त पटादि

---

१. (क) अंगुष्ठादिवितस्त्यन्तमाना स्वर्णादिधातुभिः।
निर्मिता शुभदा गेहे पूजनाय दिने दिने॥ नारद पू० ६७।३२।
(क) अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥ मत्स्य २५८।२२।
(ग) कर्णिका मध्यसंस्थंतु प्रोच्छ्रायं द्वादशाङ्गुलम्॥
जयाख्यसंहिता २०।५।

२. अङ्गुष्ठादि वितस्त्यन्त गृहे संस्थाप्य पूजयेत्।
प्रासादे चोर्ध्वमाहस्तात् परं प्रासाद एव तु॥ विष्णुसंहिता १४।७०।

३. आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः। मत्स्य २५८।२३।

३. (क) कर्णिकामध्यसंस्थं तु प्रोच्छ्रायं द्वादशाङ्गुलम्।
त्रिविंशत्यङ्गुलान्तं च बिम्बं लिख्य सुलक्षणम्॥
जयाख्यसंहिता २०।५-६।

में लिखित प्रतिमा की ऊँचाई एक हाथ से अधिक हो तो भी उसका पूजन घर में किया जा सकता है।[१]

जयाख्यसंहिता में कहा गया है कि घर में शिला, दारु अथवा मिट्टी से निर्मित मूर्ति की स्थापना नहीं करनी चाहिए।[२] क्योंकि घर में इनके पूजन से सिद्धि (सफलता) बहुत विलम्ब से मिलती है।[३] इसीलिए विष्णुसंहिता में कहा गया है कि शिला, दारु और मिट्टी से निर्मित मूर्ति को प्रासाद में ही स्थापित करे और अन्य उपादानों से निर्मित मूर्ति को यथाविधि स्थापित करके घर में और प्रासाद में भी पूजा जा सकता है।[४]

घर में पूजनीय मूर्ति लक्षणरहित नहीं होनी चाहिए। भविष्य पुराण में कहा गया है कि हीनाङ्गा प्रतिमा को घर में नहीं रखना चाहिए, क्योंकि वह अनायुष्यकारक होती है।[५] वराहपुराण के अनुसार अग्नि से दग्ध और भग्न प्रतिमा की पूजा घर में नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसी प्रतिमाओं के पूजन से गृहस्थ उद्वेग को प्राप्त करता है।[६]

---

१. हस्ताधिकेऽपि च कृते चित्रबिम्बे गृहस्थिते।
न दोषः साधकानां तु दारुमृच्छैलजं विना॥ जयाख्यसंहिता २०।८।

२. न कार्यं शैलजं गेहे दारुजं वाथ मृण्मयम्॥ जयाख्यसंहिता २०।६९।

३. सम्भवे सति यः कुर्याच्छैलमृद् दारुजं गृहे।
चिरेण सिद्धयस्तस्य प्रवर्त्तंते महामते॥ जयाख्यसंहिता २०।६८।

४. प्रासाद एव तु स्थाप्या या शिला-दारु मृन्मयी।
प्रतिमाऽन्या गृहे पूज्या प्रासादे च यथाविधि॥ विष्णुसंहिता १४।६९।

५. हीनाङ्गा प्रतिमा चैव पुस्तकं मानहीनकम्।
न कलौ धारयेद् देह [?गेहे] अनायुष्यकरं भवेत्॥ भविष्य २।१।७।१०१।

६. गृहेऽग्निदग्धा भग्ना वा नैव पूज्या वसुन्धरे।
आसां तु पूजनाद् गेहे उद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही॥ वराह १८६।४३।

गृहस्थ को अपने घर में ईशानकोण में देवतागृह बनाना चाहिए।[१] अपनी अभीष्टसिद्धि की इच्छा करने वाले गृहस्थ को मात्र एक ही मूर्ति का ही पूजन नहीं करना चाहिए। अनेक मूर्तियों की पूजा करने वाले गृहस्थ की सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।[२] गृहस्थ के द्वारा पूजनीय देवताओं में क्रमशः सूर्य, गणेश, शिव, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी और अन्त में कुलदेवता को गिनाया गया है।[३] एक अन्य श्लोक में गृहस्थ के द्वारा प्रतिदिन पूजनीय देवताओं में क्रमशः सूर्य, गणेश, दुर्गा, शिव और विष्णु को गिनाया गया है। इससे भिन्न क्रम में इनकी पूजा अतीव भयकारक होती है।[४]

घर में दो लिङ्गों, तीन गणेशों, दो शंखों, दो सूर्यों, तीन शक्तियों, द्वारका के दो चक्रों, शालग्राम की दो शिलाओं की पूजा नहीं करनी चाहिए अन्यथा उनके पूजन से गृहस्थ उद्वेग को प्राप्त करता है।[५]

---

१. मत्स्य २५८।३३; अग्नि १०६।१९।

२. एका मूर्तिर्न पूज्यैव गृहिणा स्वेष्टमिच्छता।
अनेकमूर्तिसम्पन्नः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥
आह्निकसूत्रावली पृ० १०४ में उद्धृत।

३. आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं यथाक्रमम्।
दुर्गां सरस्वतीं लक्ष्मीमन्ते च कुलदेवताः॥
वीरमित्रोदय पूजाप्रकाश, पृ० २३९ में पद्मपुराण के नाम से उद्धृत।

४. रविविनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तु पञ्चमः।
अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमेण महद्भयम्॥
वीरमित्रोदय पूजाप्रकाश, पृ० २३९ में पद्मपुराण के नाम से उद्धृत।

५. गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं गणेशत्रितयं तथा।
शङ्खद्वयं तथा सूर्यौ नार्च्यौ शक्तित्रयं तथा॥
द्वे चक्रे द्वारकायाश्च शालग्रामशिलाद्वयम्।
तेषां तु पूजनेनैव उद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही॥
आह्निकसूत्रावली पृ० १०४ में उद्धृत स्मृतिवचन।

घर में स्थापनीय चललिङ्ग एक अंगुल से लेकर पांच अंगुल तक का कनिष्ठ, छः अंगुल से दश अंगुल पर्यन्त चललिङ्ग मध्यम और ग्यारह से पन्द्रह अंगुल तक का लिङ्ग ज्येष्ठ (उत्तम) लिङ्ग कहलाता है (अग्नि ५४।११-२)। महारत्नों से निर्मित लिङ्ग छः अंगुल ऊँचा, अन्य रत्नों से निर्मित लिङ्ग नौ अंगुल और स्वर्ण-निर्मित लिङ्ग बारह अंगुल ऊँचा होना चाहिए (अग्नि ५४।१३)। प्रासाद में स्थापनीय शिला या दारु से निर्मित लिङ्ग एक हाथ ऊँचा हो सकता है (अग्नि ५४।७)।

प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता—

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि कृत, द्वापर और त्रेता युगों में देवता इस लोक में सशरीर आ जाते थे किन्तु कलियुग में वे सशरीर कथञ्चिदपि नहीं आते, अपितु ब्राह्मणों के द्वारा मूर्ति आदि में प्रतिष्ठा करते समय आवाहित किये जाने पर ही वे आते हैं। अतः कलियुग में बुद्धिमान् पुरुष प्रयत्नपूर्वक प्रतिष्ठा करावे।[1]

इतिहास-पुराणादि प्राचीन साहित्य में देवताओं विषयक जो भी आख्यान उपाख्यान हैं अथवा उपासकों, भक्तों और तपश्चर्या करने वाले ऋषि-मुनियों, राजाओं और असुरों विषयक जो भी

---

१. कृते त्रेतायुगे राजन् द्वापरे च नरोत्तमाः ॥ १८
आगच्छन्ति नृलोकेऽस्मिन् सशरीरा दिवौकसः।
नागच्छन्ति कलौ यस्मात् सशरीराः कथञ्चन ॥ १९
आगच्छन्ति प्रतिष्ठासु द्विजैरावाहितास्ततः।
तस्मात् कलौ प्रयत्नेन प्रतिष्ठां कारयेद् बुधः ॥
विष्णुधर्मोत्तर ३।९३ १८-२०।

द्रष्टव्य— कृतत्रेताद्वापरेषु नराः पश्यन्ति देवताम्।
तिष्यं प्राप्य न पश्यन्ति प्रजास्त्वर्चागता यतः ॥
विष्णुधर्मो० ३।१।५।

कथाएं हैं उनमें देवताओं के प्रत्यक्ष आगमन की चर्चा है। किन्तु वर्तमान समय में कोई भी भक्त, उपासक और तपस्वी देवताओं को सशरीर नहीं बुला सकता और न उनका प्रत्यक्ष दर्शन ही कर सकता है। तब यह प्रश्न उठता है कि जब देवता किसी भी मनुष्य के बुलाने पर आते ही नहीं और न किसी को दर्शन दे सकते हैं तो वे अपने भक्तों और उपासकों की सहायता और उनकी कार्य-सिद्धि या मनोकामना की पूर्ति कैसे करते हैं? इसके उत्तर में, विष्णुधर्मोत्तर पुराण के ये वचन उद्धरणीय हैं कि कलियुग में देवता अर्चाविग्रह (प्रतिमा) में स्थित होकर ही लोक का पालन करते हैं और अर्चा (प्रतिमा) में स्थित होकर ही भक्तों की पूजा ग्रहण करते हैं और उनकी स्तुति-प्रार्थना सुनते हैं और उन पर अनुग्रह करते हैं।[1]

लिङ्ग-प्रतिष्ठा की आवश्यकता—

शिवप्रतिष्ठा के प्रसङ्ग में लिङ्ग-प्रतिष्ठा की चर्चा अपरिहार्य हो जाती है। लिङ्गपुराण में कहा गया है कि लिङ्गवेदी उमा (पार्वती) हैं और लिङ्ग साक्षात् महेश्वर (शिव) हैं। अतः पीठिका सहित लिङ्ग का पूजन करने से देवी उमा और देव महेश्वर दोनों की पूजा हो जाती है। प्रतिष्ठा करने पर ही देवी उमा के साथ देवेश शिव प्रतिष्ठित हो पाते हैं। अतः स्थापना करने वाला वेदिका (पीठिका) सहित लिङ्ग की स्थापना करे।[2] लिङ्ग के

---

१. अर्चास्वेवस्थितदर्शैर्लोकः कलौ सर्वो हि पाल्यते।
अर्चागताश्च गृह्णन्ति कृतदेवप्रतिष्ठिताः॥ २१
तस्मात् कलौ प्रयत्नेन प्रतिष्ठाकरणं हितम्।
—विष्णुधर्मो० ३।९३।२१–२२।

२. लिङ्गवेदी उमादेवी लिङ्गं साक्षात् महेश्वरः॥
तयोः सम्पूजनादेव देवी देवश्च पूजितौ।

मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु और अग्रभाग में शिव रहते हैं। अतः इन तीनों की समवेत उपासना करने की इच्छा करने वाला लिङ्ग को स्थापित करके उसकी पूजा करे।[1]

अन्यत्र भी कहा गया है कि लोक में सब कुछ लिङ्गमय है और सब कुछ लिङ्ग में प्रतिष्ठित है। अतः अन्य सब को छोड़कर लिङ्ग की ही स्थापना और उसी की पूजा करनी चाहिए।[2]

प्रतिष्ठा के बिना मूर्ति में देवत्व नहीं आता—

मूर्ति में देवकला सान्निध्य हेतु ही प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। जिस मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की जाती उसमें देवता का सान्निध्य नहीं होता। कालिका पुराण में कहा गया है कि यदि स्वर्ण आदि धातु से विष्णु की प्रतिमा का निर्माण किया गया हो, किन्तु उसमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की गयी हो तो वह स्वर्ण आदि धातु मात्र है। उसमें विष्णु का बिम्ब दृष्टिगत होने पर भी भगवान् विष्णु का सान्निध्य नहीं होगा। अन्य देवों की प्रतिमा में भी देवत्व की सिद्धि हेतु प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। अन्यथा सुवर्णादि धातु या शिला या दारु (काष्ठ) आदि जिस उपादान से भी प्रतिमा बनाई गयी हो, प्राण-प्रतिष्ठा न किये जाने पर वह प्रतिमा सुवर्णादि

प्रतिष्ठया च देवेशो देव्या सार्द्धं प्रतिष्ठितः ॥ ९
तस्मात् सवेदिकं लिङ्गं स्थापयेत् स्थापकोत्तमः।
लिङ्ग उ० ४७।८–१०।

१. मूले ब्रह्मा वसति भगवन् मध्यभागे च विष्णुः।
सर्वेशानः पशुपतिरजो रुद्रमूर्तिर्वरेण्यः ॥ १०
तस्माल्लिङ्गं गुरुतरतरं पूजयेत् स्थापयेद् वा।
यस्मात् पूज्यो गणपतिरसौ देवमुख्यैः समस्तैः ॥
लिङ्ग उ० ४७।१०–११।

२. सर्वं लिङ्गमयं लोके सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य स्थापयेत् पूजयेच्च तम्। लिङ्ग उ० ४६।१३।

उपादान मात्र रहती है उसमें देवत्व नहीं आता।'

जिस मूर्ति में देवता की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की जाती उसमें देवता के सान्निध्य के अभाव में भूत-प्रेत समाविष्ट हो सकते हैं। टूटी-फूटी, जली-कटी और बेडौल प्रतिमा में भी भूत-प्रेत अपना आश्रय बना सकते हैं, अतः उनको हटाकर उनके स्थान पर नूतन सुलक्षण मूर्ति की स्थापना की जाती है।

भूतोपासना में प्राणप्रतिष्ठा आवश्यक नहीं होती—

भूत-प्रेत कब्रिस्तान या श्मशान में रहते हैं। इसके अतिरिक्त किसी मुर्दे के लावारिश शव में, शरीर से पृथक् किये गये नाखून, बाल, हड्डी आदि में भी भूत-प्रेत आ जाते हैं। भूत-प्रेतों की उपासना करने वालों को उनकी मूर्ति नहीं बनानी पड़ती। इसीलिए प्रेतों की उपासना करने वाले सम्प्रदाय मूर्तिपूजक नहीं होते। जिन मजहबों में मूर्तिपूजा का कोई व्यवस्थित स्वरूप नहीं है उनके धर्म में मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा की न तो कोई व्यवस्था व्यवहार में है और न तद्विषयक कोई पद्धति ही उनके पास है।

मूर्ति प्रतिष्ठा-विधि भारतीय ब्राह्मणों की देन—

सम्पूर्ण विश्व में मात्र भारतवर्ष के ब्राह्मणों ने ही मूर्ति में देवत्व की प्रतिष्ठा की साङ्गोपाङ्ग विधि विकसित की है। हमारे लिए यह परम गौरव की बात है कि अपने पूर्वाचार्यों की साधना

---

१. अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च।
यथापूर्वं तथाभावः स्वर्णादीनां न विष्णुता ॥ १०
अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥ ११
सुवर्णं तु सुवर्णं स्याच्छिला दारु तथा शिला।
अन्यच्च स्वस्वरूपं स्यात् प्राणस्थानमृते सदा ॥ १२

कालिकापुराण ८८।१०—१२

और उपलब्धियों के बल पर आज हम इतने सक्षम हैं कि पत्थर, मिट्टी, लकड़ी या सोने चाँदी आदि धातुओं या रत्नों से निर्मित मूर्ति में हम देवता को प्रतिष्ठापित कर देते हैं। हमारी तरह की प्राण प्रतिष्ठा विधि का विधान विश्व की किसी अन्य जाति के धार्मिक कर्मकाण्डों में नहीं है। मूर्ति का निर्माण विश्व की अनेक प्राचीन संस्कृतियों में पूर्व काल से ही होता रहा है किन्तु मूर्ति में देवत्व की प्रतिष्ठा का सुविकसित वैज्ञानिक विधि-विधान केवल हमारे पास है और इस बात में कोई आश्चर्य नहीं कि आने वाले समय में जब सम्पूर्ण विश्व भारतीय संस्कृति की छत्र छाया में आयेगा तो हम ही मूर्ति प्रतिष्ठा सम्बन्धी कर्मकाण्ड में अग्रगण्य रहेंगे।

प्रतिष्ठा कर्म का आचार्य—

प्रतिष्ठाकर्म हेतु यजमान सर्वप्रथम आचार्य का वरण करता है। आचार्य की योग्यता के विषय में पुराणों और आगमों के दृष्टिकोण में कुछ अन्तर है। पुराणों के अनुसार आचार्य मध्यदेशीय या आर्यावर्त का निवासी, वेदमन्त्रज्ञ, पुराणज्ञ, ऊहापोहार्थ तत्त्वज्ञ, वास्तुशास्त्रज्ञ, दम्भ-लोभ आदि दुर्गुणों से रहित, सदाचारी और सुन्दर व्यक्तित्व वाला होना चाहिए।[१] अग्निपुराण में कच्छ, कावेरी तट-प्रदेश, कोङ्कण, कामरूप, कलिङ्ग, काञ्ची और काश्मीर के ब्राह्मण को आचार्य पद के अयोग्य बतलाया गया है।[२] वसिष्ठ स्मृति के अनुसार आचार्य अन्य गुणों से युक्त होने के साथ ही प्रतिष्ठा कर्म में तो निष्णात होना ही चाहिए।[३] आगमों में भी आचार्य में अपेक्षित अनेक गुण गिनाये गये हैं[४] और पाञ्चरात्रार्थ-

१. द्रष्टव्य—अग्नि० ३९।६–९; गरुड़ पु० ४८।२; मत्स्य० २६५।२–५।

२. अग्नि ३९।६–७।   ३. द्रष्टव्य—वसिष्ठस्मृति ७।१०–१४।

४. नारदीयसंहिता २५।२२३–२२६; विष्वक्सेनसंहिता २६।९२–११४; श्रीप्रश्नसंहिता ४।१६–१८; १८।३२; ४९।६–८।

तत्त्वज्ञ होना आचार्य पद के लिए विशेष गुण माना गया है।[1] नारदीयसंहिता के अनुसार आचार्य को षडध्वकुशल भी होना चाहिए।[2] अनर्ह आचार्य के द्वारा प्रतिष्ठा करवाये जाने पर उस प्रतिष्ठापित मूर्ति सहित देवालय, यजमान, राजा और देश को भी दुष्परिणाम भोगना पड़ता है।[3]

प्रतिमा में देवत्व की प्रतिष्ठा में सुयोग्य आचार्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। श्रीप्रश्नसंहिता (४९।४६८–४६९) में कहा गया है कि जब आचार्य मन्त्रसम्पूर्ण हो अर्थात् प्रतिष्ठा सम्बन्धी समस्त कृत्य समन्त्रक करवाने में दक्ष हो, शिल्पी ने मूर्ति निर्माण में शिल्प-प्रतिभा का सम्पूर्ण उपयोग किया हो और प्रतिष्ठा कार्य में यजमान ने वित्तशाठ्य न करके खर्चे में कोई कमी न की हो तो मूर्ति में देवता का सान्निध्य आ ही जाता है—

आचार्यो मन्त्रसम्पूर्णः क्रियापूर्णस्तु शिल्पिनः ।।
दाता तु वित्तसम्पूर्णो देवसान्निध्यकारणम् ।

हयशीर्षागम में भी कहा गया है कि उपासना करने वाले की तपश्चर्या के संयोग से, उपासना में कोई त्रुटि न रहने से और देवता की मूर्ति संरचना सुन्दर और सुलक्षण होने से उस मूर्ति में देवता का सान्निध्य आ जाता है—

अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात् ।
आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छति ।।

हयशीर्षागम के ये वचन प्रतिष्ठाकर्म की उपेक्षा के बोधक नहीं हैं अपितु प्रतिष्ठाकर्म के पश्चात् पूजा करनेवाले उपासक की शुचिता

---

१. नारदीयसंहिता २५।२२४; श्रीप्रश्नसंहिता ४।१८; ४९।८।

२. नारदीयसंहिता २५।२२३।

३. वसिष्ठस्मृति ७।२४–५ ; मत्स्यपुराण २६७।३१–३५; द्रष्टव्य—विष्वक्सेनसंहिता ३६।९७–९९ ; नारदीयसंहिता २५।२५५–६।

और जागरूकता और पूजा की उत्कृष्टता तथा मूर्तियों को सदा सुशोभित रखने की प्रेरणा देते हैं। मूर्ति का पूजन तो प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् ही विहित है। जैसा कि पद्मपुराण के अधोलिखित वचनों से भी स्पष्ट हो जाता है।

आगमोक्तैर्वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य विशेषतः ।। २४
पश्चाद् वै अर्चनं कार्यं यथाशास्त्रानुसारतः ।

पद्म ६।८२।२४-५

अर्थात् आगमोक्त और वैदिकमन्त्रों से मूर्ति की प्रतिष्ठा करने के पश्चात् ही शास्त्रविधि के अनुसार पूजन करना चाहिए। मन्त्रपाठपूर्वक यथाविधि मूर्ति की स्थापना करके जब पूजन किया जाता है तो वह पूजन कोटिगुना अधिक पुण्यजनक और धर्म, अर्थ, काम और मोक्षप्रद होता है—

मूर्तिं मन्त्रेण संस्थाप्य पूजनं क्रियते यदि ।
तदर्चनं कोटिगुणं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।

पद्म ६।८२।१३-१४।

प्रतिष्ठा पञ्चक—

प्रतिष्ठाशास्त्र में प्रतिष्ठा विषयक विभिन्न कृत्यों के आधार पर प्रतिष्ठा के पांच भेद बतलाये गये हैं—स्थापना, आस्थापना, संस्थापना, प्रस्थापना और प्रतिष्ठा या प्रतिष्ठापना। किन्तु सामान्यतः प्राणप्रतिष्ठा के अर्थ में ही प्रतिष्ठा शब्द का प्रयोग पाया जाता है और जलाधिवास, स्नपन, न्यास, होम आदि समस्त कृत्य उसी के अङ्गभूत माने जाते हैं।

स्वयं व्यक्तादि की प्रतिष्ठा अपेक्षित नहीं—

प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि स्वयंव्यक्त (स्वयं प्रकट हुए), दिव्य, आर्ष (ऋषियों द्वारा स्थापित) और सिद्धों के द्वारा स्थापित मूर्ति या लिङ्ग की प्रतिष्ठा विहित नहीं है। जो

मूर्ति या लिङ्ग मनुष्य के द्वारा प्राकृत द्रव्यों से निर्मित हो उसकी द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि तथा उसमें देवता के सान्निध्य हेतु आचार्य यथाविधि प्राणप्रतिष्ठा करे।[1] तात्पर्य यह है कि मात्र मानव के द्वारा प्राकृत (भौतिक) द्रव्यों से निर्मित लिङ्ग या मूर्ति में ही प्राण-प्रतिष्ठा करना आवश्यक है।

नारदीयसंहिता के अनुसार प्राचीन काल के ऋषि, देव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर और राक्षसों के द्वारा स्थापित-पूजित बिम्ब में लक्षण-परीक्षा न करे।[2]

शालग्राम और बाणलिङ्ग में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की जाती। यह बात अनेकत्र कही गयी है[3] क्योंकि शालग्राम में विष्णु का और बाणलिङ्ग में शिव का सान्निध्य सदैव रहता है।

प्राणप्रतिष्ठा की गम्भीरता—

प्राणप्रतिष्ठा कोई सरल और सस्ता कृत्य नहीं है। प्रतिष्ठा कर्म में यदि धन के अभाव मे कोई कृत्य अपूर्ण रह जाता है तो प्रतिष्ठा करवाने वाले यजमान को हानि उठानी पड़ती है। मन्त्र सम्बन्धी और कृत्य सम्बन्धी कोई त्रुटि रह जाती है तो आचार्य और ऋत्विजों को हानि उठानी पड़ती है और यदि मूर्ति लक्षण-हीन हो तो श्री (या नारदपुराण[4] के अनुसार स्त्री) की हानि होती है—

हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम्।
श्रियं[4] लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठा समो रिपुः॥

नारदसंहिता (ज्योतिषग्रन्थ) २८।१९

---

१. द्रष्टव्य—श्रीप्रश्नसंहिता १८।२४–५।

२. द्रष्टव्य नारदीयसंहिता १३।३६२–३७०।

३. द्रष्टव्य—आह्निकसूत्रावली पृ० १०५; ब्रह्मनित्यकर्मसमुच्चय पृ० २७।

४. नारदपुराण पूर्वार्द्ध ५६।५३८ में 'स्त्रियं लक्षणहीना' पाठ है।

प्रतिष्ठा विधि में तन्त्रभेद—

प्रतिष्ठा कर्म के विषय में आगमों का मत है कि जिस बिम्ब की प्रतिष्ठा के कृत्य जिस तन्त्र से आरम्भ किये गये हों उसी तन्त्र से उन्हें पूरा किया जाय।[1] नारदीयसंहिता में ये तन्त्र चार प्रकार के बतलाये गये हैं—वैखानस, शैव, पाशुपत और पाञ्चरात्र।[2] यह भी कहा गया है कि प्रतिष्ठा सम्बन्धी जो कृत्य ग्रन्थ में कथित नहीं हैं उन्हें पुराने पाञ्चरात्रज्ञ विद्वान् जिस प्रकार कराते रहे हों उसी प्रकार सम्पादित करें।[3]

प्रतिष्ठा में नये उपकरणों का प्रयोग—

प्रतिष्ठा कर्म के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण नियम प्राप्त होते हैं। श्रीप्रश्नसंहिता (४९।१९–२२) में कहा गया है कि अन्य कार्य में प्रयुक्त मृण्मय घट आदि, कुण्ड, स्रुक्, स्रुवा, दर्भ, परिधि, वस्त्र, ध्वज, द्वार, तोरण, हुतशेष द्रव्य और काष्ठ के पात्र आदि को प्रतिष्ठाकर्म में प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति मोहवश इन्हें किसी प्रतिष्ठा सम्बन्धी कर्म में प्रयोग में लाता है तो वह उस कर्म को पुनः नये पात्रादि से करे और अपनी उस त्रुटि के लिए शान्तिहोम करे और तब ब्राह्मण भोजन करावे।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी कृत्य—

पुराणों और आगमों में देवप्रतिष्ठा के पूर्व देवालय निर्माण हेतु

तु० अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विज:।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥ मनु ११।४०-४१; मत्स्यपुराण ९३।१११ में 'दीक्षितं' के स्थान पर 'यष्टारं' पाठ है।

१. विष्वक्सेनसंहिता ३९।३२४; नारदीयसंहिता १३।३८५।
२. नारदीयसंहिता २५।२३७।
३. जयाख्यसंहिता १७।८७।

भूमिचयन, भूमिपरीक्षा, वास्तुपूजन, देवालय निर्माण तथा उसके पूर्व बालालय निर्माण करके उसमें बालबिम्ब की प्रतिष्ठा और पूजा आदि की विधि भी दी गयी है। मण्डप आदि का मान बतलाया गया है। सर्वप्रायश्चित्त प्रयोग और पञ्चाङ्ग पूजन आदि कृत्य तो सभी कर्मों के आरम्भ में किये ही जाते हैं।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी प्रमुख कृत्यों में अंकुरार्पण, प्राणप्रतिष्ठा के पूर्व किये जाने वाले जलाधिवास, देव-स्नपन, नेत्रोन्मीलन, शय्याधिवास, न्यास, होम, वेदपारायण आदि प्रमुख हैं।[1] अन्नाधिवास आदि अनेक कृत्य प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित नहीं हैं। मूर्ति को प्रासाद के भीतर पिण्डिका में स्थापित करने के पूर्व रथ या शिविका में स्थापित करके नगर, ग्राम आदि की वीथी में घुमाने का विधान अनेकत्र प्राप्त होता है। ध्वजस्थापन आदि अनेक कृत्यों के भी विवरण प्राप्त होते हैं। यदि प्रतिष्ठा सम्बन्धी विहित कृत्यों में से कोई कृत्य छूट जाय तो समस्त कर्म निरर्थक हो जाता है। अतः छूटे हुए कर्म सहित समस्त कृत्य करके पुनः स्थापना (पुनः प्रतिष्ठा) करनी चाहिए।[2]

प्रतिष्ठाकर्म यदि यथाविधि नहीं किया गया तो यजमान, प्रतिष्ठापित बिम्ब, देवालय, राजा और राष्ट्र की क्षति होती है अतः प्रतिष्ठा सम्बन्धी समस्त कृत्यों को यथाविधि करना चाहिए।[3]

अंकुरार्पण–

आगमों में प्रतिष्ठा दिवस से पाँच, सात या नौ दिन पूर्व

---

१. द्रष्टव्य— श्रीप्रश्नसंहिता ४९।५५–५७।

२. एतेष्वन्यतमाभावे सर्वं कर्म निरर्थकम्।
तानि कर्माणि कृत्वैव पुनः स्थापनमाचरेत्॥ श्रीप्रश्नसंहिता ४९।५८।

३. द्रष्टव्य—श्रीप्रश्नसंहिता ४९।१३–१४।

पालिका, घटिका या शराव में अंकुरार्पण करने का विधान है।[1] यह कार्य रात्रि में करना प्रशस्त बतलाया गया है।[2] इसमें यव, मुद्ग तिल, ब्रीहि, माष, शिम्ब, कुलुत्थ, प्रियङ्गु, सर्षप, श्यामाक, राजमाष और आढकी के बीज बोने चाहिए।[3] जबकि श्रीप्रश्नसंहिता के अनुसार इसमें नीवार, शालि, गोधूम, मुद्ग, निष्पाव, वैणव, प्रियङ्गु, तिल, माष, कुलुत्थ, सर्षप और यव के बीज बोये जा सकते हैं।[4] बीज वपन की विधि भी इन ग्रन्थों में बतलायी गई है। अंकुरों के वर्ण के आधार पर शुभाशुभ लक्षणों का भी निर्देश किया गया है।[5]

मण्डप पूजन—

प्रतिष्ठा कर्म हेतु प्रासाद (मन्दिर) के उत्तर में या पूर्व में १६ हाथ या १२ हाथ या १० हाथ का वर्गाकार मण्डप बनावे।[6] अग्नि पुराण में ८ हाथ का मण्डप अधम, १६ हाथ का मध्यम और २० हाथ का मण्डप उत्तम बतलाया गया है।[7] मण्डप के स्वरूप और उसके पूजन विधान का वर्णन भी आगमों और पुराणों में दिया गया है[8], किन्तु वह पद्धतियों की तरह व्यवस्थित नहीं है। विष्णु-

१. विष्णुसंहिता १५।२८—२९; विष्वक्सेनसंहिता १६।४; २५।१२—१५; श्रीप्रश्नसंहिता २२।७०—१००; ४९।२३—२६।
२. श्रीप्रश्नसंहिता २२।१११—११२।
३. विष्णुसंहिता १५।३६।
४. श्रीप्रश्नसंहिता २२।७०—७१।
५. श्रीप्रश्नसंहिता २२।१०१—१०६; विष्वक्सेनसंहिता २५।५६—५८।
६. मत्स्य २६४।१३।
७. अग्नि ५६।३।
८. अग्नि ५६ अध्याय, ९५-९६ अध्याय; गरुड पूर्वार्द्ध ४८ अध्याय; मत्स्य २६४ अध्याय; नारदीयसंहिता १५।११-२६; श्रीप्रश्नसंहिता १९-२० अध्याय और २३ अध्याय; विष्वक्सेनसंहिता १६वाँ अध्याय।

धर्मोत्तरपुराण में मण्डप के चार तोरण चार युगों के प्रतीक और पाँच रंग पञ्च महाभूतों के प्रतीक बतलाये गये हैं।[1]

मण्डप में अनर्ह व्यक्ति का प्रवेश वर्जित—

नास्तिक, मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, देव-ब्राह्मणनिन्दक, पाखण्डी, अन्य देवता के भक्त (स्थापनीय देवता के प्रति श्रद्धा न रखने वाले), दीक्षा-संस्कार वर्जित, वृत्तहीन (दुराचारी), प्रतिलोमज, पापी, कुष्ठ आदि व्याधियों से पीडित, हीनाङ्ग, बधिर, अन्धे और नित्यकर्म न करने वाले व्यक्ति यदि मण्डप में प्रवेश कर जांय तो उन्हें बाहर भेजकर आचार्य पवित्र जल से मण्डप का प्रोक्षण करे।[2] प्रतिष्ठाकर्म के प्रसङ्ग में यदि मण्डप में अन्त्यज, पतित, पातकी, कुष्ठी, अपङ्ग, प्रेताशौचयुक्त व्यक्ति, रजस्वला आदि प्रविष्ट हो जांय तो उन्हें बाहर निकालने के साथ ही (उनके द्वारा दूषित) घटादि सभी वस्तुओं का त्याग कर पर्यग्निकरण करके मण्डप को गोमय से लीपकर पुनः घटस्थापनादि सभी कर्म यथाक्रम करे।[3]

द्वारपाल जप—

मण्डप के पूर्वादि चार दिशाओं के चार द्वारों पर द्वारपाल जप के मन्त्र प्रायः वही कहे गये हैं जो आज पद्धतियों में प्रयोग में अन्तर्भूत हैं।[4]

स्नानमण्डप—

मत्स्यपुराण के अनुसार याग मण्डप के उत्तर में स्नान मण्डप बनाया जाय, जो कि यागमण्डप के आधा, तिहाई या चौथाई होना

१. विष्णुधर्मो० ३।९८ अध्याय।
२. नारदीयसंहिता १५।१२-३; श्रीप्रश्नसंहिता २३।९२-३।
३. श्रीप्रश्नसंहिता ४९।४७-५१।
४. अग्नि ९६।४०-४३; गरुड पू० ४८।५३-५६; मत्स्य २६५।२८-२९।

चाहिए।[1]

अधिवासन—

प्रतिष्ठाकर्म में अधिवासन को बहुत महत्त्व दिया गया है। 'अधि' उपसर्ग पूर्वक 'वस्' धातु में भावबोधक 'घञ्' प्रत्यय के योग से अधिवास शब्द निष्पन्न होता है।[2] बिना अधिवासन के यदि प्रतिष्ठा-याग कर्म किया गया तो वह फलीभूत नहीं होता।[3] अधिवासन से सर्वयज्ञफल की प्राप्ति होती है अतः यह सदैव विहित है।[4] अधिवासन वह प्रक्रिया है जो मूर्ति में भगवान् के सान्निध्यकरण में हेतु बनती है।[5] अधिवासन कृत्यों का निरूपण मत्स्यपुराण, अग्निपुराण आदि मे देखा जा सकता है।[6] अधिवासन की अवधि एक रात या तीन रात या पाँच या सात रात तक बतलायी गयी है। किन्तु क्वचित् सद्यः अधिवासन भी होता है।[7] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में अधिवासन की अधिकतम अवधि एक वर्ष तक बतलायी गयी है।[8] अधिवासन के विषय में विशेष निर्णय प्रभु-विद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ३४२-३ मे देखा जा सकता है।

१. मत्स्य २६४।२६।
२. वसतेरधिपूर्वस्य भावे घञ् प्रत्यये कृते।
   अधिवास इति ह्येष प्रयोगः सिद्धिमेति च॥
   शारदातिलक ४।१३९ की पदार्थादर्श टीका में उद्धृत।
३. विनाऽधिवासनं यागः कृतोऽपि न फलप्रदः। अग्नि ९६।१२२।
४. सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा॥ मत्स्य २६५।५२।
५. हरेः सान्निध्यकरणमधिवासनमुच्यते। अग्नि ५९। १
६. द्रष्टव्य—मत्स्यपुराण २६५।४६-५१; अग्निपुराण ९६ अध्याय।
७. त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा।
   सप्तरात्रमथो कुर्यात् क्वचित् सद्योऽधिवासनम्॥
   मत्स्य २६५।५२; तु० अग्नि ९६।१२१-१२२; मत्स्य २६४।२४-५।
८. विष्णुधर्मोत्तर ३।९६।१३५-८।

जलाधिवास—

जलाधिवास बिम्ब (प्रतिमा) की शुद्धि के लिए विहित है।[1] प्रतिमा का जलाधिवास नदी, तालाब या देवखात आदि में किया जाता है।[2] जल में प्रतिमा का शिर पूर्व की ओर करके अधिवासित करे।[3] विष्णुसंहिता में शिला-निर्मित मूर्ति का जलाधिवास तीन रात्रि तक, सुवर्णादि लोह-मूर्ति का एक रात्रि और मणि की मूर्ति का जलाधिवास भी एक रात्रि पर्यन्त विहित है।[4] श्रीप्रश्नसंहिता में जलाधिवास की समय सीमा एक दिन या तीन याम (तीन पहर), या दो याम या एक याम या आधा याम तक करने की स्वीकृति दी गयी है।[5] विष्वक्सेनसंहिता में प्रतिमा का जलाधिवास किसी नये पात्र में भी विहित है।[6] यदि कोई मूर्ति पूर्वतः पीठिका या ब्रह्मशिला में संस्थापित कर दी गयी हो या कोई बिम्ब भित्ति या पट आदि में लिखित हो तो उसका जलाधिवास उसे दर्पण मे प्रतिबिम्बित कर उस दर्पण में ही करे।[7]

श्रीप्रश्नसंहिता २४।३१-३५ में कहा गया है कि नदी, तालाब आदि में जलाधिवास कराये जाने पर उतनी अवधि में उस जल में कोई मनुष्य स्नान-पान या पैरों से कोई गतिविधि न करे। दुर्गन्ध-

१. बिम्बस्य शुद्धये कुर्याज्जलाधिवसनं द्विज।
   आचार्यो यजमानश्च मूर्तिपैः सहितस्तदा॥ विश्वामित्रसंहिता १४।१४।
२. विष्णुसंहिता १६।३४।
३. प्राक्शिरः शाययित्वैवं बिम्बं तोयेऽधिवासयेत्॥ विष्णुसंहिता १६।३८।
४. विष्णुसंहिता १६।३९।
५. एकं दिनं त्रियामं वा द्वियाममथवा रमे॥ ३०
   याम यामार्धकं वापि जलवासं समाचरेत्।
   श्रीप्रश्नसंहिता २४।३०-३१।
६. विष्वक्सेनसंहिता १८।५२-५४।
७. विष्वक्सेन संहिता १८।५५-५७।

युक्त, कषाययुक्त, कर्दमयुक्त, खारे, तीते या फेनयुक्त जल में, श्मशान आदि के सान्निध्य से दूषित या चाण्डालादि के द्वारा दूषित जल में जलाधिवास न करावे। यदि शुद्ध जल का अभाव हो तो जलद्रोणी या प्रपा में ही जलाधिवास करावे।

लोह आदि के जो बड़े बिम्ब हैं या जो बिम्ब मिट्टी या चूने आदि से बने हैं अथवा जो बिम्ब भित्ति में निर्मित हैं या पट आदि में लिखित हैं उनका छायाधिवास, स्नपन और नेत्रोन्मीलन दर्पण में करे। उनका छायाधिवास पूर्वाह्ण में, जलाधिवास सायंकाल नेत्रोन्मीलन तथा शयन (शय्याधिवास) महानिशा में करे और तब प्रातःकाल प्रतिष्ठा करे (श्रीप्रश्नसंहिता २४।४३-४७)।

स्नपन—

प्रतिष्ठाकर्म में नयी मूर्ति के स्नपन का कर्म अत्यावश्यक है। श्रीप्रश्नसंहितानुसार शिल्पी के द्वारा मूर्ति निर्माण कर्म में जनित दोषों अर्थात् मूर्ति से सम्बद्ध त्रुटियों या अशुचिता आदि दोषों के निराकरण हेतु यह स्नान विहित है।[1] विष्वक्सेनसंहिता के अनुसार यथासम्भव ८१ कलशों से अथवा अभावे २५ कलशों या १७ या १२ या कम से कम ९ कलशों से देवमूर्ति का स्नपन कराना चाहिए।[2] कलशों की सङ्ख्यानुसार स्नपन के अधम, मध्यम और उत्तम तीन भेद भी बतलाये गये हैं।[3] कलशों में प्रक्षेपणीय द्रव्यों के विवरण आगमों और पुराणों में अनेकत्र प्राप्त होते हैं[4] और यदि कोई द्रव्य उपलब्ध न हो तो उसके अभाव में स्थानापन्न (प्रतिनिधि) द्रव्य

१. शिल्पिदोषनिरासार्थं स्नानमेतत् प्रकीर्तितम्। श्रीप्रश्नसंहिता २३।२५।

२. विष्वक्सेनसंहिता १६।१२–१३।

३. नारदीयसंहिता २०।५८–९४।

४. विष्णुसंहिता १६।९९–१०२; नारदीयसंहिता १५।३५–४८; २०।९४–१०१; अग्निपुराण ९५।३४–४१; गरुड पु० ४८।३७–४६; मत्स्य

का भी निर्देश कर दिया गया है।[1] यह ध्यान में रखना चाहिए कि कलशों में प्रक्षेपणीय द्रव्य अपेक्षित मात्रा से कम और कृमि, कीट, केश आदि युक्त न हो। कलशों में प्रक्षेपणीय जल भी पर्युषित नहीं होना चाहिए और घृतादि पदार्थ पुराने या अशुद्ध और वर्जनीय नहीं होने चाहिए। पुनश्च स्नपन हेतु स्थापित कलशों में श्वान, कुक्कुट, चाण्डाल, उदक्या, अन्त्यज आदि की दृष्टि भी नहीं पड़नी चाहिए। अन्यथा उक्त दोषों के घातक दुष्परिणाम होते हैं।[2]

जो बिम्ब पूर्वतः देवालय में स्थापित हो उसका स्नपन वहीं पर किया जाय।[3] उसे स्नान-मण्डप में ले जाने की आवश्यकता नहीं है।

लेपयुक्त मूर्ति तथा भित्ति और पट आदि में निर्मित मूर्ति के स्नान आदि कृत्यों को दर्पण में करना चाहिए और उनका पूजन जल से रहित पुष्पों से करना चाहिए।[4] ऐसी मूर्तियों का स्नपन दर्पण में विहित होने पर भी उनका नेत्रोन्मीलन शास्त्रोक्त विधि से ही करना चाहिए[5]

१. नारदीयसंहिता २२।२–१८; विष्वक्सेनसंहिता २२।५२–६०।

२. विष्वक्सेनसंहिता ३९।११२–१३०।

३. आलये स्थापितं बिम्बं तत्रैव स्नापयेत् सदा।
नारदीयसंहिता २५।१०२।

४. लेपभित्तिपटस्थानां स्नानाद्यं दर्पणे मुने ॥ ३६४
कुर्यान्निरवशेषं च पुष्पैः पूजां जलोज्झितैः।
जयाख्यसंहिता २०।३६४–३६५।

तु०—धारणाभिर्विशुद्धिः स्यात् स्थापने लेपचित्रयोः।
स्नानादि मानसं तत्र ... ॥ ९०
पूजा निरम्बुभिः पुष्पैर्यथा चित्रं न दुष्यति। अग्नि ९७।८०–८१।

५. श्रीप्रश्नसंहिता १०।३५।

नेत्रोन्मीलन—

स्नपन के प्रसङ्ग में नेत्रोन्मीलन का विधान पुराणों और आगमों में प्राप्त होता है। श्रीप्रश्नसंहिता में कहा गया है कि नौ या पाँच कलशों से स्नपन कराने के पश्चात् ही देव-प्रतिमा का नेत्रोन्मीलन करे।[1] विष्वक्सेनसंहिता आदि के अनुसार सुवर्णसूची से (सुवर्ण शलाका से) 'तच्चक्षु०' इस मन्त्र से वाम नेत्र का और 'चित्रं देवानां' इस मन्त्र से दक्षिण नेत्र का उन्मीलन करे[2]। इस प्रसग में विष्णुसंहिता (१६।१०६–७); गरुडपुराण पूर्वार्द्ध (४८।३५–३७) आदि के वचन भी द्रष्टव्य हैं। श्रीप्रश्नसंहिता के अनुसार मधु से अभ्यक्त सुवर्ण-शलाका से दक्षिण नेत्र का और आज्याक्त रजतशलाका से वामनेत्र का लेखन करे।[3] इसी प्रसग में परिवार देवों, प्राकारस्थ देवों, गोपुरस्थ देवों तथा अन्य सभी स्थापनीय देवों का भी नेत्रोन्मीलन और लोहबिम्बों के नेत्रोन्मीलन का भी विधान बतलाया गया है।[4]

शिवलिङ्ग में नेत्रोन्मीलन कैसे हो इसका विस्तृत विवेचन अग्निपुराण में किया गया है।[5]

---

१. नयनोन्मीलनात् पूर्वं नवभिः पञ्चभिस्तु वा।
कलशैः स्नापयेत् पूर्वं नयनोन्मीलनं ततः ॥ श्रीप्रश्नसंहिता २४।४९।

२. सुवर्णसूच्या तत्रैव नेत्रोन्मीलनमाचरेत्।
तच्चक्षुरिति वामं च चित्रं देवेति दक्षिणम् ॥ ११
धेनुद्वय दर्शयित्वा ततः स्नपनमाचरेत्।
विष्वक्सेनसंहिता १६।११–१२।

३. श्रीप्रश्नसंहिता २४।५५–६५।

४. तत्रैव २४।७१–७५।

५. अग्नि ९६।५२–६३।

शय्याधिवास—

स्नपन के पश्चात् शय्याधिवास की विधि भी आगमों और पुराणों में बतलायी गयी है।[1] शय्या में विष्णु को स्थापित करके नाम मन्त्रों से पूजन का जो क्रम नारदीयसंहिता १५।३०–३३ में है वही प्रतिष्ठामयूख में भी दिया गया है।

धान्याधिवास—

धान्याधिवास पर पुराणों और आगमों का अधिक आग्रह नहीं प्रतीत होता। तथापि धान्याधिवास की यत्किञ्चित् विधि विष्वक्सेनसंहिता आदि में देखी जा सकती है।[2]

न्यास—

विष्णुसंहिता में कहा गया है कि प्रतिमा को शय्या में स्थापित करके घृत से होम करने के अनन्तर ही षोडश न्यास करे, होम किये बिना न्यास न करे।[3] षोडश न्यास क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) प्रणवन्यास, (२) व्याहृतिन्यास, (३) लिपिन्यास (मातृकान्यास), (४) ऋक्षन्यास, (५) कालन्यास, (६) वर्णन्यास, (७) जलन्यास (तोयन्यास), (८) श्रुतिन्यास (विद्यान्यास), (९) वैराजन्यास, (१०) देवतान्यास, (११) यज्ञन्यास (क्रतुन्यास), (१२) गुणन्यास, (१३) अस्त्रन्यास, (१४) शक्तिन्यास, (१५) मन्त्रन्यास, (१६) जीवन्यास।[4] कौन न्यास देवता के किस अङ्ग में होगा यह भी वहाँ बतलाया गया है।[5]

---

१ द्रष्टव्य—मत्स्य २६५।१०–१४; नारदीयसंहिता १५।२७–३३; श्रीप्रश्नसंहिता २४।१७८–१८३।

२. द्रष्टव्य - विष्वक्सेन संहिता १६।१४–१६।

३. शयने स्थापयित्वाऽर्चां ततो हुत्वा घृतं क्रमात्।
कुर्यात् षोडशकं न्यासं नाहुत्वा न्यास इष्यते ॥ विष्णुसंहिता १७।२२।

४. विष्णुसंहिता १७।२४–५।

५. विष्णुसंहिता १७।२५–८३; द्रष्टव्य—गरुड पु० ४८।७७–९;

न्यास वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मूर्ति में तत्तत् तत्त्वों को विन्यस्त (समाहित) किया जाता है।[1] उदाहरणार्थ—लिपिन्यास या मातृकान्यास में अकारादि स्वरों और ककारादि व्यञ्जनों का न्यास मूर्ति के विभिन्न अङ्गों में किया जाता है। इनमें से प्रत्येक स्वर और व्यञ्जन एक विशिष्ट तत्त्व का व्यञ्जक होता है, जिसका विवरण अग्निपुराण (५९।१८-४०) आदि में देखा जा सकता है। अतः लिपिन्यास या मातृकान्यास या अक्षरन्यास करके हम मूर्ति में तत्तत् तत्त्वों का ही न्यास करते हैं।

मूलमन्त्र से पूजन—

प्रतिष्ठा-यागकर्म में स्थाप्य देवता के वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक या मूलमन्त्र से पूजन विहित है। नारदीय संहिता १३।३८१-८८२ में कहा गया है कि जैसे वृक्ष के मूल को सींचने से शाखा पुष्ट होती है तद्वत् मूलमन्त्र से पूजन करने से पूर्ण पूजन होता है—

मूले सिक्ते यथा वृक्षे शाखा भवति तेजसा।
मूलेन पूजितेनैव सर्वं भवति पूजितम् ॥

नारदीयसंहिता १३।३८१-२।

अष्टदलोपरि विद्याधिपतियों का पूजन—

अष्टदलोपरि (कणिका के बाहर के अष्टदलों में) विद्याधिपतियों का पूजन विहित है। यथा—विष्णु की स्थापना में पूर्वपत्र में विष्णु, दक्षिण में मधुसूदन, पश्चिम में त्रिविक्रम, उत्तर में वामन, आग्नेय-कोण में श्रीधर, नैर्ऋत्यकोण में हृषीकेश, वायव्यकोण में पद्मनाभ और ईशानकोण में दामोदर का पूजन करे।[2]

---

१. द्रष्टव्य—तद् देहे न्यासमार्गेण विन्यसेत् तत्त्ववित्तमः।
पञ्चविंशतितत्त्वानि तत्पञ्चाक्षरमेव च ॥
विष्वक्सेनसंहिता १८।६१।

२. विष्णुसंहिता १६।७८—८०।

होम—

प्रतिष्ठा कर्म के अपरिहार्य कृत्यों में स्नपन और न्यास के साथ ही होम भी अतीव महत्त्वपूर्ण है। होमकर्म हेतु कुण्डों के भेद[1], होमद्रव्य[2], समिधा[3], होताओं की संख्या[4] तथा किस दिशा में कैसा कुण्ड हो[5] और किस प्रकार के कार्य या फल की सिद्धि हेतु कैसा कुण्ड हो[6]—इत्यादि विषयों का विवेचन आगमों और पुराणों में देखा जा सकता है। नारदीयसंहिता में कहा गया है कि पूर्व दिशा में निर्मित कुण्ड चतुष्कोण, दक्षिण में अर्द्धचन्द्राकार, पश्चिम में वर्तुल (गोलाकार) और उत्तर में पद्माकार कुण्ड बनाया जाना चाहिए।[7] श्रीप्रश्नसंहिता के अनुसार चतुरस्र कुण्ड ब्राह्मणों के लिए, वृत्तकुण्ड (वर्तुल कुण्ड) क्षत्रियों के लिए, अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड वैश्यों के लिए और त्रिकोण कुण्ड शूद्रों के लिए विहित है।[8] प्रतिष्ठा आदि कर्मों में सभी दिशाओं में केवल चतुरस्र कुण्ड भी (नवकुण्डोपक्ष में अथवा पञ्चकुण्डी पक्ष में) बनाये जा सकते हैं।[9]

---

१. कुण्डों के १४ भेद श्रीप्रश्नसंहिता १८।६६-९७ में बतलाये गये हैं। नौ और पाँच कुण्डों का उल्लेख अग्नि ९५।२०, मत्स्यपुराण २६५।३६ में है।
२. श्रीप्रश्नसंहिता ४९।४६-४७, विष्णुसंहिता १९।४६-८।
३. विष्वक्सेनसंहिता १६।५०-५२; मत्स्य २६५।३१; दिक्पालहोम की आठ प्रकार की समिधाओं का वर्णन विष्वक्सेनसंहिता १६।७० में है।
४. मत्स्य २६५।५-६; विष्णुधर्मो० ३।९७ अध्याय, विष्णुसंहिता १९।४४।
५. श्रीप्रश्नसंहिता १८।१०३-१०४; अग्नि ९५।२२-३।
६. तत्रैव १८।६९—७४।
७. नारदीयसंहिता १५।८-९; द्रष्टव्य ऊपर की टिप्पणी ५ में श्रीप्रश्नसंहिता १८।१०३-४।
८. श्रीप्रश्नसंहिता १६।४०।
९. वर्तमान में चतुरस्र कुण्डों का प्रयोग बाहुल्येन होता है।

मत्स्यपुराण के अनुसार आग्नेयकोण तथा पूर्व दिशा और दक्षिण दिशा में निर्मित कुण्डों में होता उत्तराभिमुख होकर हवन करे।[१]

प्रतिष्ठाकर्म में होम अनेक अवसरों पर किया जाता है।[२] वास्तुपूजाङ्ग होम, मण्डपपूजा के प्रसंग में विहित होम भी अनेकत्र पद्धतियों में है। विष्णुसंहिता के अनुसार प्रतिमा के स्नपनोपरान्त शय्याधिवास करके न्यास कर्म के पूर्व उन्हीं न्यास मन्त्रों से होम करना आवश्यक है।[३] शान्तिक-पौष्टिकमन्त्रों से होम का विधान मत्स्यपुराण आदि में है।[४] मूर्ति, मूर्त्यधिपति और लोकपाल होम का विधान भी मत्स्यपुराण में प्राप्त होता है।[५] विष्णु-संहितानुसार सप्तव्याहृति होम से प्रतिमा (विष्णु प्रतिमा) में पूर्णता आती है।[६] शान्तिहोम व्याहृतियों से घृत, दधि, दूध और मधु से किया जाता है।[७] बाराहीसंहिता के अनुसार प्रतिष्ठाकर्म में प्रमुख होम स्थाप्य देवता के मन्त्र से ही किया जाता है[८] श्रीप्रश्न-संहिता के अनुसार मूर्ति और मन्दिर के लक्षणों में जो कमी या त्रुटि रह गयी हो उसके परिहारार्थ ही व्याहृति होम, पुरुषसूक्त होम और पञ्चोपनिषद् (पञ्चब्रह्म) मन्त्रों से होम किया जाताहै।[९]

---

१. आग्नेयशाक्रयाम्येषु हातव्यमुदगाननैः। मत्स्य २६५।३७।

२. मत्स्य २६५।४७।

३. विष्णु १६।२३–२५।

४. मत्स्यपुराण २६५।३०–३३।

५. मत्स्य २६५।३७–८।

६. विष्णुसंहिता १६।३१–३२।

७. विष्णुसहिता १४ १०४-१०६; द्रष्टव्य–विष्वक्सेनसंहिता १६।५६-५९।

८. यो देवः संस्थाप्यस्तन्मन्त्रैश्चानलं द्विजो जुहुयात्।
बाराहीसंहिता ६०।१२।

९. श्रीप्रश्नसंहिता २२।१०–१४।

विष्णुसंहिता में कहा गया है कि स्थाप्य देवता के लिए हृदयमन्त्र से होम पूर्वकुण्ड में, शिरोमन्त्र से दक्षिण कुण्ड में, शिखामन्त्र से पश्चिम कुण्ड में और कवच मन्त्र से उत्तर कुण्ड में होम किया जाता है। नेत्र और अस्त्र मन्त्र से होम नहीं करना चाहिए।[१] वेदादि होम का विधान गरुड पुराण आदि में देखा जा सकता है।[२] ग्रहादि होम और सर्वतोभद्र आदि त्रिविध मण्डलों में आवाहित देवों का होम पद्धतियों में दिया है। श्रीप्रश्नसंहिता में कहा गया है कि वास्तुपुरुष और क्षेत्रपाल का पूजन और होम अवश्य करना चाहिए अन्यथा वह कर्म विफल हो जाता है।[३] प्रतिष्ठा के उपरान्त प्रतिष्ठा होम किया जाता है। विष्णुसंहितानुसार तिथि, नक्षत्र, वार, मुहूर्त, ग्रह और राशि से सम्बद्ध दोषों (प्रतिष्ठा काल, लग्नादि के दोषों) के परिहारार्थ तिथि, नक्षत्रादि के नाम मन्त्रों और उनके अधिपतियों के नाम मन्त्रों से होम करना चाहिए।[४]

बलिदान—

प्रतिष्ठा कर्म में पूजन और होम अनेक बार किया जाता है[५] और उसी प्रकार बलिदान भी अनेक बार किया जाता है।[६] यदि कहीं पर वीथियाँ, चतुष्पथ आदि जनसंकुल हों और वहाँ प्रतिलोमज (तथा अन्त्यज, म्लेच्छ) आदि स्थित हों तब बलिदान चतुष्पथ में

---

१. विष्णुसहिता १६।१३१–२।

२. गरुड पू० ४८।७३-६।

३. श्रीप्रश्नसंहिता ४९।५४।

४. विष्णुसंहिता १८।७९–८५।

५. प्रतियामेषु धूप तु नैवेद्यं चन्दनादिकम् ॥ ४६
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः।
पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ॥ मत्स्य २५५।४६-७।

६. बलिश्चिसन्ध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतो दिशम्। मत्स्य २६५।५०।

नहीं अपितु देवालय परिसर में ही करना चाहिए।[1] नारदीयसंहिता में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति अपने घर में भगवान् विष्णु की स्थापना करके पूजन करता है तो उस स्थिति में बलिदान और यात्रा (रथयात्रा) अपेक्षित नहीं है।[2]

प्रासाद-प्रतिष्ठा—

नये प्रासाद (देवालय) में मूर्ति प्रतिष्ठा के पूर्व उस प्रासाद की भी प्रतिष्ठा की जाती है।[3] प्रासाद के बाहर आठ दिशाओं में आठ स्थण्डिलोंका निर्माण और आठ कलशों के स्थापन आदि का विधान विष्णुसंहिता आदि ग्रन्थों में देखा जा सकता है।[4] प्रासाद का प्रोक्षण उसकी शुद्धि हेतु किया जाता है।[5] चाण्डाल, पतित, उदक्या (रजस्वला), निषाद, वर्धकी आदि के द्वारा जब प्रासाद का स्पर्श किया गया हो तो प्रोक्षण से ही उसकी शुद्धि हो जाती है।[6] प्रासाद को स्थाप्य देवता का स्थूल विग्रह माना गया है।[7] अतः प्रासाद की प्रतिष्ठा के पश्चात् प्रासाद का देवता के विग्रह के रूप में ध्यान किया जाता है, जिसमें प्रासाद के मूल या भूतलवर्ती हिस्सों से लेकर शिखर और ध्वज पर्यन्त विभिन्न अंशों में देवता के विभिन्न अवयवों की कल्पना की जाती है।[8]

१. श्रीप्रश्नसंहिता ३५।१३–४।
२. न तत्र बलियात्रोक्ता योऽर्चयेत् स्वगृहे हरिम् ॥ नारदीयसंहिता २।१५२
३. अग्निपुराण १०१ अध्याय।
४. विष्णुसंहिता १८।५–६।
५. विष्वक्सेनसंहिता १६।१०८–९; विष्णुसंहिता १८।३-४; श्रीप्रश्नसंहिता २१।२९–५०।
६. विष्वक्सेनसंहिता ३६।१४३-८।
७. प्रासादं देवदेवस्य प्रोच्यते तात्त्विकी तनुः। विश्वामित्रसंहिता १८।८४।
८. अग्निपुराण ६१।१९–२७; १०२।१६–२९।

इस प्रकार प्रासाद के पूजन के अनन्तर अपराह्न या सायंकाल के समय प्रासाद के दक्षिण द्वार के समीप चार गायों को विष्णुगायत्री से दुह कर उस दूध में चरु पका कर उसको भगवान् को निवेदन करके और बलिदान करके मण्डप के उत्तर में १२ ब्राह्मणों को भोजन कराकर हिरण्य दक्षिणा देकर उन गायों को विष्णुप्रीत्यर्थ आचार्य को दान करके रात्रि में जागरण करने के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल पुण्यराशि के उदय काल में ज्योतिर्विदोपदिष्ट शुभलग्न में मूर्ति की स्थापना करे।[1]

ध्वजारोहण—

देवप्रासाद में ध्वजोच्छ्रयण अत्यावश्यक बतलाया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि ध्वजरहित प्रासाद (मन्दिर) में असुर वास करना चाहते हैं।[2] ध्वजारोह करने से भूतादि नष्ट होते हैं।[3] देवालय में ध्वजदान करने से पाप नष्ट होते हैं।[4] ध्वजदान के पुण्य फल आदि का वर्णन नारदपुराण आदि में देखा जा सकता है।[5]

रथयात्रा—

प्रतिष्ठा के पूर्व देवता को शिविका या रथ आदि किसी सुसज्जित वाहन में स्थापित करके पुर, ग्राम आदि में घुमाकर देव-मन्दिर में वापस लाना चाहिए।[6] इस यात्रा के समय यान के चारों ओर मूर्तिप (मूर्ति के रक्षक) रहें। उनमें से कुछ धनुष-बाण

१. विष्णुसंहिता १७।१०९–११५।
२. विष्णुधर्मो० ३।९४।४४।
३. अग्नि ६१।१६; द्रष्टव्य—वही ६१।२८।
४. विष्णुधर्मो० ३।९४।४९।
५. नारद पु० १९।४२—७।
६. अग्निपुराण ६०।१२-३।

धारण किये हों, कुछ शक्ति (बर्छी), कुछ यष्टि, कुछ निस्त्रिंश, कुछ काण्ड (बाण), कुछ फलक (ढाल) और कुछ कुन्त (भाला) आदि धारण किए हुए हों। देवता के आगे चतुरङ्गिणी सेना को चलना चाहिए।[1]

पिण्डिका स्थापन—

प्रत्येक देवता की मूर्ति को पिण्डिका में ही स्थापित किया जाता है। मूर्ति और पिण्डिका का अपरिहार्य सम्बन्ध है। इसीलिए यह कहा गया है कि पीठ (पिण्डिका) का पूजन किये बिना यदि मूर्ति में देवता का आवाहन किया जाता है तो उसमें देवता का सान्निध्य नहीं होता।[2] अतः मूर्ति की स्थापना के पूर्व पिण्डिका के यथाविधि अधिवासन और पूजन का विधान किया गया है।[3] पिण्डिका में स्थाप्य देवता की पत्नी की कल्पना करनी चाहिए।[4] उसका पूजन भी स्थाप्य देवता की पत्नी के मन्त्र से किया जाता है।[5]

प्रसंगतः सूचना हेतु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रतिमा और पिण्डिका की ऊँचाई का एक सुनिश्चित अनुपात अग्निपुराण आदि ग्रन्थों में बतलाया गया है।[6] पीठिका (पिण्डिका) की ऊँचाई विषयक विवेचन मत्स्यपुराण में भी है।[7] वहाँ यह भी बतलाया गया है कि मूर्ति का निर्माण जिस उपादान से किया गया हो

१. श्रीप्रश्नसंहिता ३५।२८–३०।
२. अकृत्वा पीठयजनं देवमावाहयेद् यदि।
सा पूजा निष्फला ज्ञेया देवतासन्निधिर्न च॥ श्रीप्रश्नसंहिता ४९।१०५।
३. मत्स्यपुराण २६६।६-९।
४. मत्स्य २६२।१।
५. द्रष्टव्य—देवतार्चाश्रियं मन्त्रं पिण्डिकासु नियोजयेत्। मत्स्य २६६।७।
६. अग्नि ४२।१०, २२; ४५।१; ५५।१।
७. मत्स्य २६२।१–४।

उसी से पीठिका भी निर्मित होनी चाहिये।[1] पीठिका १० प्रकार की बतलायी गयी हैं—स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्णचन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्द्धचन्द्रा और त्रिकोणा।[2] इन पीठिकाओं के फल भी भिन्न भिन्न बतलाये गये हैं।[3] यह बतलाया गया है कि शिवलिङ्ग की पीठिका चौकोर (चतुरस्रायता) नहीं होनी चाहिए।[4]

पिण्डिका को गर्भगृह में स्थापन हेतु गर्भगृह के मध्यवर्ती ब्रह्मस्थान का निर्धारण आवश्यक है। गर्भगृह की लम्बाई चौड़ाई को सप्तधा विभाजितकरने पर जो ४९ कोष्ठक या पद होते हैं उनमें मध्य पद या बीच के कोष्ठक को ब्रह्मस्थान कहते हैं और उसके बाहर की ओर क्रमशः दैव, मानुष और पैशाच पद या स्थान होते हैं।[5] इस तरह सप्तधा विभाजित गर्भगृह के मध्यवर्ती ब्राह्मस्थान में पिण्डिका को स्थापित करके उस पर प्रतिमा को स्थापित करना चाहिए। देव, मानुष और पैशाच भागों में पिण्डिका का स्थापन कदापि नहीं करना चाहिए।[6] नारदीयसहिता के अनुसार स्थावर (अचल) मूर्ति की स्थापना में पिण्डिका को ब्राह्मभाग में स्थापित करना चाहिए[7]

१. मत्स्य २६२।१९—२०।
२. अत्रैव २६२।६—७।
३. तत्रैव २६२।१६-८।
४. तत्रैव २६२।९।
५. विष्वक्सेनसंहिता १०.७०–७१; द्रष्टव्य–विष्णुसंहिता १८.७-८; श्रीप्रश्नसंहिता २०।२७–८; नारदीयसहिता १५।१५८।
६. पिण्डिका स्थापनार्थं तु गर्भागारं तु सप्तधा।
विभजेत् ब्रह्मभागे तु प्रतिमां स्थापयेद् बुधः॥ १
दैव-मानुष-पैशाच भागेषु न कदाचन।
अग्नि ६०।१-२, द्रष्टव्य—अग्नि ९७।७८-९।
७. ब्राह्मे तु पिण्डिका स्थाप्या स्थावरार्चा यदा भवेत्।
नारदीयसंहिता १५।१५८ तु० वही १३।३४०।

और चलमूर्ति की पिण्डिका को ब्रह्मस्थान को छोड़कर—देव और मानुष पदों के मध्य में स्थापित करना चाहिए।[१] पुराणों और आगमों में प्राप्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि पिण्डिका को गर्भगृह के मध्य (ब्रह्मस्थान) के केन्द्र से यवमात्र या यवार्द्धमात्र या तिलमात्र ईशान या उत्तर की ओर स्थापित करना चाहिए।[२] श्रीप्रश्नसंहिता में कहा गया है कि सभी उपासकों के हित-लाभ और मोक्षादि फल की सिद्धि हेतु पिण्डिका को ब्रह्मस्थान से किञ्चित् देवस्थान की ओर ले जाकर स्थापित करना चाहिए।[३] मत्स्यपुराण में कहा गया है कि गर्भगृह के मध्यकेन्द्र को ज्ञात करके उससे किञ्चित् ईशान कोण की ओर पिण्डिका को स्थापित करे। ईशानकोण की ओर स्थापित मूर्ति का पूजन देवता भी करते हैं और वह आयुष्यप्रद और आरोग्यप्रद होती है अथवा किञ्चित् उत्तर की ओर स्थापित किये जाने पर भी वह शुभदायक होती है। अन्यथा इससे भिन्न स्थिति में स्थापित होने पर वह अशुभ होती है।[४]

एकबेर और बहुबेर स्थापना के प्रसंग में कहा गया है कि एकबेर में ब्रह्मशिला की स्थापना ब्रह्मस्थान में और बहुबेर में ब्रह्मशिला की स्थापना देव एवं मानुष पद के मध्य में की जानी चाहिए।[५] अग्निपुराण में गर्भगृह के ब्राह्मस्थान से कुछ हटाकर देव-स्थान और मनुष्य-स्थान

१. (क) ब्रह्मस्थानं परित्यज्य स्थितमस्थावरं स्मृतम्।
नारदीयसंहिता १३।३४४।
(ख) अस्थावरविधाने तु दैवमानुषमध्यमे ॥ नारदीयसंहिता १५।१५८।

२. न गर्भे स्थापयेद् देव न गर्भन्तु परित्यजेत्।
ईषन्मध्यं परित्यज्य ततो दोषापनं तु तत् ॥ १
तिलस्य समात्रन्तु उत्तरं किञ्चिदानयेत्। गरुड पू० ४८ ८२—३।

३. श्रीप्रश्नसंहिता २०।३१-२।

४. मत्स्य २६६।३—४।

५. श्रीप्रश्नसंहिता २०।२९।

का कुछ अंश लेकर उसमें पिण्डिका को स्थापित करने का जो विधान है,[१] वह उपर्युक्त बहुबेर विधान के वचनों से मेल खाता है जब कि विष्वक्सेनसंहिता के अनुसार बहुबेर प्रतिष्ठा में पीठिका को देवभाग (देव-स्थान) में स्थापित किया जा सकता है।[२]

मूर्ति स्थापन हेतु गर्भगृह में सर्वप्रथम कूर्मशिला, जो कि आकार में ब्रह्मशिला से बड़ी होनी चाहिए, स्थापित की जाती है। उसके ऊपर ब्रह्मशिला स्थापित की जाती है। तब उसके ऊपर यथोक्त मान की पिण्डिका स्थापित की जाती है।[३] ब्रह्मशिला में रत्नन्यास के अनन्तर ही उसके ऊपर पिण्डिका को स्थापित करना चाहिए।[४] यदि ब्रह्मशिला की स्थापना न की गयी हो तो पिण्डिका-स्थापन के पश्चात् उसी में रत्नन्यास करना चाहिए।[५]

रत्नन्यास—

रत्नन्यास मुख्यतया ब्रह्मशिला में किया जाता है। किन्तु जहाँ ब्रह्मशिला की स्थापना नहीं की जाती वहाँ पिण्डिका (पीठिका) के गर्त (श्वभ्र) में ही कूर्मादि (स्वर्ण निर्मित कूर्म आदि) को स्थापित करे और उसी गर्त में रत्नादि पञ्चक को स्थापित करे।[६] रत्नादिपञ्चक का तात्पर्य यव-व्रीहि आदि धान्य (बीज), वज्र आदि रत्न, मनःशिला आदि धातु, सुवर्ण आदि लोह (metal)

१. ब्रह्मभागं परित्यज्य किञ्चिदाश्रित्य चाण्डज ॥ २
देवमानुषभागाभ्यां स्थाप्या यत्नात् तु पिण्डिका। अग्नि ६०।२—३।

२. विष्वक्सेनसंहिता १०।७२।

३. मत्स्य २६६।५-६।

४. रत्नन्यासं ततः कृत्वा पिण्डिकां तत्र विन्यसेत्। विष्णुसंहिता १८।३८।

५. मत्स्य २६६।९।

६. कूर्माद्यं कीर्तितं यच्च यच्च रत्नादिपञ्चकम्।
प्रक्षिपेत् पीठगर्तायां पञ्च ब्रह्मशिलां विना। अग्नि ९७।७७-८।

और चन्दन आदि ओषधियों से है, जिनको ब्रह्मशिला या पिण्डिका में पूर्वादि क्रम से बनाये गये नौ गर्तों में स्थापित किया जाता है।[1] पिण्डिका या ब्रह्मशिला के गर्तों में स्थापनीय बीज, रत्न आदि का निर्देश पुराणों और आगमों में है।[2] इस विषय में विस्तृत विवेचन आगे पृ० २३६-२४९ में है। रत्नन्यास के पूर्व पिण्डिका के मध्य में प्रणव, उसके बाहर स्वरों और उसके बाहर व्यञ्जनों का न्यास करे।[3]

रत्नन्यास के विषय में श्रीप्रश्नसंहिता के ये वचन उद्धरणीय हैं कि पिण्डिका में मूल बिम्ब (मुख्यमूर्ति) की स्थापना के पूर्व यथाशक्ति और यथाविधि रत्नन्यास करना चाहिए और तब उस पिण्डिका में मूर्ति को मन्त्रपाठ (ध्रुवसूक्त के पाठ) पूर्वक स्थापित करना चाहिए।[4]

यदि अर्थाभाव या साधनाभाव के कारण रत्नन्यास की व्यवस्था न हो सके तो उस स्थिति में बाराहीसंहिता के अनुसार सोने (की पतली चादर) का टुकड़ा पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त) में डाले और तब उसमें प्रतिमा या लिङ्ग को स्थापित करे।[5]

भित्ति में या पट आदि में निर्मित बिम्ब की स्थापना पीठिका

---

१. अग्नि ६०।४।
२. अग्नि ६०।३-५; ९५।५६-६०; गरुड पू० ४८।८१; मत्स्य २६६।३-२९; श्रीप्रश्नसंहिता २०।१७-२६।
३. विष्णुसंहिता १७।८५-६।
४. पिण्डिकायां मूलबिम्बं रत्नन्यासादिपूर्वकम् ॥ १४
स्थापयेन्मन्त्रसहितं यथाशक्ति यथाविधि।
अन्यथा देवसान्निध्यं न भवेत् कमलेक्षणे ॥
श्रीप्रश्नसंहिता ४९।१४-१५।
५. दत्त्वा हिरण्यशकलं विनिक्षिपेत् पिण्डिकाश्वभ्रे। बाराहीसंहिता ६०.१७।

या ब्रह्मशिला में नहीं होती, अतः रत्नन्यास भी नहीं किया जाता।[1] धातु से निर्मित जिन चल मूर्तियों और लघु देह वाली (छोटी) मूर्तियों की योनि-पीठ (पिण्डिका) भी उसी धातु से निर्मित हो, उनमें रत्नन्यास (या उसके अभाव में बाराहीसंहितोक्त सुवर्णन्यास) किया जा सकता है।[2] जो मूर्तियाँ शिला, मिट्टी अथवा दारु (काष्ठ) से निर्मित हों उनमें भी उसी प्रकार (उपर्युक्त विधि से) रत्नन्यास करना चाहिए। यदि वे मूर्तियाँ निःसार हों तो उनमें रत्नन्यास की कल्पना (रत्नन्यास की मानस विधि) करनी चाहिए।[3] विश्वामित्र संहिता में यह भी सूचित किया गया है कि यदि प्रतिष्ठा के पूर्व रत्नन्यास न किया गया हो तो उसके बाद पुनः रत्नन्यास करना चाहिए।[4]

पिण्डिका में देवता स्थापन—

रत्नन्यास के अनन्तर शुभलग्न में पीठिका के ऊपर देवता को स्थापित करना चाहिए।[5] उस अवसर पर ध्रुवसूक्त का पाठ करना चाहिए।

वह्नबेर विधान में मूलार्चा (मुख्य बिम्ब) के अतिरिक्त कर्मार्चा, स्नपन-बिम्ब, उत्सवबिम्ब आदि की स्थापना का निर्देश भी आगमों में देखा जा सकता है।[6] इसी तरह स्थित, आसीन और शयन बिम्बों के स्थापन हेतु स्थान निर्देश भी वहाँ दिया गया है।[7]

---

१. जयाख्यसंहिता २०।३६५-६।
२. तत्रैव २०।३६६-७।
३. तत्रैव २०।३६७-८।
४. विश्वामित्रसंहिता २७।२४-५।
५. अग्नि ६०।१५; विष्णुसंहिता १८।४९-५६।
६. द्रष्टव्य—नारदीयसंहिता १५।२०७-९; विष्वक्सेनसंहिता १०।७७-८१; १७।१-१२; ३६।३२-६।
७. द्रष्टव्य—विष्णुसंहिता १८।१०-१७।

पञ्चायतन देवों[१], और वैष्णव परिवार के अन्य देवों[२] के स्थापन का क्रम भी पुराणों और आगमों में दिया गया है। देवता को स्वस्थान में स्थापित न करके अस्थान (निर्धारित से भिन्न स्थान) में स्थापित करना सर्वनाशकारी बतलाया गया है।[३]

परिवार देवताओं की स्थापना—

स्थाप्य देवता के पार्श्व में परिवार देवताओं की स्थापना विहित है। परिवार देवताओं का निर्देश मत्स्य पुराण आदि में है।[४]

प्राण-प्रतिष्ठा—

जिस प्रकार अग्नि में से अग्नि और जल में से जल ग्रहण किया जाता है उसी प्रकार तेजोमय देव से किञ्चित् तेज का अंश ग्रहण करके स्थापना काल में प्रतिमा के हृदय में स्थापित किया जाता है।[५] प्राण-प्रतिष्ठापन की जो विधि आधुनिक पद्धतियों में है वह भी पुराणों और आगमों की देन है। प्राण-प्रतिष्ठा के उपरान्त पुराणों में प्रतिमा के 'सजीवीकरण' का विधान है।[६] आगमोक्त सजीवीकरण विधि में प्रतिष्ठा करने वाला साधक यह चिन्तन (कल्पना) करता है कि उसके शरीर से अप्रतिम तेज निकल कर प्रतिमा के ब्रह्मरन्ध्र से प्रविष्ट होकर समस्त अङ्ग-उपाङ्गों में समाहित हो रहा है। ऐसा करने से प्रतिमा तत्क्षण सजीव हो जाती है।[७] पुराणों

१. अग्नि ४३।१-३।
२. अग्नि ४३।६-८।
३. अस्थानस्थापिताः केचित् स्वस्थान-[परि]वर्जिताः।
देवताद्वयकोपेन सर्वं नश्यत्यसंशयम्॥ विष्वक्सेनसंहिता ३९।३०३।
४. मत्स्य २६६।४१-४४।
५. नारदीयसंहिता २।७६-७।
६. अग्नि ६०।१८-२३; विष्णुधर्मो० ३।१०२।१-७।
७. नारदीयसंहिता १५।१८८-२०१।

में इसी प्रसंग में 'सान्निध्यकरण' का भी विधान प्राप्त होता है।[१]

तब उस प्रतिमा में देवता का 'स्थिरीकरण' करके स्थाप्य देवता से सम्बद्ध स्थापन मन्त्र को पढ़कर आवाहन-पूजन किया जाता है।[२] 'आवाहन' किये जाने पर देवता 'यत्रकामावसायिता', महिमा, प्राप्ति और लघिमा जैसी सिद्धियों से युक्त होकर मूर्ति में आकर समुपस्थित हो जाते हैं।[३] आगमों में विष्णु की प्राण-प्रतिष्ठा के पश्चात् महापुरुष-विद्या से स्तुति विहित है।[४] देवी,[५] शिव[६], सूर्य[७] आदि की स्थापना में अपेक्षित विशेष कृत्यों के विधान भी पुराणों और आगमों में देखे जा सकते हैं। मुख्य मूर्ति की स्थापना के पूर्व बालालय में बाल-बिम्ब की प्रतिष्ठाविधि[८], भित्तिस्थ बिम्ब[९], पट या फलक आदि में लिखित बिम्ब[१०] और बहुबेर विधान में 'कर्मार्चा'[११] आदि की प्रतिष्ठा में अपेक्षित विशेष कृत्यों के निदेश भी

१. अग्नि ६०।२४-२७; विष्णुधर्मो० अध्याय ११०।
२. मत्स्य २६६।३२-४९।
३. आवाहिताः समायान्ति यत्र कामावसायिताम्॥ २
आश्रित्य महिमां प्राप्तिं लघिमां च तथा सुराः।
विष्णुधर्मो० ३।१०८।२-३।
४. श्रीप्रश्नसंहिता २३।२२०-२२७।
५. अग्नि ६२ अध्याय तथा ९८ अध्याय, शिवपुराण ५।५१।१८-३९; विष्वक्सेन संहिता १८।१-३६।
६. अग्नि अध्याय ९७।
७. अग्नि अध्याय ९९; स्कन्द ७।१।१७।४७-९७।
८. द्रष्टव्य—विष्वक्सेनसंहिता १६।९६-१२२।
९. तत्रैव १७।२४-४४।
१०. तत्रैव १७।१४-२३।
११. नारदीयसंहिता १५।२०७-९; विष्वक्सेनसंहिता १०।७७-८१; १७।१-१२; ३६।३२-६

वहाँ देखे जा सकते है।

परिवार देवताओं और द्वारपाल आदि के स्थापन के लिए पृथक् प्रतिष्ठा की अपेक्षा नहीं होती, अपितु मूल प्रतिमा की प्रतिष्ठा के क्रम में ही उनकी भी प्रतिष्ठा कर दी जाती है।[1] जैसा कि पहले (पृष्ठ ४०-४१ में) भी कहा जा चुका है कि स्वयं-व्यक्त और मुनियों आदि के द्वारा स्थापित मूर्ति या लिङ्ग में प्राणप्रतिष्ठा विहित नहीं है और उस बिम्ब (मूर्ति या लिङ्ग) या उसके प्रासाद के जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर भी उसका त्याग न करे।[2]

प्रतिष्ठोत्तर कृत्य—

पुराणों और आगमों में प्राण-प्रतिष्ठा के पश्चात् देवता के नामकरण[3], प्रतिष्ठाहोम[4] (अर्थात् 'शिवाय स्थिरो भव०' इत्यादि रूपेण स्थिरादि सात आहुतियों का होम) लेपन[5], महास्नान[6],

१. नारदीयसंहिता १५।२५६।

२. न प्रतिष्ठापनं कुर्यात् स्वव्यक्ते मुनिकल्पिते।
भिन्ने जीर्णेऽथवा बिम्बे प्रासादे वा न तत् त्यजेत्॥
नारदीयसंहिता १५।२५४।
स्वयंभू-बाणलिङ्गादौ संस्कृतौ नियमो न हि॥ अग्नि ९७।८५।

३. स्वरूपां तां तु स्वनामान्ते वैष्णवी प्रतिमा भवेत्॥ १३१
केशवान्ताः स्त्रियः कार्या नाथान्तो ब्राह्मणो भवेत्।
ईश्वरान्ता हरस्योक्ता मिहिरान्ता रवेः स्मृताः॥ १३२
अन्येषां देवनामान्ताः सुराणां प्रतिमाः स्मृताः।
विष्णुधर्मो० ३।९६।१३१-२।

४. अग्नि ९७।५१-३।

५. मत्स्य २६६।५४-६।

६. मत्स्य २६७।७-१७; विष्णुधर्मो० ३।११२ अध्याय।

पूजन[1], चण्डस्थापन[2] और चण्डपूजा[3] और तब चतुर्थीकर्म (जिसमें ब्रह्ममन्त्रों और अङ्गमन्त्रों से होम प्रमुख है) जैसे कृत्य विहित हैं।

देवता के निमित्त भूमिदान—

प्रतिष्ठापित देवता की पूजन-परम्परा निरन्तर चले, कभी खण्डित न हो—एतदर्थं देवता के निमित्त भूमिदान विहित है।[4] श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार क्षेत्र (खेत), आपण (बाजार-दुकान), पुर और ग्राम का दान भी देवता के निमित्त करना चाहिए ताकि उनसे प्राप्त आर्थिक साधनों से देवता का नित्य पूजन और पर्वविशेष पर महोत्सव का आयोजन किया जा सके।[5]

आचार्य-दक्षिणा—

मत्स्यपुराण के अनुसार यजमान प्रतिष्ठाकर्म में प्रयुक्त यज्ञ-भाण्ड और मण्डपोपस्कर (मण्डप-सामग्री) आदि को आचार्य को दान करे।[6] विष्वक्सेनसंहिता में कहा गया है कि देवता के अलङ्करणों और पूजा में प्रयुक्त होने वाले पात्रों आदि के अतिरिक्त जो भी द्रव्य-सामग्री और धान्य, वस्त्र आदि प्रतिष्ठा कर्म में प्रयुक्त हुए हों उन्हें आचार्य को प्रदान करना चाहिए।[7]

गरुडपुराण में कहा गया है कि आचार्य को कपिला गौ का दान, छत्र, चामर, मुकुट, कुण्डल, केयूर, कटिसूत्र, व्यजन, ग्राम और

१. मत्स्य २६७।१६-२५।

२. अग्नि ९७।५६-६३।

३. अग्नि ७६।१०-१४।

४. विष्णुधर्मो० ३।९३।९-१३।

५. पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम्।
क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात्॥ भाग० १०।२७।५१।

६. मत्स्य २६७।२९-३०।

७. विष्वक्सेनसंहिता १६।८३।

वस्त्र आदि तथा सोपस्कर समण्डल मण्डप का दान करे।[1]

आचार्य को देय २५ निष्क सुवर्ण की दक्षिणा उत्तम, उसकी आधी दक्षिणा मध्यम और उस (आधी) को भी आधी दक्षिणा अधम बतलायी गयी है।[2]

आचार्य को प्रदत्त दक्षिणा की आधी दक्षिणा ऋत्विजों को देनी चाहिए।[3] एक अन्य विधान के अनुसार आचार्य की आधी दक्षिणा स्थापक (स्थापना करने वाले पुरोहित) को तथा उसकी आधी दक्षिणा मूर्तिपों-होताओं को और उसकी भी आधी दक्षिणा द्वारपाल जप (वेदपाठ) आदि करने वाले ब्राह्मणों को दी जानी चाहिए।[4]

देवप्रतिष्ठा-प्रयोग विज्ञान में प्रतिष्ठामयूख को आवश्यकता—

देव-प्रतिष्ठा का प्रयोग-विज्ञान आगमों और पुराणों में यत्र-तत्र विभिन्न अध्यायों में लिखा गया है। प्रतिष्ठाशास्त्र के प्रयोग-विज्ञान विषयक समस्त अपरिहार्य कृत्यों को एकत्र सम्पादित करने का स्तुत्य प्रयास मध्यकालीन धर्मशास्त्र के आचार्यों ने किया था, जिनमें नीलकण्ठ अन्यतम विशिष्ट विद्वान् रहे हैं। देवप्रतिष्ठा के विषय में लगभग तीस ग्रन्थों की सूची भारतरत्न पाण्डुरङ्ग वामन काणे ने धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीयभाग, पृ० १५७३ में गिनायी है। वर्तमान समय में उत्तरभारतीय आचार्यों के उपयोग हेतु स्व० पं० वायुनन्दन मिश्र कृत प्रतिष्ठामहोदधि, पं० दौलतराम गौड़ कृत श्रीप्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, (इन्हीं का एक ग्रन्थ प्रतिष्ठाप्रभु या स्मार्त प्रभु भी है) और पं० चतुर्थीलाल कृत सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, ये तीन

---

१. गरुड पू० ४८।९०; द्रष्टव्य—विष्वक्सेनसंहिता १६।७८–९।

२. विष्वक्सेनसंहिता १६।८०–८१।

३. (क) आचार्यं दक्षिणार्द्धं तु ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददेत्। अग्नि ६०।२३।
(ख) अर्द्धं वापि धनं देयं मूर्तिपानां हितैषिणाम्।
विष्वक्सेनसंहिता २८।७६।

४. विष्वक्सेनसंहिता १६।८४–८५।

ग्रन्थ पद्धति रूप में विशेषतः उपलब्ध हैं। इन सभी प्रतिष्ठापद्धतियों का प्रामाणिक स्रोत और प्राधान्येन उपजीव्य ग्रन्थ नीलकण्ठभट्टकृत प्रतिष्ठामयूख ही रहा है। नीलकण्ठ धर्मशास्त्र के उद्भट विद्वान् रहे हैं। इन्होंने सन् १६१० से १६४५ ई० के मध्यवर्ती काल में भगवन्त भास्कर नामक एक महाग्रन्थ लिखा, जिसमें धर्मशास्त्र से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर क्रमशः संस्कारमयूख, आचारमयूख, कालमयूख, श्राद्धमयूख, नीतिमयूख व्यवहारमयूख, दानमयूख, उत्सर्गमयूख, प्रतिष्ठामयूख, प्रायश्चित्तमयूख, शुद्धिमयूख और शान्ति-मयूख नामक बारह ग्रन्थ संकलित हैं। नीलकण्ठ ने अपने सभी ग्रन्थों में विषयवस्तु का विन्यास सरल, सप्रमाण और पाण्डित्यपूर्ण विधि से किया है। इनके द्वारा लिखित प्रतिष्ठामयूख ग्रन्थ प्रतिष्ठा सम्बन्धी मौलिक ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रामाणिक और सम्पूर्ण भारत में सर्वमान्य और सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है।

नीलकण्ठ ने प्रतिष्ठामयूख संज्ञक ग्रन्थ कर्मकाण्ड के विद्वानों को प्रतिष्ठाकर्म सम्बन्धी समुचित मार्गदर्शन कराने के लिए ही लिखा है। आधुनिक युग में प्रतिष्ठा-प्रयोग कराने वाले उच्च कोटि के विद्वान् आचार्य भी अपने साथ प्रतिष्ठामयूख को प्रायः अवश्यमेव रखते हैं। सामान्य प्रयोगकर्ता भी यद्यपि साधारण स्थिति में सामान्य प्रतिष्ठा पद्धतियों का आश्रय लेते हैं किन्तु विशेष शास्त्रीय जानकारी के लिए अथवा किसी कृत्य विशेष के विषय में सन्देह की स्थिति आने पर संशय के निराकरण, किसी प्रश्न के समाधान तथा प्रतिष्ठाकृत्य सम्बन्धी प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए प्रतिष्ठा मयूख का ही आश्रय लेते हैं। प्रतिष्ठामयूख से वैमत्य रखने वाली प्रतिष्ठापद्धति विद्वानों में सर्वमान्य नहीं हो सकती। काशी के साङ्गवेदविद्यालय के वेदविभागाध्यक्ष आचार्य पं० लक्ष्मीकान्त दीक्षित जी ने बतलाया कि दक्षिण भारत में तो देवप्रतिष्ठा हेतु प्रतिष्ठामयूख को ही सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

उपर्युक्त बहुविध विशेषताओं के कारण ही देवप्रतिष्ठा विषयक अन्य सभी मूल ग्रन्थों की अपेक्षा प्रतिष्ठामयूख अद्यावधि सर्वाधिक प्रचलित, विद्वानों में लोकप्रिय, प्रामाणिक और इसलिए सभी कर्मकाण्डी आचार्यों के लिए पठनीय ग्रन्थ माना जाता है।

प्रतिष्ठामयूख 'सरोजिनी' व्याख्या की उपयोगिता—

देवप्रतिष्ठा सम्बन्धी कर्मकाण्ड में प्रतिष्ठामयूख की महती उपयोगिता और आवश्यकता को देखते हुए इसका प्रस्तुत सुसंपादित अभिनव-संस्करण शुद्ध मूलपाठ, सरल-सुबोध 'सरोजिनी व्याख्या', विस्तृत भूमिका और अन्त में प्रतिष्ठा से सम्बन्धित कर्मकाण्ड को अपेक्षित विषय सामग्री आदि से सवलित परिशिष्टांश सहित प्रकाशित किया गया है। इसकी 'सरोजिनी व्याख्या' में यथासम्भव प्रतिष्ठा-मयूख के समस्त जटिल और गूढ अंशों को सर्वसाधारण के लिए भी बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है। प्रतिष्ठाकर्म में विनियुक्त अनेक छोटे-मोटे कृत्यों को सरोजिनी व्याख्या में इस तरह समाविष्ट किया गया है कि इस ग्रन्थ को प्रतिष्ठा प्रयोग हेतु एक सरल प्रतिष्ठा-पद्धति के रूप में प्रयुक्त किया जा सके। देव-प्रतिष्ठा विज्ञान के विषय में प्रतिष्ठाकर्म कराने वाले आचार्यों, जिज्ञासु धार्मिकजनों, कर्मकाण्ड विषय के विद्यार्थियों और अध्यापकों की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए तथा शंकाओं के समाधान हेतु प्रतिष्ठा मयूख की इस सरोजिनी व्याख्या में वेदों, पुराणों, तन्त्रों और आगमों के वचनों को यथास्थान उद्धृत करके विषय का स्पष्टीकरण किया गया है, जिससे इस ग्रन्थ के कलेवर की बहुत अधिक वृद्धि हो गयी है।

प्रतिष्ठामयूख की भाषा टीका लेखन का प्रथम सराहनीय प्रयास काशी के विख्यात वैदिक विद्वान् आचार्य दौलतरामजी गौड़ ने किया है। आचार्य गौड़जी की प्रतिभा और प्रतिष्ठाशास्त्र में उनके योगदान से इस सरोजिनी व्याख्या से युक्त प्रतिष्ठामयूख के पाठकों को लाभान्वित करने के लिए मैंने उनके निर्णायक वचनों को इसमें यत्र-

तत्र उद्धृत किया है[1] और इसके लिए मैं पूज्य गौड़जी के प्रति हृदय से आभारी हूँ। आचार्य गौड़जी ने गुजराती प्रिण्टिंग प्रेस बम्बई से प्रकाशित संस्करण के पाठ को आधार माना है, जिसमें मुद्रण या प्रूफ संशोधन सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ हैं, यथा—'अधोद्वारे' के स्थान पर 'अधो द्वारे'[2] (अशुद्ध पाठ) और 'वास्तुदेवांश्च' के स्थान पर 'वासुदेवांश्च'[3] (अशुद्ध पाठ)। आचार्य गौड़जी का ध्यान इन अशुद्धियों पर नहीं गया, जिस कारण उन्होंने उक्त अशुद्ध पाठ के शब्दों का तद्वत् (अशुद्ध) अर्थ कर दिया है। किन्तु मैंने इस संस्करण में उक्त अशुद्ध पाठ को संशोधित करके शुद्ध पाठ को अपनाया है।

नीलकण्ठ ने प्रतिष्ठामयूख में प्रायः ऋग्वेद के ही अधिकांश मन्त्र प्रतिष्ठाकर्म हेतु विनियुक्त किये हैं। वर्तमान काल में उत्तर भारतीय आचार्यों के द्वारा प्रायः समस्त कर्मकाण्ड में यथोपलब्ध यजुर्वेद के ही मन्त्र प्रयुक्त किये जाते हैं। ऋग्वेद या अन्य वेदों के मन्त्रों का प्रयोग वे किसी कृत्य विशेष में तभी करते हैं जबकि उसके लिए यजुर्वेद के मन्त्रों का प्रयोग पूर्व-परम्परातः प्राप्त न हो। अतः इस सरोजिनी व्याख्या में नीलकण्ठ के द्वारा विहित ऋग्वेद के मन्त्रों के साथ ही यजुर्वेदी आचार्यों की सुविधा हेतु यजुर्वेद के मन्त्र भी दिये गये हैं।

नीलकण्ठ ने प्रतिष्ठा मयूख में गणपतिपूजन आदि पञ्चाङ्गकृत्यों की विधि नहीं लिखी है वे इन कृत्यों की विधि संस्कारमयूख तथा ग्रहपूजन आदि की विधि दानमयूख में लिख चुके हैं, अतः वे यह अपेक्षा रखते हैं कि जिज्ञासु आचार्य और अन्य विद्वान् इन विधियों को उक्त ग्रन्थों में ही देख लेंगे। किन्तु मेरा उद्देश्य इस

---

१. द्रष्टव्य—इस ग्रन्थ के पृ० १०७, २८२, ३५५, ४०३ आदि।

२. द्रष्टव्य—गुजराती प्रिण्टिंग प्रेस बम्बई से प्रकाशित संस्करण का पृ० ४०।

३. द्रष्टव्य तत्रैव पृ० ४५।

सरोजिनी व्याख्यायुक्त प्रतिष्ठामयूख को सर्वजनोपयोगी और सर्वग्राह्य बनाना है। अतः मैंने इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में (पृ० ४८७–५१२ में) संक्षेप में गणपतिपूजन आदि पञ्चाङ्ग पूजन कृत्यों को पूजन मन्त्र के आरम्भिक पदों के उल्लेखपूर्वक क्रमशः निबद्ध कर दिया है। गणपतिपूजन के सामान्य प्रयोग में मैंने कूर्माञ्चलीय पद्धति का भी आंशिक समावेश किया है। नान्दीश्राद्ध प्रयोग में एकरूपता नहीं देखी जाती। कूर्माञ्चलादि क्षेत्रों का नान्दीश्राद्ध प्रयोग प्रायः पार्वणादि पितृश्राद्ध की पद्धति के अनुकरण पर और 'श्राद्धकाले गयां ध्यात्वा०' तथा 'सप्त व्याधा दशार्णेषु०' इत्यादि श्लोकों के समावेशपूर्वक लिखा गया है और नान्दीश्राद्ध का पुट देने के लिए पितरों के लिए नान्दीमुख सम्बोधन तथा 'नमो वृद्धि वृद्धि श्रियै' शब्दों का प्रयोग होता है। प्राचीन पर्वतीय विद्वानों और यहाँ तक कि महामहोपाध्याय स्व० नित्यानन्द पन्त पर्वतीय जी ने भी नान्दीश्राद्ध विधि लिखते समय सर्वभारतीय नान्दीश्राद्ध विधियों से समन्वय स्थापन का प्रयास किया ही नहीं और जो विधि वहाँ प्रचलित है उसमें शब्दों के परिवर्तन और ऊहापोह का दुःसाहस मैं भी नहीं कर रहा हूँ। मैंने इस प्रतिष्ठामयूख ग्रन्थ के परिशिष्ट में नान्दीश्राद्ध की विधि सम्पूर्ण भारत में प्रयोग की दृष्टि से ही लिखी है और इस विधि से जो अन्तर क्षेत्रीय पद्धतियों में है उसे मैंने टिप्पणियों में दे दिया है।

नूतन प्रासाद के निर्माण तथा उसकी वास्तुप्रतिष्ठा के समय तथा मण्डप निर्माण और मण्डपपूजन के प्रसंग में अपेक्षित वास्तुपूजन का संक्षिप्त निर्देश सरोजिनी व्याख्या में पृ० २१९–२२१ में तथा आगे परिशिष्ट में पृ० ५१७-८ में किया गया है। योगिनियों और क्षेत्रपालों की सूची विभिन्न पद्धतियों में भिन्न भिन्न है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इनकी एक सुग्राह्य सूची पृ० ८६ में दे दी गयी है। सर्वतोभद्र और लिङ्गतोभद्र मण्डल देवताओं तथा ग्रहों आदि के नाममन्त्र से पूजन की संक्षिप्त विधि परिशिष्ट में पृ० ५१९–५२५ में दी गयी है।

सर्वकर्मारम्भ में करणीय सर्वप्रायश्चित्त प्रयोग और दान-प्रयोग इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में पृ० ४५२–४७० में दिया गया है।

नीलकण्ठ के द्वारा प्रतिष्ठामयूख में लिखित मण्डपपूजन की विधि संक्षिप्त और व्यावहारिक है। प्रतिष्ठामयूख में कथित विधि से मण्डप के स्वरूप का बोधक चित्र इस सरोजिनी व्याख्या में पृ० ८२ में बनाया गया है। आधुनिक काल के उत्तर भारतीय आचार्य प्रायः प्रतिष्ठामहोदधि या श्रीप्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव या सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश आदि में कथित विधि (जो कहीं कहीं प्रतिष्ठामयूखोक्त विधि से भिन्न है) से मण्डप पूजन करते हैं। प्रतिष्ठामयूख की विधि से मण्डप-पूजन कराते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इसमें नीलकण्ठ ने मण्डप के पूर्व और ईशान कोण के मध्य में अनन्त का पूजन (द्रष्टव्य पृ० २८) और पश्चिम एवं नैर्ऋत्य कोण के मध्य में ब्रह्मा का पूजन (द्रष्टव्य पृ० २९) विहित किया है जब कि वर्तमान काल की सभी उत्तरभारतीय पद्धतियों में ब्रह्मा का पूजन पूर्व और ईशान कोण के मध्य में तथा अनन्त का पूजन पश्चिम और नैर्ऋत कोण के मध्य में विहित है। मण्डप पूजन विषयक उपर्युक्त अन्तर के अतिरिक्त प्रतिष्ठा सम्बन्धी अन्य सभी कृत्यों के लिए वर्तमान पद्धतियों में प्रतिष्ठामयूख का ही अनुसरण किया गया है।

प्रतिष्ठामयूख प्रतिष्ठा विज्ञान का एक सारगर्भित और प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसमें नीलकण्ठ ने प्रतिष्ठा-विधि सम्बन्धी प्रमुख और अपरिहार्य कृत्यों का तो स्पष्ट प्रतिपादन किया है, किन्तु जो कृत्य सरल हैं और सभी कर्मों में समान रूप से किये जाते हैं तथा जिनकी प्रयोग विधि सभी आचार्यों को सुविदित है उनकी ओर संकेतमात्र कर दिया है अथवा प्रबुद्ध आचार्यों के विवेकाधीन छोड़ दिया है।

देवप्रतिष्ठा से सम्बन्धित जो कृत्य पुराणों और आगमों में लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सके और जिनका प्रचलन प्राचीन पुराणों और आगमों की रचना के पश्चात् हुआ उनको सम्पादित करने की विधि प्रतिष्ठामयूख में नहीं है। ऐसे कृत्यों में जलयात्रा प्रयोग, जलाधिवास प्रयोग आदि को गिनाया जा सकता है। किन्तु ये कृत्य आधुनिक पद्धतियों में संगृहीत हैं और आधुनिक आचार्यों के द्वारा इनको किया भी जाता है। अतः मैने भी आधुनिक आचार्यों की सुविधा हेतु ऐसे कृत्यों को इस सरोजिनी व्याख्या में प्रतिष्ठामयूख के मूल पाठ के अनुवाद के प्रसंग में पद्धति के रूप में निबद्ध कर दिया है अथवा कुछ कृत्यों को परिशिष्ट में दे दिया है। उदाहरणार्थ—प्रतिष्ठा कर्म के उपक्रम के पूर्व करणीय जलयात्रा प्रयोग को परिशिष्ट में पृ० ४७१–४८६ में दिया गया है। देवस्नपन के पूर्व करणीय जलाधिवास की विधि पृ० ८८–९२ में और देवस्नपन के पश्चात् किन्तु शय्याधिवास के पूर्व करणीय अन्नाधिवास की विधि पृ० ९२ में दी गयी है।

नीलकण्ठ ने आयुधन्यास, शक्तिन्यास, अङ्गन्यास और मूलमन्त्र न्यास केवल विष्णुप्रतिष्ठा विषयक ही लिखे हैं, किन्तु इस सरोजिनी व्याख्या में शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश विषयक उक्त न्यास भी पद्धतियों से संगृहीत करके लिख दिये गये हैं। इसी तरह देवीप्रतिष्ठा विषयक निवृत्तिन्यास, कूर्मशिला, ब्रह्मशिला आदि के अधिवासन के प्रसग में विभिन्न देवों से सम्बद्ध शिलाओं तथा पिण्डिका और वाहन आदि के पूजनमन्त्र, पिण्डिका में पञ्चाङ्गमन्त्र न्यास का विधान, प्रासाद न्यास, प्रासाद में कलशप्रतिष्ठा की विधि आदि अनेक विषय इस सरोजिनी व्याख्या में पद्धतिक्रम से समाविष्ट किये गये हैं।

प्रतिष्ठा कराने वाले आचार्यों की सुविधा हेतु अनेक अन्य विषयों को भी बोधगम्य बनाया गया है। यथा—अष्टदल में अष्ट-

मूर्ति और मूर्त्यधिपति पूजन विधान (पृ० १६४–५), पञ्चमूर्ति (विष्णु और शिव)-पूजन (पृ० १६६–७), रत्नन्यास का विशद विवेचन (पृ० २२६–२४९), षोडश सस्कार विधान (पृ० २७७-८), प्राणप्रतिष्ठा के यजुर्वेदीय मन्त्र के साथ ही ऋग्वेद के मन्त्र का भी उल्लेख (पृ० २६१), अङ्गहोम विधि (पृ० २८३), आयुधमन्त्रों से होम की विधि (पृ० २८३-४), षोडशोपचार पूजनविधि (पृ० २९३–३०६), महापुरुषविद्यास्तोत्र (पृ० ३०७–८), स्विष्टकृत् होम का मन्त्र (पृ० ३१३ की टिप्पणी), सर्वप्रायश्चित्त होम के मन्त्र (पृ० ३१४), बलिदान प्रयोग (पृ० ३१५–३२०) पूर्णाहुति और वसोर्धारा के मन्त्र (पृ० ३२१–४), श्रयोदान (पृ० ३२४), अभिषेक मन्त्र (पृ० ३२५-६), आशीर्वचन (पृ० ३२९–३०), लेपनविधान का स्पष्टीकरण (पृ० ३३१–३), पञ्चब्रह्म मन्त्रों से होम (पृ० ३३५) और अङ्गमन्त्रों से होम की विधि (पृ० ३३६–७), चण्डस्थापन आदि की विधि (पृ० ३५१–२), ध्वजारोपण (पृ० ३५५–६), अग्न्युत्तारण विधि (पृ० ३७२), हनुमत्प्रतिष्ठा विधि (पृ० ४२५–४४०) और राधाकृष्ण प्रतिष्ठा विधि (पृ० ४४१–४५९) इत्यादि विषयों को इस सरोजिनी व्याख्या में जोड़कर इस ग्रन्थ को अधिकाधिक प्रामाणिक और उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

प्रतिष्ठामयूख में अनेक स्थलों पर कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऐसे शब्दों की परिभाषा या सोदाहरण व्याख्या देने का प्रयास इस सरोजिनी व्याख्या में किया गया है, जिनमें बृहद्रथन्तर (पृ० १३७), शंतातीय सूक्त (पृ० २२५), षडध्व (पृ० २२८), रैवतसाम (पृ० २६२), अथर्वणसाम (पृ० ३२५), कपिला (पृ० ३३३), पञ्चब्रह्म या पञ्चोपनिषद् (पृ० ३३५), भद्रासन (पृ० ३५२) तथा पञ्चगव्य और पञ्चामृत की परिभाषायें (पृ० ३५९) उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मस्थान के स्पष्टीकरण हेतु आगमों के उद्धरण दिये गये हैं (पृ० २१४–२१५)।

प्रतिष्ठामयूख की इस सरोजिनी व्याख्या की अन्य विशेषताएँ भी उल्लेखनीय हैं। यथा – इसमें देवस्नपन हेतु कलशों, कलशस्थ द्रव्यों और मन्त्रों की एक समग्र सूची प्रतिष्ठाचार्यों की सुविधा हेतु प्रतिष्ठामयूख के अनुसार बनायी गयी है और वर्तमान पद्धतियों में जो अन्तर है वह कोष्ठ में दे दिया गया है (द्र० पृ० ६८–७७)। इसी तरह पञ्चब्रह्मन्यास विधि का स्पष्टीकरण (पृ० १४६) और महास्नान में प्रयुक्त द्रव्यों और मन्त्रों की सूची (पृ० ३४३) भी दे दी गयी है।

प्राण-प्रतिष्ठा के प्रसंग में विभिन्न देवी-देवताओं के गायत्री मन्त्रों की जो सूची इस सरोजिनी व्याख्या (पृ० २६६–२७३) में संगृहीत है वह अब तक की सबसे बड़ी सूची है। इसी प्रकार प्राण सूक्त जप में पठनीय प्राण-सम्बन्धी मन्त्रों का भी एक सुसंगत क्रम इस व्याख्या में बनाया गया है (पृ० २७३-२७७)।

कुछ दुर्लभ और दुर्बोध तथ्यों को यथास्थल चक्र या चित्र बना कर हृदयंगम बनाया गया है। यथा – शिवलिङ्ग में सकलीकरण या षडङ्गन्यास बोधकचक्र (पृ० ६७) और देवप्रासाद की पुरुषरूप में कल्पना का बोधक चित्र (पृ० २१७) आदि।

इसी तरह अन्य अनेक विषयों को देकर तथा मूलपाठ को सम्यक् भाषानुवाद के द्वारा हृदयङ्गम बनाकर तथा युग की मांग के अनुसार अपेक्षित कृत्यों को यथास्थल जोड़कर इस सरोजिनी व्याख्या संवलित प्रतिष्ठामयूख को एक सुपरिष्कृत प्रतिष्ठापद्धति का परिपूर्ण स्वरूप प्रदान करने का निश्छल प्रयास किया गया है।

इस ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग के अन्त में पारिभाषिक शब्दसूची, प्रतिष्ठामयूख की सरोजिनी व्याख्या में उद्धृत वैदिक मन्त्रों की सूची तथा प्रतिष्ठा सम्बन्धी विभिन्न कृत्यों में अपेक्षित सामग्री की तत्तत कृत्य के क्रमानुसार पृथक् पृथक् सामग्री-सूची देकर इस ग्रन्थ को आधुनिक युग के जिज्ञासु पण्डितों और विद्वानों की रुचि के अनुकूल प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

—महेशचन्द्र जोशी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
प्राक्कथन	१–५
शुभाशंसा	६–८
भूमिका	९–७६

देवपूजा का महत्त्व ९, वैदिक यज्ञों का अपकर्ष और देवपूजा की लोकप्रियता में वृद्धि ११, देवपूजा के अधिकारी १२, देवपूजा के लाभ १३, देवपूजा के विषय में राजा या सरकार का कर्तव्य १७, भूत-प्रेतों की पूजा हानिकारक १८, देवालय निर्माण १९, देवपूजा के विभिन्न आस्पद २० मूर्ति में देवों का सान्निध्य २०, मूर्तिपूजा की प्राचीनता २१, मूर्तिपूजा का औचित्य २२, मूर्तिपूजा की उपयोगिता २४, मूर्तिविषयक विचार २५, देवमूर्ति की ऊँचाई २७, मूर्ति लक्षणानुसार शुभाशुभ फल २८, लक्षणरहित मूर्ति या लिङ्ग के पूजन से हानि २९, घर में स्थापनीय मूर्ति ३१, प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता ३४, लिङ्ग-प्रतिष्ठा की आवश्यकता ३५, प्रतिष्ठा के बिना मूर्ति में देवत्व नहीं ३६, भूतोपासना में प्राणप्रतिष्ठा आवश्यक नहीं ३७, मूर्ति प्रतिष्ठा विधि भारतीय ब्राह्मणों की देन ३७, प्रतिष्ठा कर्म का आचार्य ३८, प्रतिष्ठापञ्चक ४०, स्वयंव्यक्त लिङ्गादि की प्रतिष्ठा अपेक्षित नहीं ४०, प्राणप्रतिष्ठा की गम्भीरता ४१, प्रतिष्ठाविधि में तन्त्रभेद ४२, प्रतिष्ठा में नये उपकरणों का प्रयोग ४२, प्रतिष्ठा सम्बन्धी कृत्य ४२, अंकुरार्पण ४३, मण्डपपूजन, ४४, मण्डप में अनर्ह व्यक्ति का प्रवेश वर्जित ४५, द्वारपाल जप ४५, स्नानमण्डप ४५, अधिवासन ४६, जलाधिवास ४७, स्नपन ४८, नेत्रोन्मीलन ५०, शय्याधिवास ५१, धान्याधिवास ५१, न्यास ५१, मूलमन्त्र से पूजन ५२, अष्टदलोपरि विद्याधिपतियों का पूजन

५२, होम ५३, बलिदान ५५, प्रासाद-प्रतिष्ठा ५६, ध्वजारोहण ५७, रथयात्रा ५८, पिण्डिका स्थापन ५९, रत्नन्यास ६२, पिण्डिका में देवता-स्थापन ६३, परिवार देवताओं की स्थापना ६४, प्राण-प्रतिष्ठा ६४, प्रतिष्ठोत्तर कृत्य ६६, देवता के निमित्त भूमिदान ६७, आचार्य दक्षिणा ६७, देवप्रतिष्ठा प्रयोग विज्ञान में प्रतिष्ठा-मयूख की आवश्यकता ६८, प्रतिष्ठामयूख की सरोजिनी व्याख्या का उपयोगिता ७०-७६।

प्रतिष्ठामयूख ग्रन्थोपक्रम १-४

प्रतिष्ठाकाल ५

प्रतिष्ठा में अपेक्षित सामग्री ७-१०, ५३७-५४४

रत्नाष्टक ८, धात्वष्टक (हरितालादि) ८, बीजाष्टक ८, धात्वष्टक (सुवर्णादि), ८ सप्तमृत्तिका ९, सर्वौषधी ९, सप्तधान्य १०, मण्डप-निर्माण १०।

प्रधान संकल्प ११, ४८८

दिग्रक्षण ४८८, सूर्यार्घ्य ४८९, पूजाकमार्थ-जलपात्रोदकाभिमन्त्रण ४८९, दीपपूजन ४९०, शङ्खपूजन ४९०, घण्टापूजन ४९०

गणपतिपूजन ११, ४९०

कलशस्थापन ४९४

पुण्याह वाचन ४९५

मातृकापूजन ११, ५०३

आयुष्यमन्त्र जप ५०६

नान्दीश्राद्ध ११, ५०६

आचार्यादिवरण १२, ५१३

मधुपर्क ५१४

ब्राह्मण प्रार्थना ५१६

मण्डपपूजन १२-२९

मण्डप प्रवेश १२, भूतोत्सादन १३, स्थूणा (=स्तम्भ) पूजन १३, द्वारतोरणपूजन १५-२९, द्वारपालजप १७, १९-२२, २५, २७

सर्वतोभद्रमण्डलादि देवता पूजन ३०, ५१८-२०

लिङ्गतोभद्र देवतापूजन ५२१,

कुण्डपूजन ५२२, अग्निस्थापन ३०, ५२३

वास्तुपीठ देवता-पूजन ३१, ५१७

वास्तुमण्डलदेवता होम ३१

प्रासाद-वेष्टन ३३

वास्तुप्रतिमा-निधापन ३४

ग्रहस्थापन ३४, ५२२

ग्रहादि आवाहित देवता होम ३४

स्नानमण्डप में कलश-स्थापनादि कर्म ३५-४६

स्नानमण्डप की वेदिका त्रय का प्रोक्षण ३५

दक्षिण वेदिका में विश्वकर्मा का ध्यान ३५

दक्षिण वेदी के पश्चिम में द्वादश कलश-स्थापन ३६

मध्य वेदी के पश्चिम में एकादश कलश-स्थापन ३६

उत्तर वेदी के चारों ओर कलश-स्थापन ३७

उत्तर वेदी के पश्चिम में कलश-स्थापन ४०

सूक्ष्म वस्त्र, तेल और उद्वर्तन चूर्ण का आसादन ४१

मङ्गल कलशस्थापन ४१

कर्मकुटी कर्म ४२

स्नानमण्डप में प्रतिमा-आनयन ४३

कलश में तीर्थावाहन ४३

स्नानमण्डप के बाहर बलिदान, अन्दर दिग्रक्षण और स्वस्तिवाचन ४६

देवस्नपन ४८-६५

प्रथम वेदी में स्नपन ४८

द्वितीय वेदी में नेत्रोन्मीलन और स्नपन ४८
उत्तरवेदी में स्नपन ५२
सकलीकरण ६६
देवस्नपन-विधि—कलशद्रव्य एवं मन्त्रों की तालिका ७–७७
देवता का आवाहन और पूजन ७८
देवता को यागमण्डप में लाकर मधुपर्क निवेदन ८७
जलाधिवास विधि ८८–९२
अन्नाधिवास ९२
शय्याधिवास ९३–९४
निद्रा कलश-स्थापन ९५
देवता का अभ्यञ्जन और आलमन ९६
राजोपचारादि स्थापन ९७
प्राकारत्रय करण और बलिदान ९९
स्नपनाङ्ग होम १००
न्यास-विधान १००–१५३
प्रणवन्यास १००, व्याहृतिन्यास १००, मातृकान्यास १००, ऋक्ष-न्यास १०२, कालन्यास १०५, वर्णन्यास १०६, तोयन्यास १०८, विद्यान्यास १०९, वैराजन्यास ११०, देवयोनिन्यास ११०, मूर्तिन्यास ११२, क्रतुन्यास ११५, गुणन्यास ११७, आयुधन्यास ११८, शक्तिन्यास १२०, अङ्गन्यास १२२, मूलमन्त्रन्यास १२५, जीवन्यास एवं तत्त्वन्यास १२८-१३४, निवृत्तिन्यास १२९, वशिन्यादिन्यास १३१, गायत्रीन्यास १३५, मन्त्रन्यास १३६, द्वादशाक्षरमन्त्रन्यास १३८, पुरुषसूक्तन्यास १३९, उत्तरनारायणन्यास १४१, पञ्चब्रह्मन्यास १४२, ईशानकलान्यास १४६, तत्पुरुषकलान्यास १४८, अघोरकलान्यास १४८, वामदेवकलान्यास १५०, सद्योजातकलान्यास १५१, 'हंसहंसेति' हृदयादिन्यास १५२, नृसिंहमन्त्रन्यास १५२

निद्राऽऽवाहन,–पूजन १५३–१५५
लोकपाल बलिदान १५६
स्थाप्य देवतादि का पूजन १६१–१६७
विष्णुपूजन (अष्टदलोपरि) १६१
द्वादशमूर्तिपूजन (द्वादश आरावों में) १६२
शङ्खपूजन १६२
शिवपूजन (अष्टदलोपरि) १६३
अष्टमूर्त्यादिपूजन १६३
विष्णुपञ्चमूर्त्यादिपूजन १६५
शिवपञ्चमूर्त्यादिपूजन १६६
लोकपालपूजन १६७
होम १६८–१८४
शान्तिकहोम-पौष्टिक होम १६८
शान्तिकमन्त्र १६९; पौष्टिक मन्त्र १७१
वेदादिहोम (पञ्चकुण्डोपक्षे) १७३
वेदादि होम (नवकुण्डोपक्षे) १७५
मूर्ति-मूर्तिपति-लोकपाल-होम १७६
महाव्याहृति होम १८३
मूलमन्त्र से होम १८४
पञ्चायतन पूजा १८६
कूर्मशिला-ब्रह्मशिलादि का अधिवासन १९०
कूर्मशिला-ब्रह्मशिलादि का पूजन १९१
पिण्डिका पूजन १९२
पिण्डिका में पञ्चाङ्ग मन्त्रादि न्यास १९५
परिचारक-देवता पूजन १९९
प्रासादाधिवासन १९९–२०६
अधिवासन की अवधि विषयक मत २०७

प्रासाद में देवता के स्वरूप की भावना	२१३
वास्तुपूजन	२१९
प्रासादोत्सर्गविधि	२२१
यजमानाभिषेक	२२३
प्रासादोत्सर्ग	२२३
मूर्ति-मूर्तिपति-लोकपालहोम	२२४
प्रासाद-प्रोक्षण	२२५
कूर्मशिला ब्रह्मशिलास्थापनादि कर्म	२२७–२३०
कूर्मशिलास्थापन	२२७
ब्रह्मशिला स्थापन	२२७
ब्रह्मशिला में षडध्वन्यास	२२८
पुण्याहवाचन और मूलमन्त्र से होम	२२९
ब्रह्मशिला के गर्तों में रत्नन्यास	२३०
पिण्डिकास्थापनादि कर्म	२३०
पिण्डिकाभिमन्त्रणादि कर्म	२३१
पिण्डिका में तत्त्वन्यास	२३२
पिण्डिका में मूर्ति-मूर्तिपति-लोकपाल न्यास	२३३
पिण्डिका में आधार शक्त्यादि न्यास	२३४
पिण्डिका प्रार्थना	२३४
पिण्डिका में प्रणवादि अक्षरन्यास	२३५
रत्नन्यास	२३६–२४९
रत्नन्यास विमर्श	२३६
रत्नादि न्यासक्रम	२४०
रत्नादि न्यास में बीजादि स्थापनक्रम बोधक चक्र	२४७
रत्नादि के अभाव में विकल्प	२४८
रत्नादिस्थिरीकरण	२४९
प्रासादाभिषेचन और बलिदान	२५१

प्रासाद के बाहर आठों दिशाओं में स्थण्डिलों में होम	२५१
देवमस्तकाभिषेक	२५२
देव प्रबोधन	२५२
अर्घ्यदान	२५३
रथयात्रा	२५३
पिण्डिका में देवता-स्थापन	२५५
प्राणप्रतिष्ठा	२५७–२६१
ध्रुवसूक्त	२६०
स्थापित देवता का ध्यान	२६३
विभिन्न देवताओं के गायत्री मन्त्र	२६६
प्राणसूक्तजप	२७३
षोडश संस्कार सम्पादन	२७७
सान्निध्य-प्रार्थना	२७८
परिवार देवता स्थापन	२७९
अङ्गहोम	२८१
आयुधमन्त्रों से होम	२८३
स्थापित देवता की प्रार्थना	२८४
दिक्पाल-स्थापन	२८५
द्वारपाल स्थापन	२८५
वाहन स्थापन	२८६
स्थापित देवता का आवाहन-पूजन और प्रार्थना	२८७
षोडशोपचार पूजन	२९३–३०४
शिव का षोडशोपचार पूजन	३०५
देवी का षोडशोपचार पूजन	३०६
महापुरुषविद्यास्तोत्र	३०७
प्रार्थना	३०८

देव-नामकरण ३०८
नैमित्तिक दोष के लिए प्रायश्चित्त ३१०
पूजोपकरण समर्पण ३१०
दिक्पाल होम की दक्षिणा ३११
प्रतिष्ठोत्तर शान्तिहोमादि कर्म ३११-३१४
शान्ति होम ३११
प्रतिष्ठा होम ३१२
अघोरमन्त्र से होम ३१२
सर्वतोभद्रमण्डलाद्यावाहित देवता होम ३१३
स्विष्टकृत् होम ३१३
सर्वप्रायश्चित्त होम ३१४
बलिदान प्रयोग ३१५-३२०
पूर्णाहुति ३२०-३२३
वसोर्धारा ३२३-४
श्रेयोदान ३२४
यजमान का अभिषेक ३२४
आचार्य-दक्षिणा ३२७
आशीर्वाद ३२८
लेपनविधान ३३१
चतुर्थीकर्म (शिव का) ३३४-३४७
ब्रह्ममन्त्रों से होम ३३६
अङ्गमन्त्रों से होम ३३७
अन्य देवता का चतुर्थीकर्म ३३८
महास्नान प्रयोग ३३९-३४३
स्नानाङ्गपूजन ३४४
चण्डस्थापन ३४७

कीर्तिमुखस्थापन ३५१
ध्वजारोपण ३५४
चल-प्रतिष्ठा ३५६-३७७
अग्न्युत्तारण ३७२
जीर्णोद्धार विधि ३७८-४२४

[परिशिष्ट]

हनुमत् प्रतिष्ठा विधि ४२५
राधाकृष्ण प्रतिष्ठा ४४१
सर्वप्रायश्चित्त प्रयोग ४५२
दशदान विधि ४६४
जलयात्रा प्रयोग ४७१
पञ्चाङ्गपूजनादि प्रयोग ४८७
वास्तुपूजन ५१७
सर्वतोभद्रमण्डल देवता पूजन ५१८
लिङ्गतोभद्रदेवता पूजन ५२१
कुण्डपूजन ५२२
अग्निस्थापन ५२३
ग्रहस्थापन ५२३
पञ्चगव्य विधि ५२५
पारिभाषिक शब्द सूची ५२६
मन्त्रसूची ५३०
प्रतिष्ठा-याग-सामग्री-सूची ५३७
शुद्धिपत्र (भूमिका) ८९

———•———

शुद्धिपत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१५ (मू०)	२४	भागिन:	फलभागिन:
१	२०	जज्ञ	जज्ञे
२	१३	विशोको	विशोकी
३	१७	त्रस्यव०	त्रस्यद०
४	८	अपिचितिन	अपचितिर्नं
४	१४	सङ्कतार्था	सङ्कतीर्था
४	१६	दादशते	द्वादशैते
७	३	चूडाकर	चूडाकरण
७	१७-१८	और यदि ग्रहयाग संक्षेप में करना हो तो	संक्षेपेण ग्रहयाग करने के पक्ष में और
९	३	मधुपक	मधुपर्क
१५	१६	शाखा०	शाख०
१५	१८	दवार	द्वार
२५	२३	प्रथाम०	प्रथम०
४०	६; ८	सवो०	सवो॑०
४१	७	उब	तब
४३	२५	शाम०	शाल०
४८	६	कथायें।	कथायें:
५४	११	अ पो	आपो
५४	११	रज	रजा
५७	२१	समवतत	समवर्तत
५८	२०	ना	नो

८०	९	१०।१९	१०।९०
८७	१९	चिदाम	चिदभि
८७	२०	सुपणा	सुपर्णो
९०	१६	भूभुर्भवा	भूर्भु॑वः
९३	४	कोण	कोणे
९६	३	तल	तैल
१०४	४	नेत्रे	नेत्रयोः
१०७	१६	०जिविका।	०जाविका।
१०७	१९	सस्थिता:	संस्थिता।
१०७	२०	ररः	रूरू:
१०८	१७	रामान्	रोमान्
१०९	९	मीमांसाय	मीमांसायै
११०	८	ययाय	यमाय
११५	३	गासवाय	गोसवाय
११६	२६	स्वाहाकाहाय	स्वाहाकाराय
११८	१	न्यास:	आयुषन्यास।
१२०	३	प्रीत्य	प्रीत्यै
१२०	१५	वृषणे	वृषणे च
१२५	१६	न्गास	न्यास
१२८	११	य	यं
१३५	९	अस्त्र	अस्त्रे
१३५	११	१८	१९
१३७	१५	न क्षत्रा०	नक्षत्रा०
१४०	२७	०न्तवत	०न्वत
१४२	११	०देवाम	०देवाय
१५२	८	नी	मी

१५४	२	०देवाहुते	देवहुते
१७१	१३	पृथिनी	पृथिवी
१७१	२२	मिह	मिव
१७३	२६	षट्शि	षट्त्रिंश
१७४	१२	नकोण	नवकोणं
१७५	१५	आया०	आप्या०
१७६	१७	नं दहाति	निदहाति
१७७	१०	एताषा०	एतासा०,
१८२	१	अथना	अथवा
१८४	६	स्नाहा	स्वाहा
१९०	२	देवाश्च	देवीश्च
१९२	२	शूद्र	शूद्रं
१९४	१९	उद्द्ं ह	उद्द्ं ह
१९९	३	पद	पदं
१९९	५	कोष्ठ	कोष्ठं
२२९	२	वाचन	वाचनं
२५६	१४	भृशा	मृशा
२५६	२६	व्यय	व्यथ
२६०	२२	विशत्वा	विशस्त्वा
२६३	१०	दव	देवं
२७५	१	पाणं	पानं
२७५	२२	सौव श०	सौवं श०
२७५	२६	त्रिं शी	त्रिं शो
२७६	९	स ते	सं ते
२७८	८	त्वया	त्वयाऽत्र
३०८	१५	अकाम	आकाम
३२४	१२	७९	८७

३४६	१४	दव	देव
३५३	२६	कालमस्या०	कालस्या०
३६०	१५	यासूजं	यासूजं
३६६	२	तवत्तय	तत्त्वाय
३७१	२७	मल	मूल
३७२	६	अग्यु०	अन्यु०
३७२	८	आरन्यु०	अरन्यु०
३७२	८	घणे	घृणे
३८०	६	विद्युद्धात	विद्युद्धत
३८३	४	दवात्	दैवात्
३९०	५	जार्णा	जीर्णा
३९०	९	प्रातिलम्यन	प्रातिलोम्येन
३९८	५	मन्त्रान	मन्त्रान्
४००	२१	ता	तथा
४००	२२	श्रावेद्स्त्र	श्रावयेदस्त्र
४०३	२	देवाऽस्य	देवालय
४०४	२५	अधिपधि	अधिपति
४०६	६	शान्त्यथे	शान्त्यर्थं
४०९	२०	दूसित	दूषित
४११	१८	पचनों	वचनों
४१७	१	प्रषयेद्	प्रेषयेद्
४२७	१३	कुर्मस्ते	कुर्मस्तु
४२८	५	स्थापित।	स्थापितैः
४३१	१०	पादयो	पादयोः
४३१	१२	रजस्तस्वात	रजस्तत्त्वाय
४३२	१५	पीठकार्चन	पीठार्चन
४३२	२०	अङ्न्दाय	अङ्गदाय

४३३	२०	चतुषष्टि	चतुष्षष्ठि
४३७	१२	धामार्थं	धमर्थिं
४४१	७	कत्वा	कृत्वा
४४४	९	कुयात्	कुर्यात्
४४७	१०	वार	वारं
४७०	३	यथाशक्या	यथाशक्ति
४९१	३	नागास्य नागहार	नागास्यं नागहारं
४९२	१४	भक्या	भक्त्या
५००	७	आहुतय	आहुतयः
५०२	१८	प्राप्त्यर्यञ्च	प्राप्त्यर्थंच
५०४	११	स्याप्य०	स्याप०
५०४	२२	ब्राह्मणो	ब्रह्माणी
५०६	२४	कुर्वात	कुर्वीत
५१०	१९	प्रतिमही०	प्रपितामही०
५२५	१८	०वर्णाय	०वर्णाया।
५२८	१८	पपि० पपि०	पति० पति०
५३७	९	ध्वजाओं	ध्वजों
५३७	१०	पतका०	पताका०

---*---

॥ श्रीः ॥

प्रतिष्ठामयूखः

'सरोजिनी' हिन्दी व्याख्याविभूषितः

—०—

अथ ग्रन्थोपक्रमः

नमामि भास्वत्पदपङ्कजं तन्मौलौ विधायाञ्जलिमादरेण ॥
क्षीराब्धिजावासनिकेतनं यद्विष्णवीश्वरात्मप्रभवस्वरूपम् ॥ १ ॥

टीकाकर्तृकमङ्गलाचरणम्—

विघ्नेश्वरं नौमि सुरैरपीड्यं सरस्वतीं चापि सुबुद्धिदात्रीम् ।
विश्वेश्वरं योगिवरं महेशं गुरूंश्च मान्यान् विनयेन भक्त्या ॥
यन्नीलकण्ठेन कृतः प्रतिष्ठा-मयूखसंज्ञस्तमधीत्य कांक्षे ।
भाषानुवादेन सुरप्रतिष्ठां समेधितुञ्चैव कुलप्रतिष्ठाम् ॥

लक्ष्मी के निवास-स्थल तथा विष्णु, शिव और ब्रह्मा स्वरूप भगवान् सूर्य के चरणकमलों को सादर शिर से हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

महोमहत्समाराध्य जलोत्सर्गमथोक्तवान् ।
प्रतिष्ठां सर्वदेवानां नीलकण्ठो वदत्यसौ ॥ २ ॥

महान् महोत्सव के समाराधनपूर्वक जलोत्सर्गविधि (अर्थात् उत्सर्ग मयूख) का प्रतिपादन करके मैं नीलकण्ठ सर्वदेवप्रतिष्ठा का निरूपण करता हूँ ॥ २ ॥

जज्ञ पितामहतनोः खलु कश्यपो यस्-
तस्मादजायत मुनिस्तु विभाण्डकाख्यः ।
तं पुत्रिणां धुरमरोपयदृष्यशृङ्गस्-
तस्यान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवराभिधानः ॥ ३ ॥

ब्रह्मा के कश्यप नामक पुत्र थे। उनके [वंश में] विभाण्डक नामक मुनि हुए, जो ऋष्यशृङ्ग जैसे पुत्र को प्राप्त करके पुत्रवान् व्यक्तियों में अग्रगण्य बने थे। उस ऋष्यशृङ्ग के वंश में शृङ्गिवर का जन्म हुआ ॥ ३ ॥

तस्मिन्वंशे महति वितते संगराख्ये नृपाणां
राजा कर्णः समजनि यथा सागरे शीतरश्मिः ।
कीर्त्या यस्य प्रथिततरया श्रोत्रजातेऽभिपूर्णे
कर्णस्यापि प्रथिततकथा नावकाशं लभन्ते ॥ ४ ॥

सागर में चन्द्रमा के समान राजाओं के संगर (सेंगर) नामक महान् और विस्तृत वंश में राजा कर्ण का जन्म हुआ था, जिसकी अति विश्रुत कीर्ति कानों में भर जाने पर राजा कर्ण की प्रसिद्ध कथा सुनने के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता ॥ ४ ॥

विशोकाख्यदेवस्ततस्तत्सुतोऽभूद्विशोकीकृता येन सर्वा धरित्री ।
ततोऽप्यास राजाऽस्तशत्रुस्ततोऽभूद्रयाख्यो रयेणैव सर्वाहितघ्नः ॥५॥

उसका पुत्र विशोकदेव था, जिसने समस्त पृथ्वी को शोकरहित बना दिया था। तत्पश्चात् अस्तशत्रु और उसके बाद रय नामक राजा हुआ, जिसने वेग से समस्त शत्रुओं को नष्ट कर दिया था ॥ ५ ॥

बभूवाथ वैराटराजस्ततोऽभून्नृपो मेदिनीवल्लभो बोढराजः ।
ततो ब्रह्मदेवस्ततो मन्युदेवस्ततोऽभून्नृपश्चन्द्रपालाभिधानः ॥ ६ ॥

उसके बाद वैराट, फिर बोढराज, तब ब्रह्मदेव, तदनन्तर मन्युदेव और तत्पश्चात् चन्द्रपाल नामक राजा हुआ था ॥ ६ ॥

शिवगणाख्यनृपः समजन्यथो शिवगणाख्यपुरं प्रचकार यः ।
शिवगुणेन समः सकलैर्गुणैः शिवशिव प्रथमो गणनासु यः ॥ ७ ॥

तदनन्तर शिवगण नामक राजा हुआ, जिसने शिवगण नामक पुर बसाया और जो अपने सब गुणों से शिव के समान था तथा जिसकी गणना शिव-शिव कहते हुए सर्वप्रथम की जाती थी ॥ ७ ॥

रोलिचन्द्र इति तत्तनयोऽभूत्कर्मसेननृपतिस्तमथानु ।
लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजातः ॥ ८ ॥

उसका पुत्र रोलिचन्द्र था। उसके बाद कर्मसेन राजा बना। उसका पुत्र लोकरक्षक नरहरि (= मानवेश्वर) राजा रामचन्द्र था ॥ ८ ॥

यशोदेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्ततः ।
चक्रसेनस्ततो राजा रार्जसिहनृपो यतः ॥ ९ ॥

उसके बाद यशोदेव और तब ताराचन्द्र राजा बना। तदनन्तर चक्रसेन राजा हुआ था, जिसका पुत्र राजा रार्जसिह् था ॥ ९ ॥

ततोऽप्यभूद्भूपतिः साहिदेवः स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धसिन्धुः ।
अभूत्ततः श्रीभगवन्तदेवः सदैव भाग्योदयवान्क्षितीशः ॥ १० ॥

तब साहिदेव राजा बना, जिसकी धवलकीर्ति से क्षीरसागर की धवलिमा भी फीकी पड़ गयी थी। उसका पुत्र राजा भगवन्तदेव हुआ, जिसका भाग्योदय सदैव बना रहा ॥ १० ॥

यद्दानद्रविणादिनिर्जितवपू रत्नाचलो लज्जया
दूरे स्तब्ध इलावृते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः ।
किञ्च त्रस्यदरातिवामनयनानेत्राम्बुभिर्वर्धित
तेजोऽग्निर्वडवामुखोत्थहुतभुक्तुल्यः कथं नो भवेत् ॥ ११ ॥

उस राजा (भगवन्तदेव) के द्वारा दान में दी गयी धनराशि से तिरस्कृत स्वरूप वाला रत्नाचल (सुमेरु) लज्जावश मनुष्यों की पहुँच से दूर इलावृत्त में निःस्तब्ध होकर स्थित है और भयभीत शत्रुओं की वामाङ्गनाओं के नेत्रों के आंसुओं से बढ़ा हुआ उस राजा का तेज-रूप अग्नि वडवानल के तुल्य क्यों न हो ? ॥ ११ ॥

आज्ञप्तस्तेन राज्ञा विबुधकुलमणिर्दाक्षिणात्यावतंसो
भट्टश्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृढमतिर्जैमिनीयेऽद्वितीयः ।
आज्ञामादाय मूर्ध्ना सविनयममुना तस्य सर्वान्निबन्धान्
दृष्ट्वा सम्यग्विविच्य प्रविततकिरणस्तन्यते भास्करोऽयम् ॥ १२ ॥

उस राजा (भगवन्तदेव) के द्वारा आदिष्ट होने पर विद्वत्कुल-शिरोमणि, स्मृतियों में निष्णात, मीमांसाशास्त्र में अद्वितीय विद्वान् दाक्षिणात्य श्रीनीलकण्ठ ने उसकी आज्ञा को सविनय शिरसे स्वीकार करके तथा सभी निबन्धों को देखकर और उनका परिशीलन करके इस विस्तृत किरणों (मयूखों) वाले भास्कर (भगवन्त भास्कर) संज्ञक ग्रन्थ की रचना की है ॥ १२ ॥

प्रतारकैरादृतमत्र किञ्चिन्मया तु निर्मूलतया तदुज्झितम् ।
ऊनोक्तिताऽतो न हि तेन काचित् खपुष्पहोनाऽपचितिर्न होयते ॥१३॥

धूर्तों-ठगों के द्वारा समादृत अनेक बातों को, उनके निराधार होने के कारण मैंने त्याग दिया है। उनको छाँट देने पर भी इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु में कोई न्यूनता नहीं आती। आकाशकुसुम के बिना पूजा में कोई कमी नहीं आती ॥ १३ ॥

संस्काराचारकालाः समुचितरचनाः श्राद्धनीती विवादो
दानोत्सर्गप्रतिष्ठा जगति जयकराः सङ्गतार्थानुबद्धाः ।
प्रायश्चित्तं विशुद्धिस्तदनु निगदिता शान्तिरेवं क्रमेण
ख्याता ग्रन्थेऽत्र शुद्धे बुधजनसुखदा द्वादशैते मयूखाः ॥ १४ ॥

इस निबन्धग्रन्थ में समुचित रचना वाले (१) संस्कार, (२) आचार, (३) काल, (४) श्राद्ध, (५) नीति, (६) विवाद, (७) दान, (८) उत्सर्ग, (९) प्रतिष्ठा, (१०) प्रायश्चित, (११) शुद्धि और (१२) शान्ति संज्ञक जगत् में जय-प्रद, संगत अर्थ वाले, पण्डित जनों के सुखद द्वादश मयूखों को क्रमशः निबन्धित किया गया है ॥ १४ ॥

भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिञ्छिष्टसम्मते च ततः ।
प्रतिष्ठाविधिमयूखः प्रतन्यते नीलकण्ठेन ॥ १५ ॥

भगवन्त भास्कर संज्ञक इस शिष्टजन-सम्मत ग्रन्थ के उत्सर्ग मयूख के अनन्तर प्रतिष्ठाविधिमयूख का निबन्धन नीलकण्ठ के द्वारा किया जा रहा है ॥ १५ ॥

[प्रतिष्ठाकालनिरूपणम्]

तत्र तत्काला विष्णुधर्मोत्तरे[1]—

चैत्रे वा फाल्गुने वाऽपि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघे[3] वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा सिते[2] ।
रिक्तान्यतिथिषु स्यात्सा वारे भौमान्यके तथा ॥ इति ॥

प्रतिष्ठा के काल विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहे गये हैं—

चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख और माघ मास में, शुक्लपक्ष[4] में, रिक्ता को छोड़कर अन्य तिथियों में तथा भौम (मंगल) के अतिरिक्त सभी वारों में सभी देवताओं की प्रतिष्ठा शुभावह होती है।

तत्रैव—आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥
हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा ।
अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते[5] ॥ इति ॥

दोनों आषाढा (पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा), मूल, तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा तथा उत्तराभाद्रपद), ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा

---

१. यह श्लोक विष्णुधर्मोत्तर के किस संस्करण में है—विचारणीय है।

२. तु०—मत्स्य २६४।३—इसमें 'सिते' के स्थान पर 'भवेत्' पाठ है।

३. विष्णुप्रतिष्ठा माघ मास में नहीं होती। इस विषय में ये वचन प्रमाण हैं—'माघे कर्तुर्विनाशः स्यात् फाल्गुने शुभदा भवेत्' हेमाद्रिः के अनुसार यह विष्णुधर्मोत्तर का वचन है। —द्र० निर्णयसिन्धु, पृ० २३९

४. 'त्रिविक्रमस्तु—कृष्णपक्षत्रिभागे तु प्रथमे स्याच्छुभावहा। मध्या द्वितीयभागेन तृतीये कर्तुनाशिनी। शुक्ले त्रिभागे प्रथमे देशनाशाय कीर्तिता। द्वितीये मध्यफलदा तृतीये शुभावहेति। विष्णुधर्मोत्तरे सितेत्यनेन पुष्टचन्द्रास्तिथय उच्यन्ते।' द्र०—प्रतिष्ठामयूखः, पं० दौलतराम गौड़ सम्पादित, पृ० १०।

५. द्र०—मत्स्य २६४।६–७।

अनुराधा तथा स्वाति नक्षत्रों को प्रतिष्ठा के लिए प्रशस्त बतलाया गया है।

अषाढे द्वे इत्यनेनैवोत्तराषाढाप्राप्तावप्युत्तरात्रयपदमुत्तराफाल्गुन्युत्तराभाद्रपदयोरर्थवत्।

विष्णुधर्मोत्तर के इन वचनों में दोनों आषाढा कहने से उत्तराषाढा का बोध हो जाता है। अतः उत्तरात्रय शब्द से [इसका बोध अपेक्षित नहीं, अपितु] उत्तराफाल्गुनी तथा उत्तराभाद्रपद का बोध ही अपेक्षित है।

नारसिंहे—तथा महाश्विनो मास उत्तमः सर्वकामदः।
देवी तत्र सदा शक्र पांसुनाऽपि प्रतिष्ठिता॥
भवने फलदा पुंसां कर्कस्थे च वृषस्थिते।
न तिथिर्न न नक्षत्रं नापि वारोऽत्र कारणम्॥

नारसिंह पुराण में कहा गया है कि प्रतिष्ठा हेतु आश्विन मास उत्तम और सर्वकामप्रद होता है। इस मास में प्रतिष्ठापित देवी की मृण्मयी मूर्ति भी घर में शुभ फल देती है। सूर्य के कर्क राशि में स्थित होने पर (श्रावण में) और वृषराशि में स्थित होने पर (ज्येष्ठ मास में) प्रतिष्ठा हेतु तिथि, नक्षत्र और वार का कोई विचार अपेक्षित नहीं होता।

मातृ[1]-भैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः।
महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने[2]॥

माता (देवी), भैरव, वाराह, नृसिंह, वामन तथा महिषासुरमर्दिनी की स्थापना दक्षिणायन में करनी चाहिए।

वर्ज्यनिषेधः—
आर्द्रादिके स्वातिविरामकाले नक्षत्रवृन्दे दशके स्थितेऽर्के।
विवाहचौलव्रतबन्धदीक्षासुरप्रतिष्ठादि न कार्यमेव॥ इति।

१. क्वचित् मातृभैरव इत्यत्र देवभैरव इत्यपि पाठो वर्तते।
२. निर्णयसिन्धु (पृ० २४०) के अनुसार यह वैखानस का वचन है।

कहीं इसका निषेध भी है। यथा—

सूर्य के आर्द्रा से लेकर स्वाति पर्यन्त दश नक्षत्रों[1] में अवस्थित होने पर विवाह, चौल (चूडाकर), व्रतबन्ध (उपनयन), दीक्षा, देव प्रतिष्ठा आदि शुभ कर्म नही करने चाहिए।

[अथ संक्षेपेण प्रतिष्ठासामग्री निर्देशः]

अर्कादिग्रहसमिधां प्रत्येकमष्टशतं संक्षेपपक्षे आज्यचर्वादि लोकपालादियागाय पलाशादिसमिधां प्रत्येकमष्टसहस्रमष्टशतं वा पुष्पमालाः कुङ्कुमं कर्पूरः कस्तूरी चन्दनं गुग्गुलु धूपदहनं आरार्तिक्यं घण्टा पादुका दर्पणं बलिसामग्री पायसभक्ष्यभोज्यनैवेद्यं होमार्थमाज्यतिलयवाक्षतफलादिकं प्रतिकुण्डं विष्टराश्चत्वारः प्रतिकुण्डं स्रुक्स्रुवौ आसनानि त्रिसूत्री श्वेतोर्णासूत्रं सर्वतोभद्रादिरचनार्थं श्वेतरक्तपीतनीलकृष्णवर्णकाः स्नपनकलशाः पञ्चपल्लवाः कदलीस्तम्भाः पताका दश ध्वजाश्च दश तेषां वेणुदण्डाः।

संक्षेप में प्रतिष्ठा सामग्री का निर्देश—

सूर्य आदि नवग्रहों के याग के लिए अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, उदुम्बर, शमी, दूर्वा और कुशा में से प्रत्येक की एक सौ आठ प्रादेशमात्र (दश अंगुल) लम्बी समिधाएँ और यदि ग्रहयाग संक्षेप में करना हो तो आज्य (घृत), चरु आदि, लोकपाल आदि के याग हेतु पलाश आदि प्रत्येक की एक हजार आठ या एक सौ आठ समिधाएँ, पुष्प, माला, कुङ्कुम (रोली), कपूर, कस्तूरी, चन्दन, गुग्गुल, धूप, धूपपात्र, आरती-पात्र, घण्टा, पादुका, दर्पण, बलि-सामग्री, खीर, भक्ष्य भोज्यान्न युक्त नैवेद्य, होम के लिए आज्य, तिल, यव, अक्षत, फल आदि, प्रत्येक कुण्ड के लिए चार विष्टर, प्रत्येक कुण्ड के लिए स्रुक्,

१. आर्द्रा से स्वाति पर्यन्त दश नक्षत्र हैं— (१) आर्द्रा, (२) पुनर्वसु, (३) पुष्य, (४) आश्लेषा, (५) मघा, (६) पूर्वाफाल्गुनी, (७) उत्तराफाल्गुनी, (८) हस्त, (९) चित्रा और (१०) स्वाति।

सुवा आदि, सबके लिए आसन, त्रिसूत्री, सफेद ऊन का सूत्र, सर्वतोभद्र आदि की रचना हेतु सफेद, लाल, पीला, नीला और काला रंग का चूर्ण, स्नान कराने के लिए कलशे, पञ्चपल्लव, कदलीस्तम्भ, दश पताकाएँ, दश ध्वजाएँ और पतकाओं तथा ध्वजों को टाँगने के लिए उतने ही बाँस के डण्डे।

[रत्नाष्टकम्]

वज्रमौक्तिकवैडूर्यशङ्खस्फटिकपुष्परागेन्द्रनीलमहानीला इति रत्नाष्टकम् ।

रत्नाष्टक—

हीरा, मोती, वैडूर्य (बिल्लौर), शङ्ख, स्फटिक, पुखराज, इन्द्रनील (नीलम) और महानील—ये रत्नाष्टक हैं।

[हरितालादिधात्वष्टकम्]

हरितालकमनःशिलाभ्रककृष्णाञ्जनमाक्षिकसीसस्वर्णमाक्षिक — गरिका-इति धात्वष्टकम् ।

हरितालादि आठ धातुएँ—

हरिताल, मैनसिल, अभ्रक, कृष्णाञ्जन, माक्षिक, सीसा, सुवर्णमाक्षिक[1] और गेरु—ये आठ धातु हैं।

[बीजाष्टकम्]

तिलयवमुद्गगोधूमनीवारश्यामाकसर्षपव्रीहय इति बीजाष्टकम् ।

आठ बीज—

तिल, जौ, मूँग, गेहूँ, नीवार, श्यामाक (साँवा), पीली सरसों और धान ये बीजाष्टक हैं।

[सुवर्णादिधात्वष्टकम्]

सुवर्णरजतताम्रलोहत्रपुसीसरङ्गरीत्याख्यं धात्वष्टकम् ।

अष्टधातु—

सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, काँसा या टिन (त्रपु), सीसा, राँगा

१. कृष्णाञ्जन, माक्षिक तथा सुवर्णमाक्षिक—ये खनिज धातुओं के नाम हैं।

और पीतल को अष्ट धातुओं में गिना गया है।

[पात्रादिकथनम्]

मधुपर्कपात्रं, सौवर्णं वा ताम्रं वा अर्घपात्रं, शक्त्यैकद्वित्रिमासु-वर्णशलाका, स्थापनीयकलशरत्नानि षोडश, द्वारकलशा अष्टौ, लोकपालकलशा, वेदिकलशाश्चत्वारो, वास्तुमण्डलकलशाः, कुण्डकलशाः कुण्डसंख्यया, निद्राकलशाः, स्नपनकलशाः पञ्चचत्वारिंशत्, कलशसंख्यया शरावाणि, धारासहस्रान्वितो कलशो ।

पात्र आदि सामग्री—

मधुपर्कपात्र, सोने या ताँबे का अर्घपात्र, आर्थिक क्षमता के अनुसार एक या दो अथवा तीन मासे सोने की शलाका, सोलह स्थापनीय कलश-रत्न, द्वारों के लिए आठ कलश, लोकपाल कलश, वेदी के लिए चार कलश, वास्तुमण्डल कलश, कुण्डों की सख्या के अनुसार कुण्डकलश, निद्राकलश, स्नपन कलश पैंतालीस, कलशों की संख्यानुसार सकोरे, दो सहस्रधारा कलश।

[सप्तमृदः]

गजाश्वस्थानवल्मीकसङ्गमनदीकूलद्वयवराहोत्खातराजद्वारमृदो

सप्तमृत्तिका—

हाथी के स्थान, अश्व-स्थान, वल्मीक (दीमक का टीला), दो नदियों के सङ्गम, नदी के दोनों तट, वराह द्वारा खोदे गये गड्ढे तथा राजद्वार की मिट्टी।

[सर्वौषधीः]

मुरामांसीवचाकुष्ठशैलेयहरिद्रादारुहरिद्रासटीचम्पकमुस्ता इति दश सर्वौषध्यः ।

सर्वौषधी—

मुरा, मांसी, वचा, कुष्ठ, शैलेय, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, सटी, चम्पक और मुस्ता—ये दश सर्वौषधी हैं।

[पञ्चगव्यम्]

पञ्चगव्यं पृथक् पृथक् ।

पञ्चगव्य—

पञ्चगव्य की पृथक् पृथक् वस्तुएँ यथा—दूध, दही, घृत, मधु और शर्करा ।

[सप्तधान्यानि]

व्रीहितिलयवगोधूमनीवारश्यामाकमुद्गा इति सप्त-धान्यानि ॥

सप्तधान्य—

धान, तिल, जौ, गेहूँ, नीवार, श्यामाक और मूँग—ये सात धान्य ।

[शय्यादिकं, वस्त्राणि च]

प्रतिमार्थं शय्या सोपस्करा श्वेतवस्त्रं चामरं विचित्रवितानं त्रयो दुकूलपट्टा ऋत्विग्वरणसामग्री शिल्पिदवस्त्रयुगमित्यादिसम्पादित-सम्भारो—

शय्या आदि और वस्त्र—

प्रतिमा के लिए बिछौना, ओढ़ना आदि सहित शय्या, सफेद वस्त्र, चँवर, रंग-बिरंगा चँदोवा, तीन रेशमी दुपट्टे, ऋत्विजों के वरण की सामग्री, शिल्पी को देने के लिए एक जोड़ा वस्त्र। इत्यादि सामग्री को यजमान [प्रतिष्ठाकर्म के पूर्व] तैयार रखे ।

[मण्डपवेद्यादिनिर्माणं, तत्रप्रतिमास्थापनम्]

मूर्तिप्रतिष्ठादिनात्प्राक्सप्तमदिने पञ्चमदिने तृतीयदिने द्वितीयदिने सद्यो वा प्रासादाग्रे उत्तरे पूर्वे वा षोडश-द्वादश-दश-हस्तं वा मण्डपं कृत्वा तन्मध्ये चतुरस्रां सप्तहस्तां पञ्चहस्तां चतुर्हस्तां वा हस्तोच्छ्रितां वेदिं मण्डपोत्तरे तदर्द्धेन तृतीयभागेन चतुर्थेन वा भागेन चतुर्द्वारं स्नानमण्डपं तत्र वेदिकात्रयं च कृत्वा शिल्पस्थानात्प्रासादप्रादक्षिण्येन देवं तत्रानीयासने निधाय—

मण्डप और वेदी आदि का निर्माण—

मूर्ति की प्रतिष्ठा के दिन से सात या पाँच या तीन या दो दिन पूर्व अथवा उसी दिन प्रासाद (देवालय) के सामने या उत्तर में या पूर्व में सोलह या बारह या दश हाथ लम्बाई और चौड़ाई वाले मण्डप का निर्माण करा के उसके मध्य में सात या पाँच या चार हाथ की चतुरस्र (चौकोर) और एक हाथ ऊँची वेदी बनवाकर तथा मण्डप के उत्तर में उसके आधे, तिहाई या चौथाई भाग के बराबर स्नानमण्डप, जिसमें चार द्वार हों, बनवाकर उसमें तीन वेदियों का निर्माण करवाये ।

प्रतिमा का मण्डप में आनयन—

शिल्पी के स्थान से देव प्रतिमा को प्रासाद (देवालय) की प्रदक्षिणा कराते हुए मण्डप में लाकर आसन में रखे ।

[प्रधान संकल्पः]

आचान्तः प्राणानायम्य मासाद्युल्लिख्य 'अस्यां मूर्तौ लिङ्गे वा देवकलासान्निध्यार्थमायुःश्रीसर्वफलाक्षय्यसुखकाम ईश्वरप्रीतिकामो वाऽमुकमूर्तेः लिङ्गस्य वा प्रतिष्ठां करिष्ये' इति सङ्कल्प्य—[1]

प्रधान संकल्प—

आचमन और प्राणायाम करके हाथ में संकल्प हेतु जल लेकर देश कालादि के उच्चारण पूर्वक "अस्यां मूर्तौ लिङ्गे वा ... ... प्रतिष्ठां करिष्ये" ऐसा संकल्प करे ।

[गणपतिपूजनं, पुण्याहवाचनं, नान्दीश्राद्धश्च]

गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं कृत्वा—

प्रतिमायागसिद्ध्यर्थं श्राद्धमेतत्सुदुर्लभम् ।
यजनायात्मनः शक्यं करिष्ये मातृपूर्वकम् ॥

इति मन्त्रमुक्त्वा मातृपूजनं नान्दी श्राद्धं च कृत्वा

---

१. अस्यां मूर्तौ लिङ्गे वा देवस्य सान्निध्यार्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकाम समृध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकप्रतिष्ठां करिष्ये । —निर्णयसिन्धु ।

गणपति पूजन पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध—

तब गणपतिपूजन तथा पुण्याहवाचन करके 'प्रतिमायागसिद्ध्यर्थं०' (अर्थात् प्रतिमा प्रतिष्ठा के अङ्गभूत याग की सिद्धि हेतु मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार मातृकापूजनपूर्वक यह दुर्लभ नान्दीश्राद्ध करता हूँ) इस मन्त्र को पढ़कर मातृकापूजन तथा नान्दीश्राद्ध करे।

[आचार्य ऋत्विगादिवरणम्]

आचार्यं वृत्वा द्वात्रिंशत्षोडशाष्टौ चतुरो वा ऋत्विजोऽष्टौ चतुरो वा द्वारपालान् वृत्वा तान्सम्पूजयेन्मधुपर्कादिना। सदस्यवरणमप्यत्रेति त्रिविक्रमादयः।

ततः—

मन्त्रमूर्तिर्भवान्नाथ संसारोच्छेदकारकः।
देवः पूजार्हो यथा स्यात्कुरु धर्मोद्गतिं च नः॥
संसारभयभीतेन अयं यज्ञः सुभक्तितः।
प्रारब्धस्त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं मे भवत्विति॥ आचार्यं प्रार्थ्य

आचार्य और ऋत्विजों का वरण—

आचार्य का वरण करके बतीस या सोलह या आठ या चार ऋत्विजों तथा आठ या चार द्वारपालों का वरण करके मधुपर्क आदि से उनकी पूजा करे। त्रिविक्रम आदि निबन्धकारों के मत से ऋत्विजों के साथ ही सदस्यों का भी वरण करना चाहिए।

आचार्य की प्रार्थना—

तदनन्तर 'मन्त्रमूर्तिर्भवान्नाथ०' (अर्थात्—हे प्रभो आप मन्त्रमूर्ति तथा सांसारिकबन्धन को काटने वाले हैं। आप हमारे धर्म-वृद्धि हेतु ऐसा अनुग्रह कीजिए, जिससे कि देव-प्रतिमा पूजा योग्य हो। संसार से भयभीत होकर मैंने भक्तिपूर्वक यह प्रतिष्ठा-यज्ञ प्रारम्भ किया है। आपकी कृपा से यह निर्विघ्न सम्पन्न हो।) इस मन्त्र से आचार्य की प्रार्थना करे।

[मण्डपप्रवेशः]

सतूर्यघोषं सपरिकरः सम्पूर्णकुम्भो 'भद्रं कर्णेभिः' इति मन्त्रेण

महामण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण प्रविशेत्।

मण्डप-प्रवेश—

तब [शंख] तूर्य आदि मांगलिक वाद्य-घोष के साथ परिजनों तथा नौकर चाकर आदि सहित जलपूर्ण कलश को लेकर 'भद्रं कर्णेभिः०'[1] इस मन्त्र को पढ़ते हुए महामण्डप[2] की प्रदक्षिणा करके पश्चिम द्वार से उसमें प्रवेश करे।

[भूतोत्सादनम्]

तत्राचार्यः—

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे॥

इत्युक्त्वा तत्र सर्षपान्विकीर्य 'देवा आयान्तु यातुधाना अपयान्तु विष्णो देवयजनं रक्षस्व' इति रक्षां कृत्वा।

भूतोत्सादन—

वहाँ पर आचार्य 'अपक्रामन्तु भूतानि०'... (अर्थात्—यज्ञमण्डप तथा इसके समीप सभी दिशाओं में स्थित भूत, पिशाच आदि प्राणी दूर हट जांय। मैं सभी प्राणियों से विरोध रहित होकर यह ब्रह्म-कर्म प्रारम्भ करता हूँ) इस मन्त्र को पढ़कर चारों ओर सरसों फेंकते हुए 'देवा आयान्तु यातुधाना अपयान्तु विष्णो देवयजनं रक्षस्व' (अर्थात् देवों का आगमन हो, भूत-पिशाच आदि दूर हटें, हे विष्णो! आप यज्ञभूमि की रक्षा करें) ऐसा कहते हुए दिग्रक्षण करे।

[षोडशस्थूणार्चनम्]

वेदिकाग्नेयकोणे स्थूणां 'ॐ वसुदायै नमः। वसुदामावाहयामी'त्या-

---

१. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
—वाज० सं० १५।२१

२. मण्डपप्रतिष्ठां कुर्यात् न वा कुर्यात्। —निर्णयसिन्धु।

लभ्य गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् । ततः प्रादक्षिण्येन 'ॐ भद्रायै नमः । भद्रामावाहयामि ।' इति द्वितीयाम् । 'ॐ अदित्यै नमः । अदितिमावाहयामि' । इति तृतीयाम् । 'ॐ नन्दायै नमः । नन्दामावाहयामि' । इति चतुर्थीम् ।

मण्डपाग्नेयकोणे—'ॐ भूत्यै नमः । भूतिमावाहयामि' । इति प्रथमाम् । ततः प्रादक्षिण्येन—'ॐ सरस्वत्यै नमः । सरस्वतीमावाहयामि । ॐ पूर्वसन्ध्यायै नमः । पूर्वसन्ध्यामावाहयामि । ॐ मध्य[म]सन्ध्यायै नमः । मध्य[म]सन्ध्यामावाहयामि । ॐ पश्चिमसन्ध्यायै नमः । पश्चिमसंध्यामावाहयामि । ॐ गायत्र्यै नमः । गायत्रीमावाहयामि । ॐ सावित्र्यै नमः । सावित्रीमावाहयामि । ॐ बृहत्यै[1] नमः । बृहतीमावाहयामि । ॐ अदित्यै नमः[2] । अदितिमावाहयामि । ॐ विततायै नमः । विततामावाहयामि । ॐ पौर्णमास्यै नमः, पौर्णमासीमावाहयामि । ॐ सिनीवाल्यै नमः । सिनीवालीमावाहयामि' । इति षोडश स्थूणाः स्पृष्ट्वा पूजयेत् ।

षोडश-स्तम्भ पूजन—

वेदिका के आग्नेय कोण के स्तम्भ का स्पर्श करके 'ॐ वसुदायै नमः । वसुदामावाहयामि, स्थापयामि'—कहते हुए आवाहन स्थापन करके गन्ध पुष्प आदि से पूजन करे । तब प्रादक्षिण्य क्रम से दूसरे—नैर्ऋत कोणस्थ स्तम्भ का 'ॐ भद्रायै नमः । भद्रामावाहयामि, स्थापयामि' कहकर तीसरे (वायव्य कोणस्थ) स्तम्भ का 'ॐ अदित्यै नमः । अदितिमावाहयामि, स्थापयामि' और चौथे (ईशान कोणस्थ) स्तम्भ का 'ॐ नन्दायै नमः । नन्दामावाहयामि, स्थापयामि' कहकर गन्ध पुष्पादि से पूजन करे ।

तब मण्डप के आग्नेय कोणस्थ स्तम्भ का स्पर्श करके 'ॐ भूत्यै नमः । भूतिमावाहयामि, स्थापयामि' कहकर पूजन करे । इसी

१. 'बृहस्पत्यै' पाठ इस प्रसङ्ग मे उचित नहीं लगता ।
२. अदिति का पूजन वेदी और मण्डप दोनों के स्तम्भों में विहित है ।

तरह शेष स्तम्भों का भी प्रादक्षिण्यक्रम से क्रमशः स्पर्श करके उनमें सरस्वती, पूर्वसन्ध्या, मध्यमसन्ध्या, पश्चिमसन्ध्या, गायत्री, सावित्री, बृहती, अदिति, वितता, पौर्णमासी और सिनीवाली का आवाहन-स्थापन करते हुए गन्ध-पुष्पादि से पूजन करे ।

[बलिः शाखोद्बन्धनपूजनञ्च]

'नागमात्रे नमः ।'[1] इति बलिः कार्यः । 'सर्पेभ्यो नमः' । इति शाखोद्बन्धनानि पूजयेत् ।

बलि तथा शाखोद्बन्धनादि पूजन—

तब 'नागमात्रे नमः' (नागमाता को नमस्कार) कहते हुए बलि दे और 'सर्पेभ्यो नमः' (सर्पों को नमस्कार) कहते हुए शाखाओं के उद्बन्धनों (ग्रन्थियों) की [गन्ध-पुष्पादि से] पूजा करे ।

[द्वार-तोरणादिपूजनं द्वारपालजपविधानञ्च]

ततः पश्चिमद्वारेण निर्गत्य पूर्वादिगाविद्वारतोरणपूजामारभेत् । तत्र प्राच्यां 'सुदृढतोरणाय नमः । आश्वत्थतोरणैनं यज्ञं रक्ष सर्वविघ्नान्निवारये'ति पूजयेत् । अथ त्रिशूलश‍ृङ्गेषु प्रादक्षिण्येनेन्द्रं धातारं भगमित्यादित्यन्यासं कुर्यात् । द्वारशाखयोर्ध्रुवमध्वरं चेति वसुद्वयमर्चयेत् । शाखामूलस्थयोर्धान्यराशयोरुपरि रत्नगर्भौ प्रशान्तशिशिरनामानौ कलशौ प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् । ततो द्वारदेशे इन्द्रमावाह्य संपूज्य नमस्कृत्य 'इन्द्रा याहि चित्रभानो०' इति पीतां पताकां ध्वजं चालभ्य 'त्रातारमिन्द्रं०' इति तां तोरणोपरि निबध्यात् । 'इन्द्र आ०' इति इन्द्राय घृतौदनबलिदानम् । 'अग्निमीडे०' इत्यृग्वेदं पूजयेत् ।

द्वारतोरणादि की पूजन तथा द्वारपाल जपविधान—

तब पश्चिम द्वार से बाहर निकलकर मण्डप के प्रादक्षिण्य क्रम से पूर्वादि दिशाओं के द्वारतोरण आदि की पूजा प्रारम्भ करे । सर्वप्रथम पूर्व के द्वारतोरण का स्पर्श करते हुए 'सुदृढतोरणाय नमः । आश्वत्थतोरण ! एनं यज्ञं रक्ष । सर्वविघ्नान् निवारय' (सुदृढ

१. 'नागमात्रे नमः' इत्यनेन स्तम्भशिरसि,बलिकासु पूजनं विधीयते पद्धतिषु ।

तोरण को नमस्कार। हे अश्वत्थ [पीपल] निर्मित तोरण! इस यज्ञ की रक्षा करो। सभी विघ्नों को दूर करो)—ऐसा कह कर गन्ध पुष्प से पूजा करे। तब त्रिशूल के तीनों शृङ्गों (नोकों) में प्रादक्षिण्यक्रम से इन्द्र, धाता और भग नामक आदित्यों का (इन्द्राय नमः, धात्रे नमः, भगाय नमः कहते हुए आवाहन और) न्यास (करके पूजन) करे। द्वार की शाखाओं में ध्रुव तथा अध्वर नामक दो वसुओं की नाम-मन्त्र (ध्रुवाय नमः, अध्वराय नमः) से पूजा करे। द्वार की दोनों शाखाओं के मूल में धान्य राशि के ऊपर स्थापित प्रशान्त और शिशिर नामक कलशों (जिनके अन्दर रत्न आदि डाले हों) की प्रतिष्ठा करके नाममन्त्र (ॐ प्रशान्ताय नमः ॐ शिशिराय नमः) से पूजा करे। तब द्वारदेश में इन्द्र का आवाहन और पूजन (संक्षेप पक्ष में नाममन्त्र से) करके, नमस्कार करके 'इन्द्रा याहि चित्रभानो०'[१] इस मन्त्र से पीली पताका तथा ध्वज का स्पर्श करके 'त्रातारमिन्द्रम्०'[२] इस मन्त्र से उनको तोरण के ऊपर फहराये। 'इन्द्रं वो०'[३] इस मन्त्र से इन्द्र को घृत और ओदन (भात) की बलि दे।

तब 'अग्निमीडे'[४] इस मन्त्र से ऋग्वेद (ऋग्वेदी) की पूजा करे। ऋग्वेदी ब्राह्मण में कमल के पत्ते की तरह नेत्र वाले, गायत्री स्वरूप,

---

१. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः। —ऋ० १।३।४

२. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्तिनो मघवा धात्विन्द्रः॥ —ऋ० ६।४७।११

३. इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम्॥ —ऋ० ६।२९।१

४. अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। —ऋ० १।१।१

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः।
अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव॥ इति ध्यानम्।

सोमदेवता वाले तथा अत्रि गोत्र वाले ऋग्वेद के स्वरूप का ध्यान करके यह प्रार्थना करे कि हे विप्र आप मेरे यज्ञ में ऋत्विक् बनें।

तत्र—

श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम्।
पौरुषं रुद्रसूक्तं च वामदेव्यं तथैव च॥ इति द्वारपालजपः।

पूर्व दिशा के द्वार में द्वारपाल (ऋग्वेदी विप्र) श्रीसूक्त[१], पावमानसूक्त[२], सोमसूक्त[३], सुमङ्गलसूक्त[४], पुरुषसूक्त[५], रुद्रसूक्त[६] तथा वामदेवसूक्त[७], का जप (पाठ) करे।

अथाग्नेयकोणे 'अग्नये नमः'। इत्यग्निमावाह्य पूजयेत्। 'अग्न आ याहि०' इति रक्तध्वजपताकालम्भः। 'त्वं नो अग्ने०' इति पताकोच्छ्रयः। 'अग्निं दूतम्०' इति घृतौदनबलिः।

आग्नेय कोण में 'ॐ अग्नये नमः' इस नाममन्त्र से अग्नि का आवाहन और पूजन करे। 'अग्न आ याहि०'[८] इस मन्त्र से लाल रंग की ध्वजा और पताका का स्पर्श करे। 'त्वं नो अग्ने०'[९] इस मन्त्र से

---

१. श्रीसूक्त—'हिरण्यवर्णां हरिणीम्०' इत्यादि–ऋ० परिशिष्ट ११।१-१६

२. पावमानसूक्त—स्वादिष्ठया मदिष्ठया०'—इत्यादि ऋ० ९।१।१-१०।

३. सोमसूक्त—त्वं सोम प्रचिकेतो मनीषा० इत्यादि— ऋ० १।९१।१-२३

४. सुमङ्गलसूक्त—कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण० इत्यादि—ऋ० २।४२।१-३

५. पुरुषसूक्त—ऋ० १०।९०।१–१६

६. रुद्रसूक्त—इमा रुद्राय तवसे० इत्यादि—ऋ० १।११४।१-११

७. वामदेव्यसूक्त—कयानश्चित्र० इत्यादि—ऋ० ४।३१। १-१५।

८. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥ —ऋ० ६।१६।१०

९. त्वं नो अग्ने तव देवपायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य। त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते॥ ऋ० १।३१।१२।

ध्वजा और पताका को ऊपर उठाकर फहराये। 'अग्निं दूतम्०'[1] इस मन्त्र से घृत और ओदन (भात) की बलि प्रदान करे।

याम्येषु 'भद्रद्वारतोरणाय नमः। औदुम्बरतोरणेनं यज्ञं रक्ष सर्वविघ्नान्निवारये'ति पूजयेत्। शृङ्गेषु—'ॐ पूष्णे नमः। ॐ मित्राय नमः। ॐ वरुणाय नमः।' इत्यादिन्यासः। द्वारशाखयोः—'ॐ सोमाय नमः। ॐ अद्भ्यो नमः।' इति वसुद्वयमर्चयेत्। शाखामूलयोः—'ॐ पर्जन्याय नमः। ॐ अशोकाय नमः'—इति पर्जन्याशोकनामानौ कुम्भौ प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्।

तब मण्डप के दक्षिण द्वार में जाकर 'ॐ भद्रद्वारतोरणाय नमः। (भद्रद्वारतोरण के लिये नमस्कार) कहकर पूजा करके 'औदुम्बरतोरणेनं यज्ञं रक्ष। सर्वविघ्नान्निवारय।' (हे उदुम्बर के बने तोरण इस यज्ञ की रक्षा करो। सब विघ्नों को निवारित करो) यह प्रार्थना करे। तब द्वारोपरि त्रिशूल के तीनों शृङ्गों में प्रादक्षिण्यक्रम से 'ॐ पूष्णे नमः। ॐ मित्राय नमः। ॐ वरुणाय नमः।' कहते हुए पूषा, मित्र तथा वरुण नामक आदित्यों का न्यास और पूजन करे। तब द्वार की शाखाओं में 'ॐ सोमाय नमः। ॐ अद्भ्यो नमः।' इन नाममन्त्रों से सोम और आप् संज्ञक दो वसुओं का आवाहन और पूजन करे। द्वारशाखाओं के मूल में धान्यराशि पर स्थापित पर्जन्य और अशोक नामक दो कलशों की 'ॐ पर्जन्याय नमः। ॐ अशोकाय नमः।' इस नाममन्त्र से प्रतिष्ठा करके पूजा करे।

ततो द्वारदेशे यममावाह्य नमस्कृत्य 'यमाय सोमम्' इति श्यामध्वजपताकालम्भः। 'यमाय मधुमत्तमम्०' इति तोरणोपरि निधानं 'यमाय सोमम्०' इति माषभक्तबलिदानम्, 'इषे त्वे'ति यजुर्वेदं पूजयेत्।

तब द्वार देश में यम का ['यमाय नमः' इस नाममन्त्र] से

१. अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँ आ सादयादिह॥ —ऋ० ८।४४।३; यजु० २२।१७।

आवाहन, पूजन और नमन करके 'यमाय सोमम्०'[1] इस मन्त्र से श्याम (साँवले) रंग की ध्वजा और पताका का आलम्भन करे और 'यमाय मधुमत्तमम्०'[2] इस मन्त्र से उन्हें तोरण के ऊपर फहरावे। 'यमाय सोमम्०'[3] इस मन्त्र से उड़द और भात की बलि दे। तब 'इषे त्वोर्जे त्वा०'[4] इस मन्त्र से यजुर्वेद की पूजा करे।

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः।
काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव॥ इति ध्यानम्।

यजुर्वेदी ब्राह्मण में कातर (दीन) नेत्रों वाले, त्रिष्टुप् छन्दस्वरूप, विष्णु देवता वाले और काश्यप गोत्र वाले यजुर्वेद का ध्यान करके उससे यह प्रार्थना करे कि हे विप्र आप मेरे यज्ञ में ऋत्विक् बनें।

तत्र—

आ नो भद्रानुवाकश्च आशुःशिशानकस्तथा।
यद्वैवास्त्रीणि च पठेत्ततोऽष्टौ च पुनन्तु माम्॥

वहाँ (दक्षिण द्वार में) यजुर्वेदी ब्राह्मण 'आनो भद्राः०'[5] इत्यादि,

१. यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरं कृतः॥ ऋ० १०।१४।१३।
२. यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन। इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥ ऋ० १०।१४।१५।
३. यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छग्निदूतो अरं कृतः॥ ऋ० १०।१४।१३।
४. इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आ प्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ यजु० १।१।
५. 'आनो भद्राः (यजु० २५।१४) से लेकर 'अदितिर्जनित्वम्' (यजु० २५।२३) पर्यन्त।

'आशुः शिशानो०'[1] इत्यादि, 'यद्देवा देवहेडनं०'[2] इत्यादि तीन मन्त्रों को और तब 'पुनन्तु मा पितरः०'[3] इत्यादि आठ मन्त्रों को पढे।

अभिधा असि सप्तैव दीर्घायुस्ते ऋचं पठेत्।
आ प्यायस्व षण्मोऽस्तु सर्पेभ्यः आ कृष्णेन॥

'अभिधा असि'[4] से लेकर 'प्रचोदयात्' पर्यन्त सातमन्त्र, 'दीर्घायुस्त

---

१. आशुः शिशानो (यजु० १७।३३) से लेकर 'त्वाऽनु देवा मदन्तु (यजु० १७।४९) तक।

२. यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्व ँ हसः॥
यदि दिवा यदि नक्तमेना ँ सि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्व ँ हसः॥
यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एना ँ सि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्व ँ हसः। यजु० २०।१४-१६

३. पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै॥ अग्न आयू ँ षि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतु ँ रनु॥ यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा॥ पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा॥ उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। मां पुनीहि विश्वतः॥ वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः। तया मदन्तः सधमादेषु वय ँ स्याम पतयो रयीणाम्॥—यजु० १९।३७-४४।

४. अभिधा असि भुवनमसि यन्ताऽसि धर्ता। स त्वमग्निं वैश्वानर ँ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः॥ ३॥
स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये

ओषधे०'[1] इत्यादि एक मन्त्र, 'आ प्यायस्व समेतु०'[2] से लेकर आगे के

तेन राध्यासम्। तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि॥ ४॥
प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। यो अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्तः परः श्वा॥ ५॥
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा॥ ६॥
हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा स ँ हानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा॥ ७॥
यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा॥ ८॥
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ९॥
यजु० २२।३-९

१. दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्। अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात्॥—यजु० १२।१००

२. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे॥

छठें मन्त्र तक, ‘नमोऽस्तु सर्पेभ्यः०’[1] यह् एक मन्त्र, ‘आ कृष्णेन रजसा०’[2] यह् एक मन्त्र पढे।

नमः शंभव इत्येकामेकाग्निर्देवता क्रमात्।
त्रातार मिन्द्रामित्येकां सोमं राजानमेकया॥
अन्नपते महाँ इन्द्र ऋचं वाचं समग्रकं पठेत्।

‘नमः शम्भवाय:०’[3] यह् एक मन्त्र, ‘अग्निर्देवता०’[4] यह् एक मन्त्र, ‘त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र०’[5] यह् एक मन्त्र,

---

सं ते पया ँ सि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवा ँ स्युत्तमानि धिष्व॥
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिर ँ शुभिः।
भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे॥
आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वाङ्कामया गिरा॥
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्। अग्ने कामाय येमिरे॥
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको वि राजति॥
—यजु० १२।११२-११७

१. नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥ —यजु० १३।६
२. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ —यजु० ३३।४३; ३४।३१
३. (क) नमः शंभवे च मयोभवे च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥ —तैत्ति० सं० ४।५।८।९-११
(ख) नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥—यजु० १६।४१
४. अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥ —यजु० १४।२०।
५. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ँ हवे हवे सुहव ँ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्र ँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः॥ यजु० २०।५०

‘सोमं राजान मवसे०’[1] यह् एक मन्त्र, ‘अन्नपतेऽन्नस्य नो०’[2] यह् एक मन्त्र, ‘महाँ’ २ इन्द्रो’[3] यह् एक मन्त्र तथा ‘ऋचं वाचं प्रपद्ये०’[4] से प्रारम्भ होने वाले समस्त अध्याय का पाठ यजुर्वेदी ब्राह्मण करे।

निर्ऋतौ—‘ॐ निर्ऋतये नमः’ इति निर्ऋतिमावाह्य पूजयेत्। ‘ॐ मो षु णः परापरेति’ कृष्णध्वजपताकालम्भः। ‘ॐ असुन्वन्तम्०’ इति ध्वजपताकोच्छ्रयणम्। निर्ऋतिं संपूज्य ‘ॐ मो षु ण’ इति कृष्णव्रीह्यन्नं घृतसहितं बलिं दद्यात्।

अथ पश्चिमायाम्—‘ॐ सुभीमतोरणाय नमः—प्लक्षतोरणैनं यज्ञं रक्ष सर्वविघ्नान्निवारये’ति पूजयेत्।

मण्डप के नैर्ऋत कोण में ‘ॐ निर्ऋतये नमः’ इस नाम मन्त्र से निर्ऋति का आवाहन और पूजन करे। ‘ॐ मो षु णः परापरा०’[5] इस मन्त्र से काले रंग की ध्वजा और पताका का स्पर्श करे और ‘ॐ असुन्वन्तं०’[6] इस मन्त्र से ध्वजा और पताका को उठा कर फहराये। ‘मो षु ण इन्द्रात्र०’[7] इस मन्त्र से घृत मिश्रित काले धान

---

१. सोम ँ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे। आदित्यान्विष्णु ँ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पति ँ स्वाहा॥ —यजु० ९।२६
२. अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे। —यजु० ११ ८३
३. महाँ२ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु। हन्तु पाप्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा॥ —यजु० २६।१०
४. ‘ऋचं वाचं प्र पद्ये०’ इत्यादि —यजु० ३६।१-२४
५. मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह॥ ऋ० १।३८।६
६. असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते॥ —ऋ० १।१७६।४
७. मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः। महश्चिद्

या काले अन्न की बलि दे।

इसके बाद मण्डप के पश्चिम में बने तोरण के समीप जाकर 'ॐ सुभीमतोरणाय नमः' इस मन्त्र से पूजा करके 'प्लक्षतोरणं यज्ञं रक्ष सर्वविघ्नान्निवारय०' (अर्थात्—हे पाकड़ के बने तोरण इस यज्ञ की रक्षा करो। सभी विघ्नों को दूर करो) यह प्रार्थना करे।

अथ त्रिशूलेषु—'ॐ अर्यम्णे नमः। ॐ अंशवे नमः। ॐ विवस्वते नमः'—इत्यादिन्यासः। द्वारशाखयोः—'ॐ अनिलाय नमः, ॐ अनलाय नमः'। इति वसुद्वयमर्चयेत्। शाखामूलयोर्धान्यपुञ्जोपरि सञ्जीवनामृतनामानौ कुम्भौ (संजीवनाय नमः। अमृताय नमः। इति) प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्। तत्र वरुणमावाह्य नमस्कृत्य 'तत्वा यामि०' इति श्वेतध्वजपताकालम्भः। 'उदुत्तमं वरुण०' इति तोरणोपरि निधानम्। नवनीतौदनबलिदानम्। 'अग्न आ याहि०' इति सामवेदं पूजयेत्।

तब त्रिशूल के शृंगों में क्रमशः 'ॐ अर्यम्णे नमः ॐ अंशवे नमः, ॐ विवस्वते नमः' इन नाममन्त्रों से अर्यमा, अंशु तथा विवस्वान् संज्ञक आदित्यों का न्यास करे। द्वारशाखाओं में अनिल तथा अनल संज्ञक दो वसुओं की नाममन्त्र से पूजा करे। दोनों द्वारशाखाओं के मूल में धान्य राशि के ऊपर सञ्जीवन तथा अमृत नामक कुम्भों को (ॐ संजीवनाय नमः, ॐ अमृताय नमः' इस प्रकार नाममन्त्र से) स्थापित करके उनकी पूजा करे तब वहाँ वरुण का आवाहन, पूजन और नमस्कार करके 'तत्वा यामि ब्रह्मणा०'[1] इस मन्त्र से सफेद ध्वजा तथा पताका का स्पर्श करे और 'उदुत्तमं

यस्य मीढ्हुषो (=मीढुषो) यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ —ऋ० १।१७३।१२; यजु० ३।४६

१. तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस् तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः॥ ऋ० १।२४।११; यजु० १८।४९ ; २१।२

वरुण०'' इस मन्त्र से उन्हें तोरण के ऊपर फहरावे। तब नवनीत (मक्खन) और भात का बलिदान करे। इसके बाद पश्चिम द्वारदेश में 'अग्न आ याहि'' इस मन्त्र से सामवेद की पूजा करे।

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदेवतः
भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव॥
इति सामवेदध्यानम्।

तत्र जपः—'इन्द्राय सामगायत०'। 'अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य०'। 'स्वादिष्ठया०'। 'गायन्ति त्वा०'। 'कस्य नूनम्०'—इत्यादि।

अथ वायव्ये—'वायवे नमः' इति वायुमावाह्य पूजयेत्। 'वायो शतमिति' धूम्रध्वजपताकालम्भः। 'तव वायवृतस्पत०' इति पताकोच्छ्रयणम्। वायुं संपूज्य यवौदनबलिदानम्।

सामवेदी ब्राह्मण में पिङ्गलनेत्र वाले, जगती छन्द वाले, इन्द्र देवता वाले तथा भारद्वाज गोत्र वाले सामवेद का ध्यान करते हुए उस (सामवेदी ब्राह्मण) से प्रार्थना करते हुए कहे कि हे विप्रेन्द्र तुम मेरे यज्ञ में ऋत्विक् बनो।

सामवेदी ब्राह्मण 'इन्द्राय साम गायत०'[3] 'अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य०'[4] 'स्वादिष्ठया पवस्व०'[5] 'गायन्ति त्वा गायत्रिणो०'[6] तथा

---

१. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ ऋ० १।२४।१५ ; यजु० १२।१२

२. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि। —साम० १।१

३. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥ साम० ३८८ ; १०२५

४. अहमस्मि प्रजामजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम। यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि॥ —साम० ५९४

५. स्वादिष्ठया पवस्य सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः॥ —साम० ४६८ ; ६८९

६. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः। ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंश-

'कस्य नूनं०'[1] इत्यादि मन्त्रों का जप (गान) करेगा।

तब मण्डप के वायव्यकोण में 'वायवे नमः' इस नाम मन्त्र से वायु का आवाहन और पूजन करे। 'वायोः शतं हरीणां०'[2] इस मन्त्र से धूम्रवर्ण के ध्वज तथा पताका का स्पर्श करके 'तव वायवृतस्पते०'[3] इस मन्त्र से उन (ध्वजा और पताका) को ऊपर उठाकर फहरावे। वायु की नाममन्त्र से पूजा करके जौ और भात की बलि दे।

अथोत्तरे—'ॐ सुप्रभाय तोरणाय नमः'। 'शं नो देवीति' तोरणालम्भः। 'न्यग्रोधतोरणेनं यज्ञं रक्ष सर्वविघ्नान्निवारयेति' पूजयेत्।

शृङ्गेषु—'ॐ त्वष्ट्रे नमः। सवित्रे नमः। विष्णवे नमः' इत्यादिन्यासः।

द्वारशाखयोः—ॐ प्रत्यूषाय नमः। 'ॐ प्रभासाय नमः' इति वसुद्वयमर्चयेत्।

शाखामूलस्थयोर्धान्यराश्योर्धनदश्रीप्रदनामानौ कुंभौ (धनदाय नमः। श्रीप्रदाय नमः। इति) प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्। अत्र सोममावाह्य नमस्कृत्य 'सोमो धेनुम्०' इति सुवर्णवर्णध्वजपताकालम्भः। 'वयं सोम०' इति तोरणोपरि निधानम्। 'आ प्यायस्व०' इति प्रेयङ्गवबलिदानम्। 'शन्नो देवी०' इति अथर्ववेदं पूजयेत्।

तदनन्तर मण्डप के उत्तर में 'सुप्रभ तोरणाय नमः' इस नाममन्त्र

मिव येमिरे॥ —साम० ३४२ ; १३४४

१. कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते। गोषाता यस्य ते गिरः॥ —साम० ३४

२. वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम्। उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा॥ —ऋ० ४।४८।५ ; तै० २।२।१२।७

३. तव वायवृतस्पते त्वष्टर्जामातरद्भुत। अवांस्या वृणीमहे॥ —ऋ० ८।२६।२१ ; यजु० २७।३४

से तोरण की पूजा करे। 'शं नो देवी०'[1] इस मन्त्र से तोरण का स्पर्श करे और 'न्यग्रोधतोरणेनं०' (अर्थात् हे वरगद के तोरण! इस यज्ञ की रक्षा करो और सभी विघ्नों को दूर करो) यह प्रार्थना करे। तोरण के ऊपर बने त्रिशूल के शृङ्गों में त्वष्टा, सविता तथा विष्णु संज्ञक आदित्यों का नाममन्त्र (त्वष्ट्रे नमः, सवित्रे नमः, विष्णवे नमः) से न्यास करे। द्वार की शाखाओं में प्रत्यूष तथा प्रभास नामक दो वसुओं की नाममन्त्र से पूजा करे। द्वार की शाखाओं के मूल में धान्य राशि के ऊपर स्थापित धनद तथा श्रीप्रद नामक कुम्भों को नाममन्त्र से प्रतिष्ठापित करके उनकी पूजा करे। तब द्वार देश में सोम का आवाहन, [पूजन] और नमस्कार करके 'सोमो धेनुम्०'[2] इस मन्त्र से सुनहले रंग की ध्वजा और पताका का स्पर्श करे और 'वयं सोम०'[3] इस मन्त्र से ध्वजा और पताका को तोरण के ऊपर फहरावे। 'आ प्यायस्व०'[4] इस मन्त्र से प्रेयङ्गव (धान या टाँगुन ?) की बलि दे। 'शन्नो देवी०'[5] इस मन्त्र से अथर्ववेद की पूजा करे।

सुवर्णनयनोऽथर्वानुष्टुपच्छन्दः पुरन्दरः।
वेदो वैतानगोत्रस्तु ऋत्विक् त्वं मे मखे भव॥

इति ध्यानम्।

तत्र—अथर्वाङ्गिरसं चैव अथर्वशिरसं तथा। शान्त्यध्यायं च पठेत्।

---

१. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः॥ —ऋ० १०।९।४ ; यजु० ३६।१२ ; अथर्व० १।६।१

२. सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै॥ —ऋ० १।९१।२०

३. वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि॥ —ऋ० १०।५७।६ ; यजु० ३।५६

४. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे॥ —ऋ० १।९१।१६ ; यजु० १२।११२

५. द्र० ऊपर टि० १।

अथैशान्याम्—'ॐ ईशानाय नमः'। इतीशानमावाह्य पूजयेत्। 'नमः शम्भवाय' इति रक्तध्वजपताकालम्भः। 'तमीशानम्' इत्युच्छ्रयः। 'कद्रुद्राय' इति गवेधुकबलिः।

ईशानपूर्वयोर्मध्ये—'ॐ अनन्ताय नमः' इत्यनन्तमावाह्य पूजयेत्। 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः०' इति मेचकवर्णध्वजपताकालम्भः। 'तद्विष्णोः०' इत्युच्छ्रयः। 'विष्णोर्नु कम्०' इति बलिदानम्।

[अथर्ववेदी ब्राह्मण में] सुनहले नेत्रों वाले, अनुष्टप् छन्द वाले, धुरन्दर (इन्द्र) देवता वाले तथा वैतानगोत्र वाले अथर्ववेद का ध्यान करते हुए उस [अथर्ववेदी ब्राह्मण] से प्रार्थना करे कि [हे विप्र!] तुम मेरे यज्ञ में ऋत्विक बनो।

वहाँ [उत्तरद्वार में अथर्ववेदी ब्राह्मण] अथर्वाङ्गिरस, तथा अथर्वशिरस, और शान्ति अध्याय का पाठ करे।

तदनन्तर [मण्डप के] ईशानकोण में 'ईशानाय नमः' इस नाम-मन्त्र से ईशान का आवाहन करके पूजन करे। 'नमः शम्भवाय०'[1] इस मन्त्र से लाल रंग की ध्वजा तथा पताका का स्पर्श करे और 'तमीशानं०'[2] इत्यादि मन्त्र से उस ध्वज तथा पताका को ऊपर उठा कर फहरावे। 'कद्रुद्राय०'[3] इस मन्त्र से गवेधुक् (मुनियों के खाने का अन्न या पशुओं का चारा) का बलिदान करे।

ईशान और पूर्व के मध्य में 'ॐ अनन्ताय नमः' इस नाममन्त्र से अनन्त का आवाहन करके पूजन करे। 'नमोऽस्तु सर्पेभ्य०'[4] इस मन्त्र

---

१. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥ —यजु० १६।४१

२. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये। —ऋ० १।८९।५; यजु० २५।१८

३. कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शंतमं हृदे॥ —ऋ० १।४३।१

४. नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः

से मेघ के समान वर्ण वाली ध्वजा और पताका का स्पर्श करे और 'तद् विष्णोः परमं पदं०'[1] इस मन्त्र से ध्वजा और पताका को उठा कर फहरावे। 'विष्णोर्नु कम्०'[2] इस मन्त्र से बलिदान करे।

पश्चिमनिर्ऋतिमध्ये कलशे—'ॐ ब्रह्मणे नमः' इत्यावाह्य पूजयेत्। 'यद्देवा देवहेडनम्०' इति रक्तध्वजपताकालम्भः। 'ब्रह्म जज्ञानम्०' इत्युच्छ्रयः। 'स नो भुवनस्य पते०' इति पायसबलिदानम्।

प्राच्यां 'गणानां त्वेति' गणेशं संपूज्य 'नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येऽन्तरिक्षे०' इति मण्डपाद्बहिर्दिग्विदिक्षु रुद्रान्संस्थाप्य तेभ्यो बलिं दत्त्वा

ये केचित्त्विह लोकेषु आगता बलिकांक्षिणः।
तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि नमस्कृत्य पुनः पुनः॥

इतीशान्याम्—'ॐ भूतेभ्यो नमः'। इति बलिं दत्त्वाऽऽचामेत्। इति मण्डपपूजा।

पश्चिम और नैर्ऋत के मध्य में स्थापित कलश में 'ॐ ब्रह्मणे नमः' इस नाममन्त्र से आवाहन और पूजन करे। 'यद्देवा देवहेडन०'[3] इस मन्त्र से लाल रंग की ध्वजा और पताका का स्पर्श करे। 'ब्रह्म जज्ञानम्०'[4] इस मन्त्र को पढ़ते हुए उस ध्वजा और पताका को

सर्पेभ्यो नमः॥ —ऋ० खिलप० १५।११; यजु० १३।६

१. तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ ऋ० १।२२।२०; यजु० ६।५

२. (क) विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥ —ऋ० १।१५४।१
(ख) विष्णोर्नु ……… त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा। —यजु० ५।१८

३. यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः॥ —यजु २०।१४

४. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ —यजु० १३।३; तैत्ति० सं० ४।२।८।४

उठा कर फहरावे। 'स नो भुवनस्य पते०'[1] इस मन्त्र से पायस (खीर) की बलि प्रदान करे।

पूर्व में 'गणानां त्वा०'[2] इस मन्त्र से गणेश की पूजा करे। 'नमो रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे०'[3] इस मन्त्र से मण्डप के बाहर चारों दिशाओं और विदिशाओं में रुद्रों की स्थापना करके उनके लिए बलि प्रदान करे।

तब मण्डप के ईशान कोण में 'ये केचित्त्विह०' (अर्थात् इस लोक में बलि की आंकाक्षा करने वाले जो भी भूतादि यहाँ आये हुए हैं उन्हें बार बार नमस्कार करके बलि देता हूँ) यह मन्त्र पढ़कर 'ॐ भूतेभ्यो नमः' कहते हुए बलि देकर आचमन करे।

इस प्रकार मण्डपपूजा समाप्त हुई।

[महावेद्यां सर्वतोभद्रदेवतापूजनम्]

अथ गुरुर्महावेद्यां सर्वतोभद्रदेवता दानमयूखोक्तसामान्यप्रयोगोक्ता आवाह्य संपूज्य,

[अग्निस्थापनम्]

स्वकुण्डेऽग्निं स्थापयेत्। ततः सर्वेऽपि होतारस्तमेवाग्निं स्वस्व-

---

१. (क) स नो भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा इह च।
ऊरु ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ॥ —तैत्ति० ३।४।७।२२
(ख) स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा॥—यजु० १८।४४

२. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥ (ऋ० २।२३।१; तै० सं २।३।१४।३) अथवा—गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा० (इत्यादि--यजु० २३।१९)

३. नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्षे ये दिवि येषामन्नं वातो वर्षमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमस्ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वो जंभे दधामि॥ —तैत्ति० ४।५।११।१२-१४

कुण्डे प्रणयेयुः।

[वास्तुपीठपूजनम्]

ततो गुरुः प्रासादान्तरीशान्यां नैर्ऋत्यां वा हस्तमितवेद्यां चतुःषष्टिपदे वास्तुपीठे सामान्यप्रयोगोक्ताः शिख्यादिदेवता आवाह्य संपूज्य बलिं दद्यात्।

[पूर्वाङ्गकर्म वास्तुमण्डलहोमश्च]

ततः कुण्डेषु स्वस्वशाखीयपूर्वाङ्गोत्तरं होतारः प्रतिदैवतमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा प्रत्येकं समित्तिलाज्यैः कुण्डसंख्यया विभज्य जुहुयुर्नाममन्त्रैः।

महावेदी में सर्वतोभद्र देवों का पूजन—

इसके बाद गुरु (आचार्य) महावेदी में 'दानमयूख' में कथित सामान्य प्रयोग की विधि के अनुसार सर्वतोभद्र देवों का आवाहन और पूजन करे।

अग्निस्थापन—

[तदनन्तर आचार्य] अपने कुण्ड में अग्निस्थापन करे। तब अन्य कुण्डों के होता भी प्रधान कुण्ड से अग्नि को ले जाकर अपने-अपने कुण्डों में स्थापित करें।

वास्तुपीठपूजन—

तब गुरु (आचार्य) मन्दिर के भीतर ईशान कोण में या नैर्ऋत कोण में एक हाथ लम्बी-चौड़ी वेदी के ऊपर चौसठ पदों वाले वास्तुपीठ में शिखी आदि देवताओं का आवाहन और पूजन करके उन्हें बलि प्रदान करे।

पूर्वाङ्गकर्म तथा वास्तुमण्डलहोम—

इसके बाद प्रत्येक कुण्ड में आचार्य और होतागण अपनी-अपनी शाखा के विधानानुसार पूर्वाङ्ग करके [वास्तुपीठ में स्थापित देवताओं में से] प्रत्येक देवता को नाममन्त्र से समिधा, तिल और आज्य

की एक सौ आठ, अट्ठाईस या आठ आहुतियाँ कुण्डों की संख्या के अनुसार विभक्त करके होम करें।

[वाष्तोष्पतिहोम:, पञ्चबिल्वाहुतय, अघोराहुतयश्च]

तत: 'वास्तोष्पते प्रतिजानीहि०' इति मन्त्रचतुष्टयेन समित्तिलाज्यै: प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं पूर्ववद्धुत्वा तत: पञ्चसंख्यया पञ्चविंशतिसंख्यया वा बिल्वैस्तद्बीजैर्वा 'वास्ताेष्पत०' इति चतसृभि 'वास्तोष्पते ध्रुवा-स्थूणामि'ति च हुत्वा 'अघारेभ्योऽथ घोरेभ्य०' इत्याज्येनाष्टोत्तरसहस्र-मष्टोत्तरशतं वा वास्तुकर्मसन्धानाय जुहुयु:।

वास्तोष्पति होम तथा अघोराहुतियाँ—

तब 'वास्तोष्पते प्रतिजानीहि०'[1] इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा, तिल और घृत में से प्रत्येक द्रव्य से पूर्ववत् एक सौ आठ बार होम करके 'वास्तोष्पते प्रतिजानीहि० आदि चार मन्त्रों तथा 'वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा०'[2] इस एक मन्त्र से बेल के फल, गूदे या बीजों से पाँच या पच्चीस संख्या में होम करके 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो०'[3] इस मन्त्र से एक हजार आठ या एक सौ आठ की संख्या में वास्तुकर्म सन्धान हेतु होम करें।

---

१. वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा न:। यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।। वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ।। वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभि: सदा न: ।। —ऋ० ७।५४। १-३। अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्या-विशन्। सखा सुशेव एधि न: ।। —ऋ० ७।५५।१

२. वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांऽसत्रं सोम्यानाम्। द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ।। —ऋ० ८।१७।१४

३. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य:। सर्वेभ्य: सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्य:। स्वाहा ।।

[प्रासादं त्रिसूत्र्या संवेष्ट्य परितो जलदुग्धधारावपातनम्]

ततो रक्षोघ्नपावमानसूक्ताभ्यां त्रिसूत्र्या प्रासादं संवेष्ट्य परितो जलदुग्धयो: पृथगविच्छिन्ने धारे दत्त्वा,

त्रिसूत्री वेष्टित प्रासाद में जल-दुग्धधारावपातन—

तब रक्षोघ्न[1] और पावमान[2] सूक्तों का पाठ करते हुए मन्दिर को त्रिसूत्री से वेष्टित (लपेट) कर उसके चारों ओर से जल और दूध

---

१. कृणुष्व पाज: प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठै: ।। तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचान:। तनूँ्ष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्का: ।। प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्ध:। यो नो दूरे अघशँ्सो यो अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ।। उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ २ ओषतात् तिग्महेते। यो नो अरातिँ् समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ।। ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्। अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ।। यजु० १३।९–१३ (ऋ० ४।४।१-५)।

२. पुनन्तु मा पितर: सोम्यास: पुनन्तु मा पितामहा: पुनन्तु प्रपितामहा:— पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहा: पुनन्तु प्रपितामहा: पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ।। अग्न आयूँ्षि पवस आ सुवोर्जमिषं च न:। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।। पुनन्तु मा देवजना: पुनन्तु मनसा धिय:। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेद: पुनीहि मा ।। पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ्रनु ।। यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा ।। पवमान: सो अद्य न: पवित्रेण विचर्षणि:। य: पोता स पुनातु मा ।। उभाभ्यां देव सवित: पवित्रेण सवेन च। मां पुनीहि विश्वत: ।। वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठा:। तया मदन्त: सधमादेषु वयँ् स्याम पतयो रयीणाम् ।। यजु० १९।३७-४४।

की पृथक्-पृथक् धाराएं निरन्तर गिराये।

[वास्तुप्रतिमा मृद्भाण्डे संस्थाप्य जानुमात्रगर्ते स्थापनम्]

पीठे पूजितां हैमीं वास्तुप्रतिमां दधिदूर्वासप्तधान्यशैवालगन्धाक्षतपुष्पयुतेऽपक्वमृद्भाण्डे संस्थाप्य तत्पिधाय चतुःषष्टिधाभाजितप्रासादाग्नेयकोणपदादुत्तरे आकाशपदे जानुमात्रं गर्तं कृत्वा जलेनापूर्य गन्धपुष्पाणि प्रक्षिप्य मृद्भाण्डं तत्र निधाय गर्तं तन्मृदैव पूरयेत्। मृदाधिक्ये परं शुभम्। इत्थं वास्तुपूजां कृत्वा,

मृत्तिका पात्रस्थ वास्तुप्रतिमा का आकाश पद के गर्त में स्थापन—

पीठ में पूजित सोने की वास्तु-प्रतिमा को दही, दूर्वा, सप्तधान्य, शैवाल (सेवार), गन्ध, अक्षत और पुष्प से भरे कच्ची मिट्टी के पात्र में रखकर उसे (कच्चे सकोरे आदि से) ढके। तब चौसठ भागों में विभाजित प्रासाद के आग्नेयकोण पद के उत्तरवर्ती आकाशपद में घुटने भर का गड्ढा खोदकर उसे जल से भर कर उसमें गन्ध, पुष्प छोड़कर [वास्तुप्रतिमायुक्त] कच्ची मिट्टी के पात्र को उस [गड्ढे] में रखकर उसे उसी में से खोदी हुई मिट्टी से पाटे। यदि मिट्टी अधिक रहे तो शुभ होता है। इस प्रकार वास्तुपूजन सम्पन्न करे।

[ईशानकोणे ग्रहस्थापनम्]

गुरुर्मण्डपेशानभागे वेद्यां ग्रहानधिदेवताः प्रत्यधिदेवता विनायकादीन्पञ्चलोकपालांश्च दानमयूखोक्तप्रकारेणावाह्य पूजयेत्।

ईशानकोण में ग्रह-स्थापन—

[तब] आचार्य मण्डप के ईशान भाग में [निर्मित] वेदी में ग्रहों, अधिदेवता, प्रत्यधिदेवता तथा विनायकादि पाँच लोकपालों का दानमयूख में कथित विधि के अनुसार आवाहन करके पूजन करे।

[आवाहितदेवानां होमो, बलिदानं, पूर्णाहुतिश्च]

ततः ऋत्विजः समिच्चर्वाज्यैरष्टोत्तरसहस्राष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्यया कुण्डेषु विभज्य हुत्वा विश्वकर्मन्नित्याज्येन हुत्वा बलीन्दत्वा पूर्णाहुतिं जुहुयुः। एतन्मन्त्रप्रकारादिकं दानमयूखे

सामान्यप्रयोगे उक्तम्।

आवाहित देवों का होम—

तब ऋत्विग् (होता) गण समिधा, चरु और घी से एक हजार आठ, एक सौ आठ, अट्ठाईस या आठ आहुतियों की संख्या को सभी कुण्डों में बराबर विभक्त करके हवन करके विश्वकर्मन् हविषा:०"[1] इस मन्त्र से आज्य से आहुति दें और तब बलि देकर पूर्णाहुति करें। इस (होम तथा पूर्णाहुति) के मन्त्रों और सम्पादन विधि आदि को दान मयूख के सामान्य प्रयोग के प्रकरण में बतलाया गया है।

[स्नानमण्डपे वेदिकात्रयप्रोक्षणम्]

अथ गुरुः स्नानमण्डपे 'ॐ नमो नारायणाय' इत्यभिमन्त्रितेन पञ्चगव्येन भूमिं वेदिकात्रयं च संप्रोक्ष्य

स्नान मण्डप में वेदिकात्रय का प्रोक्षण—

इसके बाद गुरु (आचार्य) स्नानमण्डप में अभिमन्त्रित पञ्चगव्य से 'ॐ नमो नारायणाय' कहते हुए स्नान [मण्डप] की भूमि तथा तीनों वेदियों का प्रोक्षण करे।

[दक्षिणवेदिकोपरि स्वस्तिकाङ्कनं, विश्वकर्मणो ध्यानम्]

तत्र दक्षिण-वेदिकायामास्तृतबालुकायामक्षतैः स्वस्तिकं लिखित्वा—

तत्र विश्वकर्मणो वा ध्यानम्-

विश्वकर्मा तु कर्तव्यः श्मश्रुलो मांसलाधरः।
सन्दंशपाणिर्द्विभुजस्तेजोमूर्तिः प्रतापवान्॥ इति ध्यात्वा

---

१. (क) विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत्॥
यजु० ८।४६

(ख) विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥
ऋ० १०।८१।६; यजु०।१७।२२ के इसी मन्त्र में तीसरे पाद में 'जनासः' के स्थान पर 'सपत्ना' पढ़ा जाता है।

दक्षिण-वेदी में स्वस्तिक-रचना तथा विश्वकर्मा का ध्यान—

वहाँ दक्षिण वेदी में बिछी हुई बालुका के ऊपर अक्षतों से स्वस्तिक बनावे। फिर उसमें यदि चाहे तो विश्वकर्मा का ध्यान करे। विश्वकर्मा को दाढी मूँछ वाला, मांसल होंठ वाला, हाथ में सँड़सी लिए हुए, दो भुजाओं वाला, तेजस्वी और प्रतापशाली बनाना चाहिए। विश्वकर्मा के इसी स्वरूप का ध्यान करे।

[दक्षिणवेद्याः पश्चिमे द्वादशकलशस्थापनम्]

सप्तधान्योपरि भद्रपीठं निधाय वेदिकायाः पश्चाद्वारिपूर्णान् सपल्लवान् षट्कलशान् मृत्पल्लववृक्षीयकषायगोमूत्रगोमयभस्मगन्धोदकैः प्रपूर्यापरान्पञ्च गन्धजलेनापूर्योदवसंस्थं पङ्क्तिरूपेणासादयेत्। तत्रान्त्यः स्थपतिकलशः।

दक्षिण-वेदी के पश्चिम में द्वादश कलश स्थापन—

[दक्षिण वेदी में] सप्तधान्य के ऊपर भद्रपीठ को रख कर [उस वेदी] के पश्चिम में जल से भरे हुए और पल्लव युक्त [तथा आचारात् रक्तसूत्र वेष्टित] छः कलशों को क्रमशः (१) मिट्टी, (२) पञ्चपल्लव एवं वृक्ष की छाल के कषाय, (३) गोमूत्र (४) गोमय, (५) भस्म और (६) गन्धोदक से भर कर दक्षिण से उत्तर की ओर एक पंक्ति में रखे। दूसरे पाँच कलशों में गन्धोदक (गन्धयुक्त जल) भरकर उसी तरह दक्षिण से उत्तर की ओर [दूसरी पंक्ति में] रखे। उस पंक्ति के अन्त में छठां स्थपति कलश रखे।

[मध्यवेद्याः पश्चिमे एकादशकलशस्थापनम्]

भद्रपीठयुतमध्यमवेदिपश्चिमेऽप्येवं स्थपतिकलशातिरिक्ता एकादश-

मध्य-वेदी के पश्चिम में एकादश कलश-स्थापन—

भद्रपीठ से युक्त मध्यवेदी के पश्चिम में भी स्थपति कलश के अतिरिक्त शेष एकादश कलशों को उसी प्रकार (दक्षिण वेदी में स्थापित कलशों के क्रमानुसार) रखे।

[उत्तरवेद्याः परितः कलशस्थापनम्]

भद्रपीठयुतोत्तरवेद्यास्तु परितोऽष्टौ कलशान्पूर्वादिक्रमेण क्षारोदकक्षीरदधिसर्पिरिक्षुरससुरास्वादूदकदर्भोदकयुतान्हिरण्यगर्भा-द्यैरष्टभिर्मन्त्रैर्विन्यसेत्।

उत्तरवेदी में आठों दिशाओं में कलशस्थापन—

भद्रपीठ से युक्त उत्तरवेदी के चारों ओर पूर्व, आदि (आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान) दिशाओं में क्रमशः (१) क्षारोदक (खारेजल), (२) दूध, (३) दही, (४) घी, (५) ईख (गन्ने) का रस, (६) सुरा, (७) स्वादिष्ट जल और (८) कुशोदक से भरे हुए आठ कलशों को 'हिरण्यगर्भः०'[1] इत्यादि आठ मन्त्रों को पढ़ते हुए स्थापित करे।

---

१. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्। ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥ ऋ० १०।१२१।१-८।

स्नानमण्डप की वेदिकात्रय के पश्चिम में

[३]

तृतीय—उत्तरवेदी के चारों ओर तथा पश्चिम में स्थापित कलशों में द्रव्य-

गन्धोदक (८) क्षारोदक (१) (२) क्षीर

स्वादूदक (७) (३) दधि

सुरोदक (६) इक्षुरस (५) (४) घृत

प्रथम पंक्ति के दश कलशों में

शर्करा मधु घृत दधि क्षीर पञ्चगव्य भस्म गोमूत्र गोमय मृत्तिका

(१०) (९) (८) (७) (६) (५) (४) (३) (२) (१)

द्वितीय पंक्ति के चौदह कलशों में शुद्ध जल

(१४) (१३) (१२) (११) (१०) (९) (८) (७) (६) (५) (४) (३) (२) (१)

तृतीय पंक्ति के एकादश कलशों में

सर्वौषधी, पल्लव कषाय, गन्धोदक, शुद्ध जल के पांच कलश, पञ्चामृत, शुद्ध जल के दो कलश

(११) (१०) (९) (८) (७) (६) (५) (४) (३) (२) (१)

चतुर्थ पंक्ति के दश कलशों में—

तीर्थोदक रत्नोदक पञ्चपल्लव सर्वौषधी सहस्रधारा घ्राणोदक भृङ्गोदक सुवर्णोदक फल पुष्प

(१०) (९) (८) (७) (६) (५) (४) (३) (२) (१)

पञ्चम पंक्ति के दश कलशों में पल्लव विधान—

पलाश नागकेसर बिल्व वट आम प्लक्ष अशोक जम्बु शाल्मली कदम्ब

(१०) (९) (८) (७) (६) (५) (४) (३) (२) (१)

छठी पंक्ति में चार मङ्गल कलश अथवा एक कलश—

(४) (३) (२) (१) ( )

स्थापित कलशों में द्रव्य-विधान

[२]

द्वितीय—मध्य वेदी के पश्चिम में स्थापित कलशों में द्रव्य-विधान

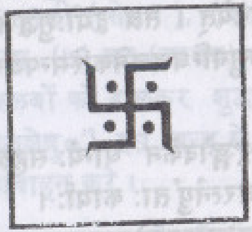

प्रथम पंक्ति के छः कलशों में

गन्धोदक भस्म गोमय गोमूत्र पल्लव कषाय मृत्तिका

(६) (५) (४) (३) (२) (१)

द्वितीय पंक्ति के पाँचों कलशों में गन्धोदक

(५) (४) (३) (२) (१)

[१]

प्रथम—दक्षिण वेदी के पश्चिम में स्थापित कलशों में द्रव्य-विधान—

प्रथम पंक्ति के छः कलशों में

गन्धोदक भस्म गोमय गोमूत्र पल्लव कषाय मृत्तिका

(६) (५) (४) (३) (२) (१)

द्वितीय पंक्ति के छः कलशों में

छठे स्थपति कलश में तीर्थजल; पांच में गन्धोदक

(६) (५) (४) (३) (२) (१)

[उत्तरवेद्याः पश्चिमे कलशस्थापनम्]

ततोऽन्ये च वेद्याः पश्चिमभागे मृत्तिकागोमयगोमूत्रभस्ममिलितपञ्चगव्यक्षीरदधिघृतमधुशर्करायुता दश कलशाः, चतुर्दश शुद्धजलकलशाः । अथान्यान्पञ्चत्रिंशत्कलशानासादयेत् । तत्र द्वयोःशुद्धजलं एकस्मिन् पञ्चामृतं, पञ्चसु जलमेकस्मिन्सुगन्धिजलमेकस्मिन्पञ्चपल्लवकषायः एकस्मिन्सर्वौषध्यः ।

दश क्रमात्पुष्पैः फलैः सौवर्णजलेन गोशृङ्गोदकेन धान्यैः सहस्रछिद्रैः सर्वौषधिभिः पञ्चपल्लवैस्तीर्थोदकैर्नवरत्नैर्युताः कार्याः ।

अवशिष्टेषु दशसु कलशेषु कदम्बशाल्मलीजम्ब्वशोकप्लक्षचूतवटबिल्वनागकेसरपलाशपल्लवान्क्रमेण निक्षिप्य शुद्धजलमापूर्य लोकपालानावाहयेत् । सर्वेऽप्याकलशेष्वित्यनेन स्थाप्याः ।

उत्तर वेदी के पश्चिम में कलश स्थापन—

उस [तीसरी उत्तरवर्ती वेदी के पश्चिम भाग में प्रथम पंक्ति में क्रमशः (१) मृत्तिका, (२) गोमय, (३) गोमूत्र, (४) भस्म, (५) मिलितपञ्चगव्य (अर्थात् पञ्चगव्य के मिश्रण), (६) दूध, (७) दही, (८) घी, (९) मधु, तथा (१०) शर्करा (चीनी) से युक्त दशकलशों को उसी प्रकार (क्रमशः दक्षिण से उत्तर की ओर) स्थापित करे ।

[दूसरी पंक्ति में] शुद्ध जल से भरे हुए चौदह कलशों को रखे और तब अन्य पैंतीस कलशों को[1] रखे, जिनमें से [तीसरी पंक्ति में] दो में 'शुद्धजल, एक में पञ्चामृत, पांच में जल, एक में सुगन्धित जल, एक में पञ्चपल्लव और कषाय और एक में सर्वौषधी भरी हों ।

[इसके पश्चिम् में चौथी पंक्ति में अन्य] दश कलशों को रखे जिनमें क्रमशः (१) पुष्प, (२) फल, (३) स्वर्णयुक्त जल, (४)

१. पैंतीस कलशों की यह संख्या आगे वर्णित चार मङ्गलकलशों को मिलाकर ही पूरी होती है ।

गोशृङ्गोदक, (५) धान्य, (६) सहस्रछिद्र, (७) सर्वौषधी, (८) पञ्चपल्लव, (९) तीर्थोदक और (१०) नवरत्न भरे हों ।

(तब पाँचवीं पंक्ति में) दश कलशों में क्रमशः (१) कदम्ब, (२) शाल्मली (सेमर), (३) जामुन, (४) अशोक, (५) पाकड़, (६) आम, (७) वट (बरगद), (८) बिल्व, (९) नागकेशर और पलाश के पल्लवों को डालकर शुद्धजल से भरे । सभी कलशों का स्थापन 'आ कलशेषु०'[1] इस मन्त्र से करे । उब उन कलशों में लोकपालों का आवाहन करे ।

[सूक्ष्मवस्त्रसुगन्धतैलादिद्रव्यासादनम्]

सूक्ष्मवस्त्रं सुगन्धितैलं यवशालिगोधूममसूरिकाबिल्वचूर्णमुद्वर्तनार्थमामलकचूर्णं सुगन्धियक्षकर्दमं जटामांसीं चासादयेत् ।

सूक्ष्मवस्त्र, सुगन्धित तैलादि का आसादन—

[इसके पश्चात्] एक महीन वस्त्र, सुगन्धित तेल, जौ का आटा, चावल का आटा, गेहूँ का आटा, मसूर का आटा, बिल्वफल का चूर्ण, उबटन के लिए आँवले का चूर्ण, सुगन्धित यक्षकर्दम[2] और जटामांसी का आसादन करे (समीप रखे) ।

[मङ्गलकलशस्थापनम्]

ततश्चतुरो मङ्गलकलशान् एकं वा स्थापयेत् ।

१. (क) आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ऋ० ९।१७।४।

(ख) आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ ऋ० ९।६७।१४ ।

२. कर्पूरागुरुकस्तूरीकंकोलैर्यक्षकर्दमः । अमर० २।६।१३३ । अर्थात् कपूर, अगरु, कस्तूरी और कंकोल के चूर्ण के मिश्रण से बनाया गया लेप यक्षकर्दम कहलाता है । कुछ आचार्यों के मतानुसार कुंकुम, अगरु, कस्तूरी, कपूर और चन्दन के मिश्रण से यह लेप बनता है ।

मङ्गलकलशस्थापन—

इसके बाद चार मङ्गलकलशों को अथवा एक मङ्गलकलश को स्थापित करे।

[तीर्थोदककलशे तीर्थावाहनम्]

तदन्ते तीर्थोदककलशे—

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥

इत्यादितीर्थान्यावाहयेत्।

तीर्थकलश में तीर्थावाहन—

इसके पश्चात् तीर्थों के जल से पूरित कलश में 'सर्वे समुद्राः०' (अर्थात् सभी समुद्र, नदियाँ, तीर्थ तथा जल देने वाले [नदी-] नद यजमान का पाप नष्ट करने के लिए यहाँ आवें) इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए तीर्थों का आवाहन करे।

[कर्मकुटीकर्म]

ततः सयजमान आचार्यो मूर्तिस्थपतिभ्यां सह सुमङ्गलघोषं कृत्वा कर्मकुटीं गत्वा भूमावुपलिप्य विधिवदग्निं स्थापयित्वा 'प्रतिमानिर्माणे प्राणिवधादिदोषनिरासार्थं घृतेन तिलैर्वा होमं करिष्ये' इति सङ्कल्प्याज्यभागान्तं कृत्वा देवमन्त्रेणाज्याहुतिशतद्वयं हुत्वा पूर्णाहुतिं च कृत्वा प्रतिमां कुशैः संमार्ज्य मधुघृताभ्यङ्गेन देवस्य व्रणभङ्गं कृत्वा संपूज्य पञ्चगव्येन पृथक् पृथक् स्नापयित्वा पुनः संपूज्य शिल्पिपूर्वकल्पितं कलशं सरत्नं सहिरण्यं सवस्त्रं देवपुरतो निधाय मृदा गोमयेन गोमूत्रेण भस्मना क्षीरेणेति त्रिविक्रमजलान्तरितेन स्नापयित्वा पुनः संपूज्य—

कर्मकुटीकर्म—

तब यजमान सहित आचार्य स्थाप्य देवता की प्रतिमा और स्थपति को साथ लेकर मांगलिक गीत वाद्य करते-कराते हुए कर्मकुटी में जाकर भूमि को लीप कर विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके 'प्रतिमा-

निर्माणे प्राणिवधादिदोषनिरासार्थं घृतेन तिलैर्वा होमं करिष्ये (प्रतिमा निर्माण में प्राणिवध आदि दोष के परिहारार्थ घृत अथवा तिलों से होम करता हूँ) ऐसा संकल्प करके आघार और आज्याहुति देकर स्थाप्य देव के मन्त्र से आज्य की दो सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति करके प्रतिमा का कुशों से सम्मार्जन करके उसमें मधु और घृत से मालिश करके देवता के व्रण (घाव) को ठीक करके पूजन करके पञ्चगव्य (गोमूत्र, गोमय आदि) से पृथक्-पृथक् स्नान कराने के पश्चात् पुनः पूजन करके शिल्पी के द्वारा पहले से ही रखे गये रत्न सुवर्ण और वस्त्र सहित कलश को देवता के आगे रख कर पुनः क्रमशः मिट्टी, गोमय, गोमूत्र, भस्म एवं दूध और इनके बीच में त्रिविक्रमजल (गङ्गा-जल) से स्नान कराके पुनः पूजन करे।

[स्नानमण्डपे देवप्रतिमाऽऽनयनम्]

शङ्खनादेन रथादिना देवं महामण्डपप्रादक्षिण्येन स्नानमण्डपमानयेत्। तत्र गुरुर्दक्षिणवेद्यां 'भद्रं कर्णेभि०' इति प्राङ्मुखं देवं भद्रासने निवेश्य

देवप्रतिमा का स्नानमण्डप में आनयन—

तब शङ्खनाद करते हुए देव प्रतिमा को रथ आदि से महामण्डप की प्रदक्षिणा कराते हुए स्नानमण्डप में लावे। तब गुरु (आचार्य) दक्षिणवेदी में 'भद्रं कर्णेभिः' इस मन्त्र को कहते हुए देवप्रतिमा को पूर्वाभिमुख करके भद्रासन में स्थापित करे।

[तीर्थावाहनम्]

पूर्वकल्पितषट्कलशेष्वन्यं स्थपतिकलशं हिरण्यादिसहितं देवसमीपे निधाय—

काशी कुशस्थली मायावन्त्ययोध्या मधोः पुरी।
शालग्रामं सगोकर्णं नर्मदा च सरस्वती॥
तीर्थान्येतानि कुम्भेऽस्मिन्विशन्तु ब्रह्मशासनात्।

स्थपतिकलश में तीर्थावाहन—

[दक्षिण वेदी के पश्चिम में दूसरी पंक्ति में] पहले से रखे हुए छ: कलशों में से अन्तिम स्थपतिकलश को सुवर्ण आदि सहित देवप्रतिमा के समीप रख कर [तीर्थों का आवाहन करे]—

काशी, कुशस्थली (द्वारका), माया (हरद्वार) अवन्ती (उज्जैन), अयोध्या मथुरा, शालग्राम, गोकर्ण नर्मदा और सरस्वती—ये तीर्थ ब्रह्म (वेद) के शासनानुसार इस कुम्भ में प्रवेश करें।

झषारूढा सरोजाक्षी पद्महस्ता शशिप्रभा।
आगच्छतु सरिज्ज्येष्ठा गङ्गा पापप्रणाशिनी ॥

मकर में आरूढ कमल के समान नेत्र वाली, हाथ में कमल धारण करने वाली, चन्द्रमा के समान कान्ति वाली, पाप को नष्ट करने वाली और सभी नदियों में ज्येष्ठ—श्रेष्ठ गङ्गा इस कलश में आवे।

नीलोत्पलदलश्यामा पद्महस्ताम्बुजेक्षणा।
आयातु यमुना देवी कूर्मयानस्थिता सदा ॥

नील कमल के समान श्याम वर्ण की, हाथ में कमल धारण करने वाली, कमल के समान नेत्र वाली तथा कूर्म (कछुवे) पर आरूढ यमुना इस कलश में आवे।

प्राची सरस्वती पुण्या पयोष्णी गौतमी तथा।
उर्मिला चन्द्रभागा च सरयू गण्डकी तथा ॥
जम्बूका च शतद्रुश्च कलिङ्गा सुप्रभा तथा।
वितस्ता च विपाशा च शर्मदा च पुनः पुनः ॥
गोदावरी महावर्ता शर्करावर्तमार्जनी ॥
कावेरी कौशिकी चैव तृतीया च महानदी ॥
विटङ्का प्रतिकूला च सोमनन्दा च विश्रुता।
करतोया वेत्रवती देविका वेणुका च या ॥
आत्रेयगङ्गा वैतरणी काश्मीरी ह्लादिनी च या।
प्लावनी च शवत्रासा कल्मासा शंसिनी तथा ॥

वसिष्ठा च अपापा च सिन्धुवत्यारुणी तथा।
ताम्रा चैव त्रिसन्ध्या च तथा मन्दाकिनी परा ॥

तैलकाह्ली च पारा च दुन्दुभी नकुली तथा।
नीलगन्धा च बोधा च पूर्णचन्द्रा शशिप्रभा ॥

पवित्र प्राची सरस्वती, पयोष्णी, गौतमी, उर्मिला, चन्द्रभागा, सरयू, गण्डकी, जम्बूका, शतद्रु, कलिङ्गा, सुप्रभा, वितस्ता, विपाशा, शर्मदा, गोदावरी, महावर्ता, शर्करा, आवर्तमार्जनी, कावेरी, कौशिकी, महानदी, विटङ्का, प्रतिकूला, सोमनन्दा, विश्रुता, करतोया, वेत्रवती, देविका, वेणुका, आत्रेयगङ्गा, वैतरणी, काश्मीरी, ह्लादिनी, प्लावनी, शवत्रासा, कल्मासा, शंसिनी, वसिष्ठा, अपापा, सिन्धुवती, आरुणी, ताम्रा, त्रिसन्ध्या, मन्दाकिनी, तैलकाह्ली, पारा, दुन्दुभी, नकुली, नीलगन्धा, बोधा, पूर्णचन्द्रा, शशिप्रभा।

अमरेशं प्रभासं च नैमिषं पुष्करं तथा।
आषाढि डिण्डिभारत्नं भारभूतं बलाकुलम् ॥

हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यं मध्यमकेश्वरम्।
श्रीपर्वतं समाख्यातं जलेश्वरमतः परम् ॥
आम्रातकेश्वरं चैव महाकालं तथैव च।
केदारमुत्तमं गुह्यं महाभैरवमेव च ॥
गया चैव कुरुक्षेत्रं गुह्यं कनखलं तथा।
विमलं चन्द्रहासं च माहेन्द्रं भीममष्टमम् ॥
वस्त्रादं[?पथं] रुद्रकोटिं च अविमुक्तं महालयम्।
गोकर्णं भद्रकर्णं च हेमांशं स्थानमष्टमम् ॥
छागलाह्वं द्विरण्डं च कर्कोटं मण्डलेश्वरम्।
कालञ्जरवनं चैव देवदारुवनं तथा ॥
शङ्कुकर्णं तथैवेह स्थलेश्वरमतः परम्।
एता नद्यश्च तीर्थानि गुह्यक्षेत्राणि सर्वशः ॥
तानि सर्वाणि कुम्भेऽस्मिन्विशन्तु ब्रह्मशासनात्।

इति मन्त्रेण तत्र तीर्थान्यावाह्य देवं स्नापयेत् । यजमानश्च 'शिल्पिवर्गं यथाशक्ति पूजयेत् ।

अमरेश (अमरकण्टक), प्रभास, नैमिष, पुष्कर, आषाढी, डिण्डि-भारत्न, भारभूत, बलाकुल, हरिश्चन्द्र, मध्यमेश्वर, श्रीपर्वत, जलेश्वर आम्रातकेश्वर, महाकाल, केदार, महाभैरव, गया, कुरुक्षेत्र, कनखल, विमल, चन्द्रहास, माहेन्द्र, भीम, वस्त्राद, रुद्रकोटि, अविमुक्त, महालय, गोकर्ण, भद्रकर्ण, हेमांश, छागल, द्विरण्ड, कर्कोट, मण्डलेश्वर, कालञ्जरवन, देवदारुवन, शङ्कुकर्ण और स्थलेश्वर,— ये नदियां और तीर्थ तथा सभी गुह्यक्षेत्र ब्रह्मशासनानुसार इस कुम्भ में प्रविष्ट हों।

इन मन्त्रों से उस (स्थपति कलश) में तीर्थों का आवाहन करके देवता को स्नान करावे और तब यजमान यथाशक्ति शिल्पिवर्ग को द्रव्यादि से सम्मानित करे।

[बहिर्दिक्षु बलिदानं, मण्डपान्तर्दिग्रक्षणं, स्वस्तिवाचनञ्च]

ततो गुरुर्बहिर्निर्गत्य सिद्धार्थघृतपायसैस्त्र्यम्बकमिति प्रागादिदिक्षु बलिं दत्त्वाऽऽचम्य देवसमीपमागत्य 'त्रातारमिन्द्रम्०' इत्यादिदश-लोकपालमन्त्रैर्मण्डपान्तर्दिक्षु रक्षां कृत्वा देवस्याग्रे चतुरो ब्राह्मणा-नुपवेश्य स्वस्ति वाचयेत् । तेभ्यश्च दक्षिणां दत्त्वा आशिषो गृहीत्वा

बलिदान, दिग्रक्षण, स्वस्ति (पुण्याह)-वाचन—

तत्पश्चात् गुरु (आचार्य) स्नानमण्डप से बाहर आकर सरसों, घृत और पायस से 'त्र्यम्बकं यजामहे०'[1] इस मन्त्र से क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में बलि देकर आचमन करके देवता के समीप आकर

१. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ऋ० ७।५९।१२; यजु० ३।६०; तै० स० १।८।६।२; अथर्व० १४।१।१७ ।

'त्रातारमिन्द्र०' इत्यादि दश लोकपालों[1] के मन्त्रों से मण्डप के अन्दर

१. दश दिक्पालों के मन्त्र क्रमशः नीचे दिये गए हैं—

(१) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥
ऋ० ६।४७।११; यजु० २०।५०; तै० सं० १।६।१२।५, अथर्व० ७।८६।१

(२) त्वन्नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्य निमेष ँ रक्षमाणस्तव व्रते ॥
ऋ० १।३१।१२; यजु० ३४।१३

(३) यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ।
स्वाहा घर्माय स्वाहा धर्म्मः पित्रे ॥ यजु० ३८।९

(४) असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥
यजु० १२।६२ ।

(५) तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥
ऋ० १।२४।११; यजु० १८।४९; २१।२ ।

(६) आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
ऋ० ७।९२।५; यजु० २७।२८ ।

(७) वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥
ऋ० १०।५७।६; यजु० ३।५६ ।

(८) तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥
ऋ० १।८९।५; यजु० २५।१८ ।

(९) अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शँ सते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२ अवन्तु देवाः ।
यजु० ३३।५०; ऋ० १०।६३।१२ ।

(१०) स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छ नः शर्म सप्रथाः ॥
यजु० ३५।२१; ३६।१३ तु० ऋ० १।२२।१५ ।

दशों दिशाओं में रक्षा करके चार ब्राह्मणों से [देवता के आगे] स्वस्तिवाचन[1] करावे और तब उन्हें दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे।

[प्रथमवेद्यां देवस्नपनम्]

गुरुर्देवं स्नापयेत् । 'अग्निर्मूर्धे' ति मृदा । 'यज्ञा यज्ञा व'० इति कषायैः । गायत्र्या गोमूत्रेण । 'गन्धद्वाराम्०' इति गोमयेन । 'मा नः स्तोके०' इति भस्मना । 'तत्सवितु'रिति गन्धतोयेन । ततः पञ्च-कलशैः पञ्चदैवत्यैः 'नमः शम्भवे'० इति प्रथमेन । 'हंसः शुचिषद्०' इति द्वितीयेन । 'या ते रुद्र०'इति तृतीयेन । 'विष्णो रराटमसि०'इति चतुर्थेन । 'ब्रह्म जज्ञानम्०' इति पञ्चमेन संस्नाप्य 'शतं जीव शरदो वर्द्धमान०' इति दूर्वाक्षतपुष्पैः संपूज्य वस्त्रेणाच्छाद्य

प्रथम वेदी में देवता का स्नान—

[अब] गुरु देवप्रतिमा को [सर्वप्रथम दक्षिणवेदी के पश्चिम में रखे गये कलशों से] स्नान करावे। 'अग्निर्मूर्द्धा०'[2] इस मन्त्र को पढते हुए मिट्टी से स्नान करावे। 'यज्ञा यज्ञा वो०'[3] इस मन्त्र को पढते हुए कषाय से, गायत्री मन्त्र[4] के द्वारा गोमूत्र से, 'गन्धद्वारां०'[5] इस मन्त्र से गोमय से, 'मा नस्तोके०'[6] इस मन्त्र से भस्म से और

१. यहाँ स्वस्तिवाचन का तात्पर्य संक्षिप्त पुण्याहवाचन से लेना चाहिए।

२. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥
ऋ० ८।४४।१६; यजु० ३।१२; १३।१४; १५।२० ।

३. यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ ऋ० ६।४८।१; यजु० २७।४२ ।

४. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
ऋ० ३।६२।१०; यजु० ३।३५; २२।९; ३०।२; ३६।३ ।

५. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ऋ० परि० ११।९

६. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

'तत्सवितु०'[1] इस मन्त्र से गन्धजल (गन्धोदक) से स्नान करावे।

[इसके बाद दक्षिणवेदी के पश्चिम में स्थित दूसरी पंक्ति के] पाँच देवताओं वाले पाँच कलशों में से प्रथम कलश से 'नमः शम्भवे०'[2] इस मन्त्र को पढते हुए स्नान करावे, 'हंसः शुचिषद्०'[3] इस मन्त्र को पढते हुए दूसरे कलश से, 'या ते रुद्र०'[4] इस मन्त्र से तीसरे कलश से, 'विष्णो रराटमसि०'[5] इस मन्त्र से चौथे और 'ब्रह्म जज्ञानम्०'[6] इस मन्त्र से पांचवें कलश से स्नान कराकर शतं जीव शरदो

मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥
यजु० १६।१६, तु० ऋ० १।११४।८।

१. द्र० पृ० पीछे ४८ टि० ४।

२. (क) नमः शम्भवे च मयोभवे च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ तै० सं० ४।५।८।१ ।
(ख) नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च । यजु० १६।४१ ।

३. (क) हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥
ऋ० ४।४०।५ ।
(ख) हंसः शुचिषद् ... ... ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥
यजु० १०।२४; १२।१४ ।

४. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥ यजु० १६।२ ।

५. विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ यजु० ५।२१ ।

६. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥
यजु० १३।३ ।

वर्द्धमान०''[1] इस मन्त्र से [देवप्रतिमा का] दूर्वा, अक्षत और पुष्पों से पूजन करके उसे वस्त्र से आच्छादित करे।

[द्वितीयवेद्यां देवनेत्रोन्मीलनं स्नपनञ्च]

द्वितीयवेद्यां 'भद्रं कर्णेभिरि'[2]ति भद्रासनं निधाय स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये'[3]० इति प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य तत्र प्रणवेन देवं निधाय प्राङ्मुखमुदङ्मुखो वा भूत्वा कुङ्कुमाक्तेन सूत्रेण लिङ्गमावेष्ट्य प्रतिमायां मुखलिङ्गस्य च नेत्राणि सुवर्णशलाकया 'चित्रं देवानाम्०' इति अर्धर्चेन कल्पयेत्। नेत्रमध्ये त्रिभागेन कनीनिकामपि कल्पयेत्। ऊर्ध्वाध: पृथग्भूतं पद्मपुटद्वयं च 'आ कृष्णेन०' इति कल्पयेत्। तदा न कश्चित्पुरतस्तिष्ठेत्। सुवर्णं पायसं भक्ष्यं भोज्यमादर्शं च शीघ्रं दर्शयेत्। तत: शिल्पी लोहेनोल्लिखेत्। गुरुर्मधुसर्पिर्भ्यामभ्यज्य 'इमं मे गङ्गे०' इति मन्त्रेणाभ्युक्ष्य पुनर्मृदाद्येकादशकलशै: स्नापयेत्। प्रतिमाबहुत्वे मृदादिकलशोदकं किञ्चित्स्थापयित्वा तासां नेत्रोन्मीलनस्य तेन स्नापयेत्। यजमान: सुवर्णशलाकास्नानवस्त्रादिकं च शिल्पिने दत्त्वा सहिरण्यां गां गुरवे दद्यात्।

द्वितीय वेदी में देवता का नेत्रोन्मीलन तथा स्नान—

तब दूसरी (मध्य में स्थित) वेदी में 'भद्रं कर्णेभि:'' इस मन्त्र से भद्रासन रखकर 'स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये०'' इस मन्त्र से उसके

---

१. शतं जीव शरदो वर्धमान: शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पति: शतायुषा हविषेमं पुनर्दु: ॥
ऋ० १०।१६१।४; तु० अथर्व० ३।११।४; २०।९६।९।

२ भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा:।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायु: ॥
यजु० २५।२१; तु० ऋ० १।८९।८।

३. स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते
शतिनीभिर्नियुत्वते। तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन् मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥
ऋ० १।१३५।१।

ऊपर प्रागग्र (जिनका अग्रभाग पूर्व की ओर हो ऐसे) कुशों को बिछा कर उनके ऊपर 'प्रणव' (ओङ्कार) का उच्चारण करते हुए देवप्रतिमा को रखकर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर कुङ्कुम (रोरी) से रंगे हुए सूत्र से लिङ्ग को लपेट कर प्रतिमा में अथवा मुखलिङ्ग में सोने की शलाका (सींक) से 'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने:' (ऋ. १।११५।१; यजु० ७।४२; १३।४६) इस आधे मन्त्र को पढ़ते हुए नेत्रों की कल्पना (संरचना) करे। 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो०''[1] इस मन्त्र को पढ़ते हुए नेत्र के ऊपर तथा नीचे पृथक्-पृथक् कमल के दो पुटों (अर्थात् आंख के ऊपर और नीचे की पलकों) की कल्पना (रचना) करे। नेत्र के मध्य में [नेत्र के] तीसरे भाग के बराबर गोलाकार कनीनिका की संरचना करे। उस समय [देवप्रतिमा में नेत्रोन्मीलन काल में] उसके सम्मुख कोई न रहे। [नेत्रों की संरचना होते ही देवप्रतिमा को] अतिशीघ्र सुवर्ण, पायस [खीर], भक्ष्य-भोज्य अन्न तथा दर्पण दिखलावे[2]। तब शिल्पी आचार्य द्वारा कल्पित देवता के नेत्रों के ऊपर अपनी लोहे की छेनी आदि से रेखाएं उकेरे। तब आचार्य देवप्रतिमा में मधु और घृत की मालिश करके 'इमं मे गङ्गे यमुने०''[3] इस मन्त्र से प्रोक्षण (मार्जन) करे। तब मिट्टी आदि से भरे हुए एकादश कलशों के जल से देवप्रतिमा को स्नान करावे। यदि प्रतिमाएं अधिक हों तो मिट्टी आदि से भरे

---

१. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
ऋ० १।३५।२; यजु० ३३।४३; ३४।३१।

२. यह माना जाता है कि ऐसा करने से देवता की दृष्टि सौम्य और शुभ होती है।

३. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥
ऋ० १०।७५।५।

हुए उन एकादश कलशों का कुछ जल बचाकर रख ले और उन प्रतिमाओं के नेत्रों को उल्लिखित (रेखांकित) करने के बाद उस जल से स्नान करावे। तब यजमान सोने की शलाका तथा देवता के स्नान वाले वस्त्र आदि को शिल्पी को देकर गुरु (आचार्य) को सोने सहित गौ का दान करे।

[उत्तरवेद्यां देवस्नपनम्]

गुरु: उत्तरस्यां वेद्यां भद्रासने 'भद्रम्०' इति देवं स्थापयित्वा कलशेन 'समुद्रज्येष्ठा'० इति संस्नाप्य संपूज्य दूर्वाक्षतान्मूर्ध्नि दत्त्वा प्रार्थयेत्—

नमस्तेऽर्चे सुरेशानि प्रकृते विश्वकर्मण: ।
प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नम: ॥
त्वयि संपूजयामीशं नारायणमनामयम् ।
हरिताशेषदोषैस्त्वं ऋद्धियुक्ता सदा भव । इति ।

उत्तरवेदी में देवता का स्नान—

तब गुरु (आचार्य) उत्तरवेदी में भद्रासन के उपर 'भद्रं वद दक्षिणतो०'[1] इस मन्त्र से देवप्रतिमा को स्थापित करके 'समुद्रज्येष्ठा:०'[2] इस मन्त्र से कलशोदक से स्नान करा कर पूजन करके प्रतिमा के मस्तक पर दूर्वा और अक्षत रखकर यह प्रार्थना करे—

१. भद्रं वद दक्षिणतो भद्रमुत्तरतो वद ।
भद्रं पुरस्तान्नो वद भद्रं पश्चात्कपिञ्जल ॥
भद्रं वद पुत्रैर्भद्रं वद गृहेषु च ।
भद्रमस्माकं नो वद भद्रं नो अभयं वद ॥
भद्रमवस्तान्नो वद भद्रमुपरिष्टान्नो वद ।
भद्रं भद्रं न आ वद भद्रं न: सर्वतो वद ॥ ऋ० परि० ४।१-३ ।

२. समुद्रज्येष्ठा: सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमाना: । इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ऋ० ७।४९।१ ।

'विश्वकर्मा द्वारा रचित हे देवेश्वरी अर्चे ! (प्रतिमे !) तुमने निखिल जगत् को प्रभावित किया है। हे धात्रि ! तुमको बारम्बार नमस्कार है।

मैं तुम्हारे विग्रह में निरामय निर्विकार प्रभु नारायण का पूजन करता हूँ। तुम सम्पूर्ण दोषों से रहित होकर सदा ऋद्धियुक्त बनो।'

ततो देवस्य दक्षिणहस्ते प्रतिमावितस्तिमात्रमूर्णासूत्रं 'कनिक्रदद्'० इति मन्त्रेण बध्नीयात् ।

सर्वसत्त्वमयं शान्तं परं ब्रह्म सनातनम् ।
त्वामेवालङ्करिष्यामि त्वं वन्द्यो भवते नम: ॥

इति पठित्वा चतुर्भि: कलशै: स्नापयेत् । 'इदमाप: प्रवहता'० इत्याद्येन, 'आपो न देवी:' इति द्वितीयेन, 'इमं मे गंगे'० इति तृतीयेन 'तत्त्वा यामि'० इति चतुर्थेन, 'अग्निर्मूर्धादिव०' इत्यष्टपलमृत्तिकाकलशेन, 'समुद्रज्येष्ठा ०इति शुद्धोदककलशेन, 'गन्धद्वारा'मिति सप्तपलमितगोमयकलशेन, 'वरुणस्योत्तम्भनमसी'ति शुद्धोदकेन, 'तत्स-

तब देवप्रतिमा के दाहिने हाथ [की कलाई] में उस प्रतिमा के एक वितस्ति (बालिस्त, बित्ता) के बराबर ऊन के धागे को 'कनिक्रदद्०'[1] इस मन्त्र से बांधे। तब—

'सर्वसत्त्वमयं०' इत्यादि (अर्थात् [हे देव ! तुम] सभी सत्त्वों से पूर्ण, शान्त और सनातन परं ब्रह्म हो। मैं तुम्हें अलंकृत करता हूँ। तुम वन्दनीय हो तुम्हें नमस्कार है।)—

यह कह करके [अगले चार मन्त्रों से क्रमश:] चार कलशों से स्नान करावे। 'इदमाप: प्रवहत०'[2] इस मन्त्र से पहले कलश से, 'आपो

१. कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् । सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ ऋ० २।४२।१

२. क-इदमाप: प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम् ॥
ऋ० १।२३।२२; १०।९।९ ।

न देवी०'[1] इस मन्त्र से दूसरे कलश से, 'इमं मे गङ्गे०'[2] इस मन्त्र से तीसरे कलश से तथा 'तत्त्वा यामि०'[3] इस मन्त्र से चौथे कलश से स्नान करावे। तब 'अग्निमूर्द्धा दिव:'[4] इस मन्त्र से आठ पल मिट्टी से भरे हुए कलश से, 'समुद्रज्येष्ठा:'०[5] इस मन्त्र से शुद्धोदक से पूर्ण कलश से, गन्धद्वाराम्०'[6] इस मन्त्र से सात पल गोबर से पूर्ण कलश से, 'वरुणस्योत्तम्भनमसि०'[7] इस मन्त्र से शुद्धोदक से, 'तत्सवितु:०'[8] इस मन्त्र से बारह पल गोमूत्र से पूरित कलश से, 'आपो

(ख) इदमाप: प्र वहतावद्य च मलं च यत्।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्।
आपो मा तस्मादेनस: पवमानश्च मुञ्चतु ॥ यजु० ६।१७।

१. अपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमव: पश्यन्ति विततं यथा रज:।
प्राचैर्देवास: प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥
ऋ० १।८३।२।

२. द्र० पीछे, पृ० ५१ टि० ३।

३. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भि:।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयु: प्र मोषी: ॥
ऋ० १।२४।११; यजु० १८।४९; २१।२।

४. अग्निर्मूर्द्धा दिव: ककुत्पति: पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति ॥
ऋ० ८।४४।१६; यजु० ३।१२; १३।१४; १५।२०।

५. द्र० पीछे, पृ० ५२, टि० २।

६. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ऋ० प० ११।९।

७. वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि
वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमा सीद ॥ यजु० ४।३६।

८. द्र० पीछे—पृ० ४८ टि० ४।

वितु'० रिति द्वादशपलगोमूत्रकलशेन 'आपो हिष्ठे' ति शुद्धोदकेन, 'प्रसद्ये'ति मुष्टिसम्मितभस्मकलशोदकेन, 'यो व: शिवतमो रस०' इति शुद्धोदकेन, 'पय: पृथिव्यामि'ति त्रिपलसम्मितपञ्चगव्यकलशेन, 'देवीराप: सं मधुमतीर्मधुमतीभि: सृज्यध्वम्'० इति शुद्धोदकेन, 'आ प्यायस्वे'ति षोडशपलक्षीरकुम्भेन, 'तस्मा अरं गमाम व०' इति शुद्धोदकेन, 'दधिक्राव्ण'० इति विंशतिपलदधिकुम्भेन, 'युञ्जान'० इत्युदकेन, 'घृतवती भुवनानामि'ति सप्तपलघृतकुम्भेन, 'देवस्य त्वे'ति जलेन, 'मधुवाता'० इति त्रिपलमधुकुम्भेन, 'आपो अस्मानि'ति जलेन, 'आयं गौरि'ति त्रिपलशर्कराकुम्भेन, 'आपो ह यद्बृहतीरि'त्युदकेन

हिष्ठा०'[1] इस मन्त्र से शुद्धोदक से, 'प्रसद्य०'[2] इस मन्त्र से एक मुट्ठी भर भस्म से युक्त कलशोदक से, 'यो व: शिवतमो रस:०'[3] इस मन्त्र से शुद्धोदक से, 'पय: पृथिव्यां०'[4] इस मन्त्र से तीन पल के बराबर

---

१. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥
ऋ० १०।९।१; यजु० ११।५०; ३६।१४।

२. (क) प्र सद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने। संसृज्य मातृभिष्ट्वं
ज्योतिष्मान् पुनराऽसद: ॥ यजु० १२।३८।

२. (ख) प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ। ईडेन्यो
वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥ ऋ० ५।१।९।
भस्म से सम्बन्धित होने के कारण यजुर्वेद का मन्त्र प्रसंगानुकूल
और ग्राह्य है।

३. यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:। उशतीरिव मातर: ॥
ऋ० १०।९।२; यजु० ११।५१; ३६।१५।

४. पय: पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधा:।
पयस्वती: प्र दिश: सन्तु मह्यम् ॥ यजु० १८।३६; तैत्ति०सं० ४।५।७।

पञ्चगव्य से पूरित कलश से, 'देवीरापः सं मधुमती'०[1] इस मन्त्र से शुद्धोदक से 'आ प्यायस्व'०[2] इस मन्त्र से सोलह पल दूध से भरे हुए कुम्भ से, 'तस्मा अरं गमाम वो०'[3] इस मन्त्र से शुद्धोदक से, दधिक्राव्णो०'[4] इस मन्त्र से बीस पल दही से पूरित कलश से, 'युञ्जानः०'[5] इस मन्त्र द्वारा जल से, 'घृतवती भुवनानाम०'[6] इस मन्त्र से सात पल घृत से पूरित कलश से 'देवस्य त्वा'[7] इस मन्त्र से

१. क-देवीरापः सं मधुमतीर्मधुमतीभिः सृज्यध्वं महि वर्चः क्षत्रियाय वन्वाना अनाधृष्टाः सीदतोर्जस्वतीर्महि वर्चः क्षत्रियाय दधतीरनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि शुक्रा वः शुक्रेणोत्पुनामि चन्द्रश्चन्द्रेणामृता अमृतेन स्वाहा राजसूयाय चितानाः ॥ तैत्ति० १।८।१२।१।

शुक्लयजुर्वेद में इस प्रसंग में इसके स्थान पर यह मन्त्र पढ़ा जाता है—

ख-देवीरापो अपान्नपाद्यो व ऊर्म्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥ यजु० ६।२७।

२. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य सङ्गथे। ऋ० १।९१।१६; ९।३१।४; यजु० १२।११२।

३. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥
ऋ० १०।९।३; यजु० ११।५२; ३६।१६।

४. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्
प्रण आयूंषि तारिषत् ॥ ऋ० ४।३९।६; यजु० २३।३२।

५. युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ यजु० ११।१।

६. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी
वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥
ऋ० ६।७०।१; यजु० ३४।४५।

७. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥
यजु० १।१०, २१, २४, इत्यादि, तै० सं० १।१।४।९ इत्यादि।

जल से, 'मधुवाता०'[1] इस मन्त्र द्वारा तीन पल के बराबर मधु से पूर्ण कलश से, 'आपो अस्मान्०'[2] इस मन्त्र से जल से 'आयं गौ'०[3] इस मन्त्र से तीन पल के बराबर शर्करा (चीनी) से पूर्ण कलश से, प्रक्षाल्य 'यज्ञा यज्ञा व'० इति वस्त्रेण सम्मार्ज्य सुगन्धतैलेनाभ्यज्य 'द्रुपदादिवे'ति यवशालिगोधूममसूरबिल्वचूर्णैरुद्वर्त्य 'या ते रुद्र शिवा तनूरि'ति आमलकचूर्णेन यक्षकर्दमेन 'कर्दमेन प्रजाभूते'ति लिम्पेत्।

यक्षकर्दमस्तु—

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ कुङ्कुमस्य च।
चन्दनस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि ॥ इत्युक्तः।

'आपो ह यद् बृहती'०[4] इस मन्त्र के द्वारा जल से प्रतिमा को स्नान करा कर 'यज्ञा यज्ञा वो०'[5] इस मन्त्र को पढ़ते हुए वस्त्र से पोछ कर, सुगन्धित तेल से मालिश कर 'द्रुपदादिव०'[6] इस मन्त्र से जौ, चावल,

१. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीनः सन्त्वोषधीः ॥
ऋ० १।९०।६; यजु० १३।२७।

२. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्र वहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥
ऋ० १०।१७।१०; यजु० ४।२।

३. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥
ऋ० १०।१८९।१; यजु० ३।६।

४. आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
ऋ० १०।१२१।७; यजु० २७।२५।

५. यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं
प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ ऋ० ६।४८।१; यजु० १७।४२।

६. द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ यजु० २०।२०।

गेहूँ तथा मसूर के आटे और बेल के चूर्ण से उबटन लगा कर 'या ते रुद्र शिवा तनू०'[1] इस मन्त्र से आँवले के चूर्ण से उबटन लगावे तथा 'कर्दमेन प्रजा भूता०'[2] इस मन्त्र से यक्षकर्द से लेपन करे।

कस्तूरी के दो भाग, कुङ्कुम के दो भाग, चन्दन के तीन भाग और कपूर के एक भाग से तैयार किये गये लेप को यक्षकर्दंक कहा गया है।[3]

ततो जटामांस्याऽनुलिप्य 'मा नस्तोके०' 'प्रतद्विष्णु'रिति कलशद्वयेन स्नापयित्वा 'अपाम सोमममृता अभूम०' इति पञ्चामृतेन 'तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यताम्'० 'यथा विप्रस्य०' 'संते पयांसि०', 'आ प्यायस्व मदिन्तम सो'० 'अप्स्वग्ने सधिष्टव सौ'०—इति पञ्चभि: शुद्धजलपूरितकलशै क्षालयेत्। 'गन्धद्वारा-मि'ति गन्धोदकेन, 'यज्ञा यज्ञा व'० इति पञ्चपल्लवकषायकल-शोदकेन. 'या ओषधी: पूर्वा जाता'० इत्योषधीकलशेन, 'ओषधी: प्रति मोदध्वमि'ति पुष्पकलशोदकेन. 'या: फलिनीरि'त्यष्टफलकल-

तब देव प्रतिमा में जटामांसी के [चूर्ण का] का अनुलेपन करके दो कलशों के जल से क्रमश: इन दो मन्त्रों–'मा नस्तोके'०[4] तथा

---

१. क—या ते रुद्र शिवा तनू घोराऽपकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि॥ यजु० १६:२।
ख–या ते रुद्र शिवा तनू: शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुद्रस्य भेषजी
तया नो मृड जीवसे॥ तैत्ति० स ४.५.१०.२; तु० यजु० १६।४९।
२. कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥ ऋ० प० ११।११।
३. द्र० पीछे पृ० ४१, टि० २।
४. क–मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिष:।
वीरान् मा रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्त: सदमित् त्वा हवामहे॥
ऋ० १।११४।८।
ख- मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिष:।

'प्र तद्विष्णु:०'से स्नान कराकर 'अपाम सोमममृता अभूम०'[2] इस मन्त्र से पञ्चामृत से स्नान करावे। तब 'तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यताम्०'[3]; 'यथा विप्रस्य'०[4] 'सं ते पयांसि०'[5] 'आ प्यायस्व मदिन्तम०'[6] 'अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु'०[7] इन पाँच मन्त्रों से शुद्ध जल से पूरित [पाँच]

मा नो वीराद् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्त: सदमित् त्वा हवामहे॥
यजु० १६।१६।

१. प्र तद् विष्णु: स्तवते वीर्येण मृगो न भीम: कुचरो गिरिष्ठा:।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥
ऋ० १।१५४।२; यजु० ५।२०।
२. अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान् कृणवदराति: किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य॥
ऋ० ८।४८।३; तै० सं० ३।२।५।४।
३. तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात्।
आप० गृ० सू० १।१३।६; पार० गृ० सू० १।५।११।
४. यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयज: कविभि: कवि: सन्।
एवा होत: सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व। ऋ० १।७६।५।
५. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजा: सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाह:।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व॥
ऋ० १।९१।१८; यजु० १२।११३।
६. क–आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभि:।
भवा न: सुश्रवस्तम: सखा वृधे॥ ऋ० १।९१।१७।
ख–आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिर`शुभि:।
भवा न: सप्रथस्तम: सखा वृधे॥ यजु० १२।११४।
७. अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुन:॥
ऋ० ८।४३।९; यजु० १२।३६।

कलशों से स्नान करावे। 'गन्धद्वाराम्'०[1] इस मन्त्र से गन्धोदक से, 'यज्ञा यज्ञा वो'०[2] इस मन्त्र से पञ्चपल्लव और कषाय से पूर्ण कलश के जल से स्नान करावे। 'या ओषधी पूर्वा जाता०'[3] इस मन्त्र को पढ़ते हुए ओषधी से पूरित कलश के जल से, ओषधीः प्रतिमोदध्वं'०[4] इस मन्त्र से पुष्पों से पूर्ण कलश के जल से, 'याः फलिनीर्या अफला०'[5] इस मन्त्र द्वारा आठ फलों से पूरित कलश के जल से 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे०'[6] इस मन्त्र द्वारा सुवर्णोदक

शोदकेन, 'हिरण्यगर्भ'० इति सुवर्णोदकेन, हविष्मतीरि'ति शृङ्गोदकेन, धान्यमसी'ति धान्योदकेन, 'सहस्राक्षेण'ति सहस्रधाराकलशेन, 'या दिव्या'० इति सर्वौषधिजलेन, नमोऽस्तु सर्पेभ्य'० इति पञ्चपल्लवोदकेन, 'अष्टौ व्यख्यत्ककुभ.'० इति रत्नोदकेन, 'इमं मे गङ्गे'० इति तीर्थोदकेन,

१. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ऋ० प० ११।९।

२ (क) द्र० पीछे पृ० ४८ टि०३।
ख–यज्ञायज्ञा: वः सुमना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे।
आ वोऽर्वाचः सुवितायरोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥
ऋ० १।१६८।१।

३. या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥ ऋ० १०।९७।१ ; यजु० १२।७५।

४. ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः॥ ऋ० १०।९७।३; यजु० १२।७७।

५. याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पति प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ऋ० १०।९७।१५; यजु० १२।८९।

६. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
ऋ० १०।१२१।१; यजु० १३।४; २३।१; २५।१०।

(अर्थात् जिस कलश में सुवर्ण डाला गया हो उसके जल) से, 'हविष्मती०'[1] इस मन्त्र से शृङ्गोदक (शृङ्गपूरित कलश के जल) से, 'धान्यमसि धिनुहि०'[2] इस मन्त्र द्वारा धान्य से पूरित कलश के जल से, सहस्राक्षेण०'[3] इस मन्त्र से सहस्रधारा कलश से, 'या दिव्या०'[4] इस मन्त्र से सर्वौषधीपूरित कलशोदक से, नमोऽस्तु सर्पेभ्य'०[5] इस मन्त्र से पञ्चपल्लवयुक्त कलश के जल से, 'अष्टौ व्यख्यत् ककुभः०'[6] इससे रत्नोदक (रत्नपूरित कलश के जल) से, 'इमं मे गङ्गे०'[7] इस मन्त्र से तीर्थोदक से स्नान करावे।

१. (क) हविष्मतीरिमा आपो हविष्मां २ आ विवासति।
हविष्मान् देवो अध्वरो हविष्मां २ अस्तु सूर्यः॥ यजु० ६।२३।
(ख) हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान् देवो अध्वरो हविष्मां आ विवासति। हविष्मां अस्तु सूर्यः॥ तैत्ति० सं० १।३।१२।१।

२. धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वो दानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि॥ यजु० १।२०।

३. सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम्। शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम्॥ ऋ० १०।१६१।३।

४. या दिव्या वृष्टिस्तया त्वा श्रीणामि॥ तैत्ति० १।४।२२।५।

५. नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥
यजु० १३।६; तै० सं० ४।२।८।७।

६. अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद् दधद् रत्ना दाशुषे वार्याणि॥
ऋ० १।३५।८; यजु० ३४।२४।

७ इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥
ऋ० १०।७५।५।

पुनरष्टभिः कलशैः पूर्वकल्पितैः समुद्रसंज्ञितैः स्नापयेत् । 'कया नश्चित्र'॰ इति क्षारोदकेन ,'आ प्यायस्व समेत्वि'ति क्षीरकुम्भेन, 'दधिक्राव्ण'॰ इति दध्ना, 'घृतवती भुवनानामि'ति घृतस्य, 'पयः पृथिव्यामि'तीक्षुरसस्य, 'देवं बर्हिरि'ति सुरोदकस्य, 'स्वादिष्ठये'ति स्वादूदकस्य, 'सरस्वती योन्यामि'ति गर्भोदकस्य ।

तदनन्तर पूर्वस्थापित [वेदी के बाहर आठों दिशाओं में स्थापित] समुद्रसंज्ञक आठों कलशों से [क्रमशः निम्नलिखित मन्त्रों से] स्नान करावे—

'कया नश्चित्र॰'[1] इस मन्त्र को पढ़ते हुए क्षारोदक (खारे जल) से, 'आ प्यायस्व समेतु॰'[2] इस मन्त्र से क्षीर (दूध) से भरे हुए कलश से, 'दधिक्राव्ण॰'[3] इस मन्त्र से दही से पूर्ण कलश से, घृतवती भुवनानाम्॰'[4] इस मन्त्र से घृतपूर्ण कलश से, 'पयः पृथिव्याम्॰'[5] इस मन्त्र से ईख के रस से पूर्ण कलश से स्नान करावे । 'देवबर्हि॰'[6]

---

१. कया नश्चित्र आ भुव दूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥
ऋ॰ ४।३१।१; यजु॰ २७।३९;३६।४ ।

२. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥
ऋ॰ १।९१।१६; यजु॰ १२।११२ ।

३. दधि क्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥
ऋ॰ ४।३९।६; यजु॰ २३।३२ ।

४. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥
ऋ॰ ६।७०।१; यजु॰ ३४।४५ ।

५. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ यजु॰ १८।३६ ।

६ (क) देवबर्हिर्मा त्वान्वङ् मा तिर्यक्.......... ॥ तै॰सं॰ १।१।२.५ ।

अथवा (ख) देवबर्हिः शतवल्शं वि रोह.......... ॥ तै॰ सं॰ १।१।२।८ ।

इस मन्त्र से सुरा से पूर्ण कलश से, 'स्वादिष्ठया॰'[1] इस मन्त्र से स्वादु (स्वादिष्ट) जल से पूरित कलश से और 'सरस्वती योन्याम्॰'[2] इस मन्त्र को पढ़ते हुए गर्भोदक (अर्थात् नारियल के भीतर से निकाले हुए जल) से या दर्भोदक (कुशोदक) से देवप्रतिमा को स्नान करावे ।

पुनर्दशभिः पल्लवैर्लोकपालकलशैः स्नापयेत् । तत्र 'त्रातारमिन्द्रमि'ति कदम्बपल्लवकुम्भोदकेन, 'त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्, इति शाल्मलीपल्लवेन, 'सुग नः पन्थामभयं कृणोत्वि'ति जम्बूपल्लवेन, असुन्वन्तमयजमानमि'ति अशोकपल्लवेन, 'तत्त्वायामी'॰ति प्लक्षेण, वायो ये ते सहस्रिण॰' इति चूतपल्लवेन, 'वयं सोमे'ति वटपल्लवेन, 'तमीशानमि'ति विल्वपत्रेण, 'नमोऽस्तु सर्पेभ्य'॰ इति नागकेसरपल्लवेन 'ब्रह्मजज्ञानमि'ति पलाशपल्लवेन ।

तब फिर दश प्रकार के पल्लवों से पूरित पृथक् पृथक् कलशों के जल से क्रमशः स्नान करावे । उनमें से 'त्रातारमिन्द्र॰'[3] इस मन्त्र से कदम्ब के पल्लवों से युक्त कलश के जल से 'त्वन्नो अग्ने वरुणस्य

(ग) देवं बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् । घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥ ऋ॰ २।३।४ ।

(घ) देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना ।
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥
यजु॰ २१।४८ ।

१. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥
ऋ॰ ९।१।१; यजु॰ २६।२५ ।

२. सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपां रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥
यजु॰ १९।९४ ।

३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥
ऋ॰ ६।४७।११; यजु॰ २०।५० ।

विद्वान्०"[1] इस मन्त्र से शाल्मली के पल्लवो से युक्त कलश के जल से. 'सुगं नः पन्थामभयं कृणोतु०"[2] इस मन्त्र से जामुन के पल्लवों से युक्त कलश के जल से, 'असुन्वन्तमयजमान०"[3] इस मन्त्र से अशोक के पल्लवों से युक्त कलशोदक से. 'तत्त्वा यामि०"[4] इस मन्त्र से प्लक्ष (पाकड़) के पल्लवों से युक्त कलश के जल से, 'वायो ये ते सहस्रिण०"[5] इस मन्त्र से आम के पल्लवों से पूरित कलश के जल से 'वयं सोम०"[6] इस मन्त्र से वट (बरगद) के पल्लवों से युक्त कलश के जल से, 'तमीशानं०"[7] इस मन्त्र से बिल्वपत्र युक्त कलशोदक से. नमोऽस्तु

---

१. त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥
ऋ० ४।१।४; यजु० २१।३ ।

२. सुगं नः पन्थामभयं कृणोतु यस्मिन् नक्षत्रे यम एति राजा । यस्मिन्ने-
जनभ्यषिञ्चन्त देवाः तदस्य चित्रं हविषा यजामः ॥ तै० ब्रा० ३ ।

३. (क) असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥
यजु० १२।६२ ।

(ख) असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यां तस्करस्यान्वेषि ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥
तै० सं० ४।२।५।१० ।

४. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥
ऋ० १।२४।११; यजु० १८।४९; २१।२ ।

५. वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान् त्सोमपीतये ॥
ऋ० २।४१।१; यजु० २७।३२ ।

६. वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥
ऋ० १०।५७।६; यजु० ३।५६ ।

७. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥
ऋ० १।८९।५; यजु० २५।१८ ।

ततः सुमङ्गलघोषैः—

'कनिक्रदद्'ति चतुर्भिः कुम्भैः एकेन वा कुम्भेन देवं स्नापयित्वा सुगन्धिना सितवस्त्रेण परिमृज्य 'विश्वतश्चक्षुरि'ति सकलीकृत्य'

सर्पेभ्यः[2] इस मन्त्र से नागकेसर के पल्लवों से पूरित (भरे हुए) जल से और 'ब्रह्म जज्ञानं"[3] इस मन्त्र से पलाश के पल्लवों से पूरित कलश के जल से स्नान करावे ।

तब शङ्ख, भेरी आदि माङ्गलिक वाद्यों का वादन करवाते हुए 'कनिक्रदत्'[4] इत्यादि मन्त्रों से चार कलशों के जल से अथवा (यदि चार कलशों के स्थानापन्न रूप में केवल एक कलश को स्थापित

---

१. सकलीकृत्य—पाठान्तर ।

२. नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥
(यजु० १३।६; तैत्ति० सं० ४।२।८।७)

३. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आ वः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥
(यजु० १३।३; तै० सं० ४।२।८।४।)

४. कनिक्रदज्जनुषं प्र ब्रुवाण इयर्ति
वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा
का चिदभि मा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥
मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो
मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्
सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
अवक्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माऽघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥
ऋ० २।४२।१-३

किया गया हो तो) एक कलश के जल से देव-प्रतिमा का स्नपन करके (स्नान करवा के) उसे शुद्ध और इत्र आदि से सुवासित श्वेत वस्त्र से पोंछकर 'विश्वतश्चक्षु०'[1] इस मन्त्र से सकलीकरण करे।[2] इसकी विधि नीचे दी गयी है—

सकलीकरण—

ॐ विश्वतश्चक्षु० हृदयाय नमः।
,, ,, शिरसे स्वाहा।
,, ,, शिखायै वषट्।
,, ,, कवचाय हुम्।
,, ,, नेत्राभ्यां (नेत्रत्रयाय) वौषट्।
,, ,, अस्त्राय फट्।

शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा में सकलीकरण—

शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा में सकलीकरण की विधि दक्षिणामूर्ति-कल्प संज्ञक ग्रन्थ के अधोलिखित श्लोक में दी गयी है—

हृदयं चाग्निदिग्भागे ईशाने च शिरो न्यसेत्।
शिखां नैर्ऋतदिग्भागे वायव्ये कवचं न्यसेत् ॥
अस्त्रं यजेत् (न्यसेत) महादिक्षु नेत्रमीशानगोचरे ॥

---

१. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥
ऋ० १०८१३; मजु० १७.१९।

२. देवता के शरीर (अर्चाविग्रह) में षडङ्गों का न्यास सकलीकरण कहलाता है—
देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिः ॥ शारदातिलक २३।११०
सकलीकरणम्—पूर्णरूपत्वेनावस्थिति प्रार्थनम्। तच्च देवताङ्गे षडङ्ग-न्यासाद् भवति।—द्र० शारदातिलक ४।९० पर राघवभट्ट कृत व्याख्या।

इन वचनों के अनुसार शिवलिङ्ग के चारों ओर चारों दिशाओं में सकलीकरण का क्रम अधोलिखित चक्र में देखा जा सकता है—

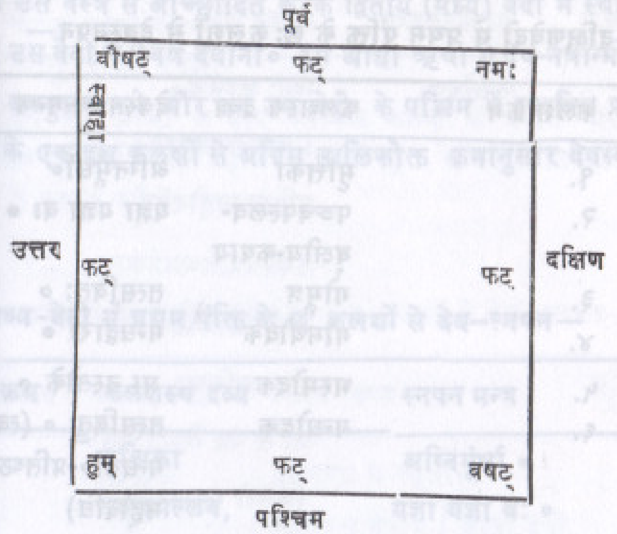

उपर्युक्त विधि से सकलीकरण शिवलिङ्ग में उपर्युक्त चक्रानुसार इस प्रकार किया जायेगा—

विश्वतश्चक्षु०	हृदयायः नमः	(आग्नेय्याम्)।
,,	शिरसे स्वाहा	(ऐशान्याम्)।
,,	शिखायै वषट्	(नैर्ऋत्याम्)।
,,	कवचाय हुम्	(वायव्याम्)।
,,	अस्त्राय फट्	(महादिक्ष्-पूर्वादिमहादिक्षु)।
,,	नेत्रत्रयाय वौषट्	(ऐशान्याम्)।

देव-स्नपन-विधि

वेदिका-त्रय में स्थाप्य कलशों के क्रम तथा कलशस्थ द्रव्य और स्नपन मन्त्रों का प्रतिष्ठामयूखोक्त विवरण नीचे की सूची में प्रस्तुत किया जा रहा है। देव-स्वपन मन्त्रों में प्रतिष्ठामहोदधि, प्रभुविद्या-

प्रतिष्ठार्णव और सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश में जहाँ अन्तर है वहाँ कोष्ठक में उनके द्वारा प्रदत्त मन्त्र का निर्देश कर दिया गया है।

दक्षिणवेदी में प्रथम पंक्ति के छः कलशों से देवस्नपन—

कलश क्रम	कलशस्थ द्रव्य	देवस्नपन-मन्त्र
१.	मृत्तिका	अग्निर्मूर्धा०
२.	पञ्चपल्लव-वृक्षीय-कषाय	यज्ञा यज्ञा वः ०
३.	गोमूत्र	तत्सवितुः ०
४.	गोमयोदक	गन्धद्वारां ०
५.	भस्मोदक	मा नस्तोके ०
६.	गन्धोदक	तत्सवितुः ० (त्वां गन्धर्वा०-प्रतिष्ठा-महोदधि)

दक्षिणवेदी में द्वितीय पंक्तिस्थ पञ्चदेवत्य पञ्चकलशों से देवस्नपन—

कलशक्रम	कलशस्थ द्रव्य	देवस्नपन-मन्त्र
१.	गन्धोदक	नमःशम्भवे० (नमःशम्भवाय०-प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, प्रतिष्ठामहोदधि, सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश)
२.	,,	हंसः शुचिषद् ०
३.	,,	या ते रुद्र शिवा तनू ०
४.	,,	विष्णो रराटमसि ०
५.	,,	ब्रह्म जज्ञानं ०

तत्पश्चात् 'शतं जीव शरदो वर्धमानः'० (प्रतिष्ठामहोदधि के अनुसार तच्चक्षुर्देवहितं ०) इस मन्त्र से देव-प्रतिमा का पूजन करके उसे वस्त्र से आच्छादित करके द्वितीय (मध्य) वेदी में स्थापित करे। उस वेदी में 'चित्रं देवानां०' इस आद्यी ऋचा से देव-नेत्रोन्मीलन करके अभ्युक्षण करे और तब उस वेदी के पश्चिम में स्थापित प्रथम पंक्ति के एकादश कलशों से अग्रिम तालिकोक्त क्रमानुसार देवस्नपन करे।

मध्य-वेदी में प्रथम पंक्ति के छः कलशों से देव-स्नपन—

कलशक्रम	कलशस्थ द्रव्य	स्नपन मन्त्र
१.	मृत्तिका	अग्निर्मूर्धा ०
२.	पञ्चपल्लव, वृक्षीय कषाय	यज्ञा यज्ञा वः ०
३.	गोमूत्र	तत्सवितुः ०
४.	गोमयोदक	गन्धद्वारां ०
५.	भस्मोदक	मा नस्तोके ० (प्रसद्य भस्मना ० - प्रतिष्ठामहोदधि)
६.	गन्धोदक	तत्सवितुः० (गन्धद्वारां०- प्रतिष्ठामहोदधि)

मध्यवेदो में द्वितीय पंक्ति के पञ्च कलशों से देव-स्नपन—

कलशक्रम	कलशस्थद्रव्य	स्नपन मन्त्र
१.	गन्धोदक	नमः शम्भवे० (नमःशम्भवाय०-प्रतिष्ठामहोदधि, सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)
२.	,,	हंसः शुचिषद् ०
३.	,,	या ते रुद्र शिवा तनू०
४.	,,	विष्णो रराटमसि०
५.	,,	ब्रह्म जज्ञान०

उत्तरवेदी में देव-स्नपन—

तब देवप्रतिमा को उत्तर-वेदी में भद्रासन में स्थापित करके 'समुद्रज्येष्ठा'० इस मन्त्र से एक लौकिक कलश के जल से स्नान करावे (प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव के अनुसार 'समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा०' इस मन्त्र से स्नपन करे, जबकि प्रतिष्ठामहोदधि और सर्वदेवप्रतिष्ठा-

प्रकाश के अनुसार

'समुद्र ज्येष्ठा०,'
'या आपो दिव्या०'
'यासां राजा वरुणो०'
'यासु राजा वरुणो०

इन चार मन्त्रों से चार लौकिक कलशों से स्नान करावे)। तब देव-प्रतिमा के दाँये हाथ में ऊर्णा सूत्र बाँधकर निम्नलिखित क्रम से स्नपन करे।

उत्तरवेदो में द्वितीय पंक्ति के चार कलशों से देव-स्नपन—

कलशक्रम	कलशस्थ द्रव्य	स्नपन-मन्त्र
१.	शुद्धोदक	इदमापः प्र वहता०
२.	,,	आपो न देवी० (आपो देवी प्रतिगृभ्णीत०-प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, प्रतिष्ठामहोदधि)
३.	,,	इमं मे गङ्गे० (इमं मे वरुण०-प्रभु-विद्याप्रतिष्ठार्णव, सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, प्रतिष्ठामहोदधि)
४.	,,	तत्त्वा यामि०

उत्तरवेदी में क्रमशः प्रथम पंक्ति और द्वितीय पंक्ति के एक-एक कलश से स्नपन—

पंक्ति	पंक्तिस्य कलश क्रम	कलशस्थ द्रव्य	स्नपन मन्त्र
प्रथम	१.	अष्टपल मृत्तिका	अग्निर्मूर्धा०
द्वितीय	५	शुद्धोदक	समुद्रज्येष्ठा० (समुद्रादूर्मिर्मधुमां०–सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, वरुणस्योत्तम्भन०–प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, देवस्य त्वा ०–प्रतिष्ठामहोदधि)
प्रथम	२.	सप्त पल गोमय	गन्धद्वारां०
द्वितीय	६.	शुद्धोदक	वरुणस्योत्तम्भन० (देवीरापो अपान्नपाद्०–प्रभुविद्याप्रति०
प्रथम	३.	द्वादश पल गोमूत्र	तत्सवितुः०
द्वितीय	७.	शुद्धोदक	आपो हि ष्ठाः०
प्रथम	४.	मुष्टि-सस्मित भस्म-मिश्रित जल	प्रसद्य भस्मना०
द्वितीय	८.	शुद्धोदक	यो वः शिवतमो रसः० (शन्नो देवी ०–प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)
प्रथम	५.	त्रिपल पञ्चगव्य	पयः पृथिव्यां ०

१	२	३	४
द्वितीय	९.	शुद्धोदक	देवीरापः सं मधुमती० (देवीरापो अपान्नपाद्०–प्रतिष्ठामहोदधि, सर्वदेव-प्रतिष्ठाप्रकाश , —यो वः शिवतमो०-प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)
प्रथम	६.	षोडश पल दुग्ध	आ प्यायस्व ०
द्वितीय	१०.	शुद्धोदक	तस्मा अरं गमाम व०
प्रथम	७.	विंशति पल दधि	दधि क्राव्णो०
द्वितीय	११.	शुद्धोदक	युञ्जान० (तत्त्वा यामि०–प्रतिष्ठामहोदधि)
प्रथम	८.	सप्तपलघृत	घृतवती भुवनाना०
द्वितीय	१२.	शुद्धोदक	देवस्य त्वा०
प्रथम	९.	त्रिपल मधु	मधुवाता०
द्वितीय	१३.	शुद्धोदक	आपो अस्मान्०
प्रथम	१०.	त्रिपल शर्करा	आयं गौ ० (अपां रसमुद्वय०–प्रतिष्ठा-महोदधि)
द्वितीय	१४.	शुद्धोदक	आपो ह यद् बृहती० (शुद्धवालः ०–प्रतिष्ठामहोदधि)

तब देव-प्रतिमा का 'यज्ञा यज्ञा वो०' इस मन्त्र से प्रमार्जन, 'द्रुपदादिव०' इस मन्त्र से यवादि चूर्ण से उद्वर्तन, 'या ते रुद्र०' इस मन्त्र से आमलक चूर्ण से उद्वर्तन, 'कर्दमेन प्रजा०' इस मन्त्र से उपलेपन और तब जटामांसी से अनुलेपन करके अधोलिखित क्रम से एकादश कलशों से स्नपन करे—

उत्तरवेदी में तृतीय पंक्ति के एकादश कलशों से देव-स्नपन—

कलश क्रम	कलशस्थ द्रव्य	स्नपन-मन्त्र
१.	शुद्धजल	आ वस्तोके०
२.	शुद्धजल	प्रतद् विष्णुः०
३.	पञ्चामृत	अपाम सोमममृता० (पञ्चनद्यः०-सर्वदेव-प्रतिष्ठा०, आ प्यायस्व समेतु०-प्रभुविद्या प्रतिष्ठार्णव)
४.	शुद्धजल	तदयं राजा वरुणो०
५.	,,	यथा विप्रस्य०
६.	,,	सं ते पयांसि०
७.	,,	आ प्यायस्व मदिन्तम०
८.	,,	अप्स्वग्ने सधिष्टव०
९.	गन्धोदक	गन्धद्वारां०
१०.	पञ्चपल्लव-वृक्षकषायोदक	यज्ञा यज्ञा वो०
११.	सर्वौषधी	या ओषधीः पूर्वा जाता०

प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में पञ्चामृतस्नानोपरान्त पाँच कलशों से शुद्धोदक स्नान क्रमशः 'उरूँ हि राजा०' 'सं ते पयांसि०' 'आ प्यायस्व०' 'अप्स्वग्ने०' और 'अपाँ रस०' इन पाँच मन्त्रों से विहित है। सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश में पञ्चामृत-स्नानोपरान्त दुग्ध, दधि, घृत आदि से पृथक्-पृथक् स्नान भी विहित है।

प्रतिष्ठामहोदधि में एकादश कलश द्रव्य और उनसे स्नपन के मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं— (१) दुग्ध-'पयः पृथिव्यां०,' (२) शुद्धोदक-'देवस्य त्वा०', (३) दधि-'दधिक्राव्णो०', (४) शुद्धोदक-'आपो हि ष्ठा:०', (५) घृत-घृतमिमिक्षे०', (६) शुद्धोदक-'यो वः शिवतमो०', (७) मधु-'मधु वाता०', (८) शुद्धोदक-'तस्मा अरं०', (९) शर्करा-'अपाँ रस०', (१०) शुद्धोदक-'आपो अस्मान्०', (११) पञ्च-पल्लव कषाय-'यज्ञा यज्ञा वो०। तदनन्तर प्रमार्जन, अभ्यञ्जन और उद्वर्तन आदि का भी विधान प्रतिष्ठा-महोदधि में है।

उत्तरवेदी में चतुर्थ पंक्तिस्थ दश कलशों से देव-स्नपन—

कलश क्रम	कलशस्थ द्रव्य	स्नपन-मन्त्र
१.	पुष्पोदक	ओषधीः प्रतिमो० (तब 'द्यौः शान्ति०' से स्नान-प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)
२.	फलाष्टकोदक	याः फलिनी०
३.	सुवर्णोदक	हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे०
४.	गोशृङ्गोदक	हविष्मतो०
५.	धान्योदक	धान्यमसि०
६.	सहस्रधारा	सहस्राक्षेण० (सहस्राणि सहस्रशो बाह्वो०-प्रतिष्ठामहोदधि, सर्वदेवप्रतिष्ठाप्र०, अग्ने सहस्व०-प्रभुविद्याप्रतिष्ठा०)
७.	सर्वौषधी जल	या दिव्या० (या ओषधी पूर्वा जाता०-प्रतिष्ठामहो० सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, या ओषधीः सोमराज्ञी०-प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)
८.	पञ्चपल्लवोदक	नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० (अश्वत्थे वो०-प्रतिष्ठा-महोदधि, तब 'काण्डात् काण्डात्०' से दूर्वोदक स्नान-प्रतिष्ठामहोदधि और सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश)
९.	नव-रत्नोदक	अष्टौ व्यख्यत् ककुभः०
१०.	तीर्थोदक	इमं मे गङ्गे० (इमं मे वरुण०-प्रभुविद्या-प्रति०, ये तीर्थानि०-प्रतिष्ठामहो०)

उत्तरवेदी के बाहर आठ दिशाओं में स्थापित समुद्र-कलशों से देव-स्नपन—

कलशक्रम और दिशा	कलशस्थ द्रव्य	स्नपन-मन्त्र
१. पूर्व	क्षारोदक	कया नश्चित्र०
२. आग्नेय	क्षीर (दुग्ध)	आ प्यायस्व समेतु०
३. दक्षिण	दधि	दधि क्राव्णो०
४. नैर्ऋत	घृत	घृतवती० (घृतं मिमिक्षे ० – प्रतिष्ठामहोदधि)
५. पश्चिम	इक्षुरस	पयः पृथिव्यां० (अपां रस०–प्रतिष्ठामहोदधि)
६. वायव्य	सुरोदक	देव बर्हि० (देवं बर्हिर्वारितीनां०– सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, –प्रभुविद्याप्र०, देवं बर्हिः सरस्वती०– प्रतिष्ठामहो०)
७. उत्तर	स्वादूदक	स्वादिष्ठया०
८. ईशान	गर्भोदक (नारिकेलज) या दर्भोदक	सरस्वती योन्यां०

उत्तरवेदी में पञ्चम पंक्तिस्थ लोकपाल कलशों से देव-स्नपन—

कलश क्रम	कलशस्थ द्रव्य	स्नपन-मन्त्र
१.	कदम्ब पल्लवोदक	त्रातारमिन्द्र०
२.	शाल्मलि-पल्लवोदक	त्वन्नो अग्ने वरुणस्य०
३.	जम्बू-पल्लवोदक	सुगं नः पन्थाम० (सुगं नः पन्थां प्रदि०–सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, यमाय त्वाङ्गिरस्वते०–प्रतिष्ठामहोदधि, प्रभुविद्या०)
४.	अशोक पल्लवोदक	असुन्वन्तमयजमान०
५.	प्लक्ष-पल्लवोदक	तत्त्वा यामि ०
६.	आम्र-पल्लवोदक	वायो ये ते सहस्रिण० (आ नो नियुद्भिः०-सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)
७.	वट-पल्लवोदक	वयं सोम०
८.	बिल्व-पल्लवोदक	तमीशानं०
९.	नागकेसर-पल्लवोदक	नमोऽस्तु सर्पेभ्यो:०
१०.	पलाश-पल्लवोदक	ब्रह्म जज्ञानं० (तब रुद्र की स्थापना में–त्र्यम्बकं यजामहे ०–इस मन्त्र से रुद्राक्षपत्रजल से स्नान–सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश और प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)

उत्तरवेदी में षष्ठ-पंक्तिस्थ एक या चार मङ्गल कलशों से देव स्नपन—

कलश	स्नपन मन्त्र
एक या चार मङ्गलकलश	कनिक्रदज्जनुषं० इत्यादि चार मन्त्र (आ नो भद्रा० इत्यादि प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, विष्णु का पुरुषसूक्त और शिव का रुद्र सूक्त–सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, प्रतिष्ठा–महोदधि)

[देवस्याऽऽवाहनं पूजनञ्च—]

देवमावाहयेत्—

एह्येहि भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकाम्यया ।
यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोऽस्तु ते ।।

'हिरण्यवर्णा'मिति पाद्यम् । 'हिरण्यवर्णाः शुचय०' इत्यर्घ्यम् । 'विभ्राट् बृहत्पिबत्वित्याचमनीयम् । 'त्र्यम्बकमि'ति चन्दनम् ।' अभि वस्त्रा' इति वस्त्रम् । 'वेदाहमेतं पुरुषमि'त्युपवीतं तेनैव उत्तरीयं च । 'इदं विष्णुरि'ति पुष्पम् । 'धूरसि धूर्वे'ति धूपम् । 'चन्द्रमा मनस०' इति दीपम् । 'अन्नपतेऽन्नस्ये'ति नैवेद्यम् । आचमनं पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रार्थनां कृत्वा स्नानवस्त्रनैवेद्यादिकं शिल्पिने दद्यात् । इति देवस्नपनविधिः ।

स्थाप्य देवता का आवाहन और पूजन—

तब देवता का आवाहन इस (आशय के) मन्त्र से करे—

हे भगवन् विष्णो ! आप लोक के ऊपर अनुग्रह करने की कामना से यहाँ (—इस मूर्ति में) आवें । इस यज्ञ का भाग ग्रहण करें । हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है ।

यह मन्त्र विष्णु के आवाहन का है । अन्य देवताओं के आवाहन में 'विष्णो' 'वासुदेव' आदि के स्थान पर तत्तद् देवता के सम्बोधनान्त नामों का ऊह कर लेना चाहिए । यथा—

शिव के आवाहन में—

एह्येहि भगवन् शम्भो लोकानुग्रहकाम्यया ।
यज्ञभागं गृहाणेमं महादेव नमोऽस्तु ते ।।

दुर्गा के आवाहन में—

एह्येहि भगवत्यम्बे लोकानुग्रहकाम्यया ।
यज्ञभागं गृहाणेमं दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।।

अन्य देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा में भी इसी प्रकार से उनका नाम जोड़कर आवाहन मन्त्र पढ़ना चाहिए ।

[उपर्युक्त मन्त्र से आवाहन करके] 'हिरण्यवर्णां०'[1] इस मन्त्र से

१. हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् । चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।। ऋ० परि० ११।१

पाद्य और 'हिरण्यवर्णाः शुचयः०'[1] इस मन्त्र से अर्घ्यप्रदान करे । 'विभ्राड् बृहत् पिबतु०'[2] इस मन्त्र से आचमन करावे । 'त्र्यम्बकं०'[3] इस मन्त्र से गन्ध (चन्दन) चढ़ावे (लगावे) । 'अभि वस्त्रा०'[4] इस मन्त्र से वस्त्र पहनावे । 'वेदाहमेतं पुरुष०'[5] इस मन्त्र से यज्ञोपवीत और उत्तरीय प्रदान करे । 'इदं विष्णुः०'[6] इस मन्त्र से पुष्प चढ़ावे ।

१. हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः ।
अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शँ स्योना भवन्तु ।।
तैत्ति० सं० ५।६।१।१

२. विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभि रक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति ।।
ऋ० १०।१७०।१ ; यजु० ३३।३०।

३. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।। ऋ० ७।५९।१२ ; यजु० ३।६०

४. अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाऽभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ।। ऋ० ९।९७।५०।

५. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।
यजु० ३१।१८ ।

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।
ऋ० प० ३३।८।

६. (क) इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे ।।
ऋ० १।२२।१७।

(ख) इदं विष्णु ··· ··· ··· ··· पाँसुरे स्वाहा ।। यजु० ५।१५

यह मन्त्र विशेषतः विष्णु की स्थापना में प्रयुक्त होगा । अन्य देवों की स्थापना में तत्तद्देवता से सम्बन्धित मन्त्र प्रयुक्त होगा अथवा उक्त मन्त्र के स्थान में निम्नलिखित मन्त्र से पुष्पाञ्जलि दी जायेगी—

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ।। ऋ० १०।९७।३; यजु० १२।७७

अथ पुरुषसूक्तेन देवं स्तुत्वा—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तमुत्थिते चोत्थितं जगत् ।।

"धूरसि धूर्वं०"[1] इस मन्त्र से धूप, 'चन्द्रमा मनसो०'[2] इस मन्त्र से दीप और 'अन्नपतेऽन्नस्य०'[3] इस मन्त्र से नैवेद्य प्रदान करे। तब आचमन कराकर, पुष्पाञ्जलि देकर, प्रार्थना करके देवता के स्नान का वस्त्र और नैवेद्य आदि शिल्पी को प्रदान करे। इस प्रकार देवस्नपन विधि सम्पन्न हुई।

तदनन्तर देवता की पुरुषसूक्त (ऋ० १० ।९।१–१६; यजु० ३१।१–१६) से स्तुति करके [उस स्नानमण्डप से प्रतिष्ठामण्डप में ले जाने के लिए उठाते समय] 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ'० (अर्थात् हे जगत् के स्वामी ! हे गोविन्द ! आप उठिये। निन्द्रा का त्याग कीजिए। आपके शयन करने पर समस्त जगत् सो जाता है और आपके जागृत होने पर समस्त जगत् भी जग जाता है) इस प्रकार प्रार्थना करे। सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश के अनुसार—

ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उपप्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ।
(ऋ० १।४०।१; यजु० ३४।५६; तै० आ० ४।२।२)

---

१. धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्वं तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।
देवानामसि वह्नितम सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतम देवहूतमम् ।।
यजु० १।८(तुलनीय–तै० स० १ १।४।४) ।

२. (क) चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।।
ऋ० १०।९०।१३ ।

(ख) चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।। यजु० ३१।१२ ।

३. अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।।
यजु० ११।८३; तै० सं० ४।२।३।१

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ।।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ संसारे त्यज निद्रां जगत्पते ।
साधवः संप्रतीक्षन्ते त्वद्दर्शनमहोत्सवाः ।।
त्वयि सुप्ते जगत् सुप्तमुत्थिते चोत्थितं जगत् ।।

इन उपर्युक्त वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रों को पढ़ते हुए देव-प्रतिमा को स्नानमण्डप से उठाकर यागमण्डप (प्रतिष्ठामण्डप) में ले जावे।

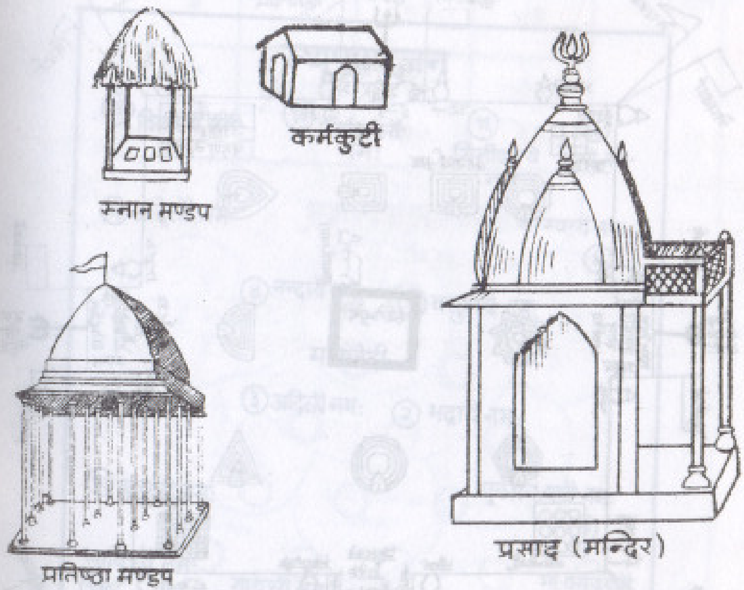

[प्रतिष्ठामयूखानुसार समग्र प्रतिष्ठा–मण्डप (यागमण्डप) की स्थिति नीचे दिये हुए चक्र में दिखलाई गयी है। इस चक्र में सर्वतोभद्रवेदी के बाहर चारों ओर नौ कुण्ड दिखलाये गये हैं जिनमें

पूर्व के कुण्ड और ईशान दिशा के कुण्ड के मध्य में आचार्यकुण्ड है। पञ्चकुण्डी पक्ष में केवल चार दिशाओं में चार कुण्डों के अतिरिक्त एक आचार्यकुण्ड होगा। एककुण्डी पक्ष में एकमात्र आचार्यकुण्ड बनेगा।]

प्रतिष्ठामण्डप

(प्रतिष्ठामयूखानुसार सम्पादकद्वारा विरचित चक्र)

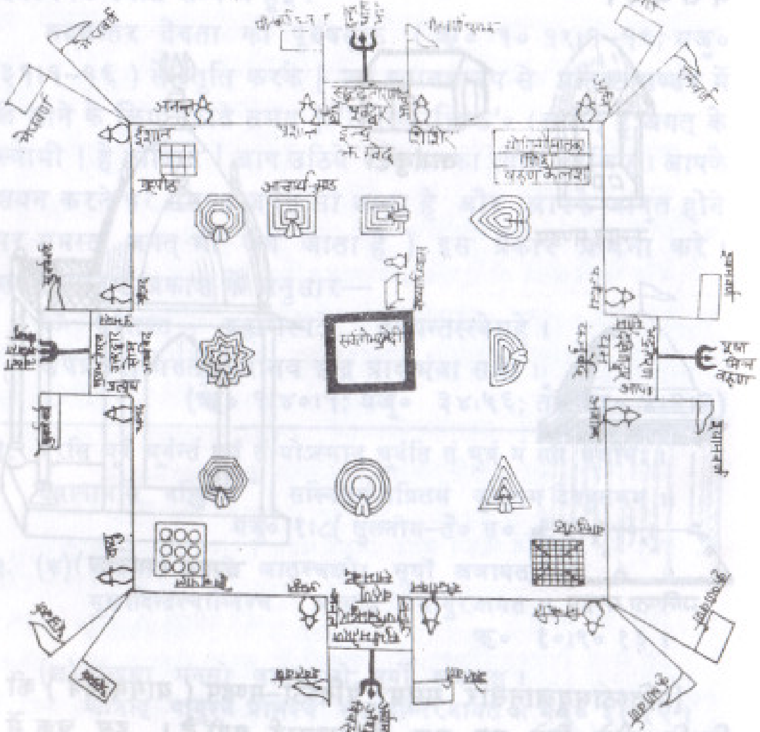

पीछे (पृ० ८१ में) प्रदर्शित प्रतिष्ठामण्डप (यागमण्डप) के चित्र में जो षोडश स्तम्भ (स्थूणा) प्रदर्शित हैं उनको यागमण्डप (प्रतिष्ठामण्डप) में क्रमिक स्थिति और उनके नाम (नामन्त्रों में) अधोलिखित स्थूणा-पूजन-चक्र में प्रदर्शित हैं। [स्थूणा-पूजन की विधि पीछे पृ० १३-१४ में दी गयी है।]।

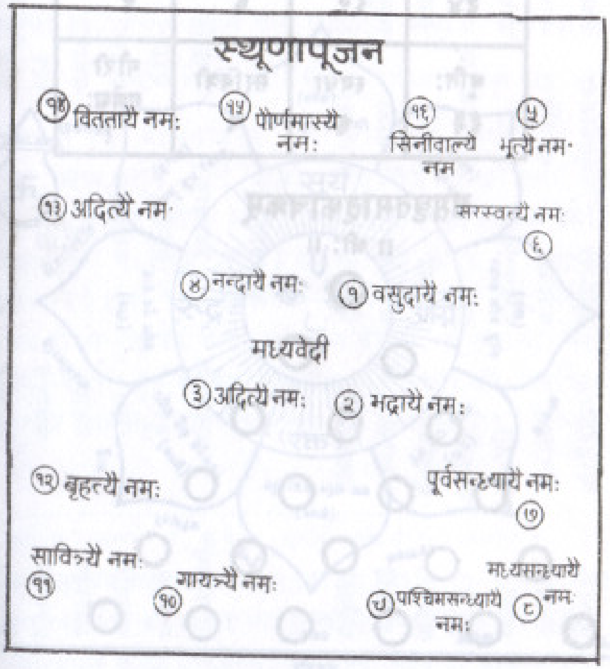

षोडशमातृकाचक्रम्

आत्मनः कुलदेवता १६	लोकमातरः १२	देवसेना ८	मेधा ४
तुष्टिः १५	मातरः ११	जया ७	शची ३
पुष्टिः १४	स्वाहा १०	विजया ६	पद्मा २
धृतिः १३	स्वधा ९	सावित्री ५	गौरी गणेशः १

सप्तघृतमातृकाचक्रम्

॥ श्रीः ॥

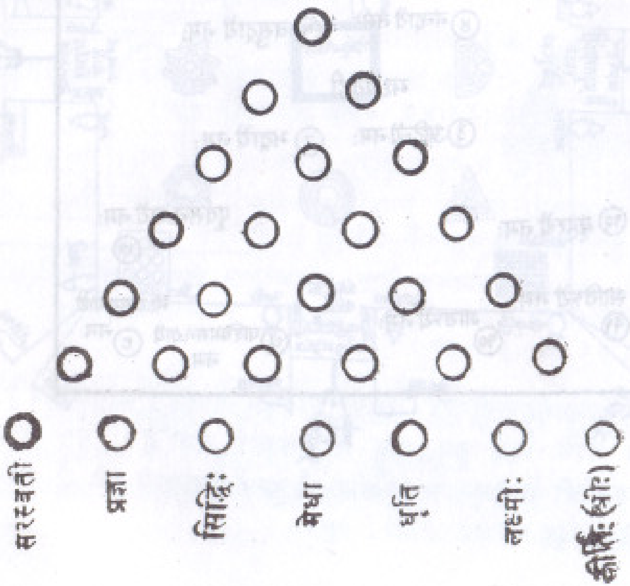

प्रतिष्ठामण्डप (यागमण्डप) के ईशान भाग में ग्रहपीठ में ग्रहस्थापन किया जाता है। अधोलिखित चक्र में नवग्रहों, अधिदेवताओं, प्रत्यधिदेवताओं, विनायकादि पञ्च-लोकपालों, वास्तोस्पति, क्षेत्राधिपति और दिक्पालों की स्थिति दिखलायी गयी है।

नवग्रहचक्रम्

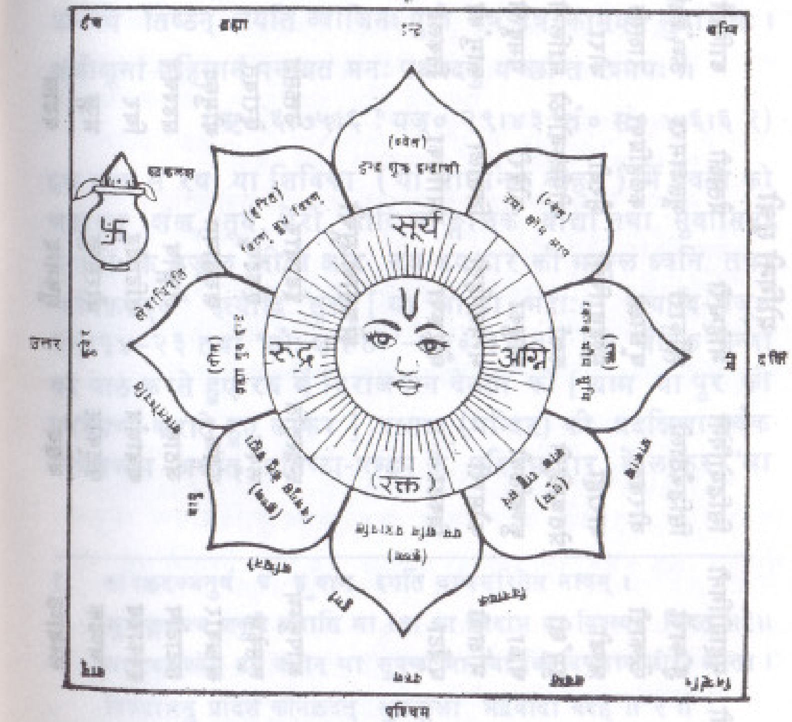

योगिनी सूची

दिव्ययोगिनी	महायोगिनी	सिद्धियोगिनी	माहेश्वरी	प्रेताक्षी	डाकिनी	काली	कालरात्रि
निशाकरी	हुंकारी	सिद्धिवैताली	ह्रींकारी	भूतडामरा	ऊर्ध्वकेशी	विरूपाक्षी	शुष्काङ्गी
नरभोजनी	फेत्कारी	वीरभद्रा	धूम्राक्षी	कलहप्रिया	राक्षसी	घोररक्ताक्षी	विशालाक्षी
कौमारी	चण्डी	वाराही	मुण्डधारिणी	भैरवी	वीरा	भयङ्करी	वज्रधारिणी
क्रोधा	दुर्मुखी	प्रेतवाहिनी	कर्का	दीर्घलम्बोष्ठी	मालिनी	मन्त्रयोगिनी	कालाग्नि
मोहिनी	चक्रा	कुण्डलिनी	बालुका	कौबेरी	यमदूती	करालिनी	कौशिकी
यक्षिणी	भक्षिणी	कौमारी	मन्त्रवाहिनी	विशाला	कार्मुकी	व्याघ्री	महाराक्षसी
प्रेतभक्षिणी	धूर्जटा	विकटा	घोररूपा	कपालिका	निकला	अमला	सिद्धिप्रदा

क्षेत्रपाल सूची

अजर	आपकुम्भ	इन्द्रस्तुति	ईडाचार	उक्तसंज्ञ	ऊष्माद	ऋषिसूदन
ॠमुक्त	लृप्तकेश	लृपक	एकदंष्ट्र	ऐरावत	ओघबन्ध	औषधीश
अञ्जन	अस्त्रवार	कंबल	खरखानल	गोमुख्य	घण्टाद	ङमनस्
चण्डवारण	छटाटोप	जटाल	झञ्झीव	ञडम्बर	टङ्कपाणि	ठानबन्धु
डामर	ढक्कारव	णवार्णव	तडिद्देह	थिर	दन्तुर	धनद
नत्तिवतान्त	प्रचण्डक	फट्कार	बीरसङ्कु	भङ्ग	मेघभासुर	युगान्त
रौद्यव	लम्बोष्ठ	वसव	शुकनन्द	षडाल	सुनामन्	हुम्बुक

इति तमुत्थाप्य रथमारोप्य मङ्गल-घोषेण 'कनिक्रददि'ति सूक्तेन च प्रासादप्रादक्षिण्येनानीय यागमण्डपपश्चिमद्वारि 'आ कृष्णेने'ति मन्त्रेण प्रवेश्य वेद्याः पश्चिमभागे प्राङ्मुखमुपवेश्य मधुपर्कं कुर्यात्।

इस प्रकार 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ॰' इत्यादि (पृ० ८० में कथित) मन्त्रोच्चारणपूर्वक उस देव-प्रतिमा को स्नान-मण्डप से उठाकर—

ॐ रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः॥

(ऋ० ६।७५।६ ? यजु० २९।४३; तं० सं० ४।६।६ २)

इस मन्त्र से रथ या शिविका (या आधुनिक वाहन) में देवता को चढाकर शंख, तूर्य, भेरी आदि माङ्गलिक वाद्यों तथा सुवासिनी स्त्रियों के मङ्गल गीतों और जय जयकार की मङ्गल ध्वनि तथा 'कनिक्रदद्०'[1] इत्यादि सूक्त [या 'आ नो भद्राः०' इत्यादि–यजु० २५।१४–२३ तथा 'द्यौः शान्तिः०'–यजु० ३६।१७] के वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हुए रथ में विराजमान देवता को [ग्राम या पुर की प्रदक्षिणा कराते हुए लाकर] प्रासाद (मन्दिर) की प्रदक्षिणा पूर्वक यागमण्डप अर्थात् प्रतिष्ठा-मण्डप के पश्चिम द्वार में लाकर 'आ

---

१. कनिक्रदज्जनुषं प्र ब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम्।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभि मा विश्व्या विदत्॥१॥
मा त्वा श्येन उद् वधीन् मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह॥२॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः॥३॥
ऋ० २।४२।१–३।

कृष्णेन०'[1] इत्यादि मन्त्र से याग-मण्डप में प्रविष्ट कराकर वेदी के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख स्थापित करके मधुपर्क करे।

मधुपर्क विधि—

ऊँ अद्य... अमुकोऽहम् अस्मिन् अमुकदेवप्रतिष्ठाकर्मणि मधुपर्केणार्चयिष्ये। इस प्रकार संकल्प करके 'ऊँ पुरुष एवेदं०' इस मन्त्र से पाद्य, 'ऊँ एतावानस्य०' इस मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करके निम्नलिखित मन्त्र से मधुपर्क प्रदान करे—

ऊँ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥यजु० ११।८३।

अथवा अधोलिखित मन्त्र से मधुपर्क किया जा सकता है—

ऊँ यन्मधुनो मधव्यं परमँ रूपमन्नाद्यं तेनाहं मधुनो—
मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि।

जलाधिवासविधानम्[2]—

आधुनिकाः स्नानमण्डपे तीर्थावाहनं कृत्वा देवस्नपनात् पूर्वं जलाधिवासमपि कुर्वन्ति। मयूखकारेणानुक्तमपि जलाधिवासविधानमाधुनिकप्रतिष्ठाचार्याणां सौविध्यार्थमत्र समुल्लिख्यते।

अथ जलाधिवास-प्रयोगः[2]—

आचार्यो जलयात्रोपयोगिसंभारान् संगृह्य यजमान-ऋत्विक्-सुवासिनीसहितः जयशब्दैः वेदध्वनिभिः शङ्खतूर्यमृदङ्गादिघोषेण मङ्गलगीतैश्च सह कर्मकुटीतः सवस्त्रां प्रतिमां रथे [वा विमाने वा याने

---

१. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
ऋ० १।३५।२; यजु० ३३।४३; ३४।३१।

२. सम्पादक [आचार्य डा० महेशचन्द्र जोशी] के द्वारा संरचित एवं प्रतिष्ठामयूख में संयोजित।

वा] ॐ रथे तिष्ठन्'[1] इति मन्त्रेण आरोप्य शनैः शनैर्जलाधिवासनस्थले—सरसि, तडागे, पुष्करिण्यां, नद्यां वा नीत्वा तत्र जलसमीपे परिष्कृतां भूमिं ॐ इन्द्र घोषस्त्वा०''[2] 'ॐ चित्पतिर्मा पुनातु०''[3] इति मन्त्रद्वयेन पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य तत्र मूर्तिमवस्थाप्य तत्समीपे पूजन-सामग्रीञ्च निधाय देवस्याग्रे पुण्याहवाचनं कृत्वा 'ॐ आ नो भद्राः क्रतवो०' इति शान्तिपाठसूक्तानि च पठेत्।

तत उदङ्मुखो यजमान आचमन-प्राणायामादिकं विधाय देशकालौ संकीर्त्य 'अमुक देवस्य प्रतिष्ठाङ्गत्वेन जलाधिवासनं करिष्ये तथा तदङ्गत्वेन गणेशपूजनपूर्वकं जलमातृ-जीवमातृ योगिनी-क्षेत्रपाल-जल-वरुण-पूजनं च करिष्ये' इति संकल्प्य

गणेशपूजन—'ॐ गणानान्त्वा गणपतिँ हवामहे०' इति पठित्वा 'ॐ भूर्भुवः स्वः, गणेश इहागच्छ, इह तिष्ठ इत्यावाह्य 'ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः' इति नाममन्त्रेण षोडशोपचारैः संपूज्य 'ॐ सिद्धि-बुद्धिसहिताय गणाधीशाय इमं सदीपं [दधि-] माषभक्तबलिं (कृसरान्नबलिं) समर्पयामि। इति बलिं दत्त्वा जलमातृः संपूजयेत्।

जलमातृणां पूजनम्—ततो जले जलमातृणां षोडशोपचारैः

---

१. रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥
यजु० २९।४३।

२. इन्द्र घोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात् पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पाविदमहन्तं वार्बहिर्द्धा यज्ञान्निः सृजामि।

३. चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो
मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य
यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ यजु० ४।४

पञ्चोपचारैर्वा पूजनं कुर्यात् । तद्यथा—(१) ॐ मत्स्यै नमः । (२) ॐ कच्छप्यै नमः । (३) ॐ कूर्म्यै नमः । (४) ॐ वाराह्यै नमः । (५) ॐ दर्दुर्यै नमः । (६) ॐ शिशुमार्यै नमः । (७) ॐ ईश्वर्यै नमः । इति प्रत्येकं नाममन्त्रेण पूजयेत् ।

जीवमातृणां पूजनम्—ततो भूमौ जीवमातृणां पूजनमक्षतपुञ्जेषु, भित्तौ वारेखासु वा गन्धादिपञ्चोपचारैः षोडशोपचारैर्वा कुर्यात्—

(१) ॐ मत्स्यै नमः । (२) ॐ हृद्यै नमः । (३) ॐ गोधायै नमः ।
(४) ॐ मकर्यै नमः । (५) ॐ डुण्डुभ्यै नमः । (६) ॐ दर्दुर्यै नमः ।
(७) ॐ जल्यै नमः । इति प्रत्येकं सम्पूज्य जले चतुःषष्टियोगिनीः पूजयेत् ।

चतुःषष्टियोगिनीपूजनम्—'ॐ चतुःषष्टियोगिनीभ्यो नमः' इति कुङ्कुमादिना जले चतुःषष्टियोगिनी-पूजनमेकतन्त्रेण कुर्यात् ।

क्षेत्रपालपूजनम्—ततो भूमौ वायव्यां अक्षतपुञ्जोपरि कुङ्कुमेन पुरुषाकारलिखितं वा क्षेत्रपालं 'ॐ क्षत्रस्य योनिरसि०'[1] इति मन्त्रेण 'ॐ भूर्भुवः स्वः क्षेत्रपाल इहागच्छ इह तिष्ठ' इत्यावाह्य, 'ॐ भूर्भुवः स्वः क्षेत्रपालाय नमः' इति गन्धादिभिः सम्पूज्य कुङ्कुम-दीपयुत दधिमाषभक्तबलिं (कृसरान्न बलिं वा) गृहीत्वा

'ॐ क्षेत्रपाल महाबाहो महाबलपराक्रम ।
क्षेत्राणां रक्षणार्थाय बलिं गृह्ण नमो नमः ॥

इति मन्त्रेण बलिं दत्वा आचम्य जलं पूजयेत् । तद्यथा—

जलपूजनम्—ॐ अद्भ्यो नमः । ॐ सप्तसागरेभ्यो नमः । ॐ मानसादि-सप्तसरोभ्यो नमः । ॐ गङ्गादिमहानदीभ्यो नमः । इति गन्धाक्षतपुष्पादिकं जले क्षिपेत् । ततो वरुणं पूजयेत् ।

---

१. ॐ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।
मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः ॥ यजु० २०।१

वरुणपूजनम्—'ॐ तत्त्वा यामि'[1]' ॐ वरुण इहागच्छ इह तिष्ठ ।' इत्यावाह्य 'ॐ भूर्भुवः स्वः अपांपतिवरुणाय नमः' । इति गन्धाक्षतपुष्पादिभिः संपूज्य माषभक्तबलिं (कृसरान्नबलिं वा) दद्यात् ।

ततः पञ्चामृतं गृहीत्वा 'ॐ पञ्च नद्यः०'[2] इति मन्त्रेण (ॐ पयः पृथिव्याम्०'[3] इति मन्त्रेण वा) जले क्षिपेत् । ततः जल-स्थितं देवं प्रार्थयेत्—

जलाधिवसितो देव मम भाग्योदयं कुरु ।
त्वदधिष्ठान-संयोग्यं त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ॥

इति विज्ञाप्य धूपार्तिकं कृत्वा सप्त, पञ्च, त्रिरात्रमेकरात्रं वा यामं वा मुहूर्तमात्रं वा जले देवमधिवासयेत् ।

ततः 'सहस्रशीर्षा०' इति पुरुषसूक्तं, नारायणाथर्वशीर्षञ्च (शिव-स्थापनायां रुद्राध्यायं, सूर्यस्थापनायां सूर्यसूक्तं, देवीस्थापनायां देवीसूक्तं) पठित्वा पञ्चाक्षररुद्रजपमघोरमन्त्रजपञ्च कार्यम् । (अन्वितेन मूर्तिरक्षाकरणम्) ।

ततः सप्तरात्रादिषु निशावसाने प्रातःकाले तथा सद्यः पक्षे तु यामानन्तरं घटिकाद्वयानन्तरं वा मुहूर्तमात्रानन्तरं वा देवं जलान्नि-ष्कास्य वस्त्राच्छादिते तीरे संस्थाप्य वस्त्रगन्धादिभिः संपूज्य, पुष्पादिभिरलंकृत्य 'ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०'[4] इति वैदिकमन्त्रेण—

---

१. ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥
यजु० १८।४९;२१।२।

२. पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत् सरित् ॥ यजु० ३४।११।

३. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ यजु० १८।३६।

४. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ यजु० ३४।५६।

'ॐ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यं मंगल कुरु॥

इति पौराणिक-मन्त्रेण च देवमुत्थाप्य 'रथे तिष्ठन्'० इति रथे विमाने याने वा आरोप्य जयशब्दैर्वेदध्वनिभिः सुवासिनीमङ्गल-गीतैः शङ्खतूर्यमृदङ्गादिघोषैः शनैःशनैर्नीत्वा प्रतिष्ठा(याग)मण्डप-प्रादक्षिण्येन स्नानमण्डपमानयेत्। इति। ततः तत्र स्नपन कृत्वा देवं पूर्वोक्त प्रकारेण यागमण्डपमानयेत। इति]

अन्नाधिवासः[1]—देवस्नपनं कृत्वा शय्याधिवासात् प्राक् अन्नाधिवासो विधेयः। सपत्नीको यजमानः शुद्धासनोपविष्टः आचमन-प्राणायामादिकं विधाय देश-कालौ सकीर्त्य 'मम गृहे प्रचुरधान्य-पुत्र-पौत्रादि-सुख-सम्पत्त्यादि लाभार्थं च धान्याधिवासनं करिष्ये।' इति संकल्प्य यागमण्डपस्य यथोक्तकोणे नैर्ऋत्यां वा 'मही द्यौः'० इति मन्त्रेण भूमिं संपूज्य तत्र वस्त्रमास्तीर्य तदुपरि किञ्चिद् धान्यं 'धान्यमसि०' इति मन्त्रेण विकीर्य तदुपरि वस्त्रं प्रसार्य तदुपरि शनैः शनैर्देवं (देवान् वा ज्येष्ठक्रमेण) स्वापयेत् (उपवेशयेत वा)। ततो देवं वस्त्रेणाच्छाद्य तदुपरि 'व्रीहयश्च मे'० इति मन्त्रेण प्रचुर-धान्यं विकिरेत् गन्धाक्षतपुष्पाणि कुशांश्च प्रक्षिपेत्।

यावद्धान्येषु प्रतिमा प्रतिष्ठिता तावत् पुरुषसूक्तं, स्थाप्यदेवस्य सूक्तं (यथा—सूर्यस्य विभ्राड् बृहत्० इति, देव्याः 'हिरण्यवर्णाम्०' इति) वा पठेत्। तत्र केषाञ्चिन्मते अधिवासनावसरे द्वादश ब्राह्मणान् पायसान्नेन देवो नः प्रीयताम्' इति भोजयेत्। ततः समलंकृताश्चतस्रो गाः सदक्षिणाः सवत्साश्चाचार्यादिभ्यो दद्यात्।

---

१. द्रष्टव्य—पीछे पृष्ठ ८९ टिप्पणी १।

२. सम्पादक (आचार्य डा० महेशचन्द्र जोशी) के द्वारा संरचित एवं प्रतिष्ठामयूख में संयोजित।

[शय्याधिवासः]

ततो वेद्यां कुशानास्तीर्य तदुपरि [यथोक्तकोण[1]] शय्यामास्तीर्य वेद्यां पूर्वादिदिक्षु विष्णु-मधुसूदन-त्रिविक्रम-वामनानाग्नेयादिकोणेषु श्रीधर-हृषीकेश-पद्मनाभ-दामोदरांश्च पूजयेत्।

ॐ नमो नारायणायेतिमन्त्रेण विष्णुं शय्यायां निवेशयेत्।

शय्याधिवास—

वेदी में शय्या स्थापन, उस पर आठों दिशाओं में स्थाप्य देवता के आठ नाम-रूपों का पूजन करके स्थाप्य देवता का निवेशन—

तब वेदी के ऊपर प्रागग्र कुशों को बिछाकर उनके ऊपर शय्या बिछावे (सर्वदेवप्रतिष्ठापद्धति और प्रतिष्ठामहोदधि में प्रदत्त विधानानुसार वेदी के ऊपर पूर्व या उत्तर की ओर शिरो-भाग वाली शय्या को रखकर उसमें शुभ्र आस्तरण अर्थात् गद्दा और चादर बिछाकर तथा दो उपधान अर्थात् तकिये लगाकर उस आस्तरण के ऊपर अक्षतों से स्वस्तिक बना करके और प्रागग्र कुशों को बिछाकर तदुपरि पुष्पों को बिखेर दे). और तब उस वेदी में (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश और प्रतिष्ठामहोदधि के अनुसार शय्या में) चारों ओर पूर्वादि चारों दिशाओं में [यदि स्थाप्य देवता विष्णु हों तो] क्रमशः विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम और वामन का पूजन और आग्नेय आदि कोणों में क्रमशः श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर का नाम-मन्त्रों से अक्षतपुञ्जों पर पूजन करे। यथा—

१. पूर्वे—ॐ विष्णवे नमः। २. आग्नेये—ॐ श्रीधराय नमः।
३. दक्षिणे—ॐ मधुसूदनाय नमः। ४. नैर्ऋत्ये—ॐ हृषीकेशाय नमः।
५. पश्चिमे—ॐ त्रिविक्रमाय नमः। ६. वायव्ये—ॐ पद्मनाभाय नमः।
७. उत्तरे—ॐ वामनाय नमः॥ ८. ऐशान्याम्—ॐ दामोदराय नमः।

---

१. पूर्वमुखे प्रासादे अग्निकोणे शय्या, पश्चिममुखे प्रासादे वायुकोणे शय्या, उत्तरमुखे प्रासादे ईशानकोणे शय्या, दक्षिणमुखे प्रासादे नैर्ऋत्यकोणे शय्या स्थापनीया—इति सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाशे (पृ० ११०)।

[शिवादि प्रतिष्ठायां शय्याधिवासनम्]

शिवादिप्रतिष्ठायां तु 'नमः शम्भवाये'ति शय्यायां निवेश्य भवं शर्वमीशानं पशुपतिं रुद्रमुग्रं भीमं महान्तं पूर्वादिक्रमात् पूजयेत् ।

इस प्रकार पूजन करके 'ॐ नमो नारायणाय' (अथवा—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' या 'ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पां॑सुरे स्वाहा') इस मन्त्र से विष्णु को शय्या में रखे ।

शिव आदि देवों की प्रतिष्ठा में शय्याधिवास—

शिव आदि देवताओं की प्रतिष्ठा में उनके मन्त्रों से ही देव-प्रतिमा का शय्या में स्थापन और उनके आठ नाम रूपों का आठों दिशाओं में पूजन होगा । उदाहरणार्थ—शिव प्रतिष्ठा में—

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।[1]

इस मन्त्र से शिव-लिङ्ग या प्रतिमा को शय्या में निवेशित (स्थापित) करके पूर्वादि दिशाओं में अक्षतपुञ्जोपरि भव आदि का पूजन इस प्रकार करे—

१. पूर्वे—ॐ भवाय नमः । २. आग्नेये—ॐ रुद्राय नमः ।
३. दक्षिणे—ॐ शर्वाय नमः । ४. नैर्ऋत्याम्—ॐ उग्राय नमः ।

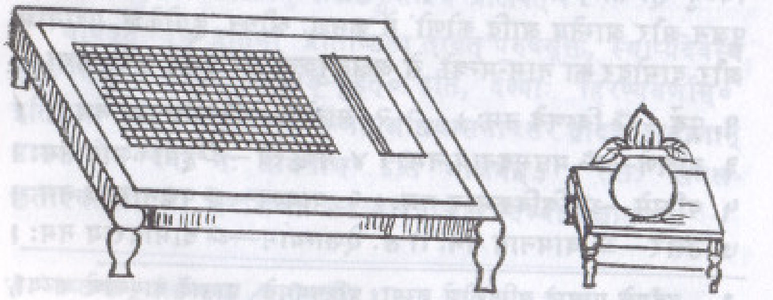

शय्याधिवास निद्राकलश

१. यजु० १६।४१ ।

[निद्रा-कलशस्थापनम्]

ततः शय्यायां देवं शाययित्वा त्रिभिर्वस्त्रैर्देवमाच्छाद्य देवस्य शिरोदेशभूमौ सहिरण्यं निद्राकलशम् 'अपो देवीरुपह्वये' इति प्रतिष्ठाप्य—

५. पश्चिमे—ॐ ईशानाय नमः ६. वायव्ये—ॐ भीमाय नमः ।
७. उत्तरे—ॐ पशुपतये नमः । ८. ऐशान्याम्—ॐ ॐ महादेवाय नमः

निद्रा कलश-स्थापन—

तब स्थाप्य देवता के वैदिक मन्त्रों को पढते हुए शय्या में देवता को शयन कराकर तीन वस्त्रों से आच्छादित करके उस (देवता) के शिरो भाग की ओर भूमि में सुवर्णयुक्त निद्राकलश को 'अपो देवीरुप ह्वये'०[1] इस मन्त्र से प्रतिष्ठापित करे (अथवा 'अपो देवीरुप सृज मधुमती'०[2] अथवा 'आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत'[3] इस मन्त्र से निद्रा कलश को स्थापित करके 'आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु'०[4] इस मन्त्र से स्थापित करे) ।

१. अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥
ऋ० १।२३।१८

२. अपो देवीरुप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ यजु० ११।३८

३. आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्व॑ᳪ सुरभा उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥
यजु० १२।३५

४. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ।
दीक्षा तपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा॑ᳪ शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ।
यजु० ४।२; तु० ऋ० १०।१७।१०; द्र०—तै० सं० १।२।१।१

[अभ्यञ्जनमालभनञ्च]

'आ प्यायस्वसमे' ति मधुसर्पिर्भ्यां देवमभ्यज्य 'या ते रुद्रे'ति तैलसर्षपैरुपलिप्य गन्धादिनाऽभ्यर्च्य 'बृहस्पते परि दीये'ति सितं परिसरं दद्यात् । अत्र वा 'बृहस्पते परी'ति मन्त्रेण देवस्य कङ्कण-बन्धनमित्येके । ततो देवस्य पादनाभिवक्षःशिरःसु 'विश्वतश्चक्षु'र-त्यालभनम् ।[1]

अभ्यञ्जन और आलभन—

'आ प्यायस्व समेतु ते'०[2] इस मन्त्र से अथवा 'आ प्यायस्व मदिन्तम०'[3] इस मन्त्र से मधु और घृत से स्थाप्य-देव-विग्रह (प्रतिमा) की मालिश करके 'या ते रुद्र शिवा तनू०'[4] इस मन्त्र से तेल और सरसों के कल्क (कुटा हुआ चूर्ण) से उपलेपन करके स्थाप्य देवता-विषयक मन्त्रों का पाठ करते हुए गन्ध-पुष्प आदि से उस देवता

---

१. आलम्भनम् । —पाठान्तर ।

२. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥
ऋ० १।९१।१६; ९।३१।४; यजु० १२।११२ ।

३. (क) आ प्यायस्व मन्दितम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ ऋ० १।९१।१७ ।
(ख) आ प्यायस्व मन्दितम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ यजु० १२।११४
(ग) आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वाभिरूतिभिः ।
भवा नः स प्रथस्तमः ॥ तै० सं० १।४।२२ ।

४. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥
यजु० १६।२; तै० ४।५।१।१ ।

[राजोपचारादिस्थापनम्]

ततस्तद् दक्षिणपार्श्वे छत्रं व्यजनं चामरञ्च, चरणदेशे पादुके, पार्श्वयोः शान्तिकुम्भौ, आसन-दर्पण-घण्टा-भक्ष्य-भोज्य-जलपात्रादिकं च देवस्य पुरतः स्थापयेत् ।

का पूजन करके 'बृहस्पते परिदीया'०[1] इस मन्त्र से श्वेतवर्ण का परिसर (सफेद रंग का सूत का धागा या परिधानीय वस्त्र) प्रदान करे अथवा इस कृत्य के स्थान पर 'बृहस्पते परि दीया'० इस मन्त्र से देवता के अर्चा-विग्रह के दाहिने हाथ में कङ्कण (रक्षा-सूत्र) बाँधना चाहिए, ऐसा कुछ आचार्यों का कथन है ।

[तदनन्तर रंग-बिरंगे कार्पास वस्त्र, दुकूल (रेशमी वस्त्र) और पट्ट-वस्त्र (दुपट्टा) से देवता को आच्छादित करके पुनः देवता के शिर पर कौशेय वस्त्र स्थापित करे और तदनन्तर देवता के सम्मुख चार दीपक प्रज्वालित करे ।][2]

तब विश्वतश्चक्षुरुत०[3] इस मन्त्र से देवता के चरणों, नाभि, वक्षःस्थल और शिर का आलभन (स्पर्श) करे (उक्त मन्त्र का आवर्तन चरण, नाभि आदि प्रत्येक अंग के आलभन अर्थात् स्पर्श के समय किया जा सकता है) ।[4]

राजोपचारादि का निवेदन—

तब देवता की दायीं ओर छत्र, व्यजन (पंखा) और चामर

---

१. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जनन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥
ऋ० १०।१०३।४; यजु० १७।३६; तै० सं० ४।६।४४ ।

२. द्र० सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १११ ।

३. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥
ऋ० १०।८१।८३; यजु० १७।१९; द्रष्टव्य—तै० सं० ४।६।२।१० ।

४. 'प्रत्यालम्भनं मन्त्रावृत्तिः ।' —प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ३८० ।

(चँवर), चरणों के पास भूमि में पादुकाएँ (खड़ाऊँ), अगल-बगल में दो शान्ति-कलश और देवता के आगे आसन, दर्पण, घण्टा, भक्ष्य-भोज्यान्न, जलपात्र आदि स्थापित करे।

इन उपचारों के निवेदन के मन्त्र प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में प्रदत्त हैं। यथा—

ॐ बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥

इस मन्त्र से देवता के दाहिनी ओर छत्र स्थापित करे।

ॐ वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविँ शतिः।
ते अग्रेऽश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिञ्जवमादधुः ॥

इस मन्त्र से देवता के बाँयी ओर व्यजन (पंखा) और चँवर रखे।

ॐ त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् ॥

इस मन्त्र से देवता के चरणों के समीप पादुकाएँ रखे।

ॐ आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः।
पुनरूर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा—
विशताद् रयिः ॥ यजु० ८।४२।

इस मन्त्र से देवता के दोनों तरफ शान्तिकुम्भ स्थापित करे।

ॐ अभि त्वा शूर नो नुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ यजु० २७।३५।

इस मन्त्र से देवता के समक्ष भाजन अर्थात् पात्र, आसन, दर्पण, घण्टा, भक्ष्य-भोज्यान्न और पेय पदार्थ, दूध, दही, मधु, घृत आदि, तथा गृहोचित उपकरण, जलपात्र, भोजनपात्र, वस्त्राभूषण और ताम्बूल आदि स्थापित करे।

[प्राकारत्रयसंरचना, दिक्पालादिबलिदानम्]

ततो भस्मदर्भतिलैर्देवस्य परितो रक्षार्थं प्राकारत्रयं कृत्वा मण्डपाद् बहिर्गत्वा प्रतिदिशं लोकपालेभ्यो गन्धादिपूर्वकं बलिं दद्यात्। भूतेभ्यश्च त्र्यम्बकमिति। बलिमन्त्रस्तु—

'पूर्वदिग्वासिभ्यो दिक्पति-दिग्भूताधिपति-दिग्रुद्र-दिङ्मातृ-दिक्-क्षेत्रपालेभ्यो नमः।' इत्येवं प्रतिदिशम्।

प्राकारत्रय-रचना और बलिदान—

तब स्थाप्य देवता की रक्षा हेतु चारों ओर से क्रमशः (१) भस्म (२) दर्भ और (३) तिलों से तीन प्राकारों अर्थात् तीन पंक्तियों की रचना करे (प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में प्रदत्त विधानानुसार यह रचना ईशान कोण से प्रारम्भ करके वहीं पर सम्पन्न होगी)।

तब मण्डप से बाहर जाकर ('अद्य······अमुकोऽहं अमुकदेवार्चा-धिवासनाङ्गभूतमिन्द्रादि-दश-लोकपालेभ्यः भूतेभ्यश्च बलिदानं करिष्ये'—ऐसा संकल्प करके क्रमशः 'ॐ त्रातारमिन्द्रमवितार'० इत्यादि मन्त्रों से) प्रत्येक दिशा में गन्धादि पञ्चोपचारों से इन्द्रादि की पूजा करके (तत्तत् मन्त्रों से यथाविधि दधिमाषभक्त) बलि प्रदान करे। तब प्रत्येक दिशा में भूतबलि 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे'०[1] यह मन्त्र पढ़ते हुए ('ॐ भूतेभ्यो बलिरयमुपतिष्ठतु' कहते हुए) प्रदान करे। दिग्पालादि बलि और भूतादि के लिए बलिदान का संयुक्त मन्त्र यह है—

ॐ पूर्वदिग्वासिभ्यो दिक्पतिदिग्भूताधिपतिदिग्रुद्रदिङ्मातृदिक्-क्षेत्रपालेभ्यो नमः'—इस मन्त्र से पूर्व दिशा के दिक्पालादि को बलि-प्रदान करे।

१. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥
ऋ० ७।५९।१२; यजु० ३।६०; तै० सं० १।८।६।२।

[देवस्नपनान्ते होमः]

तत आचरय होमं कुर्यात्। तद्यथा—ॐ पराय विष्ण्वात्मने स्वाहेति विष्णवे। अन्यदेवतायां शिवात्मने इत्याद्यूहः। अनेनाष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा तिलैर्यवैर्वा प्रत्येकं हुत्वा प्रतिमायां न्यासान् कुर्यात्।

इसी प्रकार आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य आदि दिशाओं के दिक्पालादि को भी बलि प्रदान करे।

देवस्नपन के पश्चात् होम—

देवता को स्नान कराने के पश्चात् होम करे। यथा— विष्णु का होम 'ॐ पराय विष्ण्वात्मने स्वाहा' इस मन्त्र से तथा शिव का होम 'ॐ पराय शिवात्मने स्वाहा' इस मन्त्र से तथा अन्य देवता की स्थापना में भी इसी प्रकार से ऊह करके होम करना चाहिए। इस प्रकार के मन्त्र से एक हजार आठ या एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस या कम से कम आठ आहुतियों का होम तिलों अथवा यवों से करे। तदनन्तर देव-प्रतिमा पर अधोलिखित न्यासों को करे।

अथ न्यास-विधानम्

[प्रथमः प्रणव-न्यासः, सर्वदेवसाधारण]

अ पादयोः। उ हृदये। म ललाटे। इति प्रणवं न्यसेत्।

[द्वितीयो व्याहृतिन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

भूः पादयोः। भुवः हृदये। स्वः ललाटे। इति व्याहृतीर्न्यसेत्।

[तृतीयो मातृकान्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

अ तालुनि। आ मुखे। इ दक्षिणनेत्रे। ई वामनेत्रे। उ दक्षिणश्रवणे। ऊ वामश्रवणे। ऋ दक्षिणगण्डे। ॠ वामगण्डे। लृ दक्षिणनासापुटे। ॡ वामनासापुटे। ए ऊर्ध्वदशनेषु। ऐ अधोदशनेषु। ओ ऊर्ध्वोष्ठे। औ अधरोष्ठे। अं ललाटे। अः जिह्वायाम्।

य त्वचि। र चक्षुषोः। ल नासिकायाम्। व दशनेषु। श श्रोत्रयोः। ष उदरे। स कटिदेशे। ह हृदये। ल नाभ्याम्। क्ष लिङ्गे (उदकस्पर्शः)।

प फ ब भ म दक्षिणबाहौ। त थ द ध न वामबाहौ। ट ठ ड ढ ण दक्षिणजंघायाम्। च छ ज झ ञ वामजंघायाम्। क ख ग घ ङ सर्वाङ्गुलीषु। इति मातृकान्यासः।

न्यास-विधि—

अपने शरीर में न्यास करते समय अनामा और अङ्गुष्ठ इन दो अगुलियों को मिलाकर न्यास करना चाहिए और पुष्पों से देवता की मूर्ति में करना चाहिए।[1]

१. प्रणवन्यास—[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित] 'अ' का न्यास स्थाप्य देवता के चरणों में, 'उ' का हृदय में और 'म' का न्यास ललाट में करे।[2] इस प्रकार प्रणव-न्यास करे।

२. व्याहृतिन्यास—[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित] 'भू' का न्यास देवता के चरणों में, 'भुवः' का हृदय में और 'स्वः' का न्यास देवता के ललाट में करे।

३. मातृकान्यास—[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित] 'अ' का न्यास देवता के तालु (ऊपर के दाँतों और कौवे के बीच) में करे। 'आ' का मुख में, 'इ' का दक्षिण (दाहिने)

---

१. अनामया साङ्गुष्ठया स्वदेहे पुष्पैर्देवमूर्तौ न्यासो विधेयः।

२. प्रतिष्ठासरणि के अनुसार प्रत्येक न्यास के समय आरम्भ में प्रणव का उच्चारण करे। भास्कर, हेमाद्रि और रत्नमाला में 'नमः' और 'न्यसामि' पद को सर्वत्र योजनीय बतलाया गया है। इस प्रकार इन ग्रन्थों के अनुसार 'ॐ नमः पादयोः न्यसामि' इत्यादि विधि से न्यास होगा। तान्त्रिक-मतानुसार इन प्रणवादि न्यासों में अक्षरों का उच्चारण अनुस्वार युक्त होता है। यथा—'ॐ अं पादयोः। ॐ उं हृदये। ॐ मं ललाटे।' इत्यादि।

[चतुर्थ ऋक्षन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

१—रविचन्द्राभ्यां नमः, नेत्रयोः ।	२—भौमाय नमः, हृदये ।
३—बुधाय नमः, स्कन्धे ।	४—बृहस्पतये नमः, जिह्वायाम् ।
५—शुक्राय नमः, लिङ्गे ।	६—शनैश्चराय नमः, ललाटे ।
७—राहवे नमः, पादयोः ।	८—केतुभ्यो नमः, केशेषु ।
९—रोहिणीभ्यो नमः, हृदये ।	१०—मृगशिरसे नमः, शिरसि ।
११—आर्द्रायै नमः, केशेषु ।	१२—पुनर्वसवे नमः, ललाटे ।
१३—पुष्याय नमः, मुखे ।	१४—आश्लेषाभ्यो नमः, नासाभ्याम् ।

नेत्र में, 'ई' का वामनेत्र में 'उ' का दाहिने कान में, 'ऊ' का बाँये कान में, 'ऋ' का दाहिने गण्ड (गाल) में, 'ॠ' का बाँये गण्ड (गाल) में, 'लृ' का दाहिने नासापुट (नथुने) में 'लॄ' का बाँये नासापुट (नथुने) में, 'ए' का ऊपर के दाँतों में, 'ऐ' का नीचे के दाँतों में, 'ओ' का ऊपर के ओष्ठ (होंठ) में, 'औ' का नीचे के ओष्ठ में, 'अं' का ललाट में, 'अः' का जिह्वा में न्यास करे।

'य' का न्यास त्वचा में करे। 'र' का नेत्रों में, 'ल' का नासिका में, 'व' का दाँतों में, 'श' का कानों में, 'ष' का उदर (पेट) में, 'स' का कटि में, 'ह' का हृदय में, ल का नाभि में और 'क्ष' का लिङ्ग में न्यास करे।

प फ ब भ म इन पाँच अक्षरों का न्यास दाहिनी भुजा में करे। त थ द ध न इन पाँच अक्षरों का न्यास बाँयी भुजा में ट ठ ड ढ ण इन पाँच अक्षरों का न्यास दाहिनी जंघा में, च छ ज झ ञ इन पाँच अक्षरों का न्यास बाँयी जंघा में और क ख ग घ ङ इन पाँच अक्षरों का न्यास सभी अंगुलियों में करे। इस प्रकार मातृकान्यास सम्पन्न हुआ।

१५—मघाभ्यो नमः, दन्तेषु ।	१६—पूर्वाफाल्गुनीभ्यो नमः, दक्षिणश्रवणे ।
१७—उत्तराफाल्गुनीभ्यो नमः, वामश्रवणे ।	१८—हस्ताय नमः, हस्तयोः ।
१९—चित्रायै नमः, दक्षिणभुजे ।	२०—स्वात्यै नमः, वामभुजे ।
२१—विशाखायै नमः, हृदि ।	२२—अनुराधाभ्यो नमः, स्तनयोः ।
२३—ज्येष्ठाभ्यो नमः, दक्षिणकुक्षौ ।	२४—मूलाय नमः, वामकुक्षौ ।

४. ग्रहनक्षत्रादि न्यास [सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—

'रविचन्द्राभ्यां नमः' (सूर्य और चन्द्रमा को नमस्कार है) इससे देव प्रतिमा के दोनों नेत्रों में सूर्य और चन्द्रमा का न्यास करे। 'भौमाय नमः' इससे प्रतिमा के हृदय में भौम (मङ्गल ग्रह) का न्यास करे। इसी प्रकार 'बुधाय नमः' से प्रतिमा के कन्धों में, 'बृहस्पतये नमः' से जिह्वा में, 'शुक्राय नमः' से प्रतिमा के लिङ्ग में न्यास करे। 'शनैश्चराय नमः' से ललाट में, 'राहवे नमः' से दोनों पैरों में और 'केतुभ्यो नमः' से देव-प्रतिमा के केशों में केतुग्रह का न्यास करे।

'रोहिणीभ्यो नमः' से देवप्रतिमा के हृदय में रोहिणी नक्षत्र का न्यास करे। 'मृगशिरसे नमः' इससे देवता की प्रतिमा के शिर में, 'आर्द्रायै नमः' इससे केशों में, 'पुनर्वसवे नमः' इससे ललाट में, 'पुष्याय नमः' इससे मुख में, 'आश्लेषाभ्यो नमः' इससे नासापुटों में, 'मघाभ्यो नमः' इससे दाँतों में, 'पूर्वाफाल्गुनीभ्यो नमः' इससे दाहिने कान में, 'उत्तराफाल्गुनीभ्यो नमः' इससे बाँये कान में, 'हस्ताय नमः' इससे दोनों हाथों में, 'चित्रायै नमः' इससे दाहिनी भुजा में 'स्वात्यै नमः' इससे वाम भुजा में, 'विशाखायै नमः' इससे हृदय में, 'अनुराधाभ्यो नमः' इससे स्तनों में, 'ज्येष्ठाभ्यो नमः' इससे दाहिनी कोख में, 'मूलाय नमः' इससे बाँयी कोख में, पूर्वाषाढाभ्यो नमः' इससे कटि (कमर) और उसके पार्श्व (दोनों बगलों) में,

२५. पूर्वाषाढाभ्यो नमः, कटि पार्श्वयोः
२६. उत्तराषाढाभ्यो नमः, लिङ्गे [उदकोपस्पर्शः]
२७. श्रवणधनिष्ठाभ्यो नमः, वृषणे।
२८. शतभिषग्भ्यो नमः, नेत्र।
२९. पूर्वाभाद्रपदाभ्यो नमः, दक्षिणोरौ।
३०. उत्तराभाद्रपदाभ्यो नमः वामोरौ।
३१. रेवतीभ्यो नमः, दक्षिण-जङ्घायाम्।
३२. अश्विनीभ्यो नमः, वामजङ्घायाम्।
३३. भरणीभ्यो नमः, दक्षिण-पादे।
३४. कृत्तिकाभ्यो नमः, वाम-पादे।
३५. ध्रुवाय नमः, नाभ्याम्।
३६. सप्तर्षिभ्यो नमः, कण्ठे।
३७. मातृमण्डलाय नमः, कटि-देशे।
३८. विष्णुपदेभ्यो नमः, पादयोः।
३९. नागवीथ्यै नमः—अङ्गवीथ्यै नमः, वन मालायाम्।
४०. ताराभ्यो नमः, रोमकूपेषु।
४१. अगस्त्याय नमः, कौस्तुभे। इति ग्रहादिन्यासः।

'उत्तराषाढाभ्यो नमः' इससे लिङ्ग में न्यास करे (तब उदकस्पर्श करे)। 'श्रवणधनिष्ठाभ्यो नमः' इससे अण्डकोश में न्यास करे (और तब उदकस्पर्श करे)। 'शतभिषग्भ्यो नमः' इससे नेत्रों में, पूर्वाभाद्रपदाभ्यो नमः' इससे दाहिने ऊरू में, 'उत्तराभाद्रपदाभ्यो नमः' इससे बाँये ऊरु में. 'रेवतीभ्यो नमः' इससे दाहिनी जंघा में, 'अश्विनीभ्यो नमः' इससे बाँयी जंघा में, 'भरणीभ्यो नमः' इससे दाहिने चरण में,' कृत्तिकाभ्यो नमः' इससे बाँये चरण में न्यास करे। तब 'ध्रुवाय नमः' इससे नाभि में, न्यास करे। 'सप्तर्षिभ्यो नमः' इससे कण्ठ में. 'मातृमण्डलाय नमः' इससे कटिदेश (कमर) में, 'विष्णुपदेभ्यो नमः' इससे दोनों चरणों में, 'नागवीथ्यै नमः'

[पञ्चमः कालन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

१. चैत्राय नमः, शिरसि।
२. वैशाखाय नमः, मुखे।
३. ज्येष्ठाय नमः, हृदये।
४. आषाढाय नमः, कण्ठे।
५. श्रावणाय नमः, स्तनयोः।
६. भाद्रपदाय नमः, उदरे।
७. आश्विनाय नमः, कट्याम्।
८. कार्तिकाय नमः, दक्षिणोरौ।
९. मार्गशीर्षाय नमः, वामोरौ।
१०. पौषाय नमः, द-क्षिण जङ्घायाम्।
११. माघाय नमः, वाम-जङ्घायाम्।
१२. फाल्गुनाय नमः, पादयोः।
१३. संवत्सराय नमः। परिवत्सराय नमः। इद्वत्सराय नमः। अनुवत्सराय नमः। इति दक्षिणोर्ध्वात्प्रादक्षिण्येनचतुर्षु बाहुषु।
१४. पर्वभ्यो नमः, सन्धिषु।
१५. ऋतुभ्यो नमः, लिंगे [उदकोपस्पर्शः]।
१६. अहोरात्रेभ्यो नमः, अस्थिषु।
१७. क्षणाय नमः, लवाय नमः। काष्ठायै नमः—रोमसु।
१८. कृताय नमः, मुखे।
१९. त्रेताय नमः, हृदये।
२०. द्वापराय नमः, नितम्बे।
२१. कलये नमः, पादयोः।
२२. मन्वन्तरेभ्यो नमः, बाहुवोः।
२३. पराय नमः परार्धाय नमः, जङ्घयोः।
२४. महाकल्पाय नमः शरीरे।
२५. उदगयनाय नमः, दक्षिणायनाय नमः, पादयोः।
२६. विषुवते नमः, सर्वाङ्गुलिषु। इति कालन्यासः।

तथा 'अङ्गवीथ्यै नमः' से वनमाला में, 'ताराभ्यो नमः' से रोमकूपों में, 'अगस्त्याय नमः' से कौस्तुभ में न्यास करे। इस प्रकार ग्रहनक्षत्रादि न्यास सम्पन्न हुआ।

[षष्ठो वर्णन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

१. ब्राह्मणाय नमः, मुखे । २. क्षत्रियाय नमः, बाह्वोः ।
३. वैश्याय नमः, ऊर्वोः । ४. शूद्राय नमः, पादयोः ।
५. सङ्करजेभ्यो नमः, पादाग्रे । ६. अनुलोमजेभ्यो नमः, सर्वाङ्ग-सन्धिषु ।

५. कालन्यास—[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]

'चैत्राय नमः' से देवप्रतिमा के शिर में, 'वैशाखाय नमः' से मुख में 'ज्येष्ठाय नमः' से हृदय में, 'आषाढाय नमः' से कण्ठ में, 'श्रावणाय नमः' से स्तनों में 'भाद्रपदाय नमः' से उदर (पेट) में, 'आश्विनाय नमः' से कटि में, 'कार्तिकाय नमः' से दाहिने उरू में तथा 'मार्गशीर्षाय नमः' से बाँयी उरू में, 'पौषाय नमः' से दाहिनी जंघा में, 'माघाय नमः' से बाँयी जघा में, 'फाल्गुनाय नमः' से दोनों चरणों में न्यास करे।

'संवत्सराय नमः, परिवत्सराय नमः इद्वत्सराय नमः, अनुवत्सराय नमः' इससे क्रमशः देवता की दाहिनी ओर की ऊपर की बाँह में, तब बाँयी ओर की ऊपर की बाँह में, तब नीचे की बाँह में और तब वांयी ओर की नीचे की बाँह में न्यास करे।

'पर्वभ्यो नमः' इससे देवता की [प्रतिमा की] सन्धियों (जोड़ों, जैसे—हाथ की कुहनियों, बांहों और कन्धों के बीच के जोड़ों आदि) में, 'ऋतुभ्यो नमः' से लिङ्ग में न्यास [करके उदकोपस्पर्श] करे। तब 'अहोरात्रेभ्यो नमः' से अस्थियों में, 'क्षणाय नमः, लवाय नमः, काष्ठायै नमः' से रोमों में, 'कृताय नमः' से मुख में, 'त्रेतायै नमः' से हृदय में, 'द्वापराय नमः' से नितम्ब में, 'कलये नमः' से चरणों में, 'मन्वन्तरेभ्यो नमः' से भुजाओं में, 'पराय नमः, परार्धाय नमः' से जङ्घाओं में, 'महाकल्पाय नमः' से समस्त शरीर में, उदगयनाय नमः' तथा 'दक्षिणायनाय नमः' से चरणों में और 'विषुवते नमः' से देवता की सभी अंगुलियों में न्यास करे। यह कालन्यास सम्पन्न हुआ।

७. गोभ्यो नमः, मुखे । ८. अजाभ्यो नमः, अविकाभ्यो नमः, हस्तयोः ।
९. ग्राम्यपशुभ्यो नमः, कट्याम् । १०. अरण्यपशुभ्यो नमः, ऊर्वोः ।

इति वर्णन्यासः ।

६—वर्णन्यास—[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—'ब्राह्मणाय नमः' से मुख में, 'क्षत्रियाय नमः' से बाहुओं में, 'वैश्याय नमः' से ऊरुओं (=जाँघों) में, 'शूद्राय नमः' से चरणों में, 'सङ्करजेभ्यो नमः' से पैरों के अग्रभाग में, 'अनुलोमजेभ्यो नमः' से शरीर की सभी सन्धियों (जोड़ों) में, 'गोभ्यो नमः' से मुख में, 'अजाभ्यो नमः' और 'अविकाभ्यो नमः' से हाथों में, 'ग्राम्यपशुभ्यो नमः' से कटि में, 'अरण्यपशुभ्यो नमः' से ऊरुओं में न्यास करे। यह वर्णन्यास सम्पन्न हुआ।[1]

---

१. द्रष्टव्य—मुखबाहूरुपादस्था वर्णाश्च ब्राह्मणादयः। पादाङ्गुलीषु विज्ञेया वर्णाः सङ्करजातयः॥ सर्वाङ्गसन्धिषु तथा उत्कृष्टाः सङ्करास्तु ये। गावो मुखेऽस्य विज्ञेयाः स्तनयोश्चाप्यजाविकाः॥ पदोरेकशफा ऊर्वोर्ग्राम्यारण्या व्यवस्थिताः केशेषु मेघा विज्ञेया रोमाण्यभ्राणि तस्य वै॥ सर्वाङ्गावयवा नद्यः समुद्राः कुक्षिसंस्थिताः। यज्ञास्तस्य शिरो ज्ञेयमृग्वेदो दक्षिणो भुजः॥ सामवेदः स्मृतो वामः सर्वोपनिषदो हृदि। इतिहासपुराणानि जङ्घे यजुरुरः स्मृतम्॥ अथर्वाङ्गिरसो नाभिः कल्पसूत्राणि पादयोः। शिक्षा व्याकरणं वक्त्रं तर्कः कण्ठं समाश्रितः॥ मीमांसा हृन्निरुक्तं च छन्दो ज्योतिश्च चक्षुषो। गारुडं भूततन्त्रं च श्रोत्रयुग्मे व्यवस्थितम्॥ हस्तयोश्च धनुर्वेदो आयुर्वेदश्च कीर्तितः। योगशास्त्राणि हृद्येव नीतिशास्त्राणि पादयोः॥ वाग्गीतं करयोर्नृत्यं कला विद्याश्च रोमसु। द्यौर्मूर्ध्नीन्द्वर्कौ नेत्रयोः घ्राणप्राणात्मकोऽनिलः॥ नाभ्यां व्योमाब्धयो बस्तौ पादे भूः सचलाचलाः। हिरण्यगर्भं मूर्ध्न्यस्य सर्पान् केशेषु विन्यसेत्॥ रुद्रं ललाटे भ्रुकुटावन्तकं श्रवणेऽश्विनौ। मुखे वैश्वानरं न्यस्य जिह्वायां च सरः

[सप्तमस्तोयन्यासः, सर्वदेवसाधारण:]

१. मेघेभ्यो नमः, केशेषु । २. अभ्रेभ्यो नमः, रोमसु ।
३. नदीभ्यो नमः, सर्वगात्रेषु । ४. समुद्रेभ्यो नमः, कुक्षिदेशे ।
इति तोयन्यासः ।

७—तोयन्यास–[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—'मेघेभ्यो नमः' से केशों में, 'अभ्रेभ्यो नमः' से रोमों में, 'नदीभ्यो नमः' से समस्त अङ्ग में, और 'समुद्रेभ्यो नमः' से पेट में न्यास करे। यह तोयन्यास समाप्त हुआ।

स्वतीम् ॥ रुद्रान् दत्सु वसून्कण्ठे हृद्यादित्यान् निवेशयेत् । बाह्वोरिन्द्रं बलिं चैव प्रह्लादं वामके स्तने ॥ दक्षिणे विश्वकर्माणं नारदं कुक्षिसंस्थितम् । अनन्तं वामकुक्षिस्थं वरुणं वस्तिसंस्थितम् ॥ मित्रं पायौ कटौ तार्क्ष्यं विश्वान् देवान् तथोरगान् । पितॄन् जानुद्वये यक्षान् नले गुल्फे तु राक्षसान् ॥ पिशाचान् प्रपदे पार्ष्ण्योर्न्यसेद् विद्याधरांस्तथा । ग्रहांस्तले नखेस्वेव जम्भकादीन् सपूतनान ॥ अङ्गुल्योःऽप्सरसः कट्यां कार्त्तिकेयगणेश्वरौ । गन्धर्वानोष्ठयोर्न्यस्य सर्वभूतानि पृष्ठतः ॥ मत्स्यं के पादयोःकूर्मं वराहं जङ्घयोर्न्यसेत् । नरसिंहं ललाटे तु वामनं मुखमध्यत ॥ नाभिहृत्कटिगुह्येषु रामान् कृष्णं च विन्यसेत् । कल्किनं जानुदेशे तु नरनारायणौ पदे ॥ न्यसेद् बाहुषु चैवास्य तथा बाहुसहस्रिणम् । अश्वमेधः शिरस्तस्य नरमेधो ललाटकम् ॥ राजसूयो मुखं चैव गोसवः कण्ठसंस्थितः । द्वादशाहश्च हृदयमहीनो नाभिसंस्थितः ॥ विश्वजिद् विश्वमेधं च कटिदेशे व्यवस्थितौ । अग्निष्टोमोऽस्य लिङ्गस्थो वृषणो चातिरात्रकः । आप्तोर्यामस्तथोरुस्थः षोडशी जानुगोचरे । उक्थ्यश्च वाजपेयश्च नले त्वग्निस्तु पादयोः ॥ चातुर्मास्यानि चैवास्य बाहस्वेव नियोजयेत् । सौत्रामणिं तले न्यस्य पश्विष्टिश्चाङ्गुलीगताम् ॥ दर्शश्च पौर्णमासश्च दृशो रोमाणि चेष्टयः । स्वाहाकारवषट्कारौ स्तनयोः संव्यवस्थितौ ॥ बाह्वोरङ्गुल्यः पञ्च-महायज्ञाः प्रकीर्तिताः ।

[अष्टमो विद्यान्यासः सर्वदेवसाधारणः]

१. ऋग्वेदाय नमः, शिरसि । २. यजुर्वेदाय नमः, दक्षिणभुजे ।
३. सामवेदाय नमः, वामभुजे । ४. सर्वोपनिषद्भ्यो नमः, हृदये ।
५. इतिहासपुराणेभ्यो नमः, जङ्घयोः । ६. अथर्वाङ्गिरसेभ्यो नमः, नाभौ ।
७. कल्पसूत्रेभ्यो नमः, पादयोः । ८. व्याकरणाय नमः, वक्त्रे ।
९. तर्केभ्यो नमः, कण्ठे । १०. मीमांसाय नमः, निरुक्ताय नमः, हृदये ।
११ छन्दःशास्त्रेभ्यो नमः;—ज्योतिःशास्त्रेभ्यो नमः, नेत्रयोः ।
१२. गीताशास्त्रेभ्यो नमः;—भूतशास्त्रेभ्यो नमः, श्रोत्रयोः ।
१३. आयुर्वेदाय नमः, दक्षिण भुजे । १४. धनुर्वेदाय नमः, वाम भुजे ।
१५. योगशास्त्रेभ्यो नमः, हृदये । १६. नीतिशास्त्रेभ्यो नमः, पादयोः ।
१७. वश्यतन्त्राय नमः, ओष्ठयोः ।
इति विद्यान्यासः ।

८—विद्यान्यास–[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—'ऋग्वेदाय नमः' से देवप्रतिमा के शिर में न्यास करे, 'यजुर्वेदाय नमः' से प्रतिमा की दाहिनी भजा में, 'सामवेदाय नमः' से प्रतिमा की बांयी भजा में 'सर्वोपनिषद्भ्यो नमः' से हृदय में, 'इतिहास-पुराणेभ्यो नमः' से जङ्घाओं में, 'अथर्वाङ्गिरसेभ्यो नमः' से नाभि में 'कल्प-

---

हृदयं दक्षिणा तस्य दर्भा केशास्त्वगम्बरम् । मुखमाहवनीयाग्निर्नाभी दक्षिणापरौ । प्रवर्ग्यो भूषण तस्य सवनानि गतित्रयम् ॥ पाकयज्ञाहविर्यज्ञाश्चरणाङ्गुल्यःस्मृताः । आज्यभागौ दृशौ ज्ञेयौ वेदी श्रोणी मुख हविः । पं० दौलतरामगौड़कृत प्रतिष्ठामयूख भाषाटीका से साभार ।

[नवमो वैराजन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

१. दिवे नमः, मूर्ध्नि ।	२. सूर्यलोकाय नमः; चन्द्रलोकाय-नमः, नेत्रयोः ।
३. अनिललोकाय नमः, घ्राणे ।	
४. व्योम्ने नमः, नाभ्याम् ।	५. समुद्रेभ्यो नमः, बस्तिदेशे ।
६. पृथिव्यै नमः, पादयोः । इति वैराजन्यासः ।	

[दशमो देवयोनिन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

१. हिरण्यगर्भाय नमः शिरसि ।	२. कृष्णाय नमः, केशेषु ।
३. रुद्राय नमः, ललाटे ।	४. यमाय नमः, भ्रूकुटयाम् ।
५. अश्विभ्यां नमः, कर्णयोः ।	६. वैश्वानराय नमः, मुखे ।
७. मरुद्भ्यो नमः, घ्राणे ।	८. वसुभ्यो नमः, कण्ठे ।
९. रुद्रेभ्यो नमः, दन्तेषु ।	१०. सरस्वत्यै नमः, जिह्वायाम् ।
११. इन्द्राय नमः, दक्षिणभुजे ।	१२. बलये नमः, वामभुजे ।

सूत्रेभ्यो नमः' से चरणों में, 'व्याकरणाय नमः' से मुख में, 'तर्केभ्यो नमः' से कण्ठ में 'मीमांसायै नमः' और 'निरुक्ताय नमः' से हृदय में, 'छन्दःशास्त्रेभ्यो नमः' तथा 'ज्योतिःशास्त्रेभ्यो नमः' से नेत्रों में, 'गीताशास्त्रेभ्यो नमः' तथा 'भूतशास्त्रेभ्यो नमः' से कानों में, 'आयुर्वेदाय नमः' से दाहिनी भुजा में, 'धनुर्वेदाय नमः' से बांयी भुजा में, 'योगशास्त्रेभ्यो नमः' से हृदय में, 'नीतिशास्त्रेभ्यो नमः' से चरणों में, 'वश्यतन्त्राय नमः' से ओठों में न्यास करे। यह विद्यान्यास हुआ।

९—वैराजन्यास–[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—

'दिवे नमः' से देवता के मस्तक पर, 'सूर्यलोकाय नमः' तथा 'चन्द्रलोकाय नमः' से नेत्रों में, 'अनिललोकाय नमः' से नासिका में; 'व्योम्ने नमः' से नाभि में, 'समुद्रेभ्यो नमः' से वस्तिदेश (नाभि से नीचे का स्थान, जिसे पेड़ू या मूत्राशय कहा जाता है) में 'पृथिव्यै नमः' से चरणों में न्यास करे। यह वैराजन्यास समाप्त हुआ।

१३. प्रह्लादाय नमः, दक्षिण-स्तने ।	१४. विश्वकर्मणे नमः, वामस्तने ।
१५. नारदाय नमः, दक्षिण-कुक्षौ ।	१६. अनन्तादिभ्यो नमः, वामकुक्षौ ।
१७. वरुणाय नमः, हस्तयोः ।	१८. मित्राय नमः, पादयोः ।
१९. विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, ऊरुमध्ये ।	२०. पितृभ्यो नमः, जानुमध्ये ।
२१. यक्षेभ्यो नमः, जङ्घयोः ।	२२. राक्षसेभ्यो नमः, गुल्फयोः ।
२३. पिशाचेभ्यो नमः, पादयोः ।	२४. असुरेभ्यो नमः, पादाङ्गुलीषु ।
२५. विद्याधरेभ्यो नमः, पार्ष्ण्योः ।	२६. ग्रहेभ्यो नमः, पादतलयोः ।
२७. गुह्यकेभ्यो नमः, गुदे ।	२८. पूतनादिभ्यो नमः, नखेषु ।
२९. गन्धर्वेभ्यो नमः, ओष्ठयोः ।	३०. कार्तिकेयाय नमः; गणेशाय नमः, कटिपार्श्वयोः ।

इति देवयोनिन्यासः ।

१०—देवयोनि न्यास–[सभी देवताओं की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—

'हिरण्यगर्भाय नमः' से देवता के शिर में, 'कृष्णाय नमः' से केशों में, 'रुद्राय नमः' से ललाट में, 'यमाय नमः' से भृकुटी (भौंहों) में, 'अश्विभ्यां नमः' से कानों में, 'वैश्वानराय नमः' से मुख में, 'मरुद्भ्यो नमः' से नाक में, 'वसुभ्यो नमः' से कण्ठ में, 'रुद्रेभ्यो नमः' से दाँतों में 'सरस्वत्यै नमः' से जिह्वा में, 'इन्द्रायः नमः' से दाहिनी भुजा में, 'बलये नमः' से बाँयी भुजा में, प्रह्लादाय नमः' से दाहिने स्तन में, 'विश्वकर्मणे नमः' से बाँये स्तन में, 'नारदायः नमः' से दाहिनी कोख में, 'अनन्तादिभ्यो नमः' से बाँयी कोख में, 'वरुणाय नमः' से हाथों में, 'मित्राय नमः' से चरणों में, 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः' से ऊरु के मध्य में, 'पितृभ्यो नमः' से

[एकादशो मूर्तिन्यासः, विष्णुप्रतिष्ठा विषयः]

१. मत्स्याय नमः, मूर्ध्नि । २. कूर्माय नमः, पादयोः ।
३. वराहाय नमः, जङ्घयोः । ४. नृसिंहाय नमः, ललाटे ।
५. वामनाय नमः, मुखे । ६. परशुरामाय नमः, हृदये ।
७. रामाय नमः, बाहुषु । ८. कृष्णाय नमः, नाभ्याम् ।
९. बौद्धाय नमः, बुद्धौ । १०. कल्किने नमः, जानुनि ।
११. केशवाय नमः, शिरसि । १२. नारायणाय नमः, मुखे ।
१३. माधवाय नमः, ग्रीवायाम् । १४. गोविन्दाय नमः, बाह्वोः ।
१५. विष्णवे नमः, हृदये । १६. मधुसूदनाय नमः, पृष्ठे ।
१७. त्रिविक्रमाय नमः, कट्याम् । १८. वामनाय नमः, जठरे ।
१९. श्रीधराय नमः ; हृषीकेशाय नमः, जङ्घयोः ।
२०. पद्मनाभाय नमः, गुल्फयोः । २१. दामोदराय नमः, पादयोः ।

इति मूर्तिन्यासः ।

घुटनों के मध्य में, 'यक्षेभ्यो नमः' से जङ्घाओं में, 'राक्षसेभ्यो नमः' से गुल्फों (टखनों) में, 'पिशाचेभ्यो नमः' से चरणों में, 'असुरेभ्यो नमः' से चरणों की अंगुलियों में, 'विद्याधरेभ्यो नमः' से 'पार्ष्णियों' (एड़ियों) में, 'ग्रहेभ्यो नमः' से पैरों के तलुओं में, 'गुह्यकेभ्यो नमः' से गुदा में, 'पूतनादिभ्यो नमः' से नखों में, 'गन्धर्वेभ्यो नमः' से ओष्ठों में और 'कार्त्तिकेयाय नमः' तथा गणेश्वराय नमः' से कटि (कमर) के पार्श्वों (दोनों बगलों) में न्यास करे। यह देवयोनिन्यास हुआ।

११–मूर्तिन्यास–[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—

'मत्स्याय नमः' से देवप्रतिमा के शिर में न्यास करे, 'कूर्माय नमः' से चरणों में, 'वराहाय नमः' से जङ्घाओं (टांगों) में, 'नृसिंहाय नमः' से ललाट में, 'वामनाय नमः' स मुख में, 'परशुरामाय नमः' से हृदय में, 'रामाय नमः' से भुजाओं

में, 'कृष्णाय नमः' से नाभि में, 'बौद्धाय नमः' से बुद्धि में, 'कल्किने नमः' से घुटनों में, 'केशवाय नमः' से शिर में, 'नारायणाय नमः' से मुख में, 'माधवाय नमः' से ग्रीवा (गरदन) में, 'गोविन्दाय नमः' से बाहुओं (भुजाओं) में, विष्णवे नमः' से हृदय में, 'मधुसूदनाय नमः' से पीठ में 'त्रिविक्रमाय नमः' से कटि (कमर) में, 'वामनाय नमः' से पेट में, 'श्रीधराय नमः' तथा 'हृषीकेशाय नमः' से जङ्घाओं में, 'पद्मनाभाय नमः' से गुल्फों (टखनों) में, और 'दामोदराय नमः' से पैरों में न्यास करे। यह विष्णु का मूर्तिन्यास पूर्ण हुआ।

गणपति, शिव, दुर्गा और सूर्य का मूर्तिन्यास[1]—

११ (क) मूर्तिन्यासः—गणपतिप्रतिष्ठाविषयः—

१. श्रीगणेशाय नमः, मूर्ध्नि २. भालचन्द्राय नमः, ललाटे
३. त्रिलोचनाय नमः, नेत्रयोः ४. शूर्पकर्णाय नमः, श्रोत्रयोः
५. गजाननाय नमः, मुखे ६. एकदन्ताय नमः, दन्तेषु
७. वक्रतुण्डाय नमः, शुण्डे ८. स्कन्दाग्रजाय नमः, स्कन्धयोः
९. वरदाय, पाशाङ्कुशाब्जहस्ताय नमः, चतुर्षु हस्तेषु
१०. गौरीसुताय नमः स्तनयोः ११. विघ्नहर्त्रे नमः, हृदये
१२. लम्बोदराय नमः, उदरे १३. कामारिसूनवे नमः, गुह्ये
१४. हेरम्बाय नमः, ऊर्वोः १५. सिद्धिविनायकाय नमः, जङ्घयोः
१६. मूषकवाहनाय नमः, पादयोः ।

११ (ख) मूर्तिन्यासः —शिवप्रतिष्ठाविषयः

१. शङ्कराय नमः, मूर्ध्नि २. कपर्दिने नमः, केशेषु
३. रुद्राय नमः, ललाटे ४. त्र्यम्बकाय नमः, नेत्रयोः
५. भीमाय नमः, श्रोत्रयोः ६. ईशानाय नमः, नासिकाभ्याम्
७. पञ्चवक्त्राय नमः, मुखे ८. श्रीकण्ठाय नमः, कण्ठे

---

१. सम्पादक द्वारा प्रकल्पित एवं प्रतिष्ठामयूख में संयोजित।

९. नागभूषणाय नमः, स्कन्धयोः १०. शूलपाणये नमः, हस्तयोः
११ शिवाय नमः, हृदये १२. भवाय नमः, उदरे
१३. दिगम्बराय नमः, गुह्ये १४. वृषध्वजाय नमः, जङ्घयोः
१५. महेश्वराय नमः, गुल्फयोः १६. शर्वाय नमः, पादयोः।

११ (ख) शिवस्य पञ्चमूर्तिन्यासः—

१. तत्पुरुषाय नमः, मुखे २. अघोराय नमः, हृदये
३. सद्योजाताय नमः पादयोः ४. वामदेवाय नमः, गुह्ये
५. ईशानाय नमः, मूर्ध्नि।

११ (ख) शिवस्य पञ्चवक्त्रन्यासः—

१. तत्पुरुषाय नमः, पूर्ववक्त्रे २. अघोराय नमः, दक्षिणवक्त्रे।
३. सद्योजाताय नमः, पश्चिमवक्त्रे ४. वामदेवाय नमः, उत्तरवक्त्रे
५. ईशानाय नमः, ऊर्ध्ववक्त्रे।

११ (ग) मूर्तिन्यासः —देवीप्रतिष्ठाविषयः —

१. दुर्गायै नमः, मूर्ध्नि २. विधात्र्यै नमः, ललाटे
३. अन्नपूर्णायै नमः, नेत्रयोः ४. हिमशैलवासिन्यै नमः, श्रोत्रयोः
५. कालिकायै नमः, कपोलयोः ६. सरस्वत्यै नमः, मुखे
७. भद्रकाल्यै नमः, कण्ठे ८. वज्रधारिण्यै नमः, भुजयोः
९. उमायै नमः, हस्तयोः १०. कौमार्यै नमः, स्तनयोः
११. क्षमायै नमः, हृदये १२. शिवायै नमः, उदरे
१३. कमलायै नमः, नाभौ १४. भगवत्यै नमः, कटिदेशे
१५. कात्यायन्यै नमः, ऊर्वोः १६. विन्ध्यवासिन्यै नमः, जङ्घयोः
१७. महाकाल्यै नमः, गुल्फयोः १८. चण्डिकायैः नमः, पादयोः।

[द्वादशः क्रतुन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

१. अश्वमेधाय नमः, मूर्ध्नि। २. नरमेधाय नमः, ललाटे।
३. राजसूयाय नमः, मुखे। ४. गोसवाय नमः, कण्ठे।
५. द्वादशाहाय नमः, हृदि। ६. अहीनेभ्यो नमः, नाभौ।
७. सर्वजितेभ्यो नमः, दक्षिणकट्याम्। ८. सर्वमेधाय नमः, वामकट्याम्।
९. अग्निष्टोमाय नमः, लिङ्गे १०. अतिरात्राय नमः, वृषणयोः। [उदकस्पर्शः।]
११. आप्तोर्यामाय नमः, ऊर्वोः। १२. षोडशिने नमः, जान्वोः।

११ (घ) मूर्तिन्यासः—सूर्यप्रतिष्ठाविषयः—

१. अर्काय नमः, मूर्ध्नि २. रवये नमः, ललाटे
३. सूर्याय नमः, नेत्रयोः ४. दिवाकराय नमः, श्रोत्रयोः
५. भानवे नमः, नासिकायाम् ६. भास्कराय नमः, मुखे
७. सुवर्णरेतसे नमः, कण्ठे ८. तिग्मतेजसे नमः, स्कन्धयोः
९. मित्राय नमः, दक्षिणहस्ते १०. वरुणाय नमः, वामहस्ते
११. भानवे नमः, हृदये १२. विवस्वते नमः, उदरे
१३. सवित्रे नमः, कट्याम् १४. भगाय नमः, गुह्ये
१५. दिवाकराय नमः, जङ्घयोः। १६. पूष्णे, नमः, पादयोः
१७. सहस्रांशवे नमः, सर्वाङ्गेषु।

१२–क्रतुन्यास–[सभी देवताओं की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]

'अश्वमेधाय नमः' से देवता (–प्रतिमा) के शिर में न्यास करे। 'नरमेधाय नमः' से ललाट में, 'राजसूयाय नमः' से मुख में, 'गोसवाय नमः' से कण्ठ में, 'द्वादशाहाय नमः' से हृदय में, 'अहीनेभ्यो नमः' से नाभि में, 'सर्वजितेभ्यो नमः' से कटि (कमर) के दांये भाग

१३. उक्थाय नमः, दक्षिण-जङ्घायाम् । १४. वाजपेयाय नमः, वाम जङ्घायाम् ।
१५. अत्यग्निष्टोमाय नमः, दक्षिणबाहौ । १६. चातुर्मास्याय नमः, वामबाहौ ।
१७. सौत्रामण्यै नमः, हस्तेषु । १८. पशुबन्धेष्टिभ्यो नमः, अङ्गुलिषु ।
१९. दर्शाय नमः, पौर्णमासाय नमः, नेत्रयोः ।
२०. सर्वेष्टिभ्यो नमः, रोमकूपेषु ।
२१. स्वाहाकाराय नमः, वषट्काराय नमः, स्तनयोः ।
२२. पञ्चमहायज्ञेभ्यो नमः, पादाङ्गुलीषु ।
२३. आहवनीयाय नमः, मुखे । २४. दक्षिणाग्नये नमः, हृदये ।
२५. गार्हपत्याय नमः, नाभ्याम् । २६. वेद्यै नमः, उदरे ।
२७. प्रवर्ग्याय नमः, भूषणेषु । २८. सवनेभ्यो नमः, पादयोः ।
२९. इध्मेभ्यो नमः, बाहुषु । ३०. दर्भेभ्यो नमः, केशेषु ।
इति क्रतुन्यासः ।

में, 'सर्वमेधाय नमः' से कटि (कमर) के बांये भाग में, 'अग्निष्टोमाय नमः' से लिङ्ग में न्यास [करके उदकस्पर्श] करे। 'अतिरात्राय नमः' से अण्डकोशों में न्यास करे [उदकस्पर्श]। 'आप्तोर्यामाय नमः' से दोनों ऊरुओं में, 'षोडशिने नमः' से दोनों घुटनों में, 'उक्थाय नमः' से दाहिनी जङ्घा में, 'वाजपेयाय नमः' से बांयी जङ्घा में, 'अत्यग्निष्टोमाय नमः' से दाहिनी भुजा में, 'चातुर्मास्याय नमः' से बांयी भुजा में, 'सौत्रामण्यै नमः' से दोनों हाथों में, 'पशुबन्धेष्टिभ्यो नमः' से अङ्गुलियों में, 'दर्शाय नमः' 'पौर्णमासाय नमः' से नेत्रों में, 'सर्वेष्टिभ्यो नमः' से रोमकूपों में, 'स्वाहाकाराय नमः' तथा 'वषट्काराय नमः' से दोनों स्तनों में, 'पञ्चमहायज्ञेभ्यो नमः' से पैरों की

[त्रयोदशो गुणन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

१. धर्माय नमः, मूर्ध्नि । २. ज्ञानाय नमः, हृदि ।
३. वैराग्याय नमः, गुह्ये-[उदकस्पर्शः] । ४. ऐश्वर्याय नमः, पादयोः
इति गुणन्यासः ।[1]

अथ मूलमन्त्रन्यासः । आयुधन्यासः । शक्तिन्यासः । अङ्गन्यासः ।
इति साधारणाः सर्वत्र । वैष्णवमधिकृत्य तूच्यन्ते ।

अंगुलियों में, 'आहवनीयाय नमः' से मुख में, 'दक्षिणाग्नये नमः' से हृदय में, 'गार्हपत्याय नमः' से नाभि में, 'वेद्यै नमः' से पेट में, 'प्रवर्ग्याय नमः' से आभूषणों में, 'सवनेभ्यो नमः' से पैरों में, 'इध्मेभ्यो नमः' से भुजाओं में और 'दर्भेभ्यो नमः' से केशों में न्यास करे। यह क्रतुन्यास सम्पन्न हुआ।

१३–गुणन्यास–(सभी प्रमुख देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित)—
'धर्माय नमः' से देवता के शिर में, 'ज्ञानाय नमः' से हृदय में, 'वैराग्याय नमः' से गुह्येन्द्रिय (लिङ्ग) में [उदकस्पर्श], 'ऐश्वर्याय नमः' से देवता के चरणों में न्यास करे। यह गुणन्यास समाप्त हुआ।[2]

इसके पश्चात् देवता की प्रतिमा में मूलमन्त्र का न्यास, आयुधन्यास, शक्तिन्यास और अङ्गन्यास करे। ये न्यास सभी देवताओं की प्रतिष्ठाओं में विहित हैं, किन्तु प्रत्येक देवता की प्रतिष्ठा में तत्तद् देवता के विशिष्ट मन्त्र और विशिष्ट आयुधों का ही न्यास

१. मूलपाठ में यह गुणन्यास 'अथ मूलमन्त्रन्यासः ··· वैष्णवमधिकृत्य तूच्यन्ते' के पश्चात् है। प्रसंगानुकूलतावश हमने इसे पहले रख दिया है। —सम्पादक

२. यह उल्लेखनीय है कि कुछ प्रतिष्ठा-सम्प्रदाय के विद्वानों (जिनमें काशी के महान् विद्वान् पं० मार्कण्डेय ब्रह्मचारी उल्लेखनीय हैं) के अनुसार यह गुण-न्यास सृष्टि, स्थिति, प्रलय में सक्षम देवताओं की मूर्ति-प्रतिष्ठा में ही होगा।

[चतुर्दश (क) न्यासः, विष्णुप्रतिष्ठाविषयः]

१. खड्गाय नमः, शिरसि। २. शार्ङ्गाय नमः, मस्तके।
३. मुसलाय नमः, दक्षिणभुजे ४. हलाय नमः, वामभुजे।
५. चक्राय नमः, नाभ्यां जठरे पृष्ठे च। ६. शंखाय नमः, लिंगे वृषणे च। [उदकोपस्पर्शः]।
७. गदायै नमः, जङ्घयोः,- जानुनोश्च। ८. पद्माय नमः, गुल्फयोः पादयोश्च।

[चतुर्दश (ख) आयुधन्यासः, शिवप्रतिष्ठाविषयः]

१. ॐ वज्राय नमः, शिरसि। २. शक्तये नमः मस्तके।
३. दण्डनाय नमः, दक्षिणभुजे। ४. खड्गाय नमः, वामभुजे।

किया जायेगा। इस प्रसंग में पहले विष्णु की प्रतिष्ठा को उद्देश्य में रख कर इन न्यासों का निरूपण किया जा रहा है—

१४-(क) आयुधन्यास-विष्णु प्रतिष्ठा विषयक—

'खड्गाय' नमः' से विष्णु प्रतिमा के शिर में, 'शार्ङ्गाय नमः' से विष्णुप्रतिमा के मस्तक में, 'मुसलाय नमः' से दाहिनी भुजा में, 'हलाय नमः' से बाँयी भुजा में 'चक्राय नमः' से नाभि और पेट तथा पीठ में 'शंखाय नमः' से लिङ्ग तथा वृषणों (अण्डकोशों) में न्यास करके उदक स्पर्श करे। तब 'गदायै नमः' से दोनों जङ्घाओं में और दोनों घुटनों में 'पद्माय नमः' से दोनों गुल्फों (टखनों) और दोनों चरणों में न्यास करे। [यह आयुध-न्यास विष्णु प्रतिष्ठा विषयक है। शिव-प्रतिष्ठा में आयुध-न्यास निम्नोक्त प्रकार से होगा]—

१४-(ख) आयुध न्यास—शिव-प्रतिष्ठा विषयक—

शिव की प्रतिष्ठा में 'ॐ वज्राय-नमः' से शिवमूर्ति या शिवलिङ्ग के शिर में न्यास करे। 'शक्तये नमः' से मस्तक में, 'दण्डाय

५. पाशाय नमः, जठर-नाभि-पृष्ठदेशेषु। ६. ध्वजाय नमः, लिंगे, वृषणयोश्च [उदकोपस्पर्शः]।
७. अङ्कुशायनमः, जान्वोः। ८. त्रिशूलाय नमः, जङ्घयोः।
९. चक्राय नमः, गुल्फयोः १०. पद्माय नमः, पादयोः।

इति शिवस्यायुधन्यासः।

नमः' से दाहिनी भुजा में, 'खड्गाय नमः' से बांयी भुजा में, 'पाशाय नमः' से पेट और नाभि तथा पीठ में, 'ध्वजाय नमः' से लिङ्ग तथा वृषणों (अण्डकोशों) में न्यास करके उदकस्पर्श करे। 'अङ्कुशाय नमः' से दोनों घुटनों में, 'त्रिशूलाय नमः' से दोनों जङ्घाओं में, 'चक्राय नमः' से दोनों गुल्फों (टखनों) में और 'पद्माय नमः' से दोनों चरणों में न्यास करे। यह शिव का आयुध-न्यास सम्पन्न हुआ।

१४-(ग)-आयुधन्यासः—दुर्गा-प्रतिष्ठा-विषयकः[1]—

'ॐ त्रिशूलाय नमः',	शिरसि।
ॐ खड्गाय नमः,	मस्तके।
ॐ चक्राय नमः,	दक्षिणभुजे।
ॐ बाणाय नमः,	वामभुजे।
ॐ शक्तये नमः,	नाभौ।
ॐ खेटकाय नमः,	गुह्ये।
ॐ चापाय नमः,	जङ्घयोः।
ॐ पाशाय नमः,	जानुनोः।
ॐ अङ्कुशाय नमः,	गुल्फयोः।
ॐ परशवे नमः,	पादयोः।

१४-(घ)-आयुधन्यासः-सूर्यप्रतिष्ठा-विषयकः—

सूर्य का आयुधन्यास शिव के आयुधन्यास के ही समान है[2]।

१. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० ११३; प्रतिष्ठामहोदधि, पृ० २८०।
२. तत्रैव।

[पञ्चदश शक्तिन्यासः, विष्णुप्रतिष्ठाविषयः]

१. लक्ष्म्यै नमः, ललाटे । २ सरस्वत्यै नमः, मुखे ।
३. रत्यै नमः, गुह्ये । ४. प्रीत्यै नमः, कण्ठे ।
५. कीर्त्यै नमः, दिक्षु । ६. शान्त्यै नमः, हृदि ।
७. तुष्ट्यै नमः, जठरे । ८. पुष्ट्यै नमः, सर्वत्र (सर्वाङ्गे) ।

इति शक्तिन्यासः ।

१४-(ङ) आयुधन्यासः गणपति-प्रतिष्ठा-विषयकः[1]—

ॐ बीजपूराय नमः, शिरसि ।
ॐ गदायै नमः मस्तके ।
ॐ धनुषे नमः, वामभुजे ।
ॐ त्रिशूलाय नमः, दक्षिणभुजे ।
ॐ चक्राय नमः, नाभ्याम् ।
ॐ कमलाय नमः, जठरे ।
ॐ पाशाय नमः, पृष्ठे ।
ॐ उत्पलाय नमः, लिङ्गे वृषणे ।
ॐ बाणाय नमः, जङ्घयोः ।
ॐ अङ्कुशाय नमः, जान्वोः ।
ॐ विषाणाय नमः, गुल्फयोः ।
ॐ रत्नकलशाय नमः, पादयोः ।

१५-शक्तिन्यास—[विष्णुप्रतिष्ठा विषयक]

'लक्ष्म्यै नमः' से देवता के ललाट में, 'सरस्वत्यै नमः' से मुख में, 'रत्यै नमः' से गुह्याङ्ग (जननेन्द्रिय) में, 'प्रीत्यै नमः' से कण्ठ में, 'कीर्त्यै नमः' से दिशाओं में, 'शान्त्यै नमः' से हृदय में, 'तुष्ट्यै नमः' से उदर (पेट) में, 'पुष्ट्यै नमः' से सर्वाङ्ग में शक्तिन्यास करे। यह शक्तिन्यास पूर्ण हुआ। [सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११३ के अनुसार

१. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११३; प्रतिष्ठामहोदधि पृ० २८०

उपर्युक्त शक्तिन्यास विष्णु का है। अन्य देवों का शक्तिन्यास निम्नलिखित है -]

१५-(क) शक्तिन्यासः—शिवप्रतिष्ठा-विषयकः[1]—

ॐ वामायै नमः, ललाटे ।
,, ज्येष्ठायै नमः, मुखे ।
,, रुद्राण्यै नमः, गुह्ये ।
,, काल्यै नमः, कण्ठे ।
,, कलविकरणायै नमः, दन्तेषु ।
,, बलायै नमः, हृदये ।
,, बलप्रमथनायै नमः, जठरे ।
,, सर्वभूतदमनायै नमः, नाभौ ।
,, उन्मनायै नमः, सर्वाङ्गेषु ।

१५-(ख) शक्तिन्यासः—सूर्यप्रतिष्ठाविषयकः[2]

ॐ दीप्तायै नमः, ललाटे ।
,, सूक्ष्मायै नमः, मुखे ।
,, विजययायै नमः, गुह्ये ।
,, भद्रायै नमः, कण्ठे ।
,, विभूत्यै नमः, दन्तपंक्तिषु ।
,, विमलायै नमः, हृदये ।
,, अमोघायै नमः, नाभौ ।
,, विद्युतायै नमः, उदरे ।
,, सर्वतोमुख्यै नमः, सर्वाङ्गे ।

१५-(ग) शक्तिन्यासः—देवी-प्रतिष्ठा-विषयकः[3]—

ॐ प्रभायै नमः, ललाटे ।

१. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११४ ।
२. तत्रैव ।
३. तत्रैव ।

[षोडशोऽङ्गन्यासः, विष्णुप्रतिष्ठाविषयः]

मूलमन्त्रस्य, हृदयं हृदये, शिरः शिरसि, शिखां शिखायाम्, वासुदेवाय कवचं सर्वाङ्गे, नेत्रयोर्नेत्रे, करयोरस्त्रम्,

,, उमायै नमः, मुखे ।
,, जयायै नमः, गुह्ये ।
,, सूक्ष्मायै नमः, कण्ठे ।
,, विशुद्धायै नमः, दन्तेषु ।
,, नन्दिन्यै नमः, हृदये ।
,, सुप्रभायै नमः, नाभौ ।
,, विजयायै नमः, उदरे ।
,, सर्वसिद्धिप्रदायिन्यै नमः, सर्वाङ्गेषु ।

१५-(घ) शक्तिन्यासः—गणपति-प्रतिष्ठा-विषयकः[1]—

ॐ तीव्रायै नमः, ललाटे ।
,, ज्वालिन्यै नमः, मुखे ।
,, नन्दायै नमः, गुह्ये ।
,, भोगदायै नमः, कण्ठे ।
,, कामरूपिण्यै नमः, दन्तेषु ।
,, उग्रायै नमः, हृदये ।
,, तेजोवत्यै नमः, नाभौ ।
,, सत्यायै नमः, उदरे ।
,, सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः, सर्वाङ्गेषु

१६-(क) अङ्गन्यास–विष्णुप्रतिष्ठा-विषयकः—

'हृदयाय नमः' कहते हुए विष्णु-प्रतिमा के हृदय में हृदयन्यास करे ।

---

१. सर्वदेव प्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११४ ।

दक्षिणवामस्तनयोः—श्रीवत्साय नमः, उरसि कौस्तुभाय नमः, कण्ठे—वनमालायै नमः । इत्यंगन्यासः ।

[अङ्गन्यासः—विष्णोरङ्गन्यास अधोलिखित क्रमेण वा कार्यः]

१. ॐ हृदयाय नमः, हृदये । २. शिरसे स्वाहा, शिरसि । ३. शिखायै वषट्, शिखायाम् । ४. कवचाय हुम्, सर्वाङ्गेषु । ५. नेत्रत्रयाय वौषट्, नेत्रयोः : ६. अस्त्राय फट्, करयोः ।

ॐ नमः हृदये । ॐ नं नमः, शिरसि । ॐ भगवते नमः, शिखायाम् । ॐ वासुदेवाय नमः, कवचे । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, अस्त्रम् (अस्त्राय फट्—इति)

[प्रकारान्तरेणेदं विहितम्]

७. श्रीवत्साय नमः, दक्षिणवामस्तनयोः । ८. कौस्तुभाय नमः, उरसि । ९. वनमालायै नमः, कण्ठे ।

'शिरसे स्वाहा' से विष्णु-प्रतिमा के शिर में न्यास करे ।

'शिखायै वषट्' कहते हुए शिखा में न्यास करे ।

'वासुदेवाय नमः कवचाय हुम' से कवच का न्यास सर्वाङ्ग में करे ।

'नेत्राभ्यां वौषट्' कहते हुए दोनों, नेत्रों में नेत्रों का न्यास करे ।

'अस्त्राय फट्' से दोनो हाथों में अस्त्र–न्यास करे ।

'श्रीवत्साय नमः' कहते हुए दाहिने और बाएँ स्तनों में श्रीवत्स का न्यास करे ।

'कौस्तुभाय नमः' कहते हुए वक्षःस्थल में कौस्तुभ का न्यास करे ।

'वनमालायै नमः' से कण्ठ में वनमाला का न्यास करे । यह विष्णु का अङ्गन्यास पूर्ण हुआ ।

१६-(ख) अङ्गन्यास।—शिवप्रतिष्ठा-विषयकः[1]—

ॐ नमः, हृदये।
,, नं नमः, शिरसि।
,, मं नमः, शिखायै वषट्।
,, शि नमः, कवचाय हुम्।
,, वां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्।
,, यं नमः, अस्त्राय फट्।

१६-(ग) अङ्गन्यासः-सूर्यप्रतिष्ठाविषयकः[2]—

ॐ नमो घृणये सूर्यायादित्याय सत्याय हृदयाय नमः।
,, नमो घृणये सूर्यायादित्याय ब्रह्मणे शिरसे स्वाहा।
,, नमो घृणये सूर्यायादित्याय विष्णवे शिखायै वषट्।
,, नमो घृणये सूर्यायादित्याय रुद्राय कवचाय हुम्।
,, नमो घृणये सूर्यायादित्याय अग्नये नेत्रत्रयाय वौषट्।
,, नमो घृणये सूर्यायादित्याय सर्वाय अस्त्राय फट्।

१६-(घ) अङ्गन्यासः—देवी-प्रतिष्ठाविषयकः[3]—

ॐ ह्रां दुर्गायै हृदयाय नमः।
,, ह्रीं दुर्गायै शिरसे स्वाहा।
,, ह्रूं दुर्गायै शिखायै वषट्।
,, ह्रैं दुर्गायै कवचाय हुम्।
,, ह्रौं दुर्गायै नेत्रत्रयाय वौषट्।
,, ह्रः दुर्गायै अस्त्राय फट्।

१६-(ङ) अङ्गन्यासः—गणपतिप्रतिष्ठा विषयकः[4]—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं षड्बीजस्य गां हृदयाय नमः।

१. सर्वदेव प्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११३।
२. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११४; द्रष्टव्य-प्रतिष्ठामहोदधि पृ० २८०।
३. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११४; प्रतिष्ठामहोदधि पृ० २८३।
४. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११४; प्रतिष्ठामहोदधि पृ० २८२।

[सप्तदशो मूलमन्त्रन्यासः, विष्णुप्रतिष्ठाविषयः]

१. ओं पादयोः। न जानुनोः। मो गुह्ये। भ नाभ्याम्। ग हृदये। व कण्ठे। ते मुखे। वा नेत्रयोः। सु भाले। दे मूर्ध्नि। वा दक्षिण पार्श्वे। य उत्तरपार्श्वे। इति द्वादशाक्षरन्यासः।

,, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं षड्बीजस्य गीं शिरसे स्वाहा
,, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं षड्बीजस्य गूं शिखायै वषट्
,, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं षड्बीजस्य गैं कवचाय हुम्
,, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं षड्बीजस्य गौं नेत्रत्रयाय वौषट्
,, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं षड्बीजस्य गः अस्त्राय फट

१७-(क) मूलमन्त्रन्यास—विष्णु विषयक—

'ॐ' का न्यास विष्णु-प्रतिमा के चरणों में करे। 'न' के उच्चारण से दोनों घुटनों में, 'मो' से गुह्याङ्ग (जननेन्द्रिय) में, 'भ' से नाभि में, 'ग' से हृदय में, 'व' से कण्ठ में, 'त' से मुख में, 'वा' से नेत्रों में, 'सु' से भाल (ललाट) में, 'दे' से मूर्धा (शिर) में, 'वा' से दाहिने पार्श्व (कांख के नीचे के दाहिने भाग में), 'य' से बांये पार्श्व (बांयी ओर के कांख के नीचे के भाग में) न्यास करे। यह विष्णु के द्वादशाक्षरमन्त्र का न्यास पूर्ण हुआ।

१७ (ख) मूलमन्त्रन्यासः—शिवप्रतिष्ठायां द्वादशाक्षरमन्त्र न्यास।—[1]

ॐ नमो भगवते शिवाय नमः (इति शिवस्य द्वादशाक्षरो मन्त्रः)।
ॐ, नमः पादयोः।
नं, जानुनि
मो, गुह्ये
भं, नाभौ
यं, हृदये

१. सर्वदेवप्रतिष्ठा प्रकाश, पृ० ११४।

वं, कण्ठे
तें, मुखे
शि, नेत्रयोः
वां, ललाटे
यं. शिरसि
नं, दक्षिणपाश्वं
मं, वामपार्श्वे

१७ [ग] मूलमन्त्रन्यासः सूर्यप्रतिष्ठाविषयकः[1]—

ॐ, पादयोः
नं, जान्वोः
मों, गुह्ये
भं, नाभौ
गं, हृदये
वं, कण्ठे
तें, मुखे
सूं, नेत्रयोः
र्यां, भाले
यं, मूर्ध्नि
नं, दक्षिणपाश्व
मं, वामपार्श्वे

१७ [घ] मूलमन्त्रन्यासः—देवी-प्रतिष्ठाविषयकः[2]—

ॐ नमो, मूर्ध्नि
ऐं, मुखे
ह्रीं, कण्ठे
क्लीं, हृदि

१. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० ११४।
२. तत्रैव।

चां, दक्षिणपार्श्वे
मुं, वामपार्श्वे
डां, नाभौ
यैं, गुह्ये
वि, जानुनोः (-गुल्फयोः—प्रतिष्ठामहोदधौ)
च्चें, पादयोः

१७ [ङ] मूलमन्त्रन्यासः—गणपतिप्रतिष्ठाविषयकः[1]—

ॐ मूर्ध्नि,
ॐ नमः, शिखायाम्
ॐ श्रीं, ललाटे
ॐ ह्रीं, दक्षभ्रुवि
ॐ क्लीं, वामभ्रुवि
ॐ ग्लौं, दक्षिणनेत्रे
ॐ गं, वामनेत्रे
ॐ णं, दक्षिणश्रोत्रे
ॐ पं, वामश्रोत्रे
ॐ तं, दक्षनासापुटे
ॐ ये, वामनासापुटे
ॐ स, ओष्ठयोः
ॐ वं, तालुदेशे
ॐ जं, नाभौ
ॐ नं, उदरे
ॐ मे, कट्याम्
ॐ वं, लिङ्गे
ॐ शं, वृषणे
ॐ मां, ऊर्वोः

१. सर्वदेवप्रतिष्ठा प्रकाश, पृ० ११४।

[अष्टादशो जीवन्यासः, सर्वदेवसाधारण:]

प्रतिमायां जीवन्यासः ।[१] तत्र तेजो भावयित्वा बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रियमनःप्राणपञ्चकाहङ्कारशब्दतन्मात्रादिकं सर्वं संयोज्य पुरुष-भावं भावयित्वा सर्वतार्क्षणं च भावयित्वा तत्र तत्त्वत्रयं न्यसेत् । तद्यथा—

आत्मतत्त्वाय नमः, आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः, पादयोः ।
विद्यातत्त्वाय नमः, विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे नमः, हृदये ।
शिवतत्त्वाय नमः, शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः, शिरसि ।
इति ।

ॐ नं, जङ्घयोः
ॐ यं, गुल्फयोः
ॐ स्वां, पादयोः
ॐ हां, अङ्गुलीषु । इति महागणपति-मन्त्रन्यासः ।

१८—जीवन्यास-[सभी देवोंकी प्रतिष्ठा में समानतया विहित]—

इसके पश्चात् देव-प्रतिमा में जीवन्यास करे। उस प्रतिमा में तेज की भावना करके पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा), पाँचों कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर, मुख, जननेन्द्रिय और गुदा), मन, पाँचों प्राणों (प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान), अहङ्कार, शब्दतन्मात्रा आदि (पाँचों सूक्ष्ममहाभूतों) सभी को भावना से संयोजित करके पुरुषभाव की भावना करके उस प्रतिमा

१. मयूखादौ प्रसङ्गादत्रैव लिखितोऽपि स्थापिते देवे कार्यं इत्यागमिकाः । शयने स्थापयित्वा तां ततो होमं समारभेत् । हुत्वा षोडशधा न्यासः कार्यश्चैव पृथक् पृथक् ॥ अधिवासिते सदा कार्यो न्यासाः पञ्चदशैव तु । सजीवकरणं कुर्यात्स्थापिते तु जगत्पतौ । एवं न्यासविधिं यस्तु न जानाति द्विजोत्तमः । आचार्यः स न मन्तव्यो निग्राह्यस्तस्करो यथा—इति वचनात् । —आचार्य श्रीधररामगौड़कृत प्रतिष्ठा-मयूख भाषाटीका पृ० ९३ से साभार ।

में तत्त्वत्रय का न्यास करे जिसका क्रम पद्धतियों के आधार पर[१] नीचे दिया गया है—

निवृत्तिन्यासः-देवी प्रतिष्ठाविषयकः[२]—

ॐ ह्रीं अं	निवृत्त्यै नमः	शिरसि
ॐ ह्रीं आं	प्रतिष्ठायै नमः	मुखे
ॐ ह्रीं इं	विद्यायै नमः	दक्षिणनेत्रे
ॐ ह्रीं ईं	शान्त्यै नमः	वामनेत्रे
ॐ ह्रीं उं	इन्धिकायै नमः	दक्षिणश्रोत्रे
ॐ ह्रीं ऊं	दीपिकायै नमः	वामश्रोत्रे
ॐ ह्रीं ऋं	रेचिकायै नमः,	दक्षिणनासापुटे
ॐ ह्रीं ॠं	मोचिकायै नमः	वामनासापुटे
ॐ ह्रीं लृं	परायै नमः	दक्षकपोले
ॐ ह्रीं ॡं	सूक्ष्मायै नमः	वामकपोले
ॐ ह्रीं एं	सूक्ष्मामृतायै नमः	ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ
ॐ ह्रीं ऐं	ज्ञानामृतायै नमः	अधोदन्तपङ्क्तौ
ॐ ह्रीं ओं	साविव्यै नमः	ऊर्ध्वोष्ठे
ॐ ह्रीं औं	व्यापिन्यै नमः	अधरोष्ठे
ॐ ह्रीं अं	सुरूपायै नमः	जिह्वायाम्
ॐ ह्रीं अः	अनन्तायै नमः	कण्ठे
ॐ ह्रीं कं	सृष्ट्यै नमः	दक्षबाहुमूले
ॐ ह्रीं खं	ऋद्ध्यै नमः	दक्षकूर्परे
ॐ ह्रीं गं	स्मृत्यै नमः	दक्षिणमणिबन्धे

१. द्रष्टव्य-सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११९; प्रतिष्ठामहोदधि, २८५–७; प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ४०१–३।

२. देवीमूर्तौ षोडशन्यासानन्तरं निवृत्तिन्यासः कार्यः । –प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ३९९-४०० ।

ॐ ह्रीं घं	मेधायै नमः	दक्षकराङ्गुलिमूलेषु
ॐ ह्रीं ङं	कान्त्यै नमः	दक्षकराङ्गुल्यग्रेषु
ॐ ह्रीं चं	लक्ष्म्यै नमः	वामबाहुमूले
ॐ ह्रीं छं	द्युत्यै नमः	वामकूर्परे
ॐ ह्रीं जं	स्थिरायै नमः	वाममणिबन्धे
,, ह्रीं झं	,,	वामकराङ्गुलिमूलेषु
,, ह्रीं ञं	सिद्धयै नमः	वामकराङ्गुल्यग्रेषु
,, ह्रीं टं	जरायै नमः	दक्षपादमूले
,, ह्रीं ठं	पालिन्यै नमः	दक्षजानुनि
,, ह्रीं डं	शान्त्यै नमः	दक्षगुल्फे
,, ह्रीं ढं	ऐश्वर्यै नमः	दक्षपादाङ्गुलिमूलेषु
,, ह्रीं णं	रत्यै नमः	दक्षपादाङ्गुल्यग्रेषु
,, ह्रीं तं	कामिन्यै नमः	वामपादमूले
,, ह्रीं थं	रदायै नमः	वामजानुनि
,, ह्रीं दं	ह्लादिन्यै नमः	वामगुल्फे
,, ,, धं	प्रीत्यै नमः	वामपादाङ्गुलिमूलेषु
,, ,, नं	दीर्घायै नमः	वामपादाङ्गुल्यग्रेषु
,, ,, पं	तीक्ष्णायै नमः	दक्षिणकुक्षौ
,, ,, फं	सुप्त्यै नमः	वामकुक्षौ
,, ,, बं	अभयायै नमः	पृष्ठे
,, ,, भं	निद्रायै नमः	नाभौ
,, ,, मं	मात्रे नमः	उदरे
,, ,, यं	शुद्धायै नमः	हृदि
,, ,, रं	क्रोधिन्यै नमः	कण्ठे
,, ,, लं	कृपायै नमः	ककुदि
,, ,, वं	उत्कायै नमः	स्कन्धयोः
,, ,, शं	मृत्यवे नमः	दक्षिणकरे

ॐ ह्रीं षं	पीतायै नमः	वामकरे
,, ,, सं	श्वेतायै नमः	दक्षिणपादे
,, ,, हं	अरुणायै नमः	वामपादे
,, ,, क्षं	असितायै नमः	मूर्धादिपादान्तम्
,, ,, त्रं	सर्वसिद्धिगौर्यै नमः	पादादिमूर्द्धान्तम्

वशिन्यादिन्यासः—देवीप्रतिष्ठा विषयकः[1]—

ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः, ब्रह्मरन्ध्रे

ॐ कं खं गं घं ङं क्लीं ह्रीं कामेश्वरी वाग्देवतायै नमः ललाटे

ॐ चं छं जं झं ञं मोदिनीवाग्देवतायै नमः, भ्रूमध्ये

ॐ टं ठं डं ढं णं ब्ल्यूं विमलावाग्देवतायै नमः, कण्ठे

ॐ तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै नमः, हृदि

ॐ पं फं बं भं मं ह्स्लब्ल्यूं जयिनीवाग्देवतायैः नमः, नाभौ

ॐ यं रं लं वं ह्स्ल्व्यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः आधारे

ॐ शं षं सं हं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः, सर्वाङ्गे

अथ प्रतिमायां जीवन्यासः[2]—

ॐ अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः - ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि चैतन्यदेवता आं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्रौं कीलकं, अमुकदेवप्रतिमायाः प्राणप्रतिष्ठायां जीवन्यासे विनियोगः।

ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि।

ॐ ऋग्यजुःसामछन्दोभ्यो नमः, मुखे।

ॐ प्राणाख्यदेवतायै नमः, हृदि।

ॐ आं बीजाय नमः, गुह्ये।

ॐ ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः।

---

१. प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ४०१।

२. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० ११४; प्रतिष्ठामहोदधि, पृ० २८४-२८५।

ॐ क्रौं कीलकाय नमः, सर्वाङ्गे ।

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः ।

ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं, शिरसे स्वाहा ।

ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं, शिखायै वषट् ।

ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं, कवचाय हुम् ।

ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं, नेत्रत्रयाय वौषट् ।

ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अः, अस्त्राय फट् ।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः अमुक देवस्य प्राणा इह प्राणाः ।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः अमुक देवस्य जीव इह स्थितः ।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः अमुक देवस्य सर्वेन्द्रियाणि ।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः अमुकदेवस्य वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरन्तिष्ठन्तु स्वाहा ।

ततः प्रतिमायाः हृद्यङ्गुष्ठं दत्त्वा जपेत्—

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥

इति पुरुषभावं सम्भावयित्वा 'ॐ' इति प्रणवेन सन्निरुध्य सजीवं ध्यात्वा ध्रुवसूक्त मूलमन्त्रं गायत्रीमन्त्रं च देवकर्णे जपित्वा

स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः ।
प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत्परिपालय ॥ इति जपेत् ।

जीवन्यासे तत्त्वन्यासः—[1]

ॐ मं जीवात्मने नमः, ॐ भं प्राणात्मने नमः । इति पठित्वा देवशरीरे व्यापकं कुर्यात् ।

ॐ बं बुद्ध्यात्मने नमः, ॐ फं अहङ्कारात्मने नमः, ॐ पं मनस्तत्त्वात्मने नमः, हृदये ।

" नं शब्दतन्मात्रात्मने नमः शिरसि ।

" धं स्पर्शतन्मात्रात्मने नमः, मुखे ।

" दं रूपतन्मात्रात्मने नमः, हृदि ।

" थं रसतन्मात्रात्मने नमः, अंसयोः[2] ।

" तं गन्धतन्मात्रात्मने नमः, पादयोः ।

" णं श्रोत्रात्मने नमः, श्रोत्रयोः ।

" ढं त्वगात्मने नमः, त्वचि ।

" डं चक्षुरात्मने नमः, चक्षुषोः ।

" ठं जिह्वात्मने नमः, जिह्वायाम् ।

" टं घ्राणात्मने नमः, घ्राणे ।

" ञं वागात्मने नमः, वाचि ।

" झं पाण्यात्मने नमः, पाण्योः ।

" जं पादात्मने नमः, पादयोः ।

" छं पाय्वात्मने नमः, पायौ ।

" चं उपस्थात्मने नमः, उपस्थे ।

" ङं पृथिव्यात्मने नमः, पादयोः ।

" घं अप्तत्त्वात्मने (अबात्मने) नमः, वस्तौ ।

" गं तेजस्तत्त्वात्मने नमः, हृदि ।

---

१. सर्वदेवप्रतिष्ठा प्रकाश पृ० ११५, प्रमुविद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ४०१-४०३ ।
२. हस्तयोः-प्रमुविद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ४०२ ।

ॐ खं वायुतत्त्वात्मने (प्राणात्मने) नमः, घ्राणे ।
,, कं आकाशात्मने नमः, शिरसि ।
,, शं पुण्डरीकाक्षाय नमः, हृदि ।
,, षं सूर्यात्मने नमः, हृत्पुण्डरीकमध्ये ।
,, सं सोमात्मने नमः, स्तनमध्ये ।
,, रं वह्न्यात्मने नमः, स्तनयोः ।

ततः वं बीजं स्वाभिमतमूर्त्यां स्वमन्त्रेण संयोज्य 'ॐ पुरुषात्मने नमः,' इति पुरुषभावनीयं ध्यात्वा (विशेषबीजाद्यनुपलब्धौ तु देवतानाम्नः आद्यमक्षरं सानुस्वारं तत्तद्देवतानाम्ना संयोज्य ध्यायेत् । तद्यथा—ॐ शि शिवात्मने नमः । ॐ वि विष्ण्वात्मने नमः, ॐ रां रामात्मने नमः, । इत्यादि प्रकारेण देवं भावयित्वा।'

'ॐ पं परात्मने नमः' इति सर्वसाक्षिणं भावयित्वा
,, गं सर्वात्मने नमः' इति सर्वतोमुखं भावयित्वा
,, वं अनुग्रहात्मने नमः' इति अनुग्रहकारकं भावयित्वा
,, सं सर्वात्मने नमः, इति सर्वसम्भूतिकरणं भावयित्वा
,, लं सर्वसंहरणात्मने नमः, इति सर्वसंहरणात्मकं भावयित्वा
,, क्षं कोपात्मने नमः, इति सर्वसंयमकारकमिति ध्यात्वा

मूर्तौ तत्त्वत्रय-न्यासं कुर्यात् ।

तत्त्वत्रयन्यासः—

ॐ आत्मतत्त्वाय नमः, आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः, ।' इससे प्रतिमा के चरणों में आत्मतत्त्व का न्यास करे।

,, विद्यातत्त्वाय नमः, विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे नमः,' इससे प्रतिमा के हृदय में विद्यातत्त्व का न्यास करे।

,, शिवतत्त्वाय नमः, शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः' इससे प्रतिमा के शिर में शिवतत्त्व का न्यास करे।

१. द्र० प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ४०२-४०३।

[एकोनविंशो गायत्रीन्यासः सूर्यप्रतिष्ठाविषयः]

अथ गायत्रीन्यासः सूर्यस्य । तत् पादाङ्गुष्ठयोः । स गुल्फयोः । वि जंघयोः । तुर् जानुनोः । व ऊर्वोः । रे गुह्ये । णि वृषणयोः । यं कटिदेशे । भ नाभौ । र्गो जठरे । दे स्तनयोः । व हृदये । स्य कण्ठे । धी वदने । म तालुदेशे । हि नासिकाग्रे । धि चक्षुषोः । यो भ्रूमध्ये । यो ललाटे । नः पूर्वादिशि । प्र दक्षिण दिशि । चो पश्चिमदिशि । द उत्तरादिशि । या मूर्ध्नि । त् सर्वत्र ।

तत्सवितुर्हृदये । वरेण्यं शिरसि । भर्गो देवस्य शिखायाम् । धीमहि कवचे । धियो यो नः नेत्रयोः । प्रचोदयात् अस्त्रे । इति गायत्रीन्यासः ।

१८ – गायत्रीन्यास-सूर्यप्रतिष्ठा विषयक—

अब गायत्री-न्यास का विधान करते हैं। प्रत्येक देवता का गायत्री मन्त्र भिन्न-भिन्न होता है।' यहाँ पर सूर्य की प्रतिष्ठा में विहित गायत्री-न्यास का निरूपण किया जा रहा है।

'तत्' का न्यास भगवच्चरणों के अङ्गुष्ठों में करे। 'स' से गुल्फों (टखनों) में, 'वि' से जङ्घाओं में, 'तुर' से जानुओं (घुटनों) में, 'व' से ऊरुओं में, 'रे' से गुह्याङ्ग (जननेन्द्रिय) में, 'णि' से वृषणों (अण्डकोशों) में, 'य' से कटिदेश (कमर) में, 'भ' से नाभि में र्गो से जठर (पेट) में, 'दे' से स्तनों में, 'व' से हृदय में, 'स्य' से कण्ठ में 'धी' से मुख में 'म' से तालु में 'हि' से नासिका के अग्रभाग में, 'धि' से नेत्रों में, 'यो' से भौंहों के मध्य में, 'यो' से ललाट में, 'नः' से पूर्व दिशा में, 'प्र' से दक्षिण दिशा में, 'चो' से पश्चिम दिशा में, 'द' से उत्तरदिशा में, 'या' से मूर्धा (मस्तक शिर) में, 'त्' से सर्वत्र-सर्वाङ्ग में न्यास करे।

१. विभिन्न देवों की गायत्री-मन्त्रों की एक विस्तृतसूची आगे प्रतिष्ठा प्रकरण में दी गयी है।

[विशो मन्त्रन्यासः, सर्वदेवसाधारणः]

अथ मन्त्रन्यासः। अग्निमीडे० पादयोः। इषे त्वा० गुल्फयोः। अग्न आ याहि० जङ्घयोः। शन्नो देवी० जान्वोः। बृहद्रथन्तरेभ्यो नमः ऊर्वोः। स्वस्ति न० जठरे। दीर्घायुस्त० हृदये। श्रीश्च ते० कण्ठे। त्रातारं० वक्त्रे। त्र्यम्बकं० स्तनयोर्नेत्रयोश्च। मूर्धानं० मूर्ध्नि।

'तत् सवितुः' से हृदय में, 'वरेण्यं' से शिर में, 'भर्गो देवस्य' से शिखा में, 'धीमहि' से कवच में 'धियो यो नः' से नेत्रों में, 'प्रचोदयात्' से अस्त्र में न्यास करे। यह गायत्री न्यास पूर्ण हुआ।

२०. मन्त्रन्यास—[सभी देवों की प्रतिष्ठा में समानतः विहित]—

अब मन्त्र न्यास बतलाते हैं। 'अग्निमीडे'[1] इस मन्त्र से देव-प्रतिमा के चरणों में, 'इषे त्वा०'[2] इस मन्त्र से गुल्फों (टखनों) में, 'अग्न आ याहि०'[3] इस मन्त्र से जङ्घाओं में, 'शन्नो देवी०'[4] इससे जानुओं

१. ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ ऋ० १।१।१

२. ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा वस्तेन ऽईशत माघश ँ सो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ य० अ० १।१

३. ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥ सामवेद १।१

४. शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ अथर्व १।१।१ (पैप्पलाद)

(घुटनों) में, 'बृहद्रथन्तरेभ्यो नमः'[1] से ऊरुओं में, 'स्वस्ति न इन्द्रो०'[2] से पेट में, 'दीर्घायुस्त ओषधे०'[3] इस मन्त्र से हृदय में, 'श्रीश्च ते०'[4] से कण्ठ में, 'त्रातारमिन्द्र०'[5] से मुख में, 'त्र्यम्बकं०'[6] से दोनों स्तनों और दोनों नेत्रों में, 'मूर्धानं दिवो०'[7] इस मन्त्र से मूर्धा (मस्तक—शिर) में न्यास करे।

१. बृहद्रथन्तर कुछ विशिष्ट सामों का समस्त अभिधान है। उदाहरणार्थ—'त्वामिद्धि हवामहे' (ऋ० ६।४६।१) पर गाये जाने वाले साम को बृहत्साम कहते हैं और 'अभि त्वा शूर नोनुमः' (ऋ० ७।३२।२२) इत्यादि ऋचा पर गाये जाने वाले साम को रथन्तर कहते हैं।

२. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ (यजु० २५।१९)

३. दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्। अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात्॥ (यजु १२।१००)

४. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे न क्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥ (यजु० ३१।२२)

५. ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः। (ऋ० ६।४७।११)

६. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (ऋ० ७।५९।१२)

७. ॐ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्। कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ (ऋ० ६।७।१ यजु० ७।२४;३३)

[नारायणमूर्तौ द्वादशाक्षरमन्त्रन्यासः]

अथ द्वादशाक्षरेण नारायणस्य मूर्तिन्यासः। ओं केशवाय नमः शिरसि। न नारायणाय नमः मुखे। मो माधवाय नमः ग्रीवायाम्। भ गोविन्दाय नमः कण्ठे। ग विष्णवे नमः पृष्ठे। व मधुसूदनाय नमः कुक्षौ। ते त्रिविक्रमाय नमः कट्याम्। वा वामनाय नमः जङ्घयोः। सु श्रीधराय नमः वामगुल्फे। दे हृषीकेशाय नमः दक्षिणगुल्फे। वा पद्मनाभाय नमः वामपादे। य दामोदराय नमः दक्षिणपादे।

[नारायणमूर्तौ विष्णवष्टाङ्गमन्त्रन्यासः]

ॐ हुं हृदयाय नमः हृदये। विष्णवे नमः शिरसि। ब्रह्मणे नमः शिखायाम्। ध्रुवाय नमः कवचे। चक्रिणे नमः अस्त्राय फट् अस्त्रं हस्तयोः। नमः शम्भवाय० गायत्रीं दक्षिण नेत्रे। विजयाय नमः सावित्रीं वामनेत्रे। चक्रिणे चक्ररूपाय नमः पिङ्गलास्त्र दिक्षु। इत्यष्टाङ्गविष्णुमन्त्रन्यासः

नारायण मूर्ति में द्वादशाक्षरमन्त्र का न्यास—

अब नारायण-मूर्ति में द्वादशाक्षर मन्त्र का न्यास बतलाते हैं। 'ॐ केशवाय नमः' से मूर्ति के शिर में, 'ॐ न नारायणाय नमः' से मुख में, ॐ मो माधवाय नमः' से ग्रीवा (गरदन) में, 'ॐ भ गोविन्दाय नमः' से कण्ठ (गले) में, 'ॐ ग विष्णवे नमः' से पीठ में, ॐ व मधुसूदनाय नमः' से कुक्षि (पेट) में 'ॐ ते त्रिविक्रमाय नमः' से कटि (कमर) में, 'ॐ वा वामनाय नमः' से जङ्घाओं (टाँगों) में, 'ॐ सु श्रीधराय नमः' से बाँये गुल्फ (टखने) में, 'ॐ दे हृषीकेशाय नमः' से दाँये गुल्फ (टखने) में, 'ॐ वा पद्मनाभाय नमः' से बाँये पैर में, ॐ य दामोदराय नमः' से दाहिने पैर में न्यास करे।

नारायण मूर्ति में विष्णु के अष्टाङ्गमन्त्र का न्यास—

'ॐ हु हृदयाय नमः' से हृदय में न्यास करे।

" विष्णवे नमः, शिरसे स्वाहा' से शिर में,

[नारायणमूर्तौ पुरुषसूक्तन्यासः]

सहस्रशीर्षा० पादयोः। पुरुष एव० जङ्घयोः। एतावानस्य० जानुनोः। त्रिपादूर्ध्वं० ऊर्वोः। ततो विराट्० वृषणयोः। तस्माद्यज्ञात्० कट्याम्। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः० नाभ्याम्। तस्मादश्वा० हृदि। तं यज्ञं० स्तनयोः। यत्पुरुषं० बाह्वोः। ब्राह्मणोऽस्य० मुखे। चन्द्रमा मनसो० चक्षुषोः। नाभ्या आसीदन्त० कर्णयोः। यत्पुरुषेण० भ्रुवोः। सप्तास्या० भाले। यज्ञेन यज्ञम० शिरसि। इति पुरुषसूक्तन्यासः।

ॐ ब्रह्मणे नमः शिखायै वषट्' से शिखा में,

" ध्रुवाय नमः, कवचाय हुम्' से कवच में,

" चक्रिणे नमः, अस्त्राय: फट्' से हाथों में,

" नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः, शिवाय च शिवतराय च नमः,' (यजु० १६/४१) गायत्र्यै नमः' से दाहिने नेत्र में,

" विजयाय नमः। सावित्र्यै नमः, से बाँये नेत्र में, ' चक्रिणे चक्ररूपाय नमः पिङ्गलास्त्रम (पिङ्गलास्त्राय नमः) से दिशाओं में न्यास करे। यह अष्टाङ्ग-विष्णुमन्त्र न्यास पूर्ण हुआ।

नाराणयण-मूर्ति में पुरुष-सूक्त का न्यासः—

'सहस्रशीर्षा०'' इस मन्त्र का न्यास विष्णु-प्रतिमा के चरणों में, 'पुरुष एवेदम्०'' इस मन्त्र से जङ्घाओं में, 'एतावानस्य०'' इससे

---

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

२. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।

३. एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

(जानूओं में), 'त्रिपादूर्ध्वं०'[1] से ऊरुओं में, 'ततो विराट्'[2] से वृषणों (अण्डकोशों) में, 'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृत०'[3] से कटि में, 'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः'[4] से नाभि में, 'तस्मादश्वा०'[5] से हृदय में, 'तं यज्ञं०'[6] से स्तनों में, 'यत्पुरुषं०'[7] से भुजाओं में, 'ब्राह्मणोऽस्य०'[8] से मुख में, 'चन्द्रमा मनसो०'[9] से नेत्रों में, 'नाभ्या आसीद्'०'[10] से कानों में, 'यत्पुरुषेण०'[11] से भौंहों में, 'सप्तास्या-

---

१. त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥

२. ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्-भूमिमथो पुरः ॥

३. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

४. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्य-जुस्तस्मादजायत ॥

५. तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥

६. तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

७. यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्यते ॥

८. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

९. चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

१०. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥

११. यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥

[उत्तरनारायणन्यासः, विष्णुप्रतिष्ठाविषयः]

अद्भ्यः सम्भृतः० हृदये। वेदाहं० शिरसि। प्रजापतिः० शिखायाम्। यो देवेभ्यः० कवचे। रुचं ब्राह्मं० नेत्रयोः। श्रीश्च ते० अस्त्रे। इति उत्तरनारायणन्यासः।

सन्०'[1] से ललाट में, 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त०'[2] से विष्णुप्रतिमा के शिर में न्यास करे। यह पुरुषसूक्त का न्यास पूर्ण हुआ।

उत्तरनारायण न्यास--विष्णुप्रतिष्ठाविषयक—

'ॐ अद्भ्यः संभृतः०'[3] हृदयाय नमः' से हृदय में न्यास करे।
,, वेदाहमेतं०,'[4] शिरसे स्वाहा' से शिर में,
,, प्रजापतिश्चरति,०'[5] शिखायै वषट्' से शिखा में,
,, यो देवेभ्य०'[6], कवचाय हुम्' से कवच में न्यास करे।

---

१. सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥

२. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

३. अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ (यजु० ३१।१७)

४. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ यजु० ३१।१८

५. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ यजु० ३१।१९

६. यो देवेभ्य आ तपति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ यजु० ३१।२०

[शिवस्य पञ्चब्रह्मन्यासः]

अथ शिवस्य पञ्चब्रह्मन्यासः । १. अंगुष्ठयोरीशानं, २. तर्जन्यो-स्तत्पुरुषम्, ३. मध्यमयोरघोरम्, ४. अनामिकयोर्वामदेवम्, ५. कनिष्ठिकयोः सद्योजातम् ।

ततः १. कनिष्ठकयोर्हृदयम्, २. अनामिकयोः शिरः, ३. मध्यमयोः शिखा, ४. तर्जन्योः कवचम्, ५. अंगुष्ठयोरस्त्रं विन्यस्य परेण तेजसा संयोज्य कवचेनावगुण्ठ्य सर्वकर्मसु नियोजयेत् । आचमनं सर्वत्र ।

इत्थं देवस्य करन्यासं कृत्वा लिङ्गमुद्रां बद्ध्वा, 'ईशानः सर्व० सदा शिवोऽऽम्', इति मन्त्रेण ईशानमुष्टिं बध्नीयात् । तत अंगुल्यग्रे रुद्रमुद्रया [ईशानं] मूर्ध्नि । 'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि

ॐ रुचं ब्राह्मं०,¹ नेत्राभ्यां वौषट्' से नेत्रों में न्यास करे ।

,, श्रीश्च ते०,² अस्त्राय फट्' से अस्त्र में न्यास करे ।

पञ्चब्रह्मन्यास-शिवप्रतिष्ठाविषयक—

अब शिव की प्रतिष्ठा में विहित पञ्चब्रह्मन्यास को बतलाते हैं, जो कि इस प्रकार किया जायेगा—

'ईशानाय नमः' कहते हुए ईशान का न्यास दोनों हाथों के अङ्गुष्ठों में करे ।

'तत्पुरुषाय नमः' कहते हुए तत्पुरुष का न्यास दोनों तर्जनी अङ्गुलियों में करे ।

'अघोराय नमः' कहते हुए अघोर का न्यास दोनों हाथों की मध्यमा अङ्गुलियों में करे ।

१. रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन्वशे ॥ यजु० ३१।२१

२. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहो रात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥ यजु० ३१।२२

तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' इति तर्जन्यङ्गुष्ठयोगात्तत्पुरुषं० मुखे । अघोरेभ्यो० इति मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन [अघोरं] हृदि । 'वामदेवाय नमो० मनोन्मनाय नमः' इत्यङ्गुष्ठानामिकायोगेन [वामदेवं] गुह्ये । 'सद्योजातं० भवोद्भवाय नमः' । इति कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन पादादारभ्य मस्तकान्तं यावन्मूर्तिव्यापकत्वेन [सद्योजातं] न्यसेत् । [इति पञ्चब्रह्मन्यासः] ।

'वामदेवाय नमः' कहते हुए वामदेव का न्यास दोनों हाथों की अनामिका अङ्गुलियों में करे ।

'सद्योजाताय नमः' कहते हुए सद्योजात का न्यास दोनों हाथों की कनिष्ठिका अङ्गुलियों में करे । यथा—

ईशानाय नमः, अङ्गुष्ठयोः ।
तत्पुरुषाय नमः, तर्जन्योः ।
अघोराय नमः, मध्यमयोः ।
वामदेवाय नमः, अनामिकयोः ।
सद्योजाताय नमः, कनिष्ठिकयोः ।

[इसके अनन्तर प्रभु विद्या प्रतिष्ठार्णव पृ० ४०४ में यह निम्न-लिखित न्यास भी दिया गया है—

सद्योजाताय नमः, हृदि ।
वामदेवाय नमः, शिरसि ।
अघोराय नमः, शिखायाम् ।
तत्पुरुषाय नमः, कवचे ।
ईशानाय नमः, अस्त्रे ।]

तदनन्तर दोनों हाथों की कनिष्ठाओं में हृदय का न्यास करे । दोनों अनामिकाओं में शिर का, दोनों मध्यमाओं में शिखा का, दोनों तर्जनियों में कवच का और दोनों अङ्गुष्ठों में अस्त्र का न्यास करे । यथा—

हृदयाय नमः, कनिष्ठिकयोः ।
शिरसे स्वाहा, अनामिकयोः ।
शिखायै वषट्, मध्यमयोः ।
कवचाय हुम्, तर्जन्योः ।
अस्त्राय फट्, अङ्गुष्ठयोः ।

यही विधि प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ४०४ में भी दी गई है।
अथवा यह न्यास इस प्रकार किया जा सकता है—

कनिष्ठिकाभ्यां नमः,	हृदये ।
अनामिकाभ्यां नमः,	शिरसि ।
मध्यमाभ्यां नमः,	शिखायाम् ।
तर्जनीभ्यां नमः,	कवचे ।
अङ्गुष्ठाभ्यां नमः,	अस्त्राय फट् ।

इस प्रकार न्यास करके लिङ्ग या प्रतिमा को भावनया परम तेज (परमात्मा के तेज) से सयोजित करके (भावनया परमात्मा के तेज से संयुक्त करके) पुनः पुनः कवच (कवचाय हुम्) से अवगुण्ठित¹ करके सभी कर्मों में नियोजित करे। प्रत्येक न्यास के अनन्तर आचमन भी विहित है।

शिव का पञ्चब्रह्मन्यास—

इस प्रकार शिव का करन्यास करके लिङ्गमुद्रा² बनाकर 'ईशानः

---

१. अवगुण्ठन मुद्रा का लक्षण इस प्रकार है—

सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाऽधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता सती ॥

२. लिङ्गमुद्रा का लक्षण—

उच्छ्रितं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत् ।
वामाङ्गुलीर्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च बन्धयेत् ।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥

सर्वविद्यानाम्०¹ इस मन्त्र से ईशान संज्ञक मुष्टि² को बाँधे। तब रुद्रमुद्रा³ बनाते हुए अङ्गुलियों के अग्रभाग से 'ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम्'⁴ इसी मन्त्र से ईशान का न्यास शिव की प्रतिमा या लिङ्ग के मूर्धा (मस्तक) में करे। इसी प्रकार 'तत्पुरुषाय विद्महे०'⁵ इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए तर्जनी और अङ्गुष्ठ को मिलाकर (इन दोनों अङ्गुलियों के अग्रभाग से) तत्पुरुष का न्यास शिव-प्रतिमा के मुख में करे। तब 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः०'⁶ इस मन्त्र को पढ़ते हुए मध्यमा और अङ्गुष्ठ को मिलाकर (इन दोनों अङ्गुलियों के अग्रभाग से) अघोर का न्यास प्रतिमा के हृदय में करे। तब 'वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय०'⁷ इस मन्त्र को पढते हुए अनामिका और अङ्गुष्ठ इन दो अङ्गुलियों को मिलाकर इनके अग्रभाग से वामदेव

---

१. ईशान सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ॥ तै०आ० १७।२१ ।

२. मुष्टि लक्षण—मुष्टिमुद्रा भवेन्मुष्टिर्वेष्टिताङ्गुष्ठिका भवेत् ।
विश्वामित्रसंहिता १३।६९ ।

३. (क) सा चैव श्लेषिताङ्गुष्ठा समस्तेन परस्परम् । उभयाङ्गुष्ठमुद्रा सा रुद्रमुद्रेति कीर्तिता ॥ सनत्कुमारसंहिता, ऋषिरात्र २।३३-५ ।
(ख) रुद्रमुद्रेति कथितास्यङ्गुष्ठान्योऽन्यसंयुता । उभयाङ्गुष्ठमुद्रा सा कथिता तव सुव्रत ॥ विश्वामित्रसंहिता १३।३१ ।

४. द्रष्टव्य-ऊपर टिप्पणी १ ।

५. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । तै० आ० ।

६. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ तै० आ० ।

७. वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ तै० आ० ।

[ईशान कलान्यासः]

ततः 'ईशानः सर्वविद्यानामि'ति शशिनमुपरितनमूर्ध्नि । 'ईश्वरः सर्वभूतानामि'ति कल्पितचन्द्रोदयदलं[1] पूर्वमूर्ध्नि । 'ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्म नमः' इतीष्टां दक्षिणमूर्ध्नि ।

'शिवो मे अस्तु नमः' इति मरीचिमुत्तरमूर्ध्नि ।

'सदाशिवोम् नमः' इति ज्वालिनीं पश्चिममूर्ध्नि । [इतीशान कलान्यासः] ।

का न्यास गुह्याङ्ग में करे। तदनन्तर 'सद्योजातं प्रपद्यामि०'[2] इस मन्त्र को पढते हुए कनिष्ठिका और अङ्गुष्ठ को मिलाकर इन दोनों अङ्गुलियों से चरणों से लेकर मस्तक पर्यन्त सम्पूर्ण मूर्ति या लिङ्ग में 'व्यापक' करते हुए सद्योजात का न्यास करे। इस प्रकार शिव का पञ्चब्रह्मन्यास सम्पन्न हुआ।

न्यासकर्ताओं की सुविधा के लिए इस न्यास-बिधि को अधो-लिखित चक्र में प्रदर्शित किया गया है—

मन्त्र	अङ्गुली	देवता	अङ्ग
ईशानःसर्व०	रुद्रमुद्रया	ईशानः	मूर्ध्नि
तत्पुरुषाय विद्महे०	तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन	तत्पुरुषः	मुखे
अघोरेभ्योऽथ०	मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन	अघोरः	हृदि
वामदेवाय नमो०	अनामिकाङ्गुष्ठयोगेन	वामदेवः	गुह्ये
सद्योजातं प्रपद्यामि०	कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन	सद्योजातः	पादादि-मस्तकान्तं

कला-न्यास—शिवप्रतिष्ठा विषयक—

इसके पश्चात् शिव-मूर्ति या लिङ्ग में कलाओं का न्यास करे।

१. चन्द्रोभयदलं—सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११७ ।

२. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥ तै० आ० ।

कला संख्या—

इन कलाओं की सम्पूर्ण संख्या ३८ (अठतीस) है, जो कि इस प्रकार हैं—ईशान की पाँच कलाएँ,[1] तत्पुरुष की चार कलाएँ,[2] अघोर की आठ कलाएँ,[3] वामदेव की तेरह कलाएँ[4] और सद्योजात की आठ कलाएं[5] ।

ईशानकला न्यास—

तब 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इससे शिव के ऊपर वाले शिर में शशी (चन्द्रमा) का न्यास करे।[6] 'ईश्वरः सर्वभूतानाम्' इससे कल्पितचन्द्रोदय दल (?) का न्यास पूर्व के शिर में करे।[7] 'ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्म नमः' इससे इष्टा कला का न्यास दक्षिण की ओर के शिर पर करे। 'शिवो मे अस्तु नमः' इससे मरीचि कला

१. ईशानस्य पञ्चकला नित्यं ऋग्वेदसंयुताः ।—रुद्रयामल उत्तरतन्त्र ४८।१४१ ।

२. तत्पुरुषस्य चतस्रः कला न्यसेत् सदा वशी । रुद्रयामल उ०त० ४८।१४६

३. ततोऽष्टस्थानमध्ये तु अघोराष्टकला न्यसेत् । रुद्रयामल उ० त० ४८।१४९ ।

४. वामदेवस्य देवेश ! त्रयोदशकला न्यसेत् । रुद्रयामल उ० त० ४८।१५५

५. अथ न्यसेन्महाकाल ! सद्योजातस्य ताः कलाः । अष्टस्थानेषु चैतेसु... । रुद्रयामल उ० त० ४८।१६७-८ ।

६. रुद्रयामल उत्तरतन्त्र के अनुसार 'ईशानः सर्वविद्यानाम् शशिन्यै कलायै नमः' ऐसा कहते हुए न्यास किया जायेगा। प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव के अनुसार 'ईशानः सर्वविद्यानां नमः ईशानी देवस्य ऊपरिमूर्ध्नि न्यसामि' कहते हुए यह न्यास होगा।

७. रुद्रयामल के अनुसार 'ईश्वरः सर्वभूतानां अङ्गदायै कलायै नमः' कहते हुए यह न्यास होगा। प्रतिष्ठामयूख का अनुसरण करने वाले प्रतिष्ठा-महोदधि तथा सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश में 'चन्द्रोभयदलं' पाठ है। जबकि प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में 'अभयदां देवस्य पूर्वमूर्ध्नि न्यसामि' पाठ है।

[तत्पुरुषकलाचतुष्टयन्यासः]

ततः—'तत्पुरुषाय विद्महे नमः' इति पूर्ववक्त्रे शान्तिम् । 'महादेवाय धीमही'ति दक्षिणवक्त्रे विद्याम् । 'तन्नो रुद्रः' इत्युत्तरवक्त्रे प्रतिष्ठाम् । 'प्रचोदयादि'ति पश्चिमवक्त्रे धृतिम् । इति तत्पुरुषकलाचतुष्टयन्यासः ।

[अघोरकलान्यासः]

ततः 'अघोरेभ्य' इति तमां[1] हृदये ।

अथ 'घोरेभ्यो नम' इति रजा[2] मुरसि । घोरसत्त्वायै[3]

का न्यास उत्तर की ओर के शिर में करे । 'सदा शिवोऽम् नमः' इसको पढते हुए ज्वालिनी कला का न्यास पश्चिम की ओर के शिर में करे ।

तत्पुरुषकलान्यास—

तत्पश्चात् 'तत्पुरुषाय विद्महे शान्त्यै कलायै नमः' कहते हुए शान्ति कला का न्यास पूर्व की ओर के मुख में करे । 'महादेवाय धीमहि विद्याकलायै नमः' से विद्या कला का न्यास दक्षिण की ओर के मुख में और 'तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठाकलायै नमः' से उत्तर की ओर के मुख में प्रतिष्ठा कला का न्यास करे तथा 'प्रचोदयात् धृत्यै कलायै नमः' से पश्चिम की ओर के मुख में धृति संज्ञक कला का न्यास करे । यह तत्पुरुष की चार कलाओं का न्यास सम्पन्न हुआ ।

अघोरकला न्यास—

'अघोरेभ्यो नमः तमां हृदये न्यसामि' ऐसा कहकर अथवा 'अघो-

१. प्रभुविद्यार्णव तथा सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश के आधार पर बनाया गया पाठ । पाठान्तर—मां ।

२. पाठान्तर—जरां ।

३. पाठान्तर—घोरजरायै ।

नमः स्कन्धयोः ।

घोरतरेभ्यो निद्रायै नाभौ ।

सर्वेभ्यः सर्व व्याध्यै[1] कुक्षौ ।

सर्वशर्वेभ्यो मृत्यये पृष्ठे ।

नमस्ते अस्तु क्षुधायै वक्षसि ।

रुद्ररूपेभ्यस्तृषायै[2] उरसि । इत्यष्टावघोरकलाः ।

रेभ्यो तमायै नमः' ऐसा कहकर तमा का न्यास हृदय में करे । 'घोरेभ्यो नमः रजां उरसि न्यसामि' या 'घोरेभ्यः रजायै नमः' से रजा का न्यास वक्षःस्थल में करे । 'घोरेभ्यः नमः सत्त्वां[3] स्कन्धयोः न्यसामि' अथवा 'घोरेभ्यः सत्त्वायै कलायैः नमः' कहते हुए सत्त्वा कला का न्यास कन्धों में करे ।

'घोरतरेभ्यो निद्रायै नमः' कहकर नाभि में, 'सर्वेभ्यः सर्वव्याध्यै नमः' कहकर कुक्षि (पेट) में, 'सर्वशर्वेभ्यो मृत्यवे नमः' से पीठ में; 'नमस्ते अस्तु क्षुधायै नमः' से वक्षःस्थल में और रुद्ररूपेभ्यस्तृषायै नमः' से भी उरःस्थल (वक्षःस्थल) में न्यास करे । यह अघोर की अष्टकलाओं का न्यास सम्पन्न हुआ ।

१ पाठान्तर—सर्वसाध्यै ।

२. पाठान्तर—तुषायै ।

३. यहाँ स्वीकृत 'सत्त्वा' पाठ प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में भी है । सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश और प्रतिष्ठामहोदधि में 'क्षमा' पाठ है और प्रतिष्ठा मयूख के पूर्वप्रकाशित (प्राचीन) संस्करण में 'जरा' पाठ है जिसका न्यास 'घोर जरायै नमः' कहकर किया जायेगा ।

[वामदेवकलान्यासः]

वामदेवाय नम इति जरां (रजां वा) गुह्ये ।

ज्येष्ठाय नम इति रक्षां लिङ्गे ।

श्रेष्ठाय नम इति रतिं दक्षिणोरौ ।

रुद्राय नम इति कल्पां वामोरौ ।

कालाय नम इति कामां दक्षिणजानौ ।

कलविकरणाय नम संजीविन्यै इति वामजानौ ।

बलविकरणाय नमः क्रियायै इति दक्षिणजङ्घायाम् ।

बलाय नमो वृद्धयै वामजङ्घायाम् ।

बलछायायै दक्षिणस्फिचि ।

प्रमथनाय नमः धात्रीं वामस्फिचि ।

सर्वभूतदमनाय नम इति भ्रामणीं कट्याम् ।

मनो नम इति पोषणीं[1] दक्षिणपार्श्वे ।

उन्मनाय नम इति ज्वरां वामपार्श्वे । इति त्रयोदशकला। ।

वामदेव कलान्यास—

'वामदेवाय नमः जरां गुह्ये न्यसामि' ऐसा कहते हुए जरा का न्यास गुह्याङ्ग (गुदा) में करे। 'ज्येष्ठाय नमः रक्षां लिंगे न्यसामि' से रक्षा का न्यास लिङ्ग में करे। इसी प्रकार 'श्रेष्ठाय नमः' से रति का न्यास दाहिने ऊरू में, 'रुद्राय नमः' से कल्पा का बाँये ऊरू में, 'कालाय नमः' से कामा का न्यास दाहिने जानु (घुटने) में, 'कल विकरणाय नमः सञ्जीविनीं वामजानौ न्यसामि' कहते हुए सञ्जीविनी का न्यास वाम जानु में, 'बलविकरणाय नमः क्रियां दक्षिण जङ्घायां न्यसामि' से क्रिया का न्यास दाहिनी जङ्घा (टांग) में करे और इसी प्रकार 'बलाय नमो वृद्धि वामजंघायां न्यसामि' से वृद्धि का न्यास वामजङ्घा में करे। 'बल-छायायै नमः' अथवा 'बलाय नमो छायां दक्षिणस्फिचि न्यसामि' कहते हुए छाया का न्यास दाहिनी ओर के कूल्हे (चूतड़) में करे। 'प्रमथनाय नमो धात्रीं वामस्फिचि न्यसामि'

१. पाठान्तर—शोषिणीम् (पद्धतियों में)।

[सद्योजातकलान्यासः]

सद्योजातं प्रपद्यामि नम इति सिद्धिं दक्षिणपादे ।

सद्योजाताय वै नमो नम इति ऋद्धिं वामपादे

भवे नम इति कीर्तिं दक्षिणपाणौ ।

अभवे नम इति लक्ष्मीं वामपाणौ ।

नातिभवे नम इति मेधां नासायाम्

भवस्व मां नम इति कान्तिं शिरसि ।

भव नमः[1] इति स्वधां दक्षिणबाहौ ।

उद्भवाय नम इति प्रभां वामबाहौ ।

इति सद्योजातकलाष्टकम् ।

इससे धात्री का न्यास बाँये कूल्हे (चूतड़) में करे। 'सर्वभूतदमनाय नमो भ्रामणीं कट्यां न्यसामि' इससे भ्रामिणी का न्यास कटि में करे। 'मनो नमः पोषणीं (पाठान्तर शोषिणीं) दक्षिणपार्श्वे न्यसामि' कहते हुए पोषणी (पाठान्तर–शोषिणी) का न्यास दाहिने पार्श्व (दाहिनी ओर की पसलियों में करे और 'उन्मनाय नम ज्वरां वामपार्श्वे न्यसामि' से ज्वरा का न्यास बाँयी ओर की पसलियों में करे। यह वामदेव की त्रयोदश कलाओं का न्यास पूर्ण हुआ।

सद्योजातकलान्यास—

'सद्योजातं प्रपद्यामि नमः सिद्धिं दक्षिणपादे न्यसामि' एसा कहते हुए सिद्धि का न्यास दाहिने चरण में करे। 'सद्योजाताय वै नमो नमः ऋद्धिं वामपादे न्यसामि' से ऋद्धि का न्यास बाँये चरण में करे। 'भवे नमः कीर्ति दक्षिणपाणौ न्यसामि' से कीर्ति का न्यास दाहिने हाथ (हथेली) में और 'अभवे नमो लक्ष्मीं वामपाणौ न्यसामि' से लक्ष्मी का न्यास बाँये हाथ (हथेली) में करे। 'नातिभवे नमो मेधां नासायां न्यसामि' कहते हुए मेधा का न्यास नासिका में करे।

१. भवाय नमः—प्रतिष्ठामहोदधि एवं सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश में।

[हंस हंसेति हृदयादिन्यासः सर्वदेवसाधारणः]

ततस्तमाद्याः सर्वा अत्र विशन्त्विति कलान्तरन्यासभावनां कृत्वा मुद्राश्च प्रदर्श्य विद्यादेवं हंसं सपाद्य 'हंस हंस' इति हृदयादिन्यासं कुर्यात्।

[नृसिंहप्रतिष्ठायां तन्मन्त्रेण न्यासः, पशुबलिश्च]

अथ नृसिंहे 'नृसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा' इति-मन्त्रः।

'भवस्व नां नमः कान्ति शिरसि न्यसामि' कहते हुए कान्ति का न्यास शिर में करे। 'भव नमः (भवाय नमः) स्वधां दक्षिणबाहौ न्यसामि' इससे दाहिनी भुजा में स्वधा का न्यास करे और उद्भवाय नमः प्रभां वामबाहौ न्यसामि' इसे कहते हुए प्रभा का न्यास बाँयी भुजा में करे। यह सद्योजात की आठ कलाओं का न्यास पूर्ण हुआ।

तब 'तमाद्याः सर्वाः कला अत्र विशन्तु' (तमा आदि सभी कलाएँ इस शिवमूर्ति या लिङ्ग में प्रविष्ट हों) ऐसा कहते हुए अन्य अवशिष्ट कलाओं के भी न्यास की भावना करके तत्तत् न्यास से सम्बन्धित मुद्राओं का प्रदर्शन करे।

हंस हंस' इस मन्त्र से षड्ङ्ग-न्यास—[सभी देवताओं की प्रतिष्ठा में विहित—]

स्थाप्य देवता की मूर्ति में हंस की भावना करके 'हंस हंस' कहते हुए हृदयादि न्यास करे। यथा—

हंस हंसः हृदयाय नमः। हंस हंसः शिरसे स्वाहा।
हंस हंसः शिखायै वषट्। हंस हंसः कवचाय हुम्।
हंस हंस नेत्रत्रयाय वौषट्। हंस हंस अस्त्राय फट्।

किन्तु नृसिंहमूर्ति में इस मन्त्र से हृदयादिन्यास विहित नहीं हैं।

नृसिंह-प्रतिष्ठा में नृसिंहमन्त्र से न्यास और पशु-बलि—

नृसिंह की प्रतिष्ठा में 'नृसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल

नारसिंही यदा स्थाप्या त्वधिवास्य निशागमे।
कृत्रिमं वाथ साक्षाद्वा पशुं दत्वा बलिं हरेत्॥

एवं न्यासं कृत्वा—

[निद्राकलशे निद्रावाहनम्]

परमेष्ठिनं नमस्कृत्य निद्रामावाहयाम्यहम्।
मोहिनीं सर्वभूतानां मनोविभ्रमकारिणीम्॥ १॥

स्वाहा' इस मन्त्र से ही षडङ्गन्यास करे। यथा—

नृसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा। हृदयाय नमः।
" " " " " " । शिरसे स्वाहा।
" " " " " " । शिखायै वषट्।
" " " " " " । कवचाय हुम्।
" " " " " " । नेत्रत्रयाय वौषट्।
" " " " " " । अस्त्राय फट्।

नृसिंह की प्रतिष्ठा में नृसिंहमूर्ति का अधिवासन (जलाधिवास, अन्नाधिवास, पुष्पाधिवास आदि) करके सायंकाल कृत्रिम पशु (पशुरूप में कल्पित प्रतिनिधि द्रव्य) अथवा साक्षात् पशु की बलि भी देनी चाहिए।

इस प्रकार न्यास-सम्पन्न करके निद्राकलश में निद्रा का आवाहन अधोलिखित मन्त्रों से करे—

निद्रा का आवाहन[1]—

मैं परमेष्ठी को प्रणाम करके निद्रा का आवाहन करता हूँ जो कि सभी प्राणियों का मोहन करने वाली और मन को विभ्रम में डालने वाली है। १॥

---

१. निद्रामावाहयिष्यामि सर्वलोकसुखप्रदाम्।
आगच्छ वरदे निद्रे त्रैलोक्यपरिमोहिनि॥ विष्णुधर्मो० ३।१०५।५४

विरूपाक्षे शिवे शान्ते आगच्छ त्वं तु मोहिनि
वासुदेवाहिते कृष्णे कृष्णाम्बरविभूषिते ॥ २ ॥
आगच्छ सहसाऽजस्रसुप्त संसारमोहिनि ।
सुषुप्स्व संहरे देवि कुमार्येकान्तमानसे ॥ ३ ॥
श्र निःश्वासवाह्यं च आगच्छ भुवनेश्वरि ।
तमःसत्त्वरजोपेते आगच्छ त्वरचारिणि ॥ ४ ॥
मनोबुद्धिरहङ्कारसंहारस्त्वं सरस्वति ।
शब्दःस्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धश्च पञ्चमः ॥ ५ ॥
आगच्छ गुह्य संक्षिप्य मोहपाशनिबन्धिनि ।
भवस्योत्पत्तिहेतुस्त्वं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६ ॥
भवः कल्पान्तसन्ध्यायां वससे त्वं चराचरे ।
भोगिशय्यां प्रसुप्तस्य वासुदेवस्य शासने ॥ ७ ॥

हे विरूपाक्षे ! शिवे ! मोहिनि ! वासुदेवहितङ्करि ! कृष्णे ! कृष्णवस्त्रविभूषिते ! तुम आओ ॥ २ ॥

हे संसार को मोहित करने वाली ! संहार करने वाली ! कुमारि ! देवि ! तुम निरन्तर शयन करने वाले के पास आओ और शयन करो ॥ ३ ॥

हे तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणमयी भुवनेश्वरि ! तुम परिश्रम से श्रान्त होकर लम्बी साँस लेने वाले के पास आओ ॥ ४ ॥

हे सरस्वति ! तुम मन, बुद्धि और अहङ्कार का समुच्चय हो और तुम ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध स्वरूप भी हो ॥ ५ ॥

हे मोहपाश में बाँधने वाली ! तुम प्रलय-पर्यंन्त समस्त संसार की उत्पत्ति का कारण हो । तुम आओ और तुम इसे संक्षिप्त करके ग्रहण करो ॥ ६ ॥

हे चराचर-स्वरूप वाली ! तुम भूलोक की कल्पान्त सन्ध्या के समय शेषनाग रूपी शय्या पर शयन करने वाले भगवान् विष्णु के

त्वं प्रतिष्ठाऽसि वै देवि मुनियोनिसमुत्थिते ।
पितृदेवमनुष्याणां सयक्षोरगरक्षसाम् ॥ ८ ॥
पशुपक्षिमृगाणां च योगमायाविवर्धिनि ।
वससे सर्वसत्त्वेषु मातेव हितकारिणि ॥ ९ ॥
एहि सावित्रि मूर्ति त्वं चक्षुभ्यां स्थानगोचरे ।
विश नासापुटे देवि कण्ठे चोत्कण्ठिता विश ॥ १० ॥
प्रतिभावय मां सर्वं मातृवद् देवि सुन्दरि ।
इदमर्घ्यं मया दत्तं पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ११ ॥

[निद्रा पूजनम्]

'उप प्रागात्परमं यदिति'[1] मन्त्रोऽयं तस्याः पूजाविधेः स्मृतः ।

शासन (आदेश) के अनुसार चराचर जगत् में निवास करती हो ॥ ७ ॥

हे मुनियोनि में उत्पन्न देवि ! तुम पितरों देवों, मनुष्यों, यक्षों, नागों और राक्षसों के लिए प्रतिष्ठा (विश्राम दायिनी) हो । ८ ॥

हे योगमाया की संवर्धिनी ! तुम पशु-पक्षियों और मृगों के लिए भी विश्रामदायिनी हो । हे माता के समान हितकारिणी ! तुम सभी प्राणियों में निवास करती हो । ९ ॥

हे सावित्रि-मूर्ति ! स्थानगोचरे ! तुम नेत्रों से होकर आओ और नासापुट में प्रवेश करो । तुम कण्ठ में उत्कण्ठित होकर प्रवेश करो ॥ १० ॥

हे सुन्दरि ! तुम माता के समान मुझे समग्रतया अनुगृहीत करो । यह मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य और पूजा ग्रहण करो ॥ ११ ॥

निद्रा-पूजन—

'उप प्रागात् परमं यत०' यह मन्त्र निद्रा की पूजा के लिए

१. उप प्रागात् परमं यत् सधस्थमर्वाँऽऽअच्छा पितरं मातरं च ।
अद्यां देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥
ऋ० १।१६३।१३ ; यजु० २९.२४ ।

[ततः] निद्राकलशे निद्रां पूजयित्वा–

[लोकपालादिभ्यो बलिदानम्]

लोकपालमातृक्षेत्रपालभूतेभ्यो बलिं दत्त्वा–

[सर्वतोभद्रे स्थाप्यदेवपूजनम्]—

स्थाप्य देवं शय्यातः प्राच्यां सर्वतोभद्रे पूजयेत् ।

विहित है। इस मन्त्र के उच्चारण के साथ ही 'निद्रायै नमः' इस नाम मन्त्र का उच्चारण करते हुए निद्राकलश में निद्रा का पूजन करे।

लोकपालादि के लिए बलिदान—

तब लोकपालों, मातृकाओं, क्षेत्रपाल और भूतादि को बलि प्रदान करे। इन्द्रादि लोकपालों को पूर्वादि दिशाओं में [मण्डप के बाहर] —क्रमशः 'त्रातारमिन्द्र०'[1], 'त्वन्नो अग्ने०'[2], 'यमाय सोमं०', अथवा 'यमाय त्वाङ्गिरस्वते अथवा 'सुगन्नु पन्था०'[3], 'असुन्वन्तमयजमानमिच्छ०'[1], 'इमं मे'० अथवा 'तत्त्वा यामि०'[2], आ नो नियुद्भि:०'[3] 'वयं सोम०'[4] 'तमीशानं०' 'ब्रह्म जज्ञानं०'[6], और 'स्योना पृथिवि०'[7], इत्यादि मन्त्रों से बलि (दधिमाष भक्त बलि

---

१. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥

२. (क) त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥
(ऋ० ४।१।१४; यजु० २१।३ ।)

(ख) त्वन्नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥
(ऋ० १।३१।१२; यजु० ३४।१२)

३. (क) यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० १०।१४।१३ ।

(ख) यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ यजु० ३८।९ ।

(ग) सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्नऽएहि ज्योतिष्मद्ध्येह्यजरन्नऽ आयुः ।
अपैतु मृत्युरमृतं म आ गाद् वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु ॥

१. असुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥
यजु० १२।६२

ऋ० १।२४।११; यजु० १८।४९; २१।२ ।

२. (क) इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥
ऋ० १।२५।१९; यजु० २१।१ ।

(ख) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥

३. आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
ऋ० ७।९२।५; यजु० २७।२८ ।

४. वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥
ऋ० १०।५७।६; यजु० ३।५६ ।

५. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । ऋ० १।८९।५

६. (क) ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आ वः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥
यजु० १३।३ ।

(ख) अग्ने रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँऽअवन्तु देवाः ॥
ऋ० ८।६३।१२; यजु० ३३।५० ।

७. स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥
यजु० ३५।२१; ३६।१३ । द्रष्टव्य—ऋ० १।२२।१५ ।

या कृसरान्न बलि) देकर 'समख्ये देव्या०'[1] इत्यादि मन्त्र के साथ 'मातृभ्यो नमः बलिं समर्पयामि' इस नाममन्त्र से मातृकाओं को बलि प्रदान करे और 'न हि स्पशमविदन्०'[2], इत्यादि मन्त्र से क्षेत्रपाल बलि को चतुष्पथ में रखवा दे और उसी प्रकार 'भूताय त्वा०'[3], इत्यादि वैदिक मन्त्र और भूतबलि सम्बन्धी पौराणिकमन्त्रों०'[4] से भूतबलि देकर उसे भी चतुष्पथ में रखवा दे।

---

१. समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा ।
मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥
यजु० ४।२३ ।

२. न हि स्पशमविदन्नन्यमस्माद् वैश्वानरात् पुर एतारमग्नेः ।
एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥
यजु० ३३।६०

३. भूताय त्वा नारातये स्वरभि विख्येषं दृं हन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्त-रिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थे अग्ने हव्यं रक्ष । यजु० १।११ ।

४. भूतबलि के पौराणिक मन्त्रों के लिए द्रष्टव्य—
अथ भूतेभ्यश्चतुष्पथे बलिदानम् । शूर्पमध्ये पिष्टमय-दीप माषान्न-दध्योदन हरिद्रा-सिंदूर-कज्जल-गन्ध-रक्त-पुष्पाणि संस्थाप्य गीतवादित्रकुटुम्बजनसहितश्चत्वरे गत्वा तत्र गन्धपुष्पाद्यर्चितं शूर्पं स्थापयेदेभिर्मन्त्रैः । ॐ बलिं गृह्णन्तु ते देवा आदित्या वसवस्तथा ॥ मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥ १ ॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा मालाविद्याधरा नगाः ॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचा डाकिनीगणाः ॥ २ ॥ शक्तयो यक्षवेताला ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शान्ति-कर्तारः क्रमाद्याश्चैव मातरः ॥ ३ ॥ मा विघ्नं मा च मे रोगो मा सन्तु परिपन्थिनः ॥ सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूताः प्रेताः सुखावहाः ॥ ४ ॥ ते सर्वे तृप्तिमायान्तु रक्षां कुर्वन्तु मेऽध्वरे ॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च भूतेभ्यः सह जन्तुभिः ॥ ५ ॥ एतत्स्थानाधिवासिभ्य प्रयच्छामि बलिं नमः ।

स्थाप्य देवता का पूजन—

जिस देवता की स्थापना (प्रतिष्ठा) करनी हो उसकी मूर्ति को शय्या के पूर्व में बनाये गये सर्वतोभद्रमण्डल में स्थापित करके उसका पूजन उसके लिए विहित मन्त्रों से करे ।

सर्वतोभद्रचक्रम्

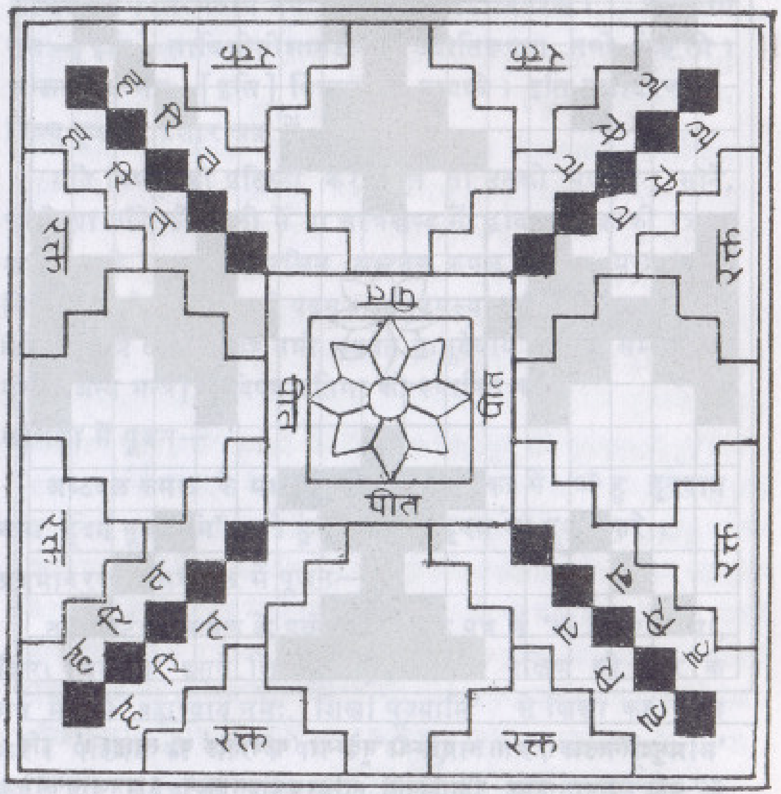

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ६ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥७॥ ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥ एते ममाध्वरे रक्षां कुर्वन्तु

लिङ्गतोभद्रमण्डल में शिवपूजा—

यदि शिव की प्रतिष्ठा करनी हो तो उनकी पूजा लिङ्गतोभद्रमण्डल में करे।

चतुर्लिङ्गतोभद्र चक्र

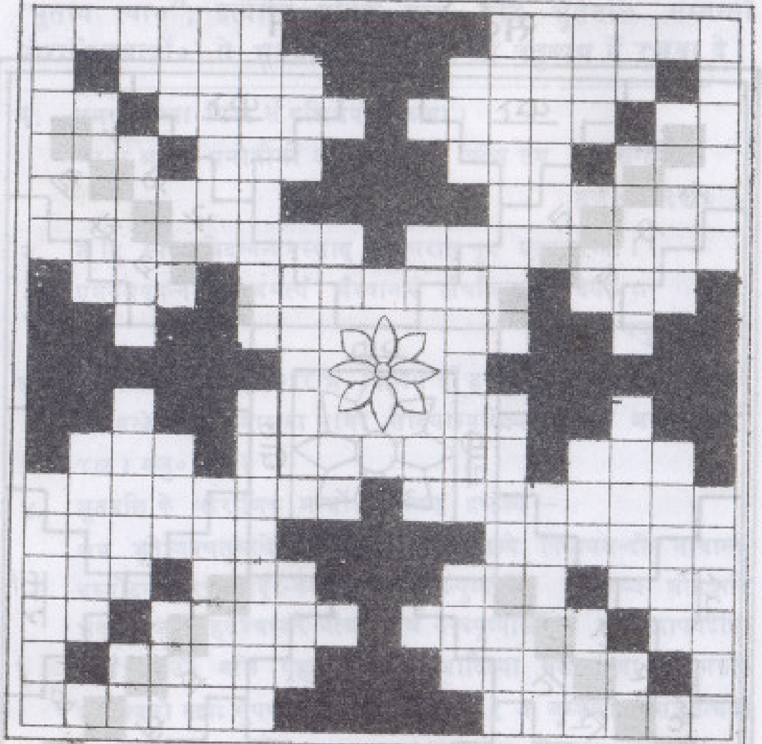

प्रमुदान्विताः ॥ ८ ॥ – एतेभ्यो भूतेभ्यो 'गन्धादिकं वः स्वाहा।' इति बलिं दत्वा नत्वा गीतादियुतो मण्डपसमीपमागत्य पादप्रक्षालनमाचमनं च कुर्यात् ॥ इति बलिदानप्रकारः।

सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० ७८।

[विष्णुपूजनमष्टदले]

विष्णुश्चेद् द्वादशारे चक्रे मध्येऽष्टदले पद्मे मूलमन्त्रेण देवं निवेशयेत्। ओं हुं हृदयाय नमः इति कर्णिकायां हृदयं पूजयेत्। विष्णवे नमः इति शिरः पूर्वपत्रे। ब्रह्मण्याय नमः–इति शिखां दक्षिणे। ध्रुवाय नमः–इति कवचं पश्चिमे। चक्रिणे नमः–इति फट् अस्त्रमुत्तरे। शम्भवाय नमः–इति गायत्रीमाग्नेयदले। विजयाय नमः–[इति] सावित्रीमीशानदले। ज्योतिरूपाय नमो नैर्ऋत्ये। चक्ररूपाय नमः–[इति] पिङ्गलास्त्रं वायव्ये। इति गर्भावरणम्।

विष्णु पूजन-द्वादशार चक्र में—

यदि विष्णु की प्रतिष्ठा करनी हो तो उनकी पूजा हेतु सोने, चाँदी या ताँबे की थाली में या वस्त्रखण्ड में द्वादशारचक्र की रचना करके उसके मध्य में विरचित अष्टदल कमल में मूल मन्त्र ('इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पां॑सुरे स्वाहा' इस वैदिक मन्त्र अथवा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' अथवा सम्प्रदायानुसार अन्य मन्त्र) से विष्णु-प्रतिमा को स्थापित करे।

कर्णिका में पूजन—

अष्टदल कमल के मध्य में स्थित कर्णिका में 'ॐ हुं हृदयाय नमः हृदयं पूजयामि' कहते हुए विष्णु के हृदय का पूजन करे।

प्रथमावरण में अष्टदल में पूजन—

तब अष्टदल कमल के पूर्व की ओर के पत्र में 'ॐ विष्णवे नमः, शिरः पूजयामि' इससे शिर का पूजन करे। दक्षिण की ओर के पत्र में ॐ ब्रह्मण्याय नमः, शिखां पूजयामि' से शिखा का पूजन करे। पश्चिम की ओर के पत्र में 'ॐ ध्रुवाय नमः, कवचं पूजयामि' कहते हुए कवच का पूजन करे। उत्तर की ओर के पत्र में 'ॐ चक्रिणे नमः, अस्त्राय फट्, अस्त्रं पूजयामि' से अस्त्र का पूजन करे। आग्नेय कोण के पत्र में 'ॐ शम्भवाय नमः, गायत्रीं पूजयामि' से

[द्वादशमूर्तीनां पूजनं द्वादशारासु]

आरासु पूर्वादिक्रमेण—केशव-नारायण - माधव-गोविन्द -विष्णु मधुसूदन त्रिविक्रम - वामन-श्रीधर - हृषीकेश-पद्मनाभ दामोदर इति द्वादश मूर्तीः पूजयेत् । इति द्वितीयावरणम् ।

[बाह्याष्टदले शस्त्रपूजनम्]

प्रागादितः खड्गाय नमः । गदायै नमः । चक्राय नमः । शङ्खाय नमः । पद्माय नमः । हलाय नमः । मुसलाय नमः । शार्ङ्गाय नमः । इति तृतीयावरणम् ।

गायत्री का पूजन करे । ईशान कोण के पत्र में 'ॐ विजयाय नमः, सावित्रीं पूजयामि' इससे सावित्री का पूजन करे। नैर्ऋत्य कोण के पत्र में 'ॐ ज्योतिरूपाय नमः [सरस्वतीं पूज्यामि]' इससे [सरस्वती का] पूजन करे और वायव्य कोण के पत्र में 'ॐ चक्रिरूपाय नमः, पिङ्गलास्त्रं पूजयामि' इससे पिङ्गलास्त्र का पूजन करे। यह विष्णु का गर्भावरण अर्थात् प्रथमावरण पूजन पूर्ण हुआ ।

द्वितीयावरण में द्वादश आराओं में विष्णु के द्वादश नामों से पूजन—

द्वादश आराओं में पूर्व से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से क्रमशः केशव, नारायण, माधव आदि द्वादश मूर्तियों का—ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः, ॐ वामनाय नमः, ॐ श्रीधराय नमः, ॐ हृषीकेशाय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः, ॐ दामोदराय नमः । इन द्वादश नाम-मन्त्रों से पूजन करे। यह द्वितीयावरण का पूजन पूर्ण हुआ ।

तृतीयावरण—बाह्य अष्टदल में शस्त्रपूजन—

तब बाह्य (बाहर के) अष्ट दल में पूर्व की ओर के दल (पत्र) से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से विष्णु के आठ आयुधों का पूजन ॐ

[अष्टमूर्तितदधिपानाञ्च पूजनम्]

अथ मूर्तीशाः । पूर्वादिदिक्षु–पृथिवीमूर्तये नमः पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय नमः। अग्निमूर्तये० अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये० ।

खड्गाय नमः, ॐ गदायै:, नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ शङ्खाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ हलाय नमः, ॐ मुसलाय नमः, ॐ शार्ङ्गाय नमः— इन नाममन्त्रों से करे। यह तृतीयावरण का पूजन पूर्ण हुआ ।

शिवप्रतिष्ठा में अष्टदल में पूजन—

शिव की प्रतिष्ठा करनी हो तो अष्टदल के मध्य में मेरु-कर्णिका में 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे०' इत्यादि मन्त्र अथवा पञ्चाक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) से शिव को स्थापित करके निम्नलिखित नाम मन्त्रों से पूजन करे[1]—

ॐ हृदयाय नमः (कर्णिका में) ॐ शिवाय नमः । शिरसे स्वाहा (पूर्वपत्र में) । ॐ ब्रह्मण्याय नमः । शिखायै वषट् (दक्षिणपत्र में)। ॐ ध्रुवाय नमः । कवचाय हुम् (पश्चिम पत्र में) । ॐ शूलिने नमः । अस्त्राय फट् (उत्तर दल में)। पुनः अष्टदल के पूर्वपत्र से आरम्भ कर प्रादक्षिण्य क्रम से प्रत्येक पत्र में क्रमशः अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डिन् का तत्तत् नाममन्त्र से पूजन करे। पुनः अष्टदल के पूर्व पत्र से लेकर क्रमशः आग्नेयादि दिशा के प्रत्येक पत्र में (प्रादक्षिण्य क्रम से) आयुध पूजन इन नाम मन्त्रों से करे—ॐ टङ्काय नमः, ॐ कृपाणाय नमः, ॐ वज्राय नमः, ॐ दहनाय नमः, ॐ भोगेन्द्राय नमः, ॐ घण्टायै नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ पाशाय नमः ।

शिव–प्रतिष्ठा में अष्टमूर्तियों और उनके अधिपतियों का पूजन–

१. यह विधि सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश और प्रतिष्ठामहोदधि में है। प्रतिष्ठामयूख में इसका प्रतिपादन नहीं हुआ है ।

यजमानमूर्तये० यजमानमूर्त्यधिपतये उग्राय०। अर्कमूर्तये० अर्कमूर्त्यधिपतये रुद्राय०। जलमूर्तये० जलमूर्त्यधिपतये भवाय०। वायुमूर्तये० वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय०। इन्दुमूर्तये० इन्दुमूर्त्यधिपतये महादेवाय०। खमूर्तये० खमूर्त्यधिपतये भीमाय० इत्यष्टौ मूर्तीस्तदधिपांश्चार्चयेत्।

अब शिव की अष्टमूर्तियों तथा उनके अधिपतियों[1] के पूजन का क्रम बतलाते हैं। अष्टदल के पूर्वादि पत्रों में प्रादक्षिण्य क्रम से पृथिवी, अग्नि, यजमान, अर्क (सूर्य), जल, वायु, इन्दु (चन्द्र), ख (आकाश) संज्ञक अष्टमूर्तियों और उनके क्रमशः शर्व, अग्नि, उग्र, रुद्र, भव, ईशान, महादेव और भीम संज्ञक अधिपतियों का पूजन नाममन्त्रों से निम्नलिखित क्रम से करे (इस क्रम में जोड़ा गया '...आवाहयामि पूजयामि" पाठ जिनको अभीष्ट न हो वे केवल पुस्तकोक्त मूलपाठ से पूजन कर सकते हैं)—

१—(पूर्वदले)—ॐ पृथिवीमूर्तये नमः। ॐ पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय नमः। पृथिवी-मूर्तिं पृथिवीमूर्त्यधिपतिं शर्वं मावाहयामि पूजयामि।

२—(दक्षिणदले)—ॐ अग्निमूर्तये नमः। ॐ अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये नमः। अग्निमूर्तिमग्निमूर्त्यधिपतिं पशुपतिमावाहयामि पूजयामि।

---

१. एतासामधिपान् वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः।
प्रृथिवीं पाति च शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च॥ ४०॥
यजमानं तथैवाग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च।
भवो जलं सदा पाति वायुमीशान एव च॥ ४१॥
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च।
सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्येते एव च॥ ४२॥
(मत्स्य २६५।४०-४२)

विष्णोः पञ्चमूर्तितदधिपानाञ्च पूजनम्]

विष्णवे पञ्चैव मूर्तयः। तदा पूर्वे-पृथिवीमूर्तये नमः पृथिवीमूर्त्यधिपतये वासुदेवाय०। दक्षिणे—जलमूर्तये० जलमूर्त्यधिपतये सङ्कर्षणाय०। पश्चिमे—अग्निमूर्तये० अग्निमूर्त्यधिपतये प्रद्युम्नाय०। उत्तरे—वायुमूर्तये० वायुमूर्त्यधिपतये अनिरुद्धाय०। मध्ये-खमूर्तये० खमूर्त्यधिपतये नारायणाय नमः। -इति।

३—(दक्षिणदले)—ॐ यजमानमूर्तये नमः। ॐ यजमानमूर्त्यधिपतये उग्राय नमः। यजमानमूर्तिं यजमानमूर्त्यधिपतिमुग्रमावाहयामि पूजयामि।

४—(नैर्ऋत्ये)—ॐ अर्कमूर्तये नमः। ॐ अर्कमूर्त्यधिपतये रुद्राय नमः। अर्कमूर्तिमर्कमूर्त्यधिपतिं रुद्रमावाहयामि पूजयामि।

५—(पश्चिमदले)—ॐ जलमूर्तये नमः। जलमूर्त्यधिपतये भवाय नमः। जलमूर्तिं जलमूर्त्यधिपतिं भवमावाहयामि पूजयामि।

६—(वायव्यदले)—ॐ वायुमूर्तये नमः। वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय नमः। वायुमूर्तिं वायुमूर्त्यधिपतिमीशानमावाहयामि पूजयामि।

७—(उत्तरदले)—ॐ इन्दुमूर्तये नमः। ॐ इन्दुमूर्त्यधिपतये महादेवाय नमः। इन्दुमूर्तिमिन्दुमूर्त्यधिपतिं महादेवमावाहयामि पूजयामि।

८—(ईशानदले)—ॐ खमूर्तये नमः। ॐ खमूर्त्यधिपतये भीमाय नमः। खमूर्तिं खमूर्त्यधिपतिं भीममावाहयामि पूजयामि।

विष्णु की पञ्चमूर्तियों और उनके अधिपतियों का पूजन—

विष्णु-प्रतिष्ठा में उनकी (विष्णु की) मात्र पाँच ही मूर्तियों (क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) तथा उनके पाँच अधिपतियों (क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और

[पञ्चमूर्तितदधिपानाञ्च पूजनं मयूखमते]

शैवे पञ्चमूर्तिपक्षे ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवाः पञ्चमूर्तिपाः।

नारायण) का पूजन होता है। उनका पूजन अष्टदल के चार महादिशाओं के पत्रों तथा मध्य में (कर्णिका में) निम्नलिखित क्रम से होगा—

१—(पूर्वदल में)—ॐ पृथिवीमूर्तये नमः। ॐ पृथिवीमूर्त्यधिपतये वासुदेवाय नमः। पृथिवीमूर्तिं पृथिवीमूर्त्यधिपतिं वासुदेवमावाहयामि पूजयामि।

२—(दक्षिणदले)—ॐ जलमूर्तये नमः। ॐ जलमूर्त्यधिपतये सङ्कर्षणाय नमः। जलमूर्तिं जलमूर्त्यधिपतिं सङ्कर्षणमावाहयामि पूजयामि।

३—(पश्चिमदले)—ॐ अग्निमूर्तये नमः। ॐ अग्निमूर्त्यधिपतये प्रद्युम्नाय नमः। अग्निमूर्तिमग्निमूर्त्यधिपतिं प्रद्युम्नमावाहयामि पूजयामि।

४—(उत्तरदले)—ॐ वायुमूर्तये नमः। ॐ वायुमूर्त्यधिपतये अनिरुद्धाय नमः। वायुमुर्तिं वायुमूर्त्यधिपतिमनिरुद्धमावाहयामि पूजयामि।

५—(मध्ये-कर्णिकायाम्)—ॐ खमूर्तये नमः। ॐ खमूर्त्यधिपतये नारायणाय नमः। खमूर्तिं खमूर्त्यधिपति नारायणमावाहयामि पूजयामि।

शिव-प्रतिष्ठा में पञ्चमूर्ति और उनके अधिपतियों का पूजन—

यदि शिव-प्रतिष्ठा में भी पञ्च-मूर्तियों और उनके अधिपतियों के पूजन का पक्ष अभीष्ट हो तो क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश संज्ञक पाँच मूर्तियों तथा उनके अधिपतियों के रूप में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इन पाँच अधिपतियों का नाममन्त्रों से पूजन निम्नलिखित क्रम से करें—

[लोकपालपूजनम्]

इन्द्रादयस्तु सर्वत्र पूजनीयाः।

१—(पूर्व दल में)—पृथिवीमूर्तये नमः। पृथिवीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः।

२—(दक्षिण दल में)—जलमूर्तये नमः। जलमूर्त्यधिपतये विष्णवे नमः।

३—(पश्चिम दल में)—अग्निमूर्तये नमः। अग्निमूर्त्यधिपतते रुद्राय नमः।

४—(उत्तर दल में)—वायुमूर्तये नमः। वायुमूर्त्यधिपतये ईश्वराय नमः।

५—(कर्णिका में)—खमूर्तये नमः। खमूर्त्यधिपतये सदाशिवाय नमः।

शिव-प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठा-मयूखोक्त यह पञ्चमूर्ति पक्ष वर्तमान पद्धतिकारों को अभीष्ट नहीं है।

लोकपाल-पूजन—

इन्द्रादि दश लोकपालों का पूजन प्रत्येक देवता की प्रतिष्ठा में विहित है। लोकपालों का पूजन पूर्वोक्त वैदिक मन्त्रों[1] अथवा नाम मन्त्रों से भी किया जा सकता है। यथा—

१-(पूर्व में)-इन्द्राय नमः। इन्द्रं पूजयामि। २-(आग्नेयकोण में)-अग्नये नमः। अग्निं पूजयामि। ३-(दक्षिण में)-यमाय नमः। यमं पूजयामि। ४-(नैर्ऋत्यकोण में)-निर्ऋतये नमः। निर्ऋतिं पूजयामि। ५-(पश्चिम में)-वरुणाय नमः। वरुणं पूजयामि। ६-(वायव्य में)-वायवे नमः। वायुं पूजयामि। ७-(उत्तर में)-सोमाय नमः। सोमं पूजयामि। ८-(ईशानकोण में)-ईशानाय नमः। ईशानं पूजयामि। ९-(पूर्व और ईशानकोण के मध्य में)-ब्रह्मणे नमः। ब्रह्माणं पूज-

१. द्र०—पीछे पृ० १५६–१५७ की टिप्पणियाँ।

[शान्ति-पौष्टिकमन्त्रैर्होमः]

तत आचार्यः क्रमेण पलाशोदुम्बराश्वत्थापामार्गशमीसमिधां प्रत्येकं द्वादशसहस्रषट्त्र्योण्यष्टसहस्रमष्टशतं वा 'हिरण्यगर्भं०' इति कुण्डसमीपे संस्थाप्य शान्तिकपौष्टिकैर्मन्त्रैर्यथाविभाग सऋत्विक् जुहुयात् ।

प्रतिकुण्डमेकैक ऋत्विक् मूर्तिपास्तत्तन्मन्त्रेण पूज्याः ।

यामि । १०-(नैर्ऋत्य और पश्चिम के मध्य में)-अनन्ताय नमः । अनन्तं पूजयामि ।

शान्तिक मन्त्रों और पौष्टिक मन्त्रों से होम —

तदनन्तर आचार्य क्रमशः पलाश, उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल) अपामार्ग (चिचड़ा) और शमी में से प्रत्येक की बारह हजार या छः हजार या तीन हजार अथवा एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ समिधाएँ 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे'०' इत्यादि मन्त्र का पाठ करते हुए कुण्ड (आचार्य कुण्ड) के समीप रखवा कर [उन्हें घृताक्त करके] अपने सहयोगी ऋत्विजों के साथ यथासंख्य [सभी ऋत्विजों में बराबर विभक्त] आहुतियों से (आचार्यकुण्ड में) हवन करे।[1]

---

१. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(ऋ० १०।१२१।१; यजु० १३।४;२३।१)

२. अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानां तु लक्षणम् ।
स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ॥ १ ॥
सर्वावयवसंपूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो दम्भलोभविवर्जितः ॥ २ ॥
कृष्णसारमये देशे च उत्पन्नः शुभाकृतिः ।
शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिःस्पृहः ॥ ३ ॥

[शान्तिकमन्त्राः]

शन्नो वातः पवता मातरिश्वा शन्नस्तपतु सूर्यः । अहानि शं

प्रत्येक कुण्ड में एक-एक ऋत्विक् और मूर्तिपों[2] (मूर्ति के संरक्षक, मूर्ति को उठाने वाले ब्राह्मणों, जो कि होम भी करते हैं) का तत्सम्बद्ध वेद-मन्त्रों से पूजन करे।

शान्तिक-मन्त्र—

समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः ।
ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः ॥ ४ ॥
आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः ।
मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा ॥ ५ ॥
द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपाः वः प्रकीर्तिताः ॥
(मत्स्यपुराण २६५।१-६)

द्रष्टव्य—

(क) ततो मूर्तिपाः पूर्वकुण्डे पलाशसमिधामष्टसहस्रमष्टशतं वा घृतेन तिलैर्वा अग्निमीले० इति जुहुयुः । प्रतिष्ठामयूख ।

(ख) यद्वा प्रतिदिनं होममष्टोत्तरशतं शतम् ।
दैशिको मूर्तिपैः कुर्याद् यावत्कार्यं समाप्यते ॥ (प्रतिष्ठामयूख)

१. (क) चत्वारो मूर्तिपा हीनेमध्येऽष्टौ द्वादशोत्तमे ।
(विष्णु-संहिता २५।५१)

(ख) योग्य मूर्तिपों के अभाव में आचार्य स्वयमेव होम करे—
स्थण्डिलेष्वथ कुण्डेषु तादर्थेनाथवा स्वयम् ।
स्वकुण्डे हवनं कुर्याच्चतुर्वेदमयोऽपरे ॥ १४५ ॥
समस्तं मूर्तिपीयं वा स्वयमेव समाचरेत् ।
सामग्रीविरहाद् योग्यमूर्तिपानामभावतः ॥ १४६ ॥
(श्रीपारमेश्वरसंहिता क्रियाकाण्ड १५।१४५-६)

भवन्तु नः शं रात्रिः प्रति धीयताम् । शन्न इन्द्राग्नी० । शन्नो देवी-रभि० । इति शान्तिकमन्त्राः ।

'शन्नो वातः पवतां०,'[1] 'शन्न इन्द्राग्नी०'[2] और शन्नो देवी०'[3] इत्यादि मन्त्र शान्तिक मन्त्र कहलाते हैं [इनके साथ ही 'द्यौः शान्ति०'[4] इत्यादि मन्त्र को भी इन शान्तिक मन्त्रों के साथ पढ़ा जाता है]

---

१. शन्नो वातः पवतां मातरिश्वा शन्नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्रिः प्रति धीयताम् ।
(तैत्तिरीय आरण्यक ४।४२।१)

इसके स्थान पर शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता का मन्त्र इस प्रकार है—

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ (यजु० ३६।१०)

२. (क) शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥
(ऋ० ७।३५।१)

(ख) शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥
(यजु० ३६।११)

३. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥
(ऋ० १०।९४, यजु० ३६।१२, तै० आ० ४।४२।१९)

४. द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥ (यजु० ३६।१७)

[पौष्टिकमन्त्राः]

'पुष्टिर्न रण्वाक्षिति०' 'वास्तोष्पते प्रतरणो०' 'अमीवहा०' 'त्र्यम्बकं०' । इति पौष्टिकाः ।

पौष्टिक मन्त्र—

'पुष्टिर्न रण्वा०'[1] 'वास्तोष्पते प्र तरणो'०[2] 'अमीवहा०'[3] और 'त्र्यम्बकं यजामहे०'[4] इत्यादि मन्त्रों को पौष्टिक मन्त्र कहा गया है। [ये मन्त्र ऋग्वेदीय परम्परा का अनुसरण करके दिये गये हैं। शुक्ल यजुर्वेद में इनमें से प्रथम तीन मन्त्र नहीं है। अतः शुक्ल-यजुर्वेदीय मन्त्रों पर प्रमुखतया आधारित पद्धतियों में भी प्रायः ये ही मन्त्र लिये जाते हैं। यथा—पं० चतुर्थीलालकृत 'सर्वदेवप्रतिष्ठा-प्रकाश' में भी उपर्युक्त 'पुष्टिर्न रण्वा०' तथा 'गयस्फानो'०[5] और 'इह पुष्टि०'[6] इन मन्त्रों के साथ ही 'शिवो नामासि०'[7] इत्यादि मन्त्र

---

१. पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथिवी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शम्भु
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥
(ऋ० १।६५।३)

२. वास्तोष्पते प्र तरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥
(ऋ० ७।५४।२)

३. अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥
(ऋ० ७।५५।१)

४. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिह बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ (ऋ० ७।५९।१२)

५. गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥
(ऋ० १।९१।१२, तै० सं० ४।३।१३।५)

६. इह पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधात्विह प्रजां रमयतु प्रजापतिः ।
अग्नये गृहपतये रयिमते पुष्टिपतये स्वाहा ॥

७. शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।
नि वर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ (यजु० ३।६३)

एककुण्डीपक्ष और पञ्चकुण्डीपक्ष में कुण्डबोधक चक्र—

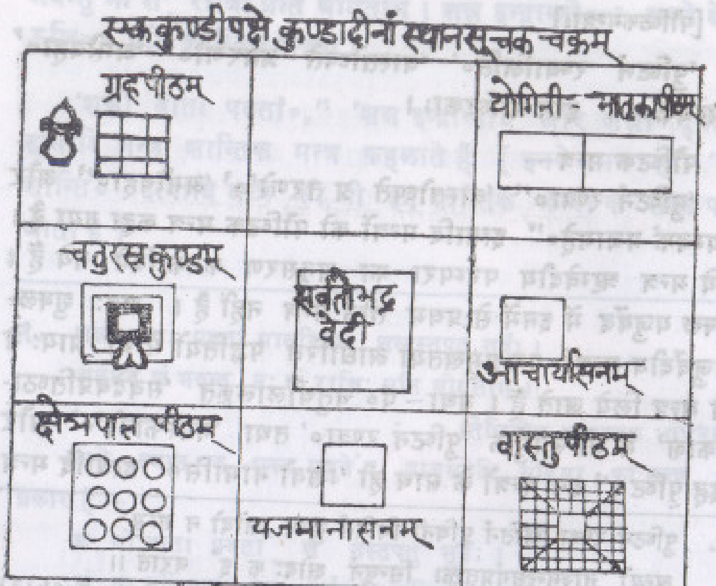

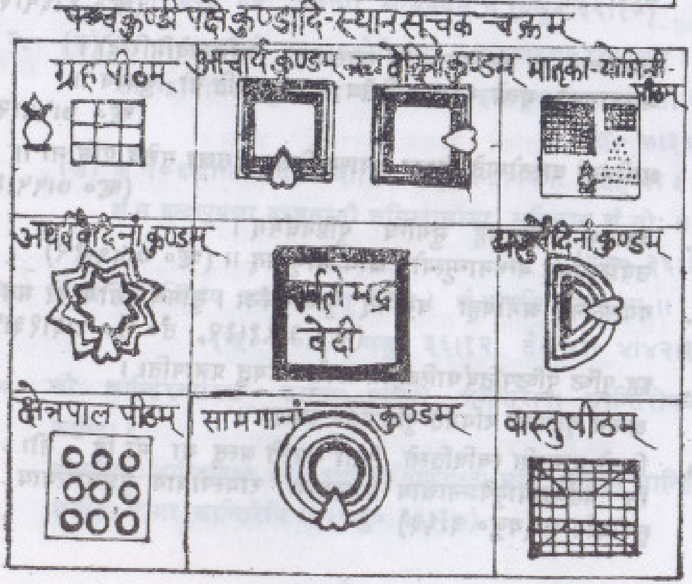

[पञ्चकुण्डी पक्षे कुण्डचतुष्टये वेदादिहोमः]

ततो मूर्तिपाः पूर्वकुण्डे पलाशसमिधामष्टसहस्रमष्टशतैर्वा घृतेन तिलैर्वा 'अग्निमीड०' इति जुहुयुः । 'इषे त्वे'ति दक्षिणे । 'अग्न आ याहि'ति पश्चिमे । 'शन्नो देवीरि'त्युत्तरे ।

भी पौष्टिक मन्त्रों में संकलित है। पं० दौलतराम गौड़ कृत 'प्रभु विद्याप्रतिष्ठार्णव' में 'अयमग्निः पुरीष्यो०'[1] और 'त्वष्टा तुरीपो०'[2] और 'त्र्यम्बकं यजामहे०'[3] पौष्टिक मन्त्रों में विहित है।

पञ्च कुण्डी[4] पक्ष में चार कुण्डों में तत्तद् वेदमन्त्र से होम—

आचार्य कुण्ड में शान्तिक और पौष्टिक मन्त्रों से होम के पश्चात् मूर्तिप (मूर्ति के रक्षक, मूर्ति को उठाने और स्थापन कार्य में प्रमुख रूप से सहायक ऋत्विज ब्राह्मण) पूर्वकुण्ड में ऋग्वेद (१।१।१) के

---

१. अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः ।
अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सह आ यच्छस्व ॥ (यजु० ३।४०)

२. त्वष्टा तुरीपोऽद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा च्छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ (यजु० २१।२०)

३. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ (यजु० ३।६०)

४. [क] कुण्डसंख्यां कार्यविधिं कुण्डभेदं च कल्पनम् ।
ज्ञात्वावश्यं कल्पनीयं नोचेद् दोषाय कल्पते ॥ ६६ ॥
(श्रीप्रश्नसंहिता १८।६६)

[ख] धाम्नस्तु पूर्वदिग्भागे दक्षिणे चोत्तरेऽथवा ।
पश्चिमे वापि कर्तव्यं मण्डपं कोणवर्जितम् ॥ ४ ॥
वर्जयेदन्तरालेषु मण्डपस्य विनिर्मितिम् ।
षट्त्रिंशदभियुक्तं स्तम्भैर्यद्वा षोडशभिर्द्विज ॥ ५ ॥
द्वारैश्चतुर्भिः सहितं दर्भमालाभिवेष्टितम् ।
क्षौमपट्टवितानाढ्यम् लम्बमुक्ताफलस्रजम् ॥ ६ ॥

'अग्निमीले॰'[1] इसमन्त्र से एक हजार आठ या एक सौ आठ बार घृताक्त पलाश समिधाओं या घृत या घृताक्त तिलों का होम करें।

द्वारपार्श्वयुगन्यस्ततोयपूर्णघंटै (ट ?) द्विज।
लेपितं गोमयाम्भोभिः सुधारेखाविचित्रितम् ॥ ७ ॥
दीपमालापरिवृतं पुष्पमालाभिलम्बितम्।
विभाजयेच्च तन्मध्यमेकाशीतिपदैः समैः ॥ ८ ॥
तन्मध्ये नवभिः कुर्यात् पदैर्वेदिं विधानतः।
वेदिं च परितः कुर्यात् कुण्डानि द्विजसत्तम ॥ ९ ॥
चतुरस्रं तथा चापं वृत्तं पद्मं चतुर्दिशम्।

(विश्वामित्र संहिता १४।४-१०)

(ग) त्रिकोणं च चतुष्कोणं पञ्चकोणं षडश्रकम्।
सप्ताष्टनकोणं च दशैकादशकोणकम् ॥ ६७ ॥
द्वादशाश्रं चापकोणं वृत्तं पद्मं च पद्मजे।
योनिकुण्डमिति प्रोक्तं चतुर्दश गुरूत्तमैः ॥ ६८ ॥
प्रयोजनं तु वक्ष्यामि शृणुष्व कमलेक्षणे।
सर्वाभ्युदयकर्माणि चतुष्कोणे समाचरेत् ॥ ६९ ॥
पौष्टिकं पद्मकुण्डे तु शान्तिं वृत्ते सुखावहम्।

(श्रीप्रश्नसंहिता १८।६७–७०)

(घ) चतुष्कोणादिकुण्डानां चतुर्णां देवधामसु ॥ ९२ ॥
निर्माणेषु प्रतिष्ठायामुत्सवे नित्यपूजने।
शान्तिहोमेषु सर्वत्र प्रायश्चित्तादिकर्मसु ॥ ९३ ॥
कुण्डानि शास्त्रतः कृत्वा तेषु होमं समाचरेत्।
अकृत्वा हूयते यत्र वह्निस्तत्र न तृप्यति ॥ ९४ ॥
अतृप्ते मयि वह्निस्थे स्वार्थसिद्धिः कथं भवेत्।
कुण्डान्यतो विधायैवं जुहुयादेषु कर्मसु ॥ ९५ ॥

(श्रीप्रश्नसंहिता १८।९२-९५)

१. अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥

नवकुण्डीपक्षे अष्टकुण्डेषु वेदादिहोमः]

यदाष्टौ कुण्डानि तदा 'ॐ वौषडि'त्याग्नेये। दश प्रणवान्सकृद्गायत्रीं चोक्त्वा नैर्ऋते। 'जातवेदस॰' इति वायव्ये। 'नमो ब्रह्मण॰' इतीशानकुण्डे। 'मूर्द्धानं दिव'॰ इति पूर्णाहुतिं जुहुयुः। आहुतिसंपाताच्छान्तिकलशे कुण्डसमीपस्थे पातयेयुः।

उसी द्रव्य से उतनी ही बार दक्षिण कुण्ड में 'इषे त्वोर्जे॰'[1] इस मन्त्र से, तथा पश्चिम कुण्ड में 'अग्न आ याहि॰'[2] इस मन्त्र से और उत्तर कुण्ड में 'शन्नो देवीरभिष्टय॰'[3] इस मन्त्र से होम करें।

नवकुण्डी पक्ष में नौ कुण्डों की स्थिति पीछे पृ॰ ८२ में प्रदत्त चक्र में देखी जा सकती है।

नवकुण्डी पक्ष में आठ कुण्डों में वेदादि होम[4]—

जब प्रतिष्ठामण्डप में नौ कुण्ड बने हों तो आचार्यकुण्ड में शान्तिक-पौष्टिक मन्त्रों से होम के पश्चात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और

---

१. इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ (यजु॰ १।१)।

२. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥
(साम।१।१ ऋ॰ ६।१६।१०)

३. शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥
(अथर्व॰ पैप्पलाद संहिता) १।१।१; ऋ॰ १०।९।४; यजु॰३६।१२)

४. एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणं चैव दृश्यते ॥
आग्नेय शाक्र याम्येषु होतव्यमुदगाननैः ॥ (मत्स्यपुराण २६५।३६-७)

[मूर्ति-मूर्त्यधिप-लोकपालहोमश्च]

ततो मूर्तिमूर्तिप लोकपालेभ्यः समिद्भिर्घृतेन तिलैर्वाऽष्टसहस्रमष्टशतं वा जुहुयुः। तेषां मन्त्रास्तु स्योना पृथिवीति पृथिवीमूर्तेः।

उत्तर के कुण्ड में उपर्युक्त पञ्चकुण्डी पक्ष के हवन-मन्त्रों से ही होम करें और तब आग्नेय कोण के कुण्ड में 'ॐ वौषट् स्वाहा' इस मन्त्र से, और नैर्ऋत्य कोण के कुण्ड में दश बार प्रणव (ॐ) के साथ स्वाहा का उच्चारण करके होम करे और एक बार गायत्री मन्त्र से होम करे। वायव्य कोण के कुण्ड में 'जातवेदसे०'' इत्यादि मन्त्र से, ईशान कोण के कुण्ड में 'नमो ब्रह्मणे०'' इस मन्त्र से होम करे।

[प्रत्येक कुण्ड में होम एक साथ करना चाहिए] 'मूर्धानं दिवो०'' इस मन्त्र से पूर्णाहुति देनी चाहिए। आज्याहुति के सम्पातों (आहुति देने के पश्चात् अवशिष्ट आज्य की बूँदों) को कुण्ड के समीप स्थापित शान्ति कलश में गिरावे।

मूर्ति मूर्त्याधिपति और लोकपालों का होम'—

तत्पश्चात् आचार्य कुण्ड के अतिरिक्त पूर्वादि दिशाओं के अन्य

---

१. जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।
(ऋ० १।९९।१; तैत्ति० आ० १०।२।१)

२. नमो ब्रह्मणे धारणं मे अस्त्वनिराकरणं धारयिता भूयासं।
कर्णयोः श्रुतं मा च्योढ्वं ममामुष्य ओ३म्॥ (तैत्ति० आ० १०)

३. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥
(यजु० ७।२४;३३।८; ऋ० ६।७।१)

४. आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः।
शान्तये लोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा॥ ३७॥

अघोरेभ्य० इति मूर्तिपतेः सर्वस्य। इन्द्र मरुत्व० इतीन्द्रस्य। अग्निं दूतमित्यग्निमूर्तेः। यः पशूनामित्यग्निमूर्तिपतेः पशुपतेः। अग्न आ याहीत्यग्नेः। असि हि वीरसेन्य० इति यजमानमूर्तेः। तमिन्द्रं जोहवीमीति यजमानमूर्तिपतेरुग्रस्य। यमाय सोममिति यमस्य। उदुत्यं जातवेदसमिति सूर्यमूर्तेः। आ वो राजानमध्वरस्येति सूर्यमूर्तिपते रुद्रस्य। असुन्वन्तं समं जहीति निर्ऋतेः। आपो हि ष्ठेति जलमूर्तेः। विभूषन्नग्न उभयाँ इति जलमूर्तिपतेर्भवस्य। इमं मे वरुणेति वरुणस्य। वात आ वातु भेषजमिति वायुमूर्तेः। तमीशानमिति वायुमूर्तिपतेरीशानस्य। आ नो नियुद्भिरिति वायोः। 'वयं सोम

कुण्डों में सभी ऋत्विज् अष्ट मूर्तियों, उनके अधिपतियों और लोकपालों में से प्रत्येक के लिए पलाशादि की समिधा, घृत अथवा घृताक्त तिलों से एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार [अथवा प्रतिष्ठामहोदधि के अनुसार कम से कम आठ बार] होम करें। अष्टमूर्तियों, उनके अधिपतियों तथा उनसे सम्बन्धित लोकपालों के मन्त्र इस प्रकार हैं—

तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात् समाहितः।
वसुधा वसुरेताश्च यजमानो दिवाकरः॥ ३८॥
जलं वायुस्तथा सोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः।
देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत्॥ ३९॥
एतासामधिपान् वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः।
पृथिवीं पाति च शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च॥ ४०॥
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च।
भवो जलं सदा पाति वायुमीशान एव च॥ ४१॥
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च।
सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपाः ह्येत एव च॥ ४२॥
एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत्॥ ४३॥
(मत्स्य २६५/३६-४३)

व्रते०' इति सोममूर्तेः। इन्द्रं तं शुम्भ० इति सोममूर्तिपतेर्महादेवस्य। अभि त्यं देवं सवितारमिति कुबेरस्य। आदित्प्रत्नस्येति खमूर्तेः। मृगो न भीम० इति खमूर्तिपतेर्भीमस्य। अभि त्वा देव सवितरित्तीशानस्य।

पूर्वकुण्ड में होम के मन्त्र—

'स्योना पृथिवि नो'[1] यह पृथिवी मूर्ति का मन्त्र है। 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः'[2] यह पृथिवीमूर्ति के अधिपति शर्व का मन्त्र है। 'इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं०'[3] यह [अथवा 'सजोषा इन्द्र सगणो०'[4] यह पूर्वदिशा के लोकपाल] इन्द्र का मन्त्र है।

आग्नेय कुण्ड में होम के मन्त्र—

'अग्निं दूतं पुरो दधे०'[5] यह अग्निमूर्ति का मन्त्र है। यः पशूनाम-

---

१. (क) स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी
यच्छा नः शर्म सप्रथाः। (यजु० ३५।२१;३६।१३; तै० आ० १०।१।१०)
(ख) स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म स प्रथः॥
(ऋ० १।२२।१५)

२. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

३. इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य।
तव प्रणोती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः॥
(ऋ० ३।५१।७; यजु ७।३५)

४. सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँरपमृधो नुदस्वाऽथाभयं कृणुहि विश्वतो नः॥
(ऋ० ३।४७।२; यजु० ७।३७, तै०सं० १।४।४२)

५. अग्नि दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे
देवाँ२ आ सादयादिह॥ (यजु० २२।१७)

धिपतिः०'[1] यह अग्निमूर्ति के अधिपति पशुपति का मन्त्र है और 'अग्न आ याहि०'[2] यह आग्नेय दिशा के लोकपाल अग्नि का मन्त्र है।

दक्षिणकुण्ड में होम के मन्त्र—

'असि हि वीर सेन्योऽसि०'[3] यह मन्त्र [अथवा 'य इन्द्र इन्द्रियं दधुः'०[4] यह मन्त्र] यजमान मूर्ति का है। 'तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं०'[5] यह यजमान मूर्ति के अधिपति उग्र का मन्त्र है। 'यमाय सोमं सुनुत०'[6] यह मन्त्र [अथवा 'यमाय त्वाङ्गिरस्वते'०[7] यह मन्त्र] दक्षिण दिशा के लोकपाल यम का है।

नैर्ऋत्यकोण के कुण्ड में होम के मन्त्र—

'उद्वुत्यं जातवेदसं०'[8] यह सूर्यमूर्ति का मन्त्र है। 'आ वो राजान-

---

१. यः पशूनामधिपतिः रुद्रस्तन्तिचरो वृषा।
पशूनस्माकं मा हिंसीः। एतदस्तु हुतं तव स्वाहा॥

२. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ (ऋ० ६।१६।१०, साम १ १)

३. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥
(ऋ० १।८१।२)

४. य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः
स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत॥ (यजु० २०।७१)

५. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री॥
(ऋ० ८।९७।१३)

६. यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ (ऋ० १०।१४।१३)

७. यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा
स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे॥ (यजु० ३८।९)

८. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (ऋ० १।५०।१, यजु० ७।४१, ८।४१, ३३।३१)

मध्वरस्य'०'[1] यह [अथवा 'असौ यस्ताम्रो०'[2] यह] सूर्यमूर्ति के अधिपति रुद्र का मन्त्र है और 'असुन्वन्तं समं जहि०'[3] [अथवा 'असुन्वन्तमयजमानमिच्छ०'[4]] यह नैर्ऋत्यकोण के लोकपाल निर्ऋति का मन्त्र है।

पश्चिम कुण्ड में होम के मन्त्र—

'आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता०'[5] यह जलमूर्ति का मन्त्र है। 'विभूषन्नग्न उभयाँ०'[6] यह [अथवा 'उग्र लोहितेन मित्रं सौव्रत्येन०' यह]

---

१. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ (ऋ० ४।३।१)

२. असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ॥
(यजु० १६ ६)

३. असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ (ऋ० १।१७६ ४)

४. असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥
(यजु० १२।६२)

५. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।
(ऋ० १०।९।१; यजु० ११।५०; ३६।१४)

६. विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत् ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥
(ऋ० ६।१५।९)

६. उग्रँल्लोहितेन मित्रं सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन
मरुतो बलेन साध्यान् प्रमुदा।
भवस्य कण्ठ्यँ रुद्रस्यान्तःपार्श्व्यं महादेवस्य
यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् (यजु० ३९।९)

जलमूर्ति के अधिपति भव का मन्त्र है। 'इमं मे वरुण श्रुधी०'[1] यह पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण का मन्त्र है।

वायव्य कोण के कुण्ड में होम के मन्त्र—

'वात आ वातु भेषजं०'[2] यह [अथवा 'वायो ये ते सहस्रिणो०'[3] यह] वायुमूर्ति का मन्त्र है। 'तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति०'[4] यह वायुमूर्ति के अधिपति ईशान का मन्त्र है। 'आ नो नियुद्भिः०'[5] यह वायव्यकोण के लोकपाल वायु का मन्त्र है।

उत्तरकुण्ड में होम के मन्त्र—

'वयं सोम०'[6] यह सोममूर्ति का मन्त्र है। 'इन्द्रं तं शुम्भ०'[7] यह

---

१. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके ॥
(ऋ० १।२५।१९; यजु० २१।१)

२. वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्र ण आयूँषि तारिषत् ॥ १॥
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि ॥ २॥
यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे ॥
(ऋ० १०।१८६।१-३)

३. वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि। नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥
(यजु० २७।३२)

४. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥
(ऋ० १।८९।५; यजु० २५।१८)

५. आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरँ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
(ऋ० ७।९२।५, यजु० २७।२८)

६. वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि ॥
ऋ० १०।५७।६; यजु० ३।५६।

७. इन्द्रं त शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ॥
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥
(ऋ० ८।७०।२)

[अथवा 'सोमो' राजामृत ँ सुत०" यह] सोममूर्ति के अधिपति महादेव का मन्त्र है। 'अभि त्वं०'[2] [अथवा 'आ प्यायस्व समेतु ते०"] यह उत्तर दिशा के लोकपाल कुबेर का मन्त्र है।

ईशानकोण के कुण्ड में होम के मन्त्र—

'आदित् प्रत्नस्य०" यह मन्त्र [अथवा 'तमीशानं०" यह मन्त्र]

---

१. सोमो राजामृत ँ सुत ऋजीषेणा जहान् मृत्युम्।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ँ शुक्रमन्धस-
इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥ (यजु० १९।७२)

२. (क) अभि त्यं देवं ँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि
सत्यसवं ँ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः।
प्रजाभ्यस्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥ (यजु० ४ २५)

(ख) अभित्यं देव ँ सवितारमूण्योः कविक्रतु-
मर्चामि सत्यसवस ँ रत्नधामभि प्रियं
मतिमूर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्-
सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा सुवः।
प्रजाभ्यस्त्वा प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा
प्रजास्त्वामनु प्राणिहि प्रजास्त्वामनु प्राणन्तु॥
(तैत्ति० सं० १।२।६)

३. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे॥
(ऋ० १।९१।१६; ९।३१।४; यजु० १२।११२;
तुलनीय—तै०सं० ३।२५ ३; ४।२।७।४)

४. आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवा॥
(ऋ० ६।८।३०)

५. तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥
(ऋ० ९।८९।५; यजु० २५।१८)

[एक कुण्डीपक्षे मूर्त्यादिहोमः]

[एक कुण्डी पक्षे तु मूर्त्यादिहोम आचार्यकुण्ड एव करणीयम्]।

[महाव्याहृतिहोमः]

ततोऽष्टसहस्रा ऽष्टशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्यया महाव्याहृतिभिस्तिलयवव्रीहिचर्वाज्यैः क्रमेण प्रत्येकं जुहुयुः।

आकाशमूर्ति (खमूर्ति) का है। 'मृगो न भीमः०" यह खमूर्तिपति भीम का मन्त्र है। 'अभि त्वा देव सवितरीशानं०" [अथवा 'ईशा वास्यमिदं०" अथवा 'अभि त्यं देव ँ सवितारं०"] यह मन्त्र ईशान (ईशान कोण के लोकपाल) का है।

[एककुण्डी पक्ष में मूर्त्यादि-होम]—

[एककुण्डी पक्ष में मूर्त्यादि होम आचार्य कुण्ड में ही सम्पादित होते हैं।]

महाव्याहृति होम—

तब ऋत्विजगण 'भूः, भवः, स्वः' इन व्याहृतियों [ॐ भूः स्वाहा,

---

१. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः
सृक ँ स ँ शाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व॥
(यजु० १८।७१, ऋ० १०।१८०।२)

२. अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे॥
(ऋ० १।२४।३, तैत्ति० सं० ३।५।११।६)

३. ईशावास्यमिदं ँ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ (यजु० ४०।१)

४. अभि त्यं देव ँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि
सत्यसव ँ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्य-
पाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥
प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनु प्राणिहि॥
(यजु० ४।२५)

५. यह बात प्रतिष्ठामयूख में नहीं कही गयी है।

[देव-मूल-मन्त्रेण होमः]

ततो गुरुः स्थाप्यदेवतालिङ्गकेन मन्त्रेण घृतेन तिलैर्वाऽष्टसहस्रमष्टशतं वा हुत्वा पूर्णाहुतिं हुत्वा देवस्य दक्षिणकर्णे होमं निवेद्य पूर्वकुण्डे घृताहुत्यष्टकं मूलमन्त्रेण हुत्वा देवपादौ स्पृशेत् । मूलमन्त्रेण पूर्वोक्तसङ्ख्यया याम्यकुण्डे हस्तेन दधि हुत्वा 'ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा] से प्रत्येक कुण्ड में एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ अथवा अटठाईस अथवा आठ बार तिल, यव और व्रीहि (चावल) मिश्रित हवनीय द्रव्य से अथवा चरु और आज्य से होम करें।

स्थाप्य-देवता के मूलमन्त्र से होम—

तत्पश्चात् आचार्य स्थाप्य देवता (या सभी स्थाप्य देवताओं) के विशिष्ट मन्त्र से अपने कुण्ड में घृत से अथवा घृताक्त तिलों से एक हजार आठ या एक सौ आठ आहुतियों का होम करके पूर्णाहुति देकर, किये हुए होम का निवेदन ['अमुक मन्त्रेण अमुक संख्यायां होमः कृतः' ऐसा कहते हुए] स्थाप्य देवता के कान में करे।।

'तब आचार्य पूर्वकुण्ड में जाकर स्थाप्य देवता [या सभी स्थाप्य देवताओं] के मूलमन्त्र से घृत की आठ आहुतियों का होम करके स्थाप्य देवता (या देवताओं) के चरणों का स्पर्श करे।

तदनन्तर आचार्य दक्षिण कुण्ड में जाकर स्थाप्य देवता (या देवताओं) के मूलमन्त्र से दधि की आठ आहुतियों का हाथ से ही होम करके स्थाप्य देवता [या देवताओं] की नाभि का स्पर्श करे।

तदनन्तर आचार्य पश्चिम कुण्ड में जाकर स्थाप्य देवता [या देवताओं] के मूलमन्त्र से दूध की आठ आहुतियों का होम करके स्थाप्य देवता [या देवताओं] के हृदय का स्पर्श करे।

तब आचार्य उत्तर कुण्ड में जाकर स्थाप्य देवता [या देवताओं] के मूलमन्त्र से मधु की आठ आहुतियों का होम करके स्थाप्य देवता

देवनाभिं, वारुणकुण्डे क्षीरं हुत्वा हृदयम्, सौम्यकुण्डे मध्वाहुतीर्हुत्वा मूर्धानं, वारुणकुण्डे मिश्रघृतादिचतुष्टयं हुत्वा तेनैव पूर्णां दत्त्वा देवसर्वाङ्गं स्पृशेत् ।

[एककुण्डी पक्षे मूलमन्त्रेण होमः]

[एककुण्डीपक्षे तस्मिन्नेव आचार्यः स्थाप्यदेवतालिङ्गकमन्त्रेणाष्टाष्टसंख्यया घृतादिभिरुक्तक्रमेणैव जुहुयात् ।][1]

[या देवताओं] के मूर्धा (मस्तक) का स्पर्श करे।

तदनन्तर आचार्य पुनः पश्चिम कुण्ड में जाकर घृत, दधि, दुग्ध और मधु को मिश्रित करके उस मिश्रण से आठ आहुतियों का होम स्थाप्य देवता [या देवताओं] के मूलमन्त्र से करके और उसी मन्त्र से पूर्णाहुति देकर स्थाप्य देवता [या देवताओं] के सर्वाङ्ग (समस्त शरीर) का स्पर्श करे।

एककुण्डी पक्ष में घृतादि होम—

एककुण्डी पक्ष में आचार्य उसी कुण्ड में स्थाप्य देवता [या सभी स्थाप्य देवताओं] के मूलमन्त्र से उपर्युक्त घृतादि द्रव्यों की आठ-आठ आहुतियों का होम उपर्युक्त क्रम से ही करे]।

नवकुण्डी पक्ष में मूलमन्त्र से होम—

स्थाप्य-देव-विशेष के मूलमन्त्र से होम का उपर्युक्त पञ्चकुण्डी पक्ष का विधान नवकुण्डी पक्ष में भी स्वीकार्य है। स्थाप्य देवता एक हो या अनेक, आचार्य अपने ही कुण्ड में प्रत्येक देवता के मूलमन्त्र से एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार घृत से या घृताक्त तिलों से होम करके पूर्णाहुति देकर प्रत्येक स्थाप्य देवता के दाहिने कान में होम का निवेदन करे। तदनन्तर आचार्य प्रत्येक स्थाप्य देवता के मूलमन्त्र से पूर्वोक्त पञ्चकुण्डी पक्ष के विधान का ही अनुसरण करते हुए क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के कुण्ड में क्रमशः घृत, दधि, दुग्ध और मधु की आठ-आठ आहुतियों

१. सम्पादक द्वारा संयोजित।

से होम करके पूर्वोक्त विधि से ही प्रत्येक होम के पश्चात् प्रत्येक देवता के चरणों, नाभि, हृदय और मस्तक का स्पर्श करके अन्त में उक्त घृतादि द्रव्यों के मिश्रण से पश्चिम कुण्ड में भी प्रत्येक स्थाप्य देवता के मूल मन्त्र से आठ आठ आहुतियों का होम करके उसी मिश्रित द्रव्य से पूर्णाहुति देकर प्रत्येक स्थाप्य देवता के सर्वाङ्ग का स्पर्श करे।'

एक कुण्डी पक्ष में मूलमन्त्र से होम—

एककुण्डी पक्ष में भी आचार्य उपर्युक्त क्रम से ही होम करे।

पञ्चायतन देवताओं का स्थापना क्रम—

पाठकों की सुविधा हेतु पञ्चायतन देवताओं की स्थापना में स्थान-स्थिति नीचे दिखलाई जा रही है।

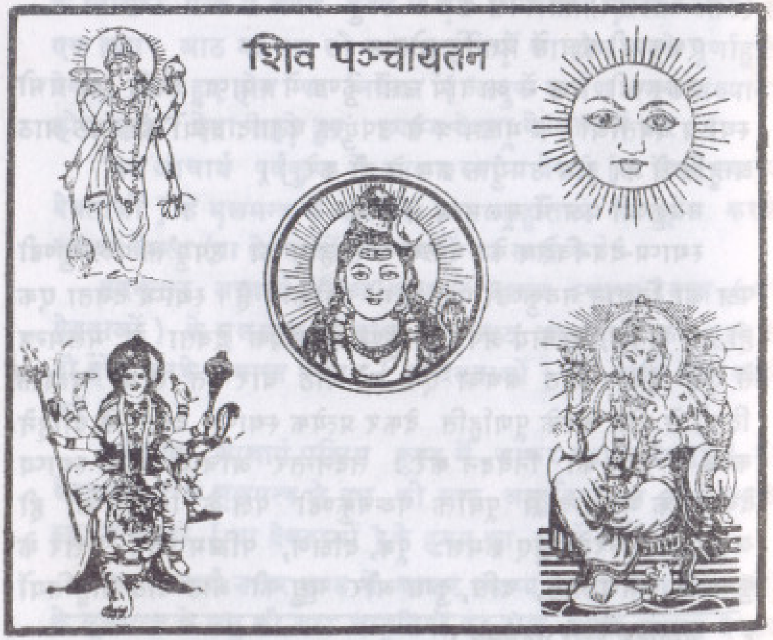

१. द्रष्टव्य—सर्वदेव प्रतिष्ठा प्रकाश, प्रतिष्ठामहोदधि।

शिवपञ्चायतन—

शिव-पञ्चायतन में मध्य में शिव की स्थापना की जाती है और ईशान कोण में विष्णु, आग्नेय कोण में सूर्य, नैऋ॑त्य कोण में गणेश और वायव्य कोण में देवी की स्थापना की जाती है।

देवी-पञ्चायतन—

देवी-पञ्चायतन में मध्य में देवी की स्थापना की जाती है और ईशानकोण में विष्णु, आग्नेय कोण में शिव, नैऋ॑त्य कोण में गणेश तथा वायव्य कोण में सूर्य की स्थापना की जाती है।

विष्णु-पञ्चायतन—

विष्णु-पञ्चायतन में मध्य में विष्णु की स्थापना की जाती जाती है और ईशान कोण में शिव, आग्नेय कोण में गणेश, नैर्ऋत्य कोण में सूर्य और वायव्य कोण में देवी की स्थापना की जाती है।

गणेश-पञ्चायतन—

गणेश-पञ्चायतन में मध्य में गणेश की स्थापना की जाती है। ईशानकोण में विष्णु, आग्नेय कोण में शिव, नैर्ऋत्य में सूर्य और वायव्य कोण में दवी की स्थापना की जाती है।

सूर्य-पञ्चायतन—

सूर्यपञ्चायतन में सूर्य की स्थापना मध्य में की जाती है और ईशान कोण में शिव, आग्नेय कोण में गणेश, नैर्ऋत्य कोण में विष्णु और वायव्यकोण में देवी की स्थापना की जाती है।

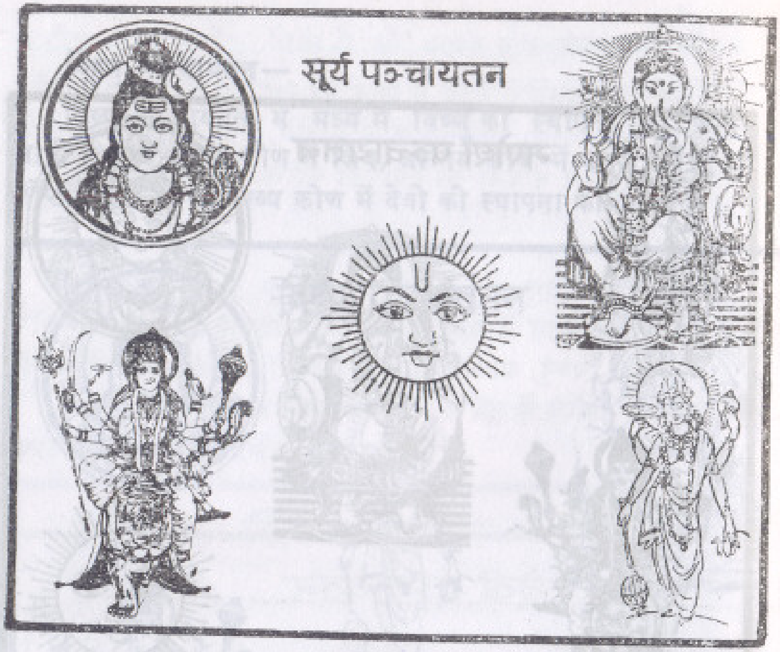

[कूर्मशिला-ब्रह्मशिलादीनामधिवासन, पूजनञ्च]

तत कूर्मशिलाब्रह्मशिलापिण्डिकावाहनादिपरिचारकदेवाश्च वैदिकेर्नाममन्त्रैर्वा संपूज्य मुख्यप्रतिमाया वामपार्श्वेऽधिवासयेत् ।

राम-पञ्चायतन —

राम-पञ्चायतन में भगवान् श्री राम की स्थापना मध्य में होती है तथा उनके बाँये सीताजी और शत्रुघ्न की स्थापना होती है। श्री राम की दाहिनी ओर क्रमश: लक्ष्मण और भरत को स्थापित किया जाता है।

कूर्मशिला, ब्रह्मशिला आदि का स्थापन और पूजन —

स्थाप्य देवता के मूलमन्त्र से होम के पश्चात् कूर्मशिला (अथवा उसके प्रतिनिधि रूप में स्वर्णपत्र में निर्मित कूर्म), ब्रह्मशिला और

तानि मधुघृतेनाभ्यज्य प्रक्षाल्य संपूज्य वस्त्रेणाच्छाद्य

स्थाप्य देवता की पिण्डिका (=पीठिका) तथा स्थाप्य देवता के वाहनादि और परिचारक देवताओं की वैदिक मन्त्रों से अथवा नाममन्त्रों से पूजा करके उन्हें मुख्य प्रतिमा के बायी ओर रखकर उनका अधिवासन करे। [अधिवासन के मन्त्र तत्त्वत्रयादिन्यास के अन्त में है]। [यदि प्रतिष्ठा के पूर्व ही कूर्मशिला, ब्रह्मशिला, पिण्डिका, वाहन और परिचारक देवताओं को यथास्थान दृढ रूप से स्थापित किया जा चुका हो तो तब उनका यथोक्त मन्त्रों से संस्कार मात्र करे।] तब उनको मधु और घृत से अभ्यक्त करके जल से धोकर वस्त्र से आच्छादित करे।

कूर्मशिलादि पूजन के मन्त्र इस प्रकार हैं—

कूर्मशिला-पूजन मन्त्र

'ॐ यस्य कुर्मो हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै देवा अधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥

(यजु० १७।५२)

कूर्मशिलायै नमः। कूर्मशिलामावाहयामि पूजयामि।

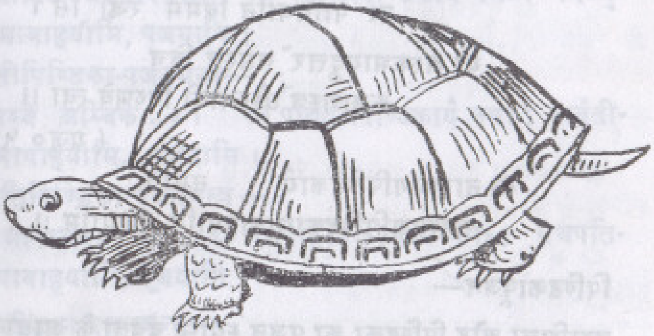

स्वर्णपत्र में निर्मित कूर्म

ब्रह्मशिलापूजन मन्त्र—

ॐ ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ (यजु० ३०।५)

ॐ ब्रह्मशिलायै नमः। ब्रह्मशिलामावाहयामि, पूजयामि।

विष्णुशिलापूजनमन्त्र—

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण
सर्वलोकं म इषाण।
(यजु० ३०।२२)

ॐ विष्णुपिण्डिकायै नमः।
विष्णुपिण्डिकामावाहयाहि पूजयामि।

नारायणशिलापूजनमन्त्र—

ॐ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विच
क्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥
(यजु० ५।१८)

ॐ नारायणपिण्डिकायै नमः।
नारायणपिण्डिकामावाहयामि पूजयामि॥

पिण्डिकापूजन—

ब्रह्मशिला और पिण्डिका का पूजन स्थाप्य देवता के आधारशक्ति मन्त्र से भी किया जा सकता है।[1]

1. द्रष्टव्य—जयाख्यसंहिता २।२७५-६।

शिवपिण्डिका-पूजन-मन्त्र—

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥
(यजु० २३।१८)

ॐ शिवपिण्डिकायै नमः।
शिवपिण्डिकामावाहयामि, पूजयामि॥

दुर्गापिण्डिका-पूजनमन्त्र—

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोम-
मरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि
विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥
(ऋ० १।९९।१; तैत्ति० आ० १०।२।१)

ॐ दुर्गापिण्डिकायै नमः।
दुर्गापिण्डिकामावाहयामि, पूजयामि॥

विष्णुपिण्डिका-पूजनमन्त्र—

ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च...। ॐ विष्णुपिण्डिकायै नमः। विष्णुपिण्डिकामावाहयामि, पूजयामि।

पार्वतीपिण्डिका-पूजनमन्त्र—

ॐ अम्बे अम्बिके...०। ॐ पार्वतीपिण्डिकायै नमः। पार्वतीपिण्डिकामावाहयामि, पूजयामि।

गणपतिपिण्डिका-पूजनमन्त्र—

ॐ गणानान्त्वा ....०। ॐ गणपतिपिण्डिकायै नमः। गणपतिपिण्डिकामावाहयामि, पूजयामि।

सूर्यपिण्डिका-पूजनमन्त्र—

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं०। ॐ सूर्यपिडिकाये नमः। सूर्यपिण्डिकामावाहयामि, पूजयामि।

लक्ष्मीपिण्डिका-पूजनमन्त्र —

ॐ श्रीश्च ते० । ॐ लक्ष्मीपिण्डिकायै नमः । लक्ष्मीपिण्डिकामावाहयामि पूजयामि ।

हनुमत्पिण्डिकापूजन मन्त्र —

ॐ आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुराऽऽसुता ॥
(यजु० १९।१४)

ॐ हनुमत्पिण्डिकायैः नमः । हनुमत्पिण्डिकामावाहयामि, पूजयामि ।

इसी प्रकार राम, कृष्ण इत्यादि देवताओं की पिण्डिका का पूजन उनकी आधार शक्तियों के नाममन्त्रों से किया जा सकता है ।

वाहन और परिचारक देवताओं का पूजन—

यदि स्थाप्य देवता के वाहन और परिचारक देवताओं की भी स्थापना की गयी हो तो उनका पूजन भी वैदिकमन्त्र अथवा नाममन्त्र[1] से करना चाहिए । यथा—

विष्णु के वाहन का पूजन—

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्मान्पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासाऽन्तरिक्षमापृण ज्योतिषा
दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृंह ॥
(यजु० १७।७२)

ॐ गरुडाय नमः । गरुडमावाहयामि, पूजयामि ।

शिव के वाहन का पूजन—

ॐ आशुः शिशानो वृषभो० (यजु० १७।३३) । ॐ नन्दिने नमः । नन्दिनमावाहयामि पूजयामि ।

---

१. अन्येषां परिवाराणां मन्त्रास्तु प्रणवादिकाः ॥ ९३
स्वाभिधानेन सर्वेषां नमोऽन्ताः विदिता द्विजाः ॥
(नारदीयसंहिता ५।९३-४,)

[पिण्डिकायां पञ्चाङ्गमन्त्रादिन्यासः]

प्रतिमायाः पिण्डिकायां स्वमन्त्रन्यासं कुर्यात् । तत्र विष्णुश्चेत्स्थाप्यस्तदा 'ऊँ घं ढं प भं फं लक्ष्म्यै नमः' एतानि पञ्चाक्षराणि हृच्छिरः शिखाकवचनेत्रसंज्ञकानि हु फडन्तो वा वचनसमुदायः' इति

इसी प्रकार देवी, गणेश आदि के वाहनों का भी नाम-मन्त्र से पूजन करें ।

परिचारक देवताओं का पूजन—

विष्णु के चण्ड-प्रचण्ड, शिव के नन्दी, भृङ्गी, राम के परिचारक हनुमान आदि का नाम मन्त्रों से पूजन करे ।

पिण्डिका में पञ्चाङ्गमन्त्रादि का न्यास —

[स्थाप्य देवता की कूर्मशिला, ब्रह्मशिला, पिण्डिका, वाहन और परिचारक देवताओं के पूजन और अधिवासन के पश्चात्] स्थाप्य देव-प्रतिमा की पिण्डिका में स्थाप्य देवता के ही मन्त्र का न्यास करे । (स्थाप्य देवता के मन्त्र का पञ्चाङ्गन्यास पीठिका में क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ईशान दिशाओं में करना चाहिए ।[2] यथा—

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे० । हृदयाय नमः (इससे पिण्डिका के पूर्वदल में न्यास करे]

ॐ इदं विष्णु···· । शिरसे स्वाहा [इससे पिण्डिका के दक्षिण भाग में न्यास करे]

ॐ इदं विष्णु० — । शिखायै वषट् ।इससे पिण्डिका के पश्चिम भाग में न्यास करे]

ॐ इदं विष्णु०— । कवचाय हुम् [इससे पिण्डिका के उत्तर भाग में न्यास करे]

ॐ इदं विष्णुः— । नेत्राभ्यां वौषट् [इससे पिण्डिका के ईशान भाग में न्यास करे]

---

२. द्रष्टव्य-पूर्वादिदलमारभ्य हृदयादीनि विन्यसेत् । नारदीयसंहिता २।८१

इसी प्रकार शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य आदि देवताओं की स्थापना में भी स्थाप्य देवता के वैदिक मन्त्र अथवा मूलमन्त्र से पिण्डिका में हृदयादि न्यास करना चाहिए, यथा— शिव की प्रतिष्ठा में पिण्डिका-न्यास मूलमन्त्र से इस प्रकार किया जा सकता है—

ॐ नमः शिवाय। हृदयाय नमः। (इससे पिण्डिका के पूर्वी छोर में न्यास करे)।

ॐ नमः शिवाय। शिरसे स्वाहा। (इससे पिण्डिका के दक्षिण में न्यास करे)।

ॐ नमः शिवाय। शिखायै वषट्। (इससे पिण्डिका के पश्चिम में न्यास करे)।

ॐ नमः शिवाय। कवचाय हुम्। (इससे पिण्डिका के उत्तर में न्यास करे)।

ॐ नमः शिवाय नेत्र-त्रयाय वौषट् (इसस पिण्डिका के ईशान भाग में न्यास करे)।

विष्णु पिण्डिका में पञ्चाङ्गन्यास का विशेष विधान—

यदि स्थाप्य देवता विष्णु हों तो तो 'ॐ घ ढ पं भं फं लक्ष्म्यै नमः' ये पाँच अक्षर क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच और नेत्र संज्ञक हैं तात्पर्य यह है कि इन पाँच अक्षरों को क्रमशः हृदयादि पाँच अङ्गों के साथ साथ उच्चारण करते हुए न्यास करे। यह न्यास इस प्रकार किया जा सकता है—

ॐ घं लक्ष्म्यै नमः। हृदयाय नमः [पिण्डिका के पूर्व में]।
ॐ ढं लक्ष्म्यै नमः। शिरसे स्वाहा [पिण्डिका के दक्षिण में]।
ॐ पं लक्ष्म्यै नमः। शिखायै वषट् [पिण्डिका के पश्चिम में]।
ॐ भं लक्ष्म्यै नमः। कवचाय हुम [पिण्डिका के उत्तर में]।
ॐ फं लक्ष्म्यै नमः। नेत्राभ्यां वौषट् [पिण्डिका के ईशानकोण में]।

अथवा 'ॐ घं ढं पं भं फं लक्ष्म्यै नमः हु फट्' इस वचन समुदाय से यह न्यास करे। यथा-ॐ घं लक्ष्म्यै नमः हुफट् हृदयाय नमः।

पिण्डिकायां पञ्चाङ्गानि न्यस्य
तत्त्वत्रयमूर्तिमूर्तिपांश्च पूर्ववद्विन्यसेत्।

इत्यादि प्रकार से भी यह न्यास किया जा सकता है।

पिण्डिका में तत्त्वत्रय न्यास, मूर्तिन्यास और मूर्तिपन्यास—

पञ्चाङ्गन्यास के अनन्तर पिण्डिका में तत्त्वत्रय-न्यास, मूर्तिन्यास और मूर्तिप-(मूर्त्यधिपति)-न्यास करे। यथा—

तत्त्वत्रयन्यास—

पिण्डिकामध्य में भावनया कल्पित त्रिकोण में प्रादक्षिण्येन अधोलिखित न्यास करे—

ॐ आत्मतत्त्वाय नमः। आत्मतत्त्वाधिपत्यै क्रियाशक्त्यै नमः।
ॐ विद्यातत्त्वाय नमः। विद्यातत्त्वाधिपत्यै ज्ञानशक्त्यै नमः।
ॐ शिवतत्त्वाय नमः। शिवतत्त्वाधिपत्यै इच्छाशक्त्यै नमः।

मूर्तिन्यास और मूर्तिपन्यास—

यदि स्थाप्य देवता शिव हो तो पिण्डिका में कल्पित अष्टदल में अष्टमूर्तियों तथा उनके अधिपतियों का न्यास इस क्रम से करे—

(१) ॐ पृथिवीमूर्तये नमः। पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय नमः। (पिण्डिका-पूर्वदले)।
(२) ,, अग्निमूर्तये नमः। ॐ अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये नमः। (आग्नेय्याम्)।
(३) ,, यजमानमूर्तये नमः। ॐ यजमानमूर्त्यधिपतय उग्राय नमः। (दक्षिणे)।
(४) ,, अर्कमूर्तये नमः। ॐ अर्कमूर्त्यधिपतये रुद्राय नमः। (नैर्ऋत्याम्)।
(५) ,, जलमूर्तये नमः। ॐ जलमूर्त्यधिपतये भवाय नमः। (पश्चिमे)।
(६) ,, वायुमूर्तये नमः। ॐ वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय नमः। (वायव्ये)।

[कूर्मशिलादीनामधिवासन-मन्त्रकथनम्]

तदा ॐ ह्रीं श्रीं ह्लां क्षः परब्रह्मणे सर्वाधाराय नमः। ॐ ह्रीं श्रीं ह्लां दिव्यतेजोधारिण्यै सुभगाय नमः' इति मन्त्राभ्यामधिवासयेत्। इत्यधिवासनम्।

(७) ॐ इन्दुमूर्तये नमः। ॐ इन्दुमूर्त्यधिपतये महादेवाय नमः। (उत्तरे)।

(८) ,, खमूर्तये नमः। ॐ खमूर्त्यधिपतये भीमाय नमः। (ऐशान्याम्)।

यदि स्थाप्य देवता विष्णु हों तो पिण्डिका में विष्णु की पाँच मूर्तियों और उनके अधिपतियों का न्यास निम्नलिखित क्रम से होगा—

(१) ॐ पृथिवीमूर्तये नमः। ॐ पृथिवीमूर्त्यधिपतये वासुदेवाय नमः। (पूर्वे)।

(२) ,, जलमूर्तये नमः। ॐ जलमूर्त्यधिपतये सङ्कर्षणाय नमः। (दक्षिणे)।

(३) ,, अग्निमूर्तये नमः। ॐ अग्निमूर्त्यधिपतये प्रद्युम्नाय नमः। (पश्चिमे)।

(४) ,, वायुमूर्तये नमः। ॐ वायुमूर्त्यधिपतये अनिरुद्धाय नमः। (उत्तरे)।

(५) ,, खमूर्तये नमः। ॐ खमूर्त्यधिपतये नारायणाय नमः। (मध्ये)।

कूर्मशिला, ब्रह्मशिला आदि के अधिवासन के मन्त्र—

तत्त्वत्रयादि न्यास के अनन्तर कूर्मशिला और पिण्डिका का अधिवासन 'ॐ ह्रीं श्रीं ह्लां क्षः परब्रह्मणे सर्वाधाराय नमः। ॐ ह्रीं श्रीं ह्लां दिव्यतेजोधारिण्यै सुभगायै नमः' इन दो मन्त्रों से करे। इस प्रकार अधिवासन पूर्ण हुआ।

[प्रासादाधिवासनार्थम् एकाशीतिकुम्भस्थापनम्]

प्रासादोऽपि चेन्नूतनस्तस्याप्यधिवासनम्। तत्र प्रासादाग्रे एकाशीतिपद मण्डलमक्षतैः कृत्वा तेषु सप्तधान्यपुञ्जान्कृत्वा जलपूर्णानेकाशीतिकुम्भानाहृत्य तत्र नवनवकानां मध्यमं मध्यमं कोष्ठं ज्ञात्वा तेषु नव कुम्भान् मध्यपूर्वादिक्रमेण विन्यस्य

मध्यकुम्भे — शम्युदुम्बराश्वत्थचम्पकाशोकपलाशप्लक्षन्यग्रोधकदम्बाम्रबिल्वार्जुनवृक्षसंभवं पल्लवद्वादशकं सोमाय वनस्पत्यन्तर्गताय नम इति निक्षिपेत्।

ततः पद्मकरोचनादूर्वाकुरदर्भपिङ्जूलश्वेत-पीतसर्षपसितरक्तचन्दनजातीकुसुमनन्द्यावर्तमिति दशकं पूर्वे।

नूतन प्रासाद के अधिवासनार्थ इक्यासी कलशों का स्थापन—

यदि देव-प्रासाद (मन्दिर) भी नव निर्मित हो तो उसका भी अधिवासन करे।[1] इसके लिए प्रासाद के आगे अक्षतों से इक्यासी पदों वाला मण्डल बना कर उन (इक्यासी पदों) के ऊपर सप्तधान्यों को बिखेर कर उनके ऊपर स्थापित करने के लिए जल से भरे हुए इक्यासी कलशों को लाकर [समीप में रख कर] उन नौ-नौ कोष्ठकों (पदों) में से प्रत्येक नवक (प्रत्येक नौ कोष्ठों) के मध्य में स्थित कोष्ठक का ज्ञान कर उनमें से प्रत्येक में एक एक के क्रम से नौ कलशों को क्रमशः मध्य नवक के मध्य कोष्ठक में और तब क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान दिशाओं के नौ-नौ कोष्ठकों में से प्रत्येक नवक के मध्य के कोष्ठक में क्रमशः ['मही द्यौ०' इत्यादि मन्त्रों को पढ़ते हुए] स्थापित करे। इन कलशों में प्रक्षेपणीय द्रव्यों का विवरण इस प्रकार है—

---

१. प्रासादाधिवासन हेतु देशकालदिसंकीर्तनपूर्वक 'अस्मिन् प्रासादे देवताधिष्ठानयोग्यतासिद्ध्यर्थं स्नपनपूर्वकं प्रासादाधिवासनं करिष्ये' ऐसा संकल्प करना चाहिए।

प्रासादाधिवासन हेतु
८१ कलश स्थापन

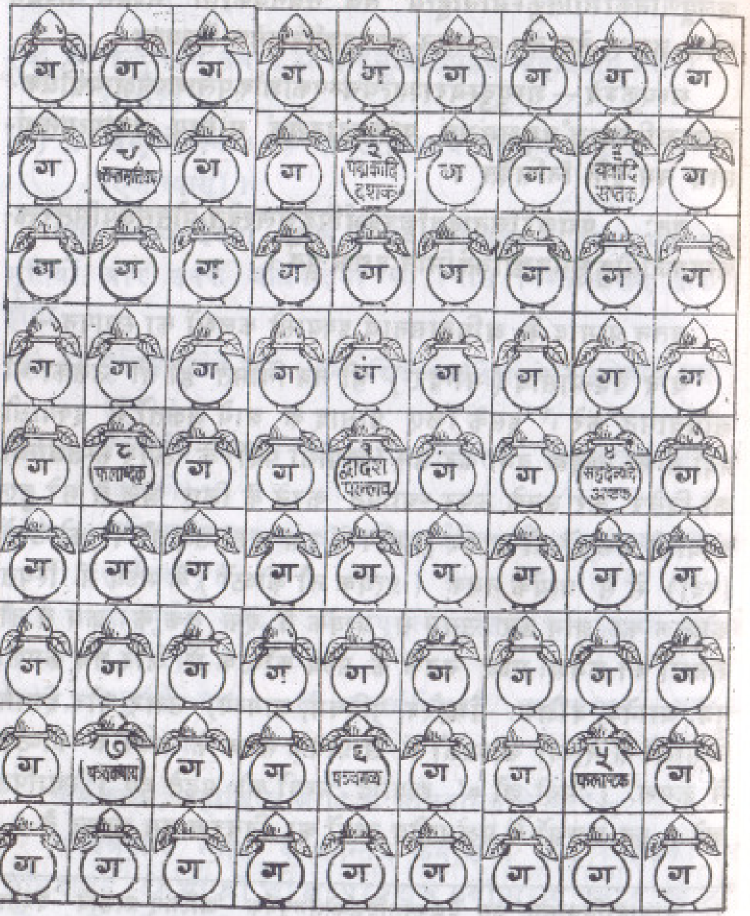

यवव्रीहितिलसुवर्णरजतसमुद्रगामिनदीकूलमृत्तिकाभूम्यस्पृष्टगोमयमिति सप्तकमाग्नेये। सहदेवीविष्णुक्रान्ताभृङ्गराजमहौषधीशमीशतावरीगुडूचीश्यामाकमित्यष्टकं याम्ये। कदलीपूगीफलनारिकेलबिल्वनारिंगमातुलिंगबदरीआमलकमिति फलाष्टकं नैर्ऋत्ये। मन्त्रसाधित पञ्चगव्यं वारुणे। शम्युदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधपलाशकषायपञ्चकं वायव्ये। शङ्खपुष्पीसहदेवीबलाशतावरीकुमारीगुडूचीवचाव्याघ्रीति मूलाष्टकं सौम्ये। वल्मीकादिसप्तमृत्तिका ईशान कुम्भे निधाय

१. मध्य नवक के मध्यवर्ती कोष्ठक में स्थापित कलश में क्रमशः शमी, उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल), चम्पक, अशोक, पलाश, प्लक्ष (पाकड़), न्यग्रोध (वट), कदम्ब, आम, बेल और अर्जुन वृक्षों से लाये गये बारह प्रकार के पल्लवों को "ॐ सोमाय वनस्पत्यन्तर्गताय नमः" इस मन्त्र से डाले।

२. मध्य नवक से पूर्व दिशा के नवक के मध्य में स्थापित कलश में पद्मक, गोरोचना, दूर्वाङ्कुर, दर्भ-पिञ्जल, श्वेत सर्षप (सफेद सरसों), पीत-सर्षप, श्वेत-चन्दन, रक्तचन्दन, जाती (चमेली) और नन्द्यावर्त इन दश वस्तुओं को डाले।

३. आग्नेय दिशा के नवक के मध्यकोष्ठक में स्थापित कलश में जौ, धान, तिल, सोना, चाँदी, अपने उद्गम से सीधे समुद्र तक पहुँचने वाली नदी जैसे कि गङ्गा, नर्मदा, ब्रह्मपुत्र जैसी किसी नदी के तट की मिट्टी और जिसका स्पर्श भूमि में न हुआ हो ऐसा गोबर–इन सात वस्तुओं को डाले।

४. मध्य नवक से दक्षिण दिशा के नवक के मध्य में स्थापित कलश में सहदेवी, विष्णुक्रान्ता, भृङ्गराज, महोषधी, शमी, शतावरी,

---

१. प्रभुविद्या-प्रतिष्ठार्णव में इस मन्त्र का प्रयोग मध्यनवक से पूर्व, आग्नेय और दक्षिण के नवकों के मध्य स्थापित कलशों में द्रव्य-प्रक्षेप में विहित है।

हिरण्यवर्णां हरिणीम्'–इति मध्यकुम्भानभिमन्त्र्य, शेषान् गन्धोदकपूरितान्मध्यमादिकलशानां समन्तात्पूर्वादि क्रमेणाष्टौ विन्यस्य मूलमन्त्रेणाभिमन्त्र्य सूत्रेणावेष्टय

गुडूची और श्यामाक (सांवा) इन आठ वस्तुओं को डाले।

५. मध्य नवक से नैर्ऋत्य दिशा के नवक के मध्य में स्थापित कलश में केला, सुपारी, नारियल, बेल, नारङ्गी, बड़ा नीबू या बिजोरा (मातुलिङ्ग), बेर और आंवला—इन आठ प्रकार के फलों को डाले।

६. मध्य नवक से पश्चिमस्थ नवक के मध्य में स्थापित कलश में अभिमन्त्रित पञ्चगव्य डाले।

७. मध्य नवक से वायव्य दिशा के नवक के मध्य में स्थापित कलश में शमी, उदुम्बर (गूलर), पीपल, वट और पलाश-इन पांच वृक्षों की त्वचा (छाल) के मिश्रण से बना हुआ कषायपञ्चक डाले।

८. मध्य नवक से उत्तर दिशा के मध्य में स्थापित कलश में शङ्ख-पुष्पी, सहदेवी, बला, शतावरी, कुमारी, गुडूची, वचा और व्याघ्री इन आठों की जड़ों (मूलाष्टक) को डाले।

९. मध्य नवक से ईशान दिशा के नवक के मध्यकोष्ठ में स्थापित कलश में वल्मीक (दीमक का टीला) आदि सात स्थलों से आनीत सप्त-मृत्तिका को डाले।

तब उन सभी नौ-नौ कोष्ठकों के मध्यवर्ती नौ कलशों को हिरण्यवर्णां हिरणीं सुवर्णरजतस्रजाम्'० इत्यादि श्रीसूक्त के षोडश मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे।[२]

तब इक्यासी कलशों में से नौ को उपर्युक्त विधि से स्थापित कर देने के पश्चात् शेष बचे हुए बहत्तर कलशों को गन्धोदक से भर कर उन मध्यवर्ती नौ कलशों में से प्रत्येक के चारों ओर पूर्वादि क्रम से आठों दिशाओं में आठ कलशों के क्रम से स्थापित करके स्थाप्य

२. प्रभुविद्या प्रतिष्ठार्णव में यही पक्ष स्वीकृत है।

[प्रासाद-स्नपनम्]

अन्तर्बहिरधस्तादूर्ध्वं च प्रासादं पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य 'मूर्धानं दिव०' इति वल्मीकमृदा विलिप्य 'समुद्रज्येष्ठा०' इतीशान-दिक्स्थेन मृत्तिकाकुम्भेन स्नापयेत्। 'यज्ञा यज्ञा व'० इति वायव्येन कषायकुम्भेन। 'पयः पृथिव्यामि'ति वारुणेन पञ्चगव्य-

देवता के मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करके सभी कलशों को सूत्र से वेष्टित करे।

प्रासाद-स्नपन—

देव-प्रासाद (मन्दिर) को अभिमन्त्रित पञ्चगव्य से अन्दर, बाहर नीचे तथा ऊपर से संप्रोक्षित करके, 'मूर्धानं दिवो०'[१] इस मन्त्र से वल्मीक (दीमक के टीले) की मिट्टी से प्रासाद को लीप कर, 'समुद्र ज्येष्ठा०'[२] इस मन्त्र से ईशानकोण के मध्य कोष्ठकस्थ वल्मीकादि सप्तमृत्तिका से पूरित कलश के जल से प्रासाद का स्नपन (स्नान या अभिषेक) करे। तब 'यज्ञा यज्ञा व'०'[३] इस मन्त्र से वायव्य कोणस्थ कषाय पञ्चक मिश्रित कलश के जल से, 'पयः पृथिव्यां'०'[४] इस मन्त्र से पश्चिम कोष्ठकस्थ पञ्चगव्यपूरित कलश से, 'या फलिनी'०'[५] इस

१. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥
(यजु० ७।२४; ३३।८)

२. समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥
(ऋ० ७।४९।१)

३. यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे।
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥ (ऋ० ६।४८।१)

४. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥ (यजु० १८।३६)

५. या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥
(ऋ० १०।९७।१५, यजु० १२।८९)

कुम्भेन। 'याः फलिनीरि'ति नैर्ऋत्यफलकुम्भेन। 'हंसः शुचिषदि'ति सौम्यस्थ मूलकुम्भेन। 'विष्णोरराटमसी'ति पूर्वकुम्भेन। 'सोमं राजानमि'ति वह्निस्थ कुम्भेन। 'विश्वतश्चक्षुरि'ति याम्यङ्कुम्भेन। नमोस्तु सर्पेभ्य' इति मध्यमकुम्भेन।

'इदमापः प्रवहते'त्यष्टभिः पूर्वादिक्रमेण प्रासादं सशिखरं स्नापयेत्।

मन्त्र से नैर्ऋत्य कोणस्थ फलाष्टक-पूरित कलश के जल से. 'हंसः शुचिषद्०'' इस मन्त्र से उत्तरकोष्ठकस्थ मूलाष्टक पूरित कलश के जल से. 'विष्णोरराटमसि०'' इस मन्त्र से पद्मक, गोरोचना आदि दश वस्तुओं से पूरित पूर्वकोष्ठकस्थ कलश के जल से, 'सोमं राजानं०'' इस मन्त्र से आग्नेय कोणस्थ यव, धान आदि से पूरित कलश के जल से. 'विश्वतश्चक्षु०'' इस मन्त्र से दक्षिण-कोष्ठकस्थ कलश के जल से तथा 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०'' इस मन्त्र से मध्य में स्थित कलश के जल से प्रासाद का स्नपन (अभिषिञ्चन) करे।

---

१. हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिदुंरोणसत्
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥
(यजु० १०।२४, १२।१४ तु० ऋ० ४।४०।५)

२. विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि।
वैष्णमवसि विष्णवे त्वा॥ (यजु० ५।२१)

३. सोम ँ् राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे।
आदित्यान् विष्णु ँ् सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पति ँ् स्वाहा॥ (यजु० ९।२६)

४. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥
(ऋ० १०।८१।३, यजु० १७।१९)

५. नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥
(यजु० १३।६, ऋग्वेद खिलसूत्र १५।११)

[एकाशीतिकलशाभावे विकल्पः]

एकाशीतिकुम्भासंभवे तु गन्धोदकपूरितेनैककलशेन 'दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम्' इति संप्रोक्ष्य।

[प्रासादाधिवासनम्]

सूत्रेणावेष्ट्य स्नापयित्वा देवरूपं प्रासादं चिन्तयित्वा पताकादिना शोभयित्वा गन्धादिना पूजयित्वा तस्याधस्ताद् देवं संचिन्त्य

'इदमापः प्रवहत०'' इस मन्त्र से [उपर्युक्त कलशों के बाहर आठ दिशाओं में स्थापित] पूर्वादि आठ दिशाओं के कलशों से क्रमशः प्रासाद का उसके शिखर समेत स्नपन (स्नान) करावे।

इक्यासी कलशों के अभाव में नौ अथवा एक कलश से स्नपन-का विधान—

इक्यासी कलशों का स्थापन असंभव हो तो गन्धोदक से पूरित नौ कलशों [सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश के अनुसार] अथवा एक कलश से ही 'दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम्०'' इस मन्त्र से प्रासाद को संप्रोक्षित करे।

प्रासाद का अधिवासन—

तब प्रासाद को सूत्र से वेष्टित करके स्नान कराकर (प्रोक्षित करके) उस प्रासाद को देव-स्वरूप समझ कर पताका आदि से

---

१. [क] इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु॥ (यजु० ६।१७)

[ख] इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मम।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम्॥ (ऋ० १।२३।२२)

२. [क] दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः
पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥ (यजु० १।१३)

[ख] शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै। (तै० सं० १।३।१)

मन्त्रेण प्रासादमधिवासयेत् । तद्यथा—

ॐ ह्रीं सर्वदेवमयाचिन्त्य सर्वरत्नोज्ज्वलाकृते ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावदत्र स्थिरो भव ॥ इत्यधिवास्य

[पिण्डिकावाहनपरिवारदेवानां होमः]

पिण्डिकावाहनपरिवारदेवतानां तत्तन्मन्त्रैः प्रत्येकमष्टाविंशति-संख्याकं होमं तिलैः कृत्वा मूलमन्त्रेण चर्वष्टोत्तरशत हुत्वा

[प्रासादाधिवासने शेषकृत्यानि]

चतस्रो गा विष्णुगायत्र्या दुग्ध्वा क्षीरेण विष्णुगायत्र्या चरुं श्रपयित्वा देवाय निवेद्य द्वादशब्राह्मणान् भोजयित्वा 'विष्णुर्मे प्रीयताम्' इति वदेत् । तत आचार्याय धेनूर्दत्त्वा रात्रौ जागरणं कुर्यात् । इति प्रासादाधिवासनम्

उसकी पूजा करके उसके नीचे (अन्दर) स्थापित देव का स्मरण (ध्यान) करके—

ॐ ह्रीं सर्वदेवमयाचिन्त्य सर्वरत्नोज्ज्वलाकृते ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावदत्र स्थिरो भव ॥

इस मन्त्र से उस प्रासाद का अधिवासन करे ।

पिण्डिका, वाहन और परिवार-देवों का होम—

तब आचार्य अपने कुण्ड में स्थाप्य देवता की पिण्डिका, वाहन और परिवार देवताओं के लिए उनके वैदिक मन्त्रों अथवा नाम-मन्त्रों से प्रत्येक के लिए अट्ठाईस की संख्या में घृताक्त तिलों से होम करके एक सौ आठ बार मूलमन्त्र से चरु का होम करे ।

प्रासाद के अधिवासन सम्बन्धी शेष कृत्य—

तदनन्तर 'ॐ नारायणाय विद्महे । वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।' इस विष्णुगायत्री (या स्थाप्य देवता की गायत्री) को पढते हुए चार गायें दुहावे । उन गायों के दूध में विष्णुगायत्री

[अधिवासनविषये पद्धतिकाराणां मतम्]

अत्र 'ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठानां प्रतिमानां सप्तरात्रं पञ्चरात्रं त्रिरात्रमेकरात्रं सद्यो वा बल्यन्तमधिवासनं कुर्यात्' इति पद्धतिकाराः ।

(स्थाप्य-देव-गायत्री)[1] से चरु को पका कर स्थाप्य देवता को निवेदन करके बारह ब्राह्मणों को भोजन करा कर 'विष्णुर्मे प्रीयताम्' ऐसा कहे । तब यजमान आचार्य को गायों का दान देकर रात्रि में जागरण करे । यह प्रासाद का अधिवासन पूर्ण हुआ ।[2]

अधिवासन के विषय में पद्धतिकारों का मत—

इस विषय में पद्धतिकारों का मत है कि ज्येष्ठ (बड़े आकार

---

१. प्रभु विद्याप्रतिष्ठार्णव के अनुसार रुद्रगायत्री (ॐ तत्पुरुषाय विद्महे । महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्) से चरु को पकाना चाहिए ।

२. चतस्रः धेनवः स्थाप्या दक्षिणद्वारसन्निधौ ।
उत्तराभिमुखाः शान्ता रज्जुबद्धाः सवत्सकाः ॥ १०९ ॥
गङ्गा च यमुना चैव तथा गोदा सरस्वती ।
नामभिः पूजयित्वा ता गन्ध-पुष्पैर्यथाक्रमम् ॥ ११० ॥
दुहेत् ता विष्णुगायत्र्या तयैव श्रपयेच्चरुम् ।
निवेदयेत् तथा चैव तयैवान्ते बलिं हरेत् ॥ १११ ॥
भोजयेद् ब्राह्मणांस्तत्र भक्तान् द्वादश पायसम् ।
मण्डपस्योत्तरे पार्श्वे हिरण्यं दक्षिणा भवेत् ॥ ११२ ॥
सुरभीश्च गुरोर्दद्याद् विष्णुर्मे प्रीयतामिति ।
एवं कृत्वा ततः पश्चाद् रात्रौ जागरणं भवेत् ॥ ११३ ॥
शङ्खतूर्यादिसंयुक्तं नृत्तगीतादिसंयुतम् ।
सेतिहासपुराणाभिः कथाभिश्च नयेन्निशाम् ॥ ११४ ॥
प्रभाते सुदिने वारे पुण्यराश्युदये तथा ।
मौहूर्तिकोपदिष्टेन लग्नेन स्थापयेत् सुधीः ॥ ११५ ॥
(विष्णुसंहिता १७.१०९-११५)

अत्र श्लोकाः —

अनेकदिननिर्वर्त्ये अधिवासनकर्मणि ।
होमानष्टौ सहस्राणि विदधीरन्पृथक्पृथक् ॥ १ ॥
तस्मिन्नेकाहनिर्वर्त्ये कुर्यादष्टोत्तर शतम् ।
प्राग्वत्पूर्णाहुतिं हुत्वा सकृज्जपन्ति द्वारपाः ॥ २ ॥
यद्वा प्रतिदिन होममष्टोत्तरशत शतम् ।
देशिको मूर्तिपैः कुर्याद्यावत्कार्यं समाप्यते ॥ ३ ॥
सन्ध्यासु तिसृषु बलिं मन्त्रैर्देद्याद्यथोदितैः ।
आचार्ये दक्षिणा देया ऋत्विग्भ्यश्च स्वशक्तितः ॥४॥

वाली), मध्यम आकार की तथा कनिष्ठ (लघु आकार की) प्रतिमाओं का क्रमशः सात रात्रियों तक, या पाँच रात्रियों तक या तीन रात्रियों तक अथवा एक रात तक ही अथवा सद्यः (एक ही दिन में) बलि पर्यन्त अधिवासन किया जा सकता है । इस विषय में कुछ श्लोकों में कहा गया है कि —

यदि अधिवासन कर्म अनेक दिनों में (तीन, पाँच या सात रातों में) सम्पन्न होने वाला हो तो जितने भी स्थाप्य देवता हों उनके लिए पृथक्-पृथक् एक हजार आठ आहुति-संख्याओं वाले होम करे ॥ १ ॥

यदि अधिवासन एक दिन में ही सम्पन्न होने वाला हो तो एक सौ आठ की संख्या में होम करे और अन्त में पूर्वोक्त [होम-क्रम] की ही भाँति पूर्णाहुति करे। पूर्व आदि चारों द्वारों के द्वारपाल अपने-अपने द्वार पर अपने लिए विहित वेदमन्त्रों का जप (पाठ) केवल एक बार करेंगे ॥ २ ॥

अथवा आचार्य अपने सहयोगी मूर्तिप संज्ञक ऋत्विजों के साथ प्रतिष्ठा कर्म की समाप्ति पर्यन्त प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति एक सौ आठ की संख्या में स्थाप्य देवता के मन्त्र से होम करे ॥ ३ ॥

प्रतिष्ठा कराने वाला यजमान प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालीन

भोजनं च तथान्येभ्यो देयं वित्तानुसारतः ।
विनाऽधिवासनं यज्ञः कृतोऽपि न फलप्रदः ॥ ५ ॥ इति

तीनों सन्ध्याओं के समय यथोक्त मन्त्रों से बलिप्रदान करे और आचार्य तथा ऋत्विजों को अपनी सामर्थ्य (आर्थिक क्षमता) के अनुसार दक्षिणा दे ॥ ४ ॥

तथा अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार ब्राह्मणों आदि को भोजन करावे । अधिवासन किये बिना जो [प्रतिष्ठा सम्बन्धी] यज्ञ किया जाता है वह निष्फल होता है ॥ ५ ॥ इति ।

भूतोत्सादन, वास्तुपूजन और प्रासाद-प्रोक्षण[1] —

तदनन्तर 'ॐ रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे॰' इत्यादि रक्षोघ्नसूक्त से तथा 'अपसर्पन्तु ते भूता॰ अपक्रामन्तु भूतानि॰ यदत्र संस्थितं भूतं॰' इत्यादि भूतोत्सादन मन्त्रों से श्वेत सर्षपों (सफेद सरसों) को प्रासाद के भीतर और बाहर बिखेरते हुए भूतोत्सादन करके 'ॐ वास्तुपुरुषाय नमः' इस नाम मन्त्र से वास्तु-पूजन करके पूर्व-स्थापित प्रासाद-स्नपन कलशों में से पञ्चकषाय, पञ्चामृत, पञ्चपल्लव, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न; तथा सर्वौषधी से पूर्ण कलशों के जल अथवा तीर्थ-जल के द्वारा कुशों से प्रासाद को भीतर और बाहर सभी तरफ से प्रोक्षित करके प्रासाद का स्पर्श करके निम्नलिखित न्यास करे ।

प्रासादन्यास—

प्रासाद के पाद, जङ्घा, कटि, नाभि, कण्ठ, द्वारमध्य प्रासाद-मध्य, मुख, कलश और कलश के ऊपर क्रमशः अधोलिखित मन्त्रों से न्यास करे ।

---

१. भूतोत्सादनादि प्रासादन्यासान्त कर्म के मूलपाठ हेतु—द्रष्टव्य–प्रतिष्ठा-महोदधि और सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश ।

प्रासाद के पादन्यास के मन्त्र—

ॐ ह्लां पृथिवीतत्त्वाय नमः। पृथिवीतत्त्वाधिपतये श्रीकूर्माय नमः।

,, ह्लां अप्तत्त्वाय नमः। अप्तत्त्वाधिपतये जलेशाय नमः।

,, ह्लां तेजस्तत्त्वाय नमः। तेजस्तत्त्वाधिपतये त्विषां निधिपतये नमः।

,, ह्लां वायुतत्त्वाय नमः। वायुतत्त्वाधिपतये मातरिश्वने नमः।

,, आकाशतत्त्वाय नमः। आकाशतत्त्वाधिपतये सूक्ष्माय नमः।

प्रासाद के जङ्घान्यास के मन्त्र—

ॐ ह्लां रूपतन्मात्राय नमः। रूपतन्मात्राधिपतये भानुमतये नमः।

,, ह्लां रसतन्मात्राय नमः। रसतन्मात्राधिपतये जलदाय नमः।

,, ह्लां गन्धतन्मात्राय नमः। गन्धतन्मात्राधिपतये गन्धाक्षाय नमः।

,, ह्लां स्पर्शतन्मात्राय नमः। स्पर्शतन्त्राधिपतये बलतत्त्वाय नमः।

,, ह्लां शब्दतन्मात्राय नमः। शब्दतन्मात्राधिपतये सूक्ष्मनादाय नमः।

प्रासाद के कटि प्रदेश में न्यास के मन्त्र—

ॐ ह्लां वाकतत्त्वाय नमः। वाक्तत्त्वाधिपतये दुन्दुभये नमः।

,, ह्लां पाणितत्त्वाय नमः। पाणितत्त्वाधिपतये समादानाय नमः।

,, ह्लां पादतत्त्वाय नमः। पादतत्त्वाधिपतये संक्रमाय नमः।

,, ह्लां पायुतत्त्वाय नमः। पायुतत्त्वाधिपतये विसर्गाय नमः।

,, ह्लां उपस्थतत्त्वाय नमः। उपस्थतत्त्वाधिपतये आनन्दाय नमः।

प्रासाद के नाभि प्रदेश में न्यास के मन्त्र—

ॐ ह्लां श्रोत्रतत्त्वाय नमः। श्रोत्रतत्त्वाधिपतये व्योमाय नमः।

,, ह्लां त्वक्तत्त्वाय नमः। त्वक्तत्त्वाधिपतये सर्वाङ्गाय नमः।

ॐ ह्लां चक्षुस्तत्त्वाय नमः। चक्षुस्तत्त्वाधिपतये आकाशाय नमः।

,, ह्लां रसनातत्त्वाय नमः। रसनातत्त्वाधिपतये महावक्त्राय नमः।

,, ह्लां घ्राणतत्त्वाय नमः। घ्राणतत्त्वाधिपतये विलुण्ठाय नमः।

प्रासाद के कण्ठ में न्यास के मन्त्र—

ॐ ह्लां मनस्तत्त्वाय नमः। मनस्तत्त्वाधिपतये सङ्कल्पाय नमः।

,, ह्लां बुद्धितत्त्वाय नमः। बुद्धितत्त्वाधिपतये बुद्धये नमः।

,, ह्लां अहङ्कारतत्त्वाय नमः। अहङ्कारतत्त्वाधिपतये अहङ्कृतये नमः।

,, ह्लां चित्तत्त्वाय नमः। चित्तत्त्वाधिपतये मनसे नमः।

प्रासाद के द्वार-मध्य में न्यास का मन्त्र—

ॐ ह्लां प्रकृतितत्त्वाय नमः। प्रकृतितत्त्वाधिपतये पितामहाय नमः।

प्रासादमध्य (हृदय) में न्यास का मन्त्र—

ॐ ह्लां हृदये पुरुषतत्त्वाय नमः। पुरुषतत्त्वाधिपतये विष्णवे नमः।

प्रासाद के मुख में न्यास के मन्त्र—

ॐ ह्लां कलातत्त्वाय नमः। कलातत्त्वाधिपतये क्रतुध्वजाय नमः।

,, ह्लां विद्यातत्त्वाय नमः। विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे नमः। (अथवा—गुरवे नमः)।

प्रासाद कलश में न्यास का मन्त्र—

ॐ ह्लां सदाशिवतत्त्वाय नमः। सदाशिवतत्त्वाधिपतये अजेशाय नमः।

प्रासाद कलश के ऊपर चक्र आदि में न्यास के मन्त्र—

ॐ ह्लां चक्रायुधचिह्नेभ्यो नमः।

ॐ ह्रां सं सत्त्वाय नमः। ॐ रं रजसे नमः। ॐ तं तमसे नमः।
ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः। ॐ सोममण्डलाय नमः। ॐ अर्कमण्डलाय नमः।

इस प्रकार कलश के ऊपर पूजन करके प्रासादन्यास सम्पन्न करे तब आचार्य ऋत्विजों के साथ कुण्ड में या स्थण्डिल में उपर्युक्त तत्त्वहोम करे। यथा–ॐ ह्रां पृथिवीतत्त्वाय स्वाहा। ॐ पृथिवीतत्त्वाधिपतये श्रीकूर्माय स्वाहा। इत्यादि प्रकार से तत्त्वहोम करके अन्त में 'अनेन कृतेन तत्त्वहोमेन लक्ष्मीकान्तः (अथवा अमुक देवः) प्रीणातु' ऐसा कहते हुए देवता को निवेदन करे। तब प्रासाद के बाहर दिक्पालों को 'अघोरेभ्यो०' इस अघोर मन्त्र से माषान्नबलि और क्षेत्रपाल बलि और भूतबलि देकर आचमनादि करे।

प्रासाद–शिखर में कलश की प्रतिष्ठा[1]—

आचार्य प्रतिष्ठामण्डप के उत्तरभाग में स्नपन-मण्डप (स्नान-मण्डप) में स्वस्तिक को बनाकर उसके ऊपर शिखर-कलश को स्थापित करके उसको पाँच लौकिक कलशों के जल से स्नान करवा कर 'ॐ मनो जूतिर्जुषताम्०' इस मन्त्र से उसकी प्रतिष्ठा करके उसे तैल से अभ्युक्षित करके पुनः स्नान कराकर चन्दनादि से उसकी पूजा करके उसे सूत्र से आवेष्टित कर उसके समक्ष पुण्याहवाचन करके 'ॐ घृतं घृतपावानः०' इस मन्त्र से घृत से अभ्यक्त करके 'ॐ द्रुपदादिव०' इस मन्त्र से जौ, मसूर और हरिद्रा के चूर्ण से उद्वर्तन करके उष्णोदक से प्रक्षालित करके 'मूर्धानं दिवो०' इस मन्त्र से वल्मीक-मृत्तिका (दीमक के टीले की मिट्टी) से लेपन कर 'ॐ या दिव्या आप०' इस मन्त्र से गन्धोदक से स्नान करावे। पुनः स्नान वेदी के चारों कोणों में स्थापित चार कलशों से इस प्रकार स्नान करावे—'ॐ मा नस्तोके०' इससे प्रथम कलश से, 'ॐ विष्णो रराटमसि०' इससे द्वितीय कलश से, 'ॐ वयं सोम०' अथवा 'सोमं राजानं०' इससे तीसरे से, और 'ॐ विश्वतश्चक्षु०' इस मन्त्र से चतुर्थ कलश से

१. मूल पाठ हेतु० द्र०—प्रतिष्ठा-महोदधि।

[प्रासादे देवस्वरूपोद्भावना]

ततो गुरुर्बहिर्निर्गत्य प्रासादाभिमुखो भूत्वा तं देवरूपं ध्यायेत्। तथाहि—

स्नान कराके 'ॐ पयः पृथिव्याम्०' इस मन्त्र से शुद्धोदक से स्नान कराकर द्वादशाक्षर मन्त्र से अथवा स्थाप्य देवता के मूलमन्त्र से गन्धादि से पूजन कर वस्त्र से आच्छादित करके शान्तिपाठ पढ़कर 'ॐ स्वस्ति न इन्द्रो०' इस मन्त्र से उठाकर मण्डप और देवालय की प्रदक्षिणा कराते हुए लाकर पश्चिम द्वार से प्रविष्ट होकर स्थाप्य देवता के समीप भद्रासन में रखकर पुनः गन्धादि से पूजन करके 'ॐ विश्वतश्चक्षु०' इस मन्त्र को पढ़कर सकलीकरण (षडङ्गन्यास) करके 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे०' इस मन्त्र से क्रमशः घृत, दधि, दूध और मधु से पृथक् पृथक् एक सौ आठ बार होम करे और प्रत्येक आहुति का संस्रव शान्तिकलश में डाले और होम के अन्त में उस संस्रवयुक्त शान्तिकलश के जल से कलश के पाद, नाभि, हृदय, नेत्र और शिर का क्रमशः स्पर्श करे। तब कलश में पुरुषसूक्त का न्यास करके गन्धादि से पूजन करके उसे उठाकर शान्तिपाठ और माङ्गलिक तुरही आदि के वाद्यों के निनाद तथा जय-घोष के साथ उस कलश को प्रासाद के मस्तक पर ले जाकर शुभ मुहूर्त में 'ॐ आजिघ्र कलशं मह्या०' इस मन्त्र को पढ़ते हुए प्रासाद के शिखर पर प्रतिष्ठापित करे और उस कलश के ऊपर सोने या ताँबे का बना हुआ त्रिशूल (शिव-अथवा देवी की प्रतिष्ठा में) अथवा चक्र (विष्णुप्रतिष्ठा में) अथवा पद्म (सूर्य की प्रतिष्ठा, या लक्ष्मी की प्रतिष्ठा अथवा ब्रह्मा की प्रतिष्ठा में) को भूतादि निवारणार्थ स्थापित करे।

प्रासाद में देवस्वरूप का ध्यान—

तब आचार्य प्रसाद के बाहर आकर उस प्रासाद (मन्दिर) की

पादौ पादशिलास्तस्य जङ्घा पादोर्ध्वमुच्यते।
गर्भश्चैवोदरं ज्ञेयं कटिश्च कटिमेखला ॥ १ ॥
स्तम्भाश्च बाहवो ज्ञेया घण्टा जिह्वा प्रकीर्तिता।
दीपः प्राणोऽस्य विज्ञेयो ह्यपानो जलनिगमः ॥ २ ॥

ओर मुख करके उसमें देवता के स्वरूप का ध्यान करे।' जैसेकि—

देव-प्रसाद में [देवता के चरणों को रखने के लिए स्थापित] पादशिला' को प्रासाद रूपी देवता के दोनों चरणों के रूप में ध्यान में लावे। पाद (पादशिला) के ऊपर के भाग को प्रासादरूपी देवता के जङ्घाओं (टाँगों) के रूप में ध्यान में लाने को कहा गया है। गर्भगृह को प्रासाद रूपी देवता का उदर (पेट) समझना चाहिए और प्रासाद के कटिभाग को उस देवता के कटि की मेखला समझना चाहिए ॥ १ ॥

प्रासाद (मन्दिर) के स्तम्भों को प्रासाद रूपी देवता की भुजाएँ समझना चाहिए। घण्टा को जिह्वा, दीपक को प्राण और जलनिर्गम'

१. प्रासाद के पुरुष-रूप में चिन्तन का विधान आगम ग्रन्थों में भी है— द्रष्टव्य—विष्णु संहिता १३।६३-७०; नारदीय संहिता १५।१७३-१८१; अग्निपुराण ६१।१९-२७।

२. ततः पादशिलां न्यस्य विविधाङ्गपरीक्षिताम् ॥ १७२ ॥
ऊर्ध्वं प्रतिमा कार्या प्रासादस्य प्रमाणतः।
नारदीय संहिता १८।१७२-३।

कृत्वा पादशिलास्थानं वृत्तं वा चतुरस्रकम् ॥ १७
पादपीठस्य चाधस्तात् ततो ब्रह्मशिलां न्यसेत्।
त्वमेव परमा शक्तिस्त्वमेवासनधारिका ॥ १८
देवाज्ञया त्वया देवि! स्थातव्यमिह सर्वदा। विष्णुसंहिता १८।१७-१९

यहाँ नारदीयसंहिता के वचनों से पादशिला का प्रयोग पिण्डिका की स्थानापन्न शिला के अर्थ में भी प्रतीत हो सकता है।

३. पायुः स्याज्जलनिर्गमः। नारदीयसंहिता १५।१७६

ब्रह्मस्थानं यदेतच्च तन्नाभिः परिकीर्तिता।
हृत्पद्मं पिण्डिका ज्ञेया प्रतिमा पुरुषः स्मृतः ॥ ३ ॥

(जलनिकासी की नाली या जल निकासी के लिए लगाये गये पाइप) को अपान समझना चाहिए ॥ २ ॥

प्रासाद के गर्भ गृह की भूमि के मध्य में स्थित ब्रह्मस्थान' को प्रासाद रूपी देवता की नाभि कहा गया है। पिण्डिका' को हृदय-कमल समझना चाहिए और पिण्डिका के ऊपर स्थापित प्रतिमा

१. द्वाराद् भित्त्यन्तभूमिं तु सप्तधा विभजेद् गुरुः ॥ २७
ब्रह्मस्थानं मध्यमं स्याद् देवस्थानमनन्तरम्।
मानुषं च ततः पश्चात् पैशाचं समुदीरितम् ॥
(श्रीप्रश्नसंहिता २०।२७-२८)
गर्भागारं तु विभजेत् सप्त सप्त विभागतः ॥ १५६
ब्राह्मदैवमनुष्याणां पिशाचानां पदानि तु।
मध्यादारभ्य यत्नेन क्रमाज्ज्ञेयानि देशिकैः ॥ नारदीयसंहिता १५ १५६-७
सप्त सप्त विभागेन गर्भागारे विभाजिते।
ब्रह्म-देव-मनुष्याणां पिशाचानां पदानि तु ॥ ७
मध्यादारभ्य यत्नेन क्रमाज्ज्ञेयानि सर्वतः।
ब्राह्मः पञ्चदशांशः स्याद् देवभागास्त्रयोदश ॥ ८
एकादश नरांशाश्च शिष्टयोः पृष्ठभागतः। (विष्णुसंहिता १८।७-९)
ब्रह्मभागं परित्यज्य स्थानार्चा स्थाप्यते यदि।
तन्मण्डलाधिपो राजा स्थापकश्च विनश्यति ॥ १४
क्रिया च निष्फलैव स्यात् तस्माद् यत्नेन मापयेत्।
(विष्णुसंहिता १८।१४-५)

२. ब्राह्मे तु पिण्डिका स्थाप्या स्थावरार्चा यदा भवेत्।
(नारदीयसंहिता १५।१५८)
अर्चना-पीठिका ब्राह्मे स्थापना दैविके तथा ॥ १६
मानुषेऽस्य परीवाराः पैशाचे स्वायुधानि च। (विष्णुसंहिता १८।१६-१७)

पादचारस्त्वहङ्कारो ज्योतिस्तच्चक्षुरुच्यते ।
तदूर्ध्वं प्रकृतिस्तस्य प्रतिमात्मा स्मृतो बुधः ॥ ४ ॥
नलकुम्भादधोद्वारं तस्य प्रजननं स्मृतम् ।
शुकनासा भवेन्नासा गवाक्षः कर्ण उच्यते ॥ ५ ॥
कपोतपाली स्कन्धोऽस्य ग्रीवा चामलसारिका ।
कलशस्तु शिरो ज्ञेयं मज्जादिप्रदसंहितम् ॥ ६ ॥
मेदश्चैव सुधां विद्यात्प्रलेपो मांसमुच्यते ।
अस्थीनि च शिलास्तस्य स्नायुः कीलादयः स्मृताः ॥७॥

को पुरुष (आत्मा) समझना चाहिए ॥ ३ ॥

पादचार[1] (परिक्रमा-पथ अथवा पाँवदान के रूप में स्थापित पत्थर या स्तम्भ की नीव का पत्थर) को उस प्रासाद रूपी देवपुरुष का अहङ्कार, ज्योति (दीपक की ज्योति) को नेत्र, उसके ऊपर के भाग (दीपक की ज्योति के ऊपर के भाग ?) को प्रकृति और प्रतिमा को विद्वानों ने आत्मा कहा है ॥ ४ ॥

नलकुम्भ (जलप्रणाल के अन्त में बने हुए कुम्भ) के अधोवर्ती द्वार (छिद्र) को उस [प्रासाद रूपी देवता] का जननेन्द्रिय कहा गया है। शुकनासा को उसकी नासिका और गवाक्ष को कान कहा गया है ॥ ५ ॥

कपोतपाली को उसका (प्रासाद रूपी देवता का) स्कन्ध (कन्धा), अमलसारिका को ग्रीवा (गरदन), प्रासाद-शिखरस्थ कलश को शिर और ईंट-पत्थर आदि को जोड़ने के लिए प्रयुक्त गारे (या सुर्खी या सीमेन्ट आदि) को मज्जा आदि समझना चाहिए ॥ ६ ॥

१. [क] पादाधारस्त्वहङ्कारः पिण्डिका बुद्धिरुच्यते । (विष्णुसंहिता १३।६४)
[ख] पादाधारोऽभिमानस्तु । नारदीयसंहिता १५।१८० के पाठान्तर रूप में प्रदत्त मातृकाओं (पाण्डुलिपियों) के पाठ से उद्धृत ।

२. तुलनीय—तलकुम्भो भवेत् पाणिर्द्वारं प्रजननं स्मृतम् ।
(विष्णुसंहिता १३।६६)

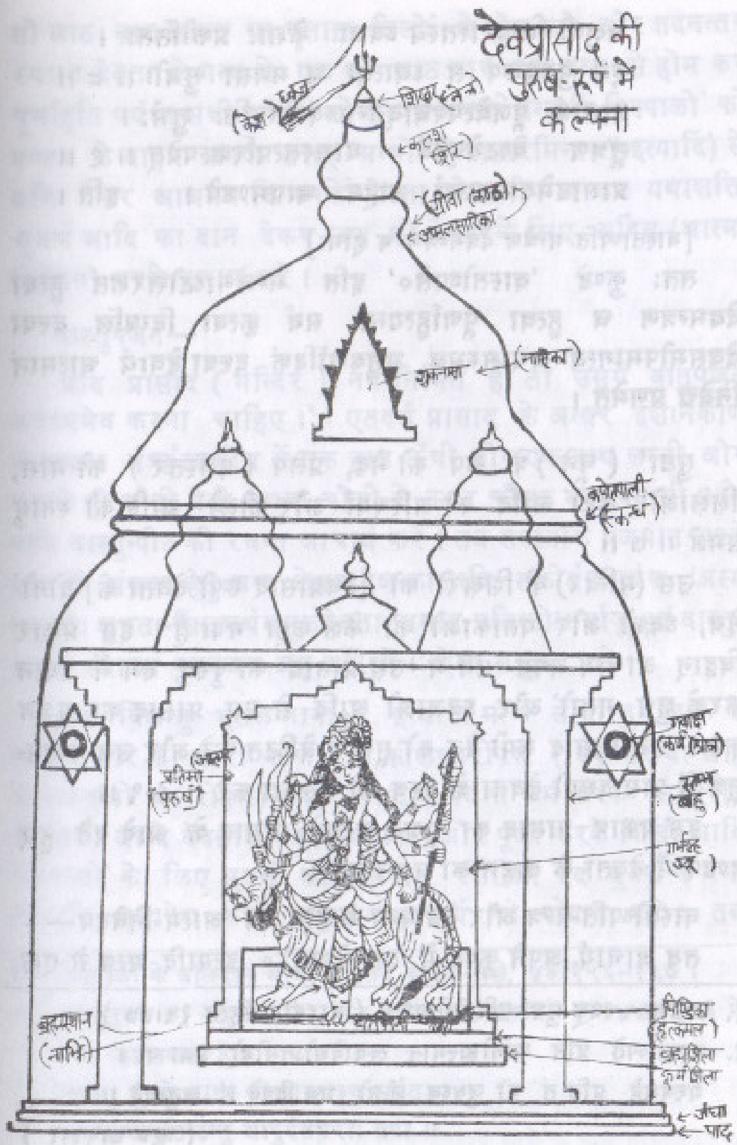

चक्षुषी शिखरास्तस्य ध्वजाः केशाः प्रकीर्तिताः ।
एवं पुरुषरूपं त ध्यात्वा च मनसा सुधीः ॥ ८ ॥
प्रासादं पूजयेत्पश्चाद्गन्धध्वजादिभिः शुभैः ।
सूत्रण वेष्टयेद्देवं वासस्तत्परिकल्पयेत् ॥ ९ ॥
प्रासादमेवमभ्यर्च्य वाहनं चाग्रमण्डपे । इति ।

[वास्तोष्पति मन्त्रेण देवमन्त्रेण च होमः]

ततः कुण्डे 'वास्तोष्पते॰' इति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा देवमन्त्रेण च हुत्वा पूर्णाहुत्यन्तं सर्वं कृत्वा दिग्बलिं दत्त्वा देवसमीपमागत्य यथासम्भवं भूसुवर्णादिकं दत्त्वा देवाय चात्मानं निवेद्य प्रणमेत् ।

सुधा[1] (चूने) के लेप को मेद, प्रलेप (पलस्तर) को मांस, शिलाओं, ईंटों आदि को अस्थियाँ और कीलों आदि को स्नायु समझे ॥ ७ ॥

उस (मन्दिर) के शिखरों को [देवप्रासाद रूपी देवता के] दोनों नेत्र, ध्वजों और पताकाओं को केश कहा गया है। इस प्रकार विद्वान् आचार्य अपने मन में उस प्रासाद का पुरुष रूप में ध्यान करके शुभ गन्धों और ध्वजाओं आदि से उस प्रासाद का पूजन करे। उस प्रासाद रूपी देव को सूत्र से वेष्टित करे और उस वेष्टन-सूत्र में प्रासादरूपी देवता के वस्त्र की कल्पना करे ॥ ८-९ ॥

इस प्रकार प्रासाद का पूजन करके प्रासाद के आगे बने हुए मण्डप में देवता के वाहन का पूजन करे।

वास्तोष्पति-मन्त्र और देव-मन्त्र से होम एवं आत्म-निवेदन—

तब आचार्य अपने कुण्ड में 'वास्तोष्पते'[2]॰ इत्यादि मन्त्र से एक

---

१. द्रष्टव्य—त्वक् सुधा परिकीर्तिता । (नारदीयसंहिता १५।७७)

२. वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् स्वावेशोऽनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तं नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
(ऋ॰ ७।५४।१)

सौ आठ बार आज्य या घृताक्त तिलों से होम करे और तदनन्तर स्थाप्य देवता के मन्त्र से एक सौ आठ बार उक्त द्रव्य से होम कर पूर्णाहुति पर्यन्त सभी कर्मों को सम्पन्न करके इन्द्रादि दिक्पालों को मण्डप के बाहर क्रमशः तत्तत् मन्त्रों ("त्रातारमिन्द्र॰"[1] इत्यादि) से बलि देकर आचमनादि करके देवता के समीप आकर यथाशक्ति सुवर्ण आदि का दान देकर स्वयं को देवता के लिए अर्पित (आत्म-निवेदन) करके प्रणाम करे।

वास्तुपूजन—

यदि प्रासाद (मन्दिर) नव-निर्मित हो तो उसमें वास्तुपूजन अवश्यमेव करना चाहिए।[2] एतदर्थ प्रासाद के अन्दर ईशानकोण में अथवा नैर्ऋत्यकोण में एक हाथ ऊँची और एक हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी वेदी अथवा चौकी के ऊपर चौंसठ या इक्यासी पदों वाले वास्तु-पीठ की रचना आचार्य करे। तब सपत्नीक यजमान अपने हाथ में संकल्प हेतु जल लेकर देश-कालादि संकीर्तन पूर्वक 'अस्य वास्तोः शुभता-सिद्ध्यर्थममुकदेवता-प्रासाद-प्रतिष्ठोत्सर्गाङ्गभूतं वास्तु-देवता स्थापनं पूजनञ्च अहं करिष्ये।' ऐसा सङ्कल्प करे।

तब 'विशन्तु भूतले नागा॰'[3] इत्यादि मन्त्र से वास्तुमण्डल के चारों ओर के चारों कोणों में कीलकारोपण (उदुम्बर या लोहे के शङ्कुओं का रोपण) करके बलिदान पर्यन्त कर्म करके वास्तुपीठ में शिखी आदि देवताओं की स्थापना और पूजा करके शिखी आदि देवताओं के लिए सुवर्ण का बलिदान 'शिखिने इदं सुवर्णं न मम' इत्यादि प्रकारेण करके यजमान आचार्य को गोदान करे। तब

---

१. दिक्पालों के बलिदान मन्त्रों के लिए द्रष्टव्य-पीछे, पृ॰ १५६-१५७।

२. वास्तुपूजन का यह विधान 'प्रभु विद्या प्रतिष्ठार्णव' पृ॰ ४४४-४४६ में देखा जा सकता है।

३. विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः ।
मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा ॥

कुशकण्डिकोक्त विधि से अग्निस्थापन करके ग्रहस्थापन और पूजन-पूर्वक अग्नि पूजन करके आघाराज्य होम पर्यन्त कर्म करके यजमान द्रव्यत्याग का संकल्प करे—"अस्मिन् नूतन प्रासाद-प्रतिष्ठाङ्गभूत-ग्रहादिपूजनोत्तर-वास्तुपूजनकर्मणि इमानि उपकल्पितानि हवनीय-द्रव्याणि या यक्ष्य-माण देवतास्ताभ्यस्ताभ्यो मया परित्यक्तानि न मम। यथा दैवतानि सन्तु।" इस प्रकार से द्रव्यत्याग का संकल्प यजमान के द्वारा किये जाने पर आचार्य द्वारपालों को 'पठध्वम्' और जापकों को 'उत्कृष्ट-मन्त्र-जाप्येन तिष्ठध्वम्' तथा होताओं को 'यजध्वम्' इस प्रकार के प्रेष वचनों के द्वारा तत्तत् कर्म की अनुज्ञा दे। तब आचार्य और सभी ऋत्विज् गणपति को आहुति देकर ग्रहहोम और तदनन्तर वास्तुहोम सम्पन्न करें।

तदनन्तर सुकुटुम्ब यजमान और ऋत्विजों सहित आचार्य 'कृणुष्व पाजः०' इत्यादि पञ्चमन्त्रात्मक रक्षोघ्न-सूक्त[1] और 'पुनन्तु मा पितरः०' इत्यादि अष्टमन्त्रात्मक 'पावमान सूक्त'[2] का पाठ करते हुए प्रासाद को प्रादक्षिण्य क्रम से त्रिसूत्री से वेष्टित करते हुए और उस प्रासाद के ऊपर दो स्तनकुम्भियों से जल और दूध की दो अविच्छिन्न धाराएं गिराते हुए उसकी प्रदक्षिणा करें।

तब वास्तुमण्डल के मध्यवर्ती चार पदों में पृथिवी का नाम मन्त्र से ध्यान और पूजन करके पीठ में पूजित सुवर्ण की वृष वास्तु-प्रतिमा को दधि, दूर्वा, सप्तधान्य और शैवाल तथा गन्धाक्षतादि युक्त कच्चे मिट्टी के पात्र अथवा किसी अन्य प्रशस्त धातु के कलशाकृति पात्र में रखकर उसके मुख को ऊपर से उसी धातु के किसी अन्य पात्र से ढककर प्रासाद के आग्नेय कोण में (ईशानकोण से आठवें पद) आकाश संज्ञक पद में जानु-पर्यन्त (घुटने तक) का गर्त (गड्ढा) खोदकर उसको 'ॐ नमो वरुणाय' कहते हुए जल से भरकर और उसमें गन्ध-पुष्पादि डालकर उसमें उस मिट्टी के या धातु के पात्र

१. रक्षोघ्नसूक्त हेतु द्रष्टव्य पीछे पृ० ३३।
२. पावमान सूक्त के लिए द्रष्टव्य पीछे पृ० ३३।

[नूतन-प्रासादोत्सर्गः]

यत्र तु स्वयम्भूर्देवः प्रागेव वा प्रतिष्ठितः प्रासादश्च नूतन-को स्थापित करके यह प्रार्थना करे—

'पूजितोऽसि मया वास्तो होमाद्यैरर्चनैः शुभैः।
प्रसीद पाहि विश्वेश देहि प्रासादजं सुखम्॥ १॥
वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो।
मद्गृहे धनधान्यादि समृद्धिं कुरु सर्वदा॥ २॥
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा।
तथा ब्रह्मादिदेवानां मम यज्ञे (गृहे) स्थिरो भव॥ ३॥
भगवन् देवदेवेश ब्रह्मादिदेवतात्मक।
तवार्चनं कृतं वास्तो प्रासादं कुरु मे प्रभो॥ ४॥
प्रार्थयामीत्यहं देवं प्रासादस्याधिपस्तु यः।
प्रायश्चित्तं तु प्रसङ्गेन प्रासादार्थे तु यत्कृतम्॥ ५॥
मूलच्छेदस्तृणच्छेदः कृमिकीटनिपातनम्।
हननं जलजीवानां भूमौ शस्त्रेण घातनम्॥ ६॥
अनृतं भाषितं यच्च किञ्चिद्? वृक्षस्य पातनम्।
एतत्सर्वं क्षमस्वैनो यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥ ७॥
प्रासादार्थे कृतं पापमज्ञानेनाप्यचेतसा।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रासादं च शुभं कुरु॥ ८॥
सशैलसागरां पृथिवीं यथा वहसि मूर्धनि।
तथा मां वह कल्याणसम्पत्सन्ततिभिः सह॥ ९॥

इस प्रकार प्रार्थना करके उस गर्त (गड्ढे) को उसमें से खोदी हुई मिट्टी से भर दे। यदि उस गड्ढे को भरने पर मिट्टी अधिक हो तो शुभ होता है। तब उस गड्ढे के ऊपर की भूमि को गोबर आदि से लीप कर गन्धपुष्पादि से विभूषित करे। इस प्रकार प्रासाद-वास्तुपूजन समाप्त हुआ।

स्वयंभू देवता तथा पूर्वतः प्रतिष्ठापित देवता के नूतन प्रासाद का उत्सर्ग—

स्तत्रापि तदुत्तरे मण्डपं कृत्वा पूर्वेद्युः पुण्याहवाचननान्दीश्राद्ध-देवप्रतिष्ठोक्तमण्डपस्थापनं ऋत्विग्वरणादिकं कुर्यात्। तत्र गुरुर्वेद्यां तद्देवतामण्डलं कृत्वा वास्तुदेवतापूजनाग्निप्रतिष्ठाग्रहपूजाज्य-भागोत्तरग्रहहोमशिख्यादिवास्तुपीठदेवतावास्तुदेवताहोमे काशीतिकल-शस्थापनानि कृत्वा तैः प्रासादं क्षालयित्वा यजमानमभिषिच्य प्रासादमुत्सृजेदित्येतावानेवविधिः।

जहाँ पर देवता किसी लिङ्ग या प्रतिमा के रूप में स्वयं प्रकट हुआ हो अथवा देवता की प्रतिष्ठा पहले ही की जा चुकी हो और उसका प्रासाद नव-निर्मित हो वहाँ भी प्रासाद के अधिवासन और उत्सर्ग हेतु उसके उत्तर में याग-मण्डप बनवा कर पहले दिन (अधिवासन और उत्सर्ग के पूर्व दिवस) गणपतिपूजन, पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध आदि कृत्यों को करके देवप्रतिष्ठा के प्रकरण में कहे गये विधानानुसार मण्डप-स्थापन[1] और आचार्यवरण तथा ऋत्विग् वरण आदि कृत्यों को सम्पन्न करे। तब अगले दिन गुरु (आचार्य) उस मण्डप के अन्दर बनी हुई वेदी में उस देवता [जिसके प्रासाद का नव निर्माण किया गया हो] के लिए बनने वाले विशिष्ट मण्डल की रचना करके वास्तुदेवता पूजन, अग्नि-प्रतिष्ठा, ग्रहों की स्थापना और पूजा, कुशकण्डिकादि आधार तथा आज्य होम पर्यन्त कर्म करके शिखी आदि वास्तुपीठ देवताओं और वास्तुदेवताओं का होम और ग्रह होमादि करके पूर्वोक्त विधि से इक्कयासी कलशों की स्थापना (उतना संभव न होने पर नौ कलशों या एक कलश की स्थापना) करके उनसे पूर्वोक्त विधानानुसार प्रासाद का स्नपन करके[2] (प्रासाद को अभिसिक्त करके) आचार्य यजमान का अभि-षेक करे और तब यजमान प्रासाद का उत्सर्ग करे। स्वयम्भूलिङ्ग या स्वयंभू-देव के लिए निर्मित अथवा पूर्वतः प्रतिष्ठापित देवता के निमित्त नव निर्मित प्रासाद के अधिवासन और उत्सर्ग की यही

१. द्र० पीछे पृष्ठ ११ से ३३ पृष्ठ तक।

२. द्र० पीछे पृष्ठ १९९-२०५।

[यजमानाभिषेक।]

अथ मण्डपादुत्तरतः पूर्वकल्पितैः शान्तिकलशादिजलैस्तण्डु-लाष्टदलोपरिस्थभद्रासनोपविष्टं सपरिकरं यजमानमभिषिञ्चेयुः।

[प्रासादोत्सर्गः]

तत आचार्यमूर्तिपब्राह्मणस्थपत्यादीन् परितोष्य प्रासादोत्सर्गं कुर्यात्। तत्र मासपक्षाद्युल्लिख्य 'इमं शिलेष्टकादार्वादिनिर्मितं बल-भीजगतीप्राकारपरिखागोपुरपरिवारदेवतालयसंयुतं तत्तद्देवता-लोकावाप्तिकामः कुलद्वयानुग्रहायामुकदेवताप्रीतयेऽहमुत्सृजामि'[1]। इति कुशयवजलानि क्षिप्त्वा देवं नत्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति।

विधि है। [यजमान के अभिषेक और प्रासाद के उत्सर्ग के संकल्प आदि का विधान आगे बतलाया गया है]।

यजमान का अभिषेक—

इसके पश्चात् आचार्य मण्डप के उत्तर में पूर्वतः स्थापित शान्तिकलश (सम्पात) आदि के जलों से तण्डुल (चावल) या तण्डुल-चूर्ण आदि से रचित अष्टदल के ऊपर भद्रासन में पारिवारिक जनों सहित बैठे हुए यजमान का अभिषेक करें।

प्रासादोत्सर्ग—

तब यजमान दक्षिणादि देकर आचार्य और मूर्तिप संज्ञक ब्राह्मण ऋत्विजों को और पारितोषिक देकर स्थपति (बढ़ई) को सन्तुष्ट करके प्रासाद का उत्सर्ग करे। [इसके लिए यजमान आसन में बैठकर आचमन प्राणायामादि करके शान्तिपाठादि के अनन्तर हाथ में कुश, यवाक्षत और जल लेकर संकल्प करे] तब वहाँ पर वह मास-पक्ष आदि का उच्चारण करके—

'इमं शिलेष्टकादार्वादिनिर्मितं बलभी-जगती-प्राकार-परिखा-

१. उत्सृजे। केचित् तु 'सर्वभूतेभ्य उत्सृजे'—
ॐ सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टः प्रासादोऽयं मयार्जितः
रमन्तु सर्वे भूतानि छाया संश्रयणादिभिः॥ (इति पठन्ति)

२. पाठान्तर—०परिवार०।

[प्रतिष्ठादिवसे प्रातः मूर्ति-मूर्तिपति-लोकपालहोमः]

ततः प्रातराचार्यो मूलमन्त्रेण मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालमन्त्रैश्च प्रतिदैवतमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पूर्णाहुत्यन्तं स्वकुण्डे हुत्वा

गोपुर-परिवार-देवताऽऽलयादिसंयुतं तत्तद्देवता-लोकावाप्तिकामः कुल-द्वयानुग्रहाय अमुक देवता-प्रीतयेऽहमुत्सृजामि।' [अथवा 'विष्णवे तुभ्यमहमुत्सृजामि' या 'शिवायोत्सृजामि] ऐसा कहकर कुश-यव-सहित-जलको छोड़कर देवता को प्रणाम करे। [तब पद्धतिकारों के अनुसार

ॐ सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टः प्रासादोऽयं मयार्जितः।
रमन्तु सर्वभूतानि छायासंश्रयणादिभिः॥ ऐसा कहे और तब]

ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस प्रकार प्रासादोत्सर्ग पूर्ण होता है।

प्रासादोत्सर्ग के पश्चात् रात्रि जागरण—

प्रासादोत्सर्ग के अनन्तर सायंकाल बलिदान करके वेद-ध्वनि और पुराणपाठ, कथा-प्रवचन और भजन-कीर्तन आदि करते हुए आचार्य सहित यजमान रात्रि में जागरण करे।

मूर्ति-प्रतिष्ठापन दिवस में प्रारम्भिक कृत्य—

१. मूर्ति-मूर्तिप-लोकपाल होम—

तब प्रतिष्ठापना दिवस में प्रातःकाल [नित्यकृत्य सम्पादन के अनन्तर] आचार्य अपने कुण्ड में कुश-कण्डिकादि सम्पादन कर आधार-आज्यादि होम पूर्वक स्थाप्य देवता [या देवताओं] के मूलमन्त्र से यथाशक्ति एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार तथा मूर्तियों [विष्णु की पञ्चमूर्तियों एवं लोकपालों[1] में से प्रत्येक देवता के लिए तत्तद् देवता के मन्त्र से एक सौ आठ बार अथवा अट्ठाईस बार घृताक्त तिलों का अथवा आज्य का होम करके पूर्णाहुति पर्यन्त होम करे [इसके अनन्तर मूर्ति-प्रतिष्ठा सम्बन्धी अधोनिर्दिष्ट कर्म विहित हैं।]

१. अष्टमूर्तियों और पञ्चमूर्तियों तथा मूर्त्यधिपतियों और लोकपालों के मन्त्रों के लिए द्रष्टव्य पीछे पृ० १७६—१८३ तथा १५६—१५७।

[अधिवासित कूर्मशिलाद्यानयनं, प्रासाद-प्रोक्षणम्]

अधिवासितां कूर्मशिलां ब्रह्मशिलां पिण्डिकां च 'त्रातारमिन्द्रमि'ति गृहीत्वा [शान्तिघोषैः प्रदक्षिणं प्रासादमानीय द्वारदेशे स्थापयित्वा] विघ्नाभावार्थं पुष्पोदकधारयाऽस्त्रमन्त्रेण शन्तातीयेन वा प्रासाद [-गर्भ-] मभ्युक्ष्य 'महाँ इन्द्र०' इति दर्भेणोल्लिख्यास्त्रपूतजलेन पुनः प्रोक्ष्य

अचल-मूर्ति की प्रतिष्ठा का कर्म

अधिवासित कूर्मशिला—ब्रह्मशिला—पिण्डिका का आनयन प्रासाद—प्रोक्षण—

तब आचार्य मूर्तिप-ब्राह्मणों और यजमान के साथ अधिवासित कूर्मशिला, ब्रह्मशिला और पिण्डिका को 'त्रातारमिन्द्र'[1] इत्यादि मन्त्र से उठाकर शान्ति-मङ्गल-घोषों के साथ प्रासाद की प्रदक्षिणा कराते हुए लाकर प्रासाद के द्वार में स्थापित करके विघ्ननिवारणार्थ 'ॐ अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से सर्षप (सरसों) छींटते हुए विघ्नो-त्सारण करके और उसी अस्त्र मन्त्र ['ॐ अस्त्राय फट्'] से अथवा 'शन्तातीय सूक्त'[2](?) से पुष्पोदक की धारा से प्रासाद के गर्भगृह को

१. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः॥

२. शंवतीः पारयन्त्येते तं पृच्छन्ति वचो युजा।
अभ्यारं तं यमाकेतुं य एवेदमिति ब्रवत्॥ १
भासाकेतुं परिस्रुत भारतीब्रह्मवर्धनीः।
संजानाना मही माता य एवेदमिति ब्रवत्॥ २
इन्द्रस्तं किं विभुं प्रभुं भानुनेयं सरस्वतीम्।
येन सूर्यमरोचयद्येनेमे रोदसी उभे॥ ३
जुषस्वाग्ने अङ्गिरः काण्वं मेध्यातिथिम्।
मा त्वा सोमस्य बर्बृहत् सुतस्य मधुमत्तमः॥ ४

अभ्युक्षित (प्रोक्षित) करके 'महाँ इन्द्रो०'¹ इस मन्त्र से [प्रासाद गर्भ के मध्य में प्रतिमा स्थापन योग्य स्थल को] दर्भ से उल्लिखित (रेखाङ्कित) करके 'ॐ हु फट्' या 'ॐ अस्त्राय फट्' इस अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित (मन्त्रपूत) जल से उस स्थल को पुनः प्रोक्षित करे।

त्वमग्ने अङ्गिरः शोचस्व देववीतमः।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिः शान्तिः स्वस्तिमकुर्वत ॥ ५
शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु।
शं नो द्यावापृथिवी शं प्रजाभ्यः शं न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ६
(ऋग्वेद परिशिष्ट १४।१-६)

शं वो भूमिः शं व आपः शं वो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं वः प्रजाभ्यः शमयन्तु पापं शं वः पर्जन्यो अभि वर्षतु।
शं व इन्द्रः शंताता शं वो भवन्तूषसो विभातीः।
शं वो वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु शं वो मित्रावरुणावश्विना शम् ॥
शं वो विष्णुः प्रजया संरराणोऽनु स्वधां कृणुहि लोके अस्मिन्।
शं वो भवतु भुवनस्य यस्पतिः शं वो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

ऋग्वेद परिशिष्ट अध्याय २.। खिल सूक्तः१३ के अन्त में उद्धृत (वैदिक संशोधन मण्डल पूना से प्रकाशित संस्करण) : ये तीनो मन्त्र उपर्युक्त तीसरे मन्त्र के बाद जूनागढ़ मे प्राप्त पाण्डुलिपि में बतलाये गये हैं।

१. [क] महाँ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु।
हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि ॥
उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥
(यजु० २६।१०)

[ख] महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥
उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा।
(यजु० ७।४०)

[कूर्मशिलास्थापनम्]

प्रासादस्य द्वारस्य च मध्याद्यवेन यवार्धेन वैशानीमुत्तरां वाऽऽश्रित्य स्नानादिसंस्कृतां कूर्मशिलां प्रणवेन पञ्चरत्नोपरि निधाय तच्छ्वभ्रे सौवर्णं कूर्मं द्वारसम्मुखं निधाय

[कूर्मशिलोपरि ब्रह्मशिलास्थापनम्]

तदुपरि [पञ्च-]रत्नानि निधाय [तदुपरि] षट्त्रिंशद्गर्तयुतां पञ्चचत्वारिंशद्गर्तयुतां वा ब्रह्मशिलामधिवासितां निदध्यात्—
'ॐ नमो व्यापिनि स्थिरे अचले ध्रुवे। ॐ ह्रीं लं स्वाहा'
इति मन्त्रेण। यथाशक्ति संपूज्य

त्वमेव परमा शक्तिस्त्वमेवासनधारिका।
शिवाज्ञया त्वया देवि स्थातव्यमिह सर्वदा ॥

इति प्रार्थयेत्।

कूर्मशिलास्थापन—

[कूर्मशिला स्थापन के पूर्व] प्रासाद के गर्भ-गृह को द्वार के मध्य भाग में सूत्र लगाकर नापने से गर्भ-गृह का मध्य (केन्द्र) ज्ञात करके उससे (केन्द्र से) यव-प्रमाण (जौ के माप के बराबर) या यवार्द्ध-प्रमाण (आधा जौ के बराबर) उत्तर दिशा अथवा ईशान दिशा की ओर के स्थल को आश्रित करके (आधारस्थल रूप में निश्चित करके) उसके ऊपर पञ्चरत्नों को रखकर उन (पञ्चरत्नों) के ऊपर स्नानादि से संस्कृत (पवित्र और पूजित) कूर्मशिला को 'ॐ' इस प्रणवाक्षर का उच्चारण करते हुए रखकर उस (कूर्मशिला) के ऊपर बने हुए श्वभ्र (गर्त) में सुवर्ण-निर्मित कूर्म को द्वाराभिमुख रखे।

ब्रह्मशिला का स्थापन—

तब उस कूर्मशिला के ऊपर पञ्चरत्नों को रखकर उनके ऊपर छत्तीस गर्तों वाली अथवा पैंतालीस गर्तों वाली अधिवासित ब्रह्म-

ततो वर्णाध्वने नमः। पदाध्वने नमः। मन्त्राध्वने नमः। भुवनाध्वने नमः। तत्त्वाध्वने नमः। कलाध्वने नमः। इति सकलमध्वानं तदारूढं ध्यायेत्।

शिला को स्थापित करे' और तब 'ॐ नमो व्यापिनि स्थिरे अचले ध्रुवे। ॐ श्रीं लं स्वाहा'।

इस मन्त्र से यथाशक्ति गन्धादि से उसका पूजन करके यह प्रार्थना करे'।

'त्वमेव परमा शक्ति०' इत्यादि। अर्थात् तुम ही परम शक्ति हो तुम ही आसन-धारिका हो। हे देवि! तुम यहाँ पर शिव की आज्ञा से सर्वदा स्थित रहो।'

ब्रह्मशिला में षडध्व-ध्यान'—

तदनन्तर 'ॐ वर्णाध्वने नमः। ॐ पदाध्वने नमः। ॐ मन्त्रा-

---

१. एकबेरे ब्रह्मशिलां ब्रह्मस्थाने तु निःक्षिपेत्।
बहुबेरविधाने तु देवमानुषयोः पदे॥ (श्रीप्रश्नसंहिता २०.२९)

२. त्वमेव परमा शक्तिस्त्वमेवासनधारिका॥ १८
देवाज्ञया त्वया देवि स्थातव्यमिह सर्वदा। (विष्णुसंहिता १८।१८-९)

३. षडध्व—
[क] मन्त्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः॥ ११
भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात्।
(शिवपुराण ७।१।२९।११-२)

[ख] कला तत्त्वं च भुवनं वर्णं पदमतः परम्।
मन्त्रश्चेति समासेन षडध्वा परिपठ्यते॥ (शिवपुराण ७।२।१७।२)

[ग] उक्तं कलाध्वा तत्त्वाध्वा भुवनाध्वेति च त्रयम्॥ ७९
वर्णाध्वा च पदाध्वा च मन्त्राध्वेत्यपरं त्रयम्।
(शारदातिलक ५।७९-८०)

वर्णाध्वा (क)—अकारादिक्षकारान्ता वर्णा वर्णाध्वनामकाः॥
(शिवतत्त्वरत्नाकर ३।८३)

[पुण्याहवाचनं, मूलमन्त्रेण होमश्च]

ततः पुण्याहवाचनं कृत्वा मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा—

ध्वने नमः। ॐ भुवनाध्वने नमः। ॐ तत्त्वाध्वने नमः। ॐ कलाध्वने नमः। इस प्रकार [नमस्कार करते हुए] सकल षडध्व (सम्पूर्ण छः अध्वों) के उप ब्रह्मशिला में आरूढ होने का ध्यान करे।

पुण्याहवाचन और मूलमन्त्र से होम—

तदनन्तर ब्राह्मणों से संक्षिप्त पुण्याहवाचन करावे। यथा—'अस्य अमुक स्थाप्य देवस्य ब्रह्मशिला-पिण्डिका-स्थापनाख्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु। कल्याणं भवन्तो०। ऋद्धिं भवन्तो०। स्वस्ति भवन्तो०।' इत्यादि।

तब आचार्य यागमण्डप में जाकर अपने कुण्ड में स्थाप्य देवता के मूलमन्त्र से एक सौ आठ बार तिल या आज्य का होम करे।

(ख)—वर्णाध्वेति वदन्त्यर्णानादिक्षान्तान्मनीषिणः।
(शारदातिलक ५।९२)

(ग)—द्रष्टव्य-नारदीयसंहिता (९।३८-४५)

पदाध्वा—वर्ण-संघः पदाध्वा स्यात्। (शारदातिलक ५।९३)

मन्त्राध्वा—मन्त्राध्वा मन्त्रराशयः। (शारदातिलक ५।९३)

भुवनाध्वा—ईरितो भुवनाध्वेति भुवनानि मनीषिणः। (शारदातिलक ५।९२)

तत्त्वाध्वा—तत्त्वाध्वा बहुधा भिन्नः शिवाद्यागमभेदतः।
षड्विंशच्छिवतत्त्वानि द्वात्रिंशद् वैष्णवानि तु॥ ८१
चतुर्विंशति तत्त्वानि मैत्राणि प्रकृतेः पुनः।
(शारदातिलक ५।८१-२)

शिवतत्त्वादिभूम्यन्तं तत्त्वाध्वा समुदाहृतः। (शिव ७।२।१७।४)

पृथिवीतत्त्वमारभ्य शिवतत्त्वावधीनि च।
तानि तत्त्वानि षट्त्रिंशत् तत्त्वाध्वेत्यभिधीयते॥
(शिवतत्त्वरत्नाकर ३।८१)

[ब्रह्मशिलागर्तेषु रत्नन्यासः]

षट्त्रिंशत्सु पञ्चचत्वारिंशत्सु वा ब्रह्मशिलागर्तेषु प्रादक्षिण्येन सहेम्ना हस्तेन रत्नन्यासं कुर्यात् ।

[ब्रह्मशिलोपरि पिण्डिकास्थापनम्]

श्वभ्ररहिते ब्रह्मशिलोपरिभागे सश्वभ्रां पिण्डिकां पूर्वपश्चिमानने प्रासादे सौम्यप्रणालीं दक्षिणोत्तरानने पूर्वप्रणालीं ध्रुवसूक्तेन निधाय ।

ब्रह्मशिला के गर्तों में रत्न-न्यास—

तब सुवर्णयुक्त हाथ से ब्रह्मशिला के छत्तीस अथवा पैंतालीस गर्तों (श्वभ्रों या अवटों अर्थात् गड्ढों) में प्रादक्षिण्य क्रम से रत्न-न्यास करे ।

ब्रह्मशिला में रत्नन्यास का विधान वैकल्पिक है । यदि ब्रह्मशिला में गर्त न बने हों और उसके ऊपर पिण्डिका स्थापित करनी हो तो तब पिण्डिका में ही रत्नन्यास किया जाता है । अतः प्रतिष्ठामयूख में रत्नन्यास की विधि आगे पिण्डिका में रत्नन्यास के प्रसंग में बतलायी गयी है ।

ब्रह्मशिला के ऊपर पिण्डिका-स्थापन—

श्वभ्र (गर्त) रहित ब्रह्मशिला के ऊपर श्वभ्रयुक्त (गर्तयुक्त) पिण्डिका को ध्रुवसूक्त[1] का पाठ करते हुए इस तरह स्थापित करे

---

१. ध्रुवसूक्त में ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के क्रमशः निम्नलिखित मन्त्र पढ़े जा सकते हैं—

(क) ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ ४
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥ ५
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽभि सोमं मृशामसि ।

[पिण्डिकाभिमन्त्रणम्]

देवपत्नीलिङ्गकेन मन्त्रेण पिण्डिकामभिमन्त्रयेत् । तत्र विष्णोः स्थापनायां 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या०', रुद्रस्य [स्थापनायां] 'गौरीर्मिमाय०', सूर्यस्य [स्थापनायां] 'उपस्तचित्रमाभरे'त्यादि ।

कि यदि प्रासाद का मुख पूर्व या पश्चिम की ओर है तो पिण्डिका की प्रणाली (जल-प्रवाह की नाली ?) उत्तराभिमुख हो और यदि प्रासाद का मुख दक्षिण या उत्तर की ओर हो तो पिण्डिका की प्रणाली पूर्वोन्मुख हो ।

पिण्डिकाभिमन्त्रण—

तब देवपत्नी-लिङ्गक मन्त्र (स्थाप्य देवता की पत्नी के पूजन के लिए विहित मन्त्र) से पिण्डिका को अभिमन्त्रित करे । उदाहरणार्थ-विष्णु की स्थापना में विष्णुपत्नी लक्ष्मी के 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च

अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥ ६
(ऋ० १०।१७३।४-६)

(ख) ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृंह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृंहाच्युतक्षिदसि दिवं दृंहाग्नेः पुरीषमसि ॥ (यजु० ५।१३)

(ग) ध्रुवाऽसि धरुणाऽऽस्तृता विश्वकर्मणा ।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृंह ॥
(यजु० १३।१६)

(घ) ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवाऽसि ध्रुवं योनिमा सीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाऽश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह ॥
(यजु० १४।१)

(ङ) ध्रुवाऽसि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्य्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥
(यजु० ५।२८)

[पिण्डिकायां तत्त्वन्यासः]

तत आत्मतत्त्वाय नमः, आत्मतत्त्वाधिपतये क्रियाशक्त्यै नमः ।

पत्न्या०" इस मन्त्र से पिण्डिका को अभिमन्त्रित किया जायेगा। रुद्र (शिव) की स्थापना में 'गौरीर्मिमाय'" [अथवा-'आयङ्गौः पृश्निरक्रमीद्०" अथवा 'जातवेदसे 'सुनवाम सोमम्०'"] इस मन्त्र से और सूर्य की स्थापना में 'उषस्तच्चित्रमा भर०'" इस मन्त्र से तथा ब्रह्मा की स्थापना में गायत्री मन्त्र से अथवा 'पावका नः सरस्वती०'' इस मन्त्र से पिण्डिका को अभिमन्त्रित करे।

अन्य देवी-देवताओं की पिण्डिका को अभिमन्त्रित करने के लिए—

'ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग करे।

---

१. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥ (यजु० ३१।२२)

२. गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥
(ऋ० १।१६४।४१)

३. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ (ऋ० १०।१८९।१, यजु० ३।६)

४. जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥
(ऋ० १।९९।१)

५. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ (ऋ१।९२।१३, यजु० ३४।३३)

६. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (ऋ३।६२।१०, यजु० ३।३५)

७. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः (ऋ० १।३।१०, यजु० २०।८४)

विद्यातत्त्वाय नमः, विद्यातत्त्वाधिपतये ज्ञानशक्त्यै नमः । शिवतत्त्वाय नमः, शिवतत्त्वाधिपतये इच्छाशक्त्यै नमः । इति तत्त्वन्यासः ।

[पिण्डिकायां मूर्ति-मूर्तिप-लोकेशन्यासः]

प्रतितत्त्वं मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालान्विन्यसेत् ।

पिण्डिका में तत्त्वन्यास—

तदनन्तर पिण्डिका में अधोलिखित तीन तत्त्वों का न्यास करे।

'ॐ आत्मतत्त्वाय नमः। आत्मतत्त्वाधिपतये क्रियाशक्त्यै नमः।

'ॐ विद्यातत्त्वाय नमः। विद्यातत्त्वाधिपतये ज्ञानशक्त्यै नमः।

'ॐ शिवतत्त्वाय नमः। शिवतत्त्वाधिपतये इच्छाशक्त्यै नमः।

यह तत्त्वन्यास पूर्ण हुआ।

पिण्डिका में मूर्ति-मूर्तिप-लोकपाल-न्यास—

तब पिण्डिका में प्रत्येक तत्त्व के साथ क्रमशः मूर्ति, मूर्त्यधिपति और लोकपालों का न्यास भी निम्नलिखित क्रम से करे—

[पूर्वे] ॐ पृथिवीमूर्तये नमः। ॐ पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय नमः। ॐ इन्द्राय नमः।

[आग्नेय्याम्] ॐ अग्निमूर्तये नमः। ॐ अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये नमः। ॐ अग्नये नमः।

[दक्षिणे] ॐ यजमानमूर्तये नमः। ॐ यजमानमूर्त्यधिपतये नमः। ॐ उग्राय नमः।

[नैर्ऋत्याम्] ॐ अर्कमूर्तये नमः। ॐ अर्कमूर्त्यधिपतये रुद्राय नमः। ॐ निर्ऋतये नमः।

[पश्चिमे] ॐ जलमूर्तये नमः। ॐ जलमूर्त्यधिपतये भवाय नमः। ॐ वरुणाय नमः।

[वायव्ये] ॐ वायुमूर्तये नमः। ॐ वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय नमः। ॐ वायवे नमः।

[उत्तरे] ॐ इन्दुमूर्तये नमः। ॐ इन्दुमूर्त्यधिपतये महादेवाय नमः। ॐ कुबेराय (सोमाय) नमः।

[पिण्डिकायामाधारशक्त्यादिन्यासः पूजनञ्च]

ततः पिण्डिकायामाधारशक्त्यै नमः। इति न्यस्यानन्तासनतत्त्वेभ्यो नमः। आसनशक्तिभ्यो नमः। इत्युक्त्वाऽभ्यर्च्य—

[पिण्डिका-प्रार्थना]

सर्वदेवमयीशाने त्रैलोक्याह्लादकारिणि।
त्वां प्रतिष्ठापयाम्यत्र मन्दिरे विश्वनिर्मिते ॥ १ ॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावद्वेषा वसुन्धरा।
तावत्त्वं देवदेवेशि मन्दिरेऽस्मिन्स्थिरा भव ॥ २ ॥
पुत्रानायुष्मतो लक्ष्मीमचलामजरामृताम्।
अभयं सर्वभूतेभ्यः कर्तुं नित्यं विधेहि भोः ॥ ३ ॥

[ऐशान्याम्] ॐ खमूर्तये नमः। ॐ खमूर्त्यधिपतये भीमाय नमः।
ॐ ईशानाय नमः।

विष्णु-पिण्डिका में पञ्चमूर्तियों और मूर्त्यधिपतियों के न्यास का क्रम पीछे पृष्ठ १६५ में देखा जा सकता है।

पिण्डिका में आधार-शक्ति न्यास—

तब पिण्डिका में आधारशक्ति का न्यास 'ॐ आधारशक्त्यै नमः' इस नाममन्त्र से करके

ॐ अनन्तासनतत्त्वेभ्यो नमः। ॐ आसन शक्तिभ्यो नमः।

ऐसा कहते हुए गन्धाक्षतादि से पूजन करके अधोलिखित प्रार्थना करे।

पिण्डिका की प्रार्थना—

हे सर्वदेवमयि! ईशाने! तीनों लोकों को आह्लादित करने वाली पिण्डिके! मैं तुम्हें यहाँ विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित मन्दिर में स्थापित करता हूँ ॥ १ ॥

हे देव-देवेशि! जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं और जब तक पृथिवी स्थित है तब तक तुम इस मन्दिर में स्थिर रहो ॥ २ ॥

हे पिण्डिके! तुम इस प्रतिष्ठा-कर्म करने वाले आयुष्मान् यजमान को बहुपुत्रवान् बनाओ तथा अचल, अजर एवं अमर लक्ष्मी तथा सभी प्राणियों से अभय प्रदान करो ॥ ३ ॥

विजयं नृपते सर्व-लोकानां क्षेममेव च।
सुभिक्षं सर्ववस्तूनां कुरु देवि नमो नमः ॥ ४ ॥

इति तां प्रार्थ्य—

[पिण्डिकायामक्षरन्यासः]

प्रणवं श्वभ्रे, बाह्ये षोडश-स्वरांस्तेषां परितो व्यञ्जनानि न्यस्य

तुम राजा को विजयी बनाओ। सभी लोकों (मनुष्यों) को कुशली बनाये रखो और सभी वस्तुओं के सुभिक्ष (प्रचुर उत्पादन) में सहायक बनो। हे देवि! तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥

इस तरह पिण्डिका की प्रार्थना करे।

पिण्डिका में प्रणव न्यास, स्वरन्यास और व्यञ्जनन्यास—

इस प्रकार प्रार्थना करके पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त या छिद्र) के केन्द्र में सर्वप्रथम 'ॐ' इस प्रणवाक्षर का न्यास करे। तब उसके बाहर षोडश स्वरों का न्यास और उन स्वरों के बाहर व्यञ्जनों का न्यास करे। यथा—

प्रणवन्यास—

पिण्डिका के गर्त के मध्य में प्रणवन्यास 'ॐ नमः' कहते हुए करे।

स्वरन्यास—

पिण्डिका के गर्त में प्रणवन्यास के बाहर की परिधि में पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम से स्वरों का न्यास करे। यथा—

'ॐ अं नमः। ॐ आं नमः। ॐ इं नमः। ॐ ईं नमः। ॐ उं नमः। ॐ ऊं नमः। ॐ ऋं नमः। ॐ ॠं नमः। ॐ लृं नमः। ॐ ॡं नमः। ॐ एं नमः। ॐ ऐं नमः। ॐ ओं नमः। ॐ औं नमः। ॐ अं नमः। ॐ अः नमः।

व्यञ्जन-न्यास—

पिण्डिका के गर्त में स्वरों के न्यास के बाहर की परिधि में पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम से व्यञ्जनों का न्यास करे—

ॐ कं नमः।	ॐ खं नमः।	ॐ गं नमः।	ॐ घं नमः।
,, ङं नमः।	,, चं नमः।	,, छं नमः।	,, जं नमः।
,, झं नमः।	,, ञं नमः।	,, टं नमः।	,, ठं नमः।
,, डं नमः।	,, ढं नमः।	,, णं नमः।	,, तं नमः।
,, थं नमः।	,, दं नमः।	,, धं नमः।	,, नं नमः।
,, पं नमः।	,, फं नमः।	,, बं नमः।	,, भं नमः।
,, मं नमः।	,, यं नमः।	,, रं नमः।	,, लं नमः।
,, वं नमः।	,, शं नमः।	,, षं नमः।	,, सं नमः।
,, हं नमः।	,, क्षं नमः।		

रत्नन्यासविमर्श—

आधुनिक काल में रत्नादिन्यास का प्रयोग प्रायः स्थगित सा हो गया है। लाखों-करोड़ों रुपयों की लागत से बनने वाले मन्दिरों में भी मूर्ति की ब्रह्मशिला या पिण्डिका में रत्नादिन्यास न करना उचित नहीं है। यदि मूर्ति-प्रतिष्ठा यथाविधि की जा रही हो तो रत्नन्यास भी यजमान को अवश्य करवाना चाहिए। यह कार्य मूर्ति को उसके स्थान में स्थिर करने से पूर्व ही कर दिया जाना चाहिए।

आगम ग्रन्थों, पुराणों और प्रतिष्ठा-पद्धतियों में रत्नादिन्यास की प्रयोग-विधि में एकरूपता नहीं है, जिसके कारण प्रतिष्ठा करने वाले आचार्यों के मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हो सकता है। अतः इस विषय में प्रसंगानुकूल कुछ विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

यदि प्रतिमा लोहमय अर्थात् सुवर्णादि धातुनिर्मित हो या पत्थर

से निर्मित हो तो ब्रह्मशिला या पिण्डिका में रत्नन्यास होगा[1] और यदि प्रतिमा रत्नमयी हो तो तब रत्नन्यास आवश्यक नहीं है। भित्ति (दीवार) आदि में उत्कीर्ण मूर्ति तथा वस्त्रादि में उकेरे गये बिम्ब (देवता के चित्र) में भी रत्नन्यास नहीं किया जाता।[2]

रत्नन्यास प्रायः ब्रह्मशिला में ही होता है।[3] प्रतिष्ठामयूख में पीछे ब्रह्मशिला में रत्नन्यास के विधान की चर्चा आ चुकी है।[4] किन्तु जहाँ ब्रह्मशिला श्वभ्ररहित (गर्तरहित) हो और उसके ऊपर श्वभ्रयुक्त (गर्तयुक्त) पिण्डिका स्थापित की जाय तो पिण्डिका में ही रत्नन्यास होता है।

कतिपय आगमों से यह स्पष्ट होता है कि रत्नन्यास हेतु ब्रह्मशिला अथवा पिण्डिका में क्रमशः पूर्वादि ईशान पर्यन्त आठ दिशाओं में आठ गर्त तथा पूर्व और ईशान के मध्य में नवां गर्त बनेगा और इन्हीं नौ गर्तों में से प्रत्येक गर्त में एक-एक बीज, रत्न, धातु, लोह और ओषधि को स्थापित किया जायेगा।[5] इसी विचार का समर्थन

१. रत्नन्यासं तु कुर्वीत पिण्डे लोहमये द्विज ॥ १७१ ॥
तथा रत्नमये बिम्बे न कुर्याच्च विचक्षणः ॥
(नारदीयसंहिता १५।१७१-२)

२. भित्तिगानां पटस्थानां बिम्बानां स्थापने द्विज ॥ ३६५
पीठब्रह्मशिलारत्नन्यासाख्यो न भवेद्विधिः।
(जयाख्यसंहिता २०।३६५-६)

३. द्रष्टव्य—विष्णुसंहिता १८।१८-२१; जयाख्यसंहिता २०।३०७-५ श्रीप्रश्नसंहिता २०।१९; पारमेश्वरसंहिता क्रियाकाण्ड १५।७२३।

४. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० २३०।

५. (क) गर्भ-गेहं समानाय्य पीठे ब्रह्मशिलामये।
गर्तेषु नवसु स्वर्णरत्नादीनि पुरा न्यसेत् ॥ १९ ॥
प्रतिगर्तं पञ्चसंख्यां तत्तद्भेदं वदामि ते।
श्रीप्रश्नसंहिता २०।१९-२०

पुराणों में भी प्राप्त होता है।' प्रतिष्ठामयूख में पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त) के मध्य (केन्द्र) में स्वरों और उसके बाहर व्यञ्जनों के न्यास के विधान के पश्चात् 'बाह्यपरिधौ' (बाहरी परिधि में) इस एक वचनान्त पद के प्रयोग से यह संकेत मिलता है कि बाहर की परिधि की नौ दिशाओं के नौ गर्तों में से प्रत्येक में यव, वज्र आदि के क्रम से पाँच-पाँच वस्तुएँ स्थापित करना ही मयूखकार को भी अभीष्ट रहा होगा।

कुछ आगम ग्रन्थों में बाहर से भीतर की ओर के क्रम से विभिन्न परिधियों के नौ गर्तों में क्रमशः यव आदि बीजों, वज्र, मौक्तिक आदि रत्नों, मनःशिलादि धातुओं, तथा सुवर्णादि को स्थापित करने का विधान है।' प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव पृ० ४५६ में 'ततो बाह्यपरिधौ तदन्तश्चतुर्षु परिधिषु च' इत्यादि वचनों में और प्रतिष्ठामहोदधि पृ० ३१७ में 'तदधः श्वभ्र' इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि पिण्डिका (या ब्रह्मशिला) में स्वर-न्यास और व्यञ्जन-न्यास

(ख) ग्रस्तां पीठेन मुक्त्यर्थं नवरन्ध्रकृतां पुरा।
स्वमन्त्रेण तु तत्रापि प्रतिष्ठासीति पाठयेत् ॥ ७३६
प्रागादौ प्रभवेनाथ पञ्चकं पञ्चकं न्यसेत्।
शिलावटेषु द्रव्याणां तत्र वज्रं च हाटकम् ॥ ७३७
हरितालमुशीरं च व्रीहयो दक्षिणे त्वथ।
पारमेश्वरसंहिता, क्रियाकाण्ड, १५।७३६-८।

१. व्रीहीन् रत्नांस्त्रिधातूंश्च लोहादींश्चन्दनादिकान् ॥
पूर्वादिनवगर्तेषु न्यसेन्मध्ये यथारुचि। (अग्नि ६०।४-५)

२. (क) गर्ताश्च निम्नावरणाश्चत्वारो विहिताः क्रमात्।
मध्यान्तमष्टदिक्ष्वष्टौ न्यस्तव्यानि यथाक्रमम्।
तेषु बीजानि रत्नानि — —। (विष्णुसंहिता १८।२२-३)
(ख) गर्तास्तु निम्नावरणं कर्तव्यास्तु विचक्षणैः।
नारदीयसंहिता १५।१५९

के बाद सबसे बाहर की परिधि से प्रारम्भ करके भीतर की ओर प्रत्येक परिधि के नौ दिशाओं में बने नौ गर्तों में क्रमशः यवादि बीजों, वज्र आदि रत्नों, मनःशिलादि धातुओं, सुवर्णादि लोहों (खनिजों) और श्वेत चन्दनादि ओषधियों के स्थापन का विधान किया गया है। इस विधि से रत्नादिन्यास का क्रम अधोवर्ती चक्र में दिखलाया गया है।

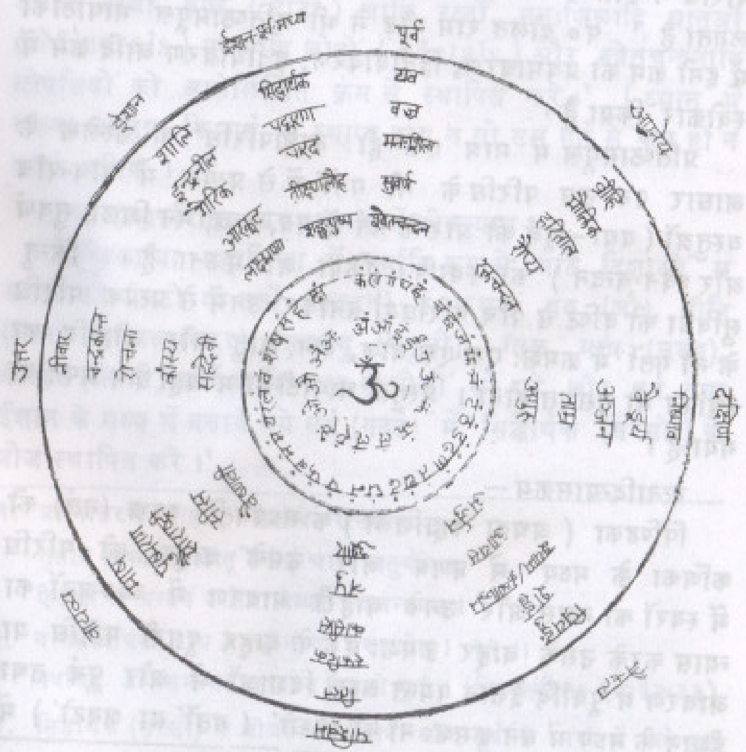

व्यावहारिक दृष्टि से व्यञ्जन-न्यास के पश्चात् बाहर की परिधि में नौ दिशाओं में बने नौ गर्तों में यवादि बीजों को स्थापित करके

[रत्नादिन्यासः]

श्वभ्रान्तः रत्नादीनि न्यसेत् । यथा—

बाह्यपरिधौ यवव्रीहिनिष्पावप्रियङ्गुतिलमाषनीवारशालि
सिद्धार्थकान्,

क्रमशः बाहर की परिधियों के नौ-नौ गर्तों में वज्रादि रत्नों, मनः-
शिलादि धातुओं, सुवर्णादि लोहों (खनिजों) और सबसे बाहर की
परिधि में श्वेत-चन्दनादि को नौ गर्तों में स्थापित करना ही सुसंगत
लगता है।' पं० दौलत राम गौड़ ने भी प्रतिष्ठामयूख भाषाटीका
में इसी क्रम को प्रथमावरण, द्वितीयावरण, तृतीयावरण आदि क्रम में
स्वीकार किया है।

प्रतिष्ठामयूख में मात्र एक ही 'बाह्यपरिधि' के उल्लेख के आधार पर उस परिधि के नौ गर्तों में से प्रत्येक में पाँच-पाँच वस्तुओं (यथा—पूर्व की ओर के गर्त में यव, वज्र, मन शिला, सुवर्ण और श्वेत-चन्दन) को स्थापित किया जा सकता है। किन्तु सुविधा की दृष्टि से पाँच परिधियाँ बनाकर उनमें से प्रत्येक परिधि के नौ गर्तों में क्रमशः एक-एक बीज, रत्न, धातु और लोहादि का स्थापन भी सुसंगत होगा। प्रस्तुत भाषाटीका में यही क्रम अपनाया गया है।

रत्नादिन्यासक्रम—

पिण्डिका (अथवा ब्रह्मशिला) के मध्यवर्ती श्वभ्र (गर्त) की कर्णिका के मध्य में प्रणव और उसके बाहर की परिधि में स्वरों का न्यास और उनके बाहरी आवरण में व्यञ्जनों का न्यास करके उसके बाहर क्रमशः एक के बाहर दूसरी परिधि या आवरण में पूर्वादि ईशान पर्यन्त आठों दिशाओं में और पूर्व तथा ईशान के मध्य में बने क्रमशः नौ नौ श्वभ्रों (गर्तों या अवटों) में

१. प्रथमावरणे व्रीहीन् द्वितीये रत्नसञ्चयम् ।
तृतीये विन्यसेद् धातूँल्लोहं चापि चतुर्थके ॥

वज्र मौक्तिक-वैडूर्य-शङ्ख-स्फटिक-पुष्पराग-चन्द्रकान्तेन्द्रनील-पद्मरागान्,

मनःशिला-हरिताञ्जन [श्याम/माक्षीक वा] कासी[स] सौराष्ट्री-रोचना-गैरिक-पारदान्,

सुवर्ण-रौप्य-ताम्र-आयस-त्रपु-सीस-कांस्यारकूट - तीक्ष्णलोहानि,

श्वेतरक्तचन्दनागुरु-अर्जुनोशीर-वैष्णवी-सहदेवी-लक्ष्मणा -[शंखपुष्प:] चेति।

यवादि बीजों, वज्र, (हीरा) आदि रत्नों, मनःशिलादि धातुओं (Minerals) सुवर्णादि लोहों (Metals) और श्वेतचन्दनादि ओषधियों को अधोलिखित क्रम से स्थापित करे।' [ध्यान में रखना चाहिए कि गर्त में स्थाप्य द्रव्य न तो उस गर्त से कम हो न उससे अधिक।]'

(१) बाह्यपरिधि—प्रथमावरण में बीजन्यास—

पिण्डिका या ब्रह्मशिला में पूर्वादि क्रम से आठ दिशाओं में बनाये गये अवटों या गर्तों (गड्ढों) में क्रमशः यव (जौ), व्रीहि (धान) निष्पाव (मटर), प्रियङ्गु (ककुनी), तिल, माष (उड़द), नीवार (तिन्नी) और शालि-धान के बीजों को भरे और पूर्व तथा ईशान के मध्य में बनाये गये गर्त (गढ्ढे) में सिद्धार्थक (सरसों) के बीज स्थापित करे।'

१. प्रथमावरणे व्रीहीन् द्वितीये रत्नसञ्चयम्।
तृतीये विन्यसेद् धातूँल्लोहं चापि चतुर्थके ॥
ऐन्द्रयां च चन्दनं न्यसेदाग्नेय्यां रक्तचन्दनम् ।

२. न गर्तादधिकं द्रव्यं न हीनं च प्रकल्पयेत् । ३२ ॥
क्वचिद् द्रव्यसमं गर्तं कारयेत् कुशलो गुरुः । (विष्णुसंहिता १८।३२-३३)

३. सिद्धार्थक (सरसों) के बीजों को ईशान और पूर्व के मध्य में बने हुए अवट (गर्त) में स्थापित करने के विषय में आगमों के वचन भी प्रमाण

(२) द्वितीयावरण में रत्न-न्यास —

द्वितीय आवरण में पूर्वादि क्रम से आठों दिशाओं के गर्तों में क्रमशः वज्र (हीरा), मौक्तिक (मोती), वैदूर्य (पन्ना), शङ्ख, स्फटिक, पुखराज, चन्द्रकान्त और इन्द्रनील (नीलम) को परित करे और पूर्व तथा ईशान के मध्य में बने हुए गर्त में पद्मराग (माणिक्य) को पूरित करे।'

[पूर्वादि दिशाओं में रत्नादि न्यास करते समय क्रमशः इन्द्रादि दिक्पालों के वैदिक मन्त्रों का पाठ और मत्स्यपुराणानुसार उनके

रूप में उद्धरणीय है—

(क) यवादीन् दिक्षु विन्यस्य मध्ये सिद्धार्थकं न्यसेत् ।

(विष्णुसंहिता १८।३४)

(ख) ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं, मध्ये सिद्धार्थकं न्यसेत् ।

(नारदीयसंहिता १५।१६२)

१. (क) वज्रमैन्द्रदिशि न्यस्य आग्नेय्यां मौक्तिकं भवेत् ॥ १६२ ॥
वैदूर्यं च तथा याम्यां नैर्ऋत्यां शङ्खमेव च ।
स्फाटिकं पश्चिमायां तु वायव्यां पुष्टिकं भवेत् ॥ १६३ ॥
चन्द्रकान्तं तयोर्दीच्यामैशान्यामिन्द्रनीलकम् ।
मध्ये च पद्मरागं च यथावद्विनिवेशयेत् ॥

(नारदीयसंहिता १५।१६३-१६४)

(ख) वज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्फटिकमेव च ।
पुष्परागेन्द्रनीलं च नीलं पूर्वादिदिक्क्रमात् ॥

(मत्स्यपुराण २६६ १०)

२. इन्द्रं प्रणवमित्युक्त्वा देवेन्द्रे वज्रमुत्तमम् ।
अग्नावग्नेति चाग्नेय्यां मौक्तिकं प्रक्षिपेत् ततः ॥
यमोदाधादिना याम्ये वैदूर्यं प्रक्षिपेद् गुरुः ।
वसवः प्रथमेत्युक्त्वा नैर्ऋत्यां शंखजं क्षिपेत् ॥
एते शतेति वारुण्यां कासीसमपि निक्षिपेत् ।
मरुतः परमात्मेति वायव्ये पुष्परागकम् ॥

पौराणिक मन्त्रों का पाठ भी करना चाहिए और साथ ही जैसा

सोमं राजानमित्युक्त्वा चन्द्रकान्तं तु सौम्यके ।
ईशानेति च मन्त्रेण चैशान्ये नीलमुत्क्षिपेत् ॥ (अत्रिसंहिता, पृ० १६४)

१. दशदिक्पालों (या दश लोकपालों) के वैदिक मन्त्रों का निर्देश पीछे पृ० १५६-१५७ में किया गया है। इनके पौराणिक मन्त्रों का उल्लेख नीचे क्रमशः उद्धृत श्लोकों में किया जा रहा है —

न्यासमन्त्रानतो वक्ष्ये लोकपालात्मकानिह ।
इन्द्रस्तु महसा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान् ॥ १९ ॥
वज्रहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः ।
आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयः शिखी ॥ २० ॥
धूमकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमो नमः ।
यमश्चोत्पलवर्णाभः किरीटी दण्डधृक् सदा ॥ २१ ॥
धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमो नमः ।
निर्ऋतिस्तु पुमान् कृष्णः सर्वरक्षोऽधिपो महान् ॥ २२ ॥
खड्गहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः ।
वरुणो धवलो विष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः ॥ २३ ॥
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्य नमो नमः ।
वायुश्च सर्ववर्णो वै सर्वगन्धवहः शुभः ॥ २४ ॥
पुरुषो ध्वजहस्तश्च तस्मै नित्य नमो नमः ।
गौरो यश्च पुमान् सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः ॥ २५ ॥
नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमो नमः ।
ईशानपुरुषः शुक्लः सर्वविद्याधिपो महान् ॥ २६ ॥
शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः ।
पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः ॥ २७ ॥
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ।
योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ २८ ॥
पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः ।
ओङ्कारपूर्वका ह्येते न्यासे बलिनिवेदने ॥ २९ ॥

(मत्स्य २६६।११-२९)

कि विष्णुसंहिता में कहा गया है, विष्णु (या अन्य स्थाप्य देवता) के ऐश्वर्यादि गुणों का चिन्तन भी उन रत्नों में करना चाहिए।[1]]

(३) तृतीयावरण में धातुन्यास[2]—

तृतीय आवरण में पूर्वादि ईशान पर्यन्त आठ अवटों (गर्तों) में क्रमशः मन शिला (मैनसिल), हरिताल, अञ्जन,[3] [श्याम[4], अथवा

---

१. ये गुणाः प्रथिता विष्णोरैश्वर्याष्टकसंज्ञया ।
तानि रत्नानि दिक्स्थाने न्यासकाले विचिन्तयेत् ।
(विष्णुसंहिता १८।२४-२५)

२. यहाँ 'धातु' शब्द minerals के अर्थ में प्रयुक्त है। द्रष्टव्य—
माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलाञ्जनशिलाऽऽलकाः ।। ५३
रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः ।
(शार्ङ्गधरसंहिता २।११।५३-४)
द्रष्टव्य—गन्धाश्मगैरिकासीसकाक्षीतालशिलाञ्जनम् ।
कंकुष्ठं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारदकर्मणि ।।
(रसरत्नसमुच्चय ३।१)

३. अञ्जन के भेद—
(क) सौवीरमञ्जनं प्रोक्तं रसाञ्जनमतः परम् ।
स्रोतोऽञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनकमेव च ।
(रसरत्नसमुच्चय ३।१०१)
(ख) सौवीरं जाम्बलं तुत्थं मयूरग्रीवकं तथा ।
दर्विका नीलमेघश्च अञ्जनानि भवन्ति षट् ।। (शब्दकल्पद्रुम)

४. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, प्रतिष्ठामहोदधि और प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में 'श्याम' के स्थान पर श्यामाञ्जन को अञ्जन के अन्यतम भेद के रूप में गिनाया गया है, किन्तु श्याम कोई अञ्जन का भेद नहीं है, अपितु एक पृथक् धातु है, जिसका उल्लेख शुक्लयजुर्वेद (१८।१३) और अथर्ववेद (११।३।७) में भी है।

प्रतिष्ठा-मयूख में 'श्याम' संज्ञक धातु को नहीं गिनाया गया है। संपादक के द्वारा इसका संकलन मत्स्यपुराण (२६६।११) तथा नारद

कृष्णाञ्जन[1] अथवा उसके अभाव में माक्षीक[2]], कासीस[3], सौराष्ट्री[4] (सौराष्ट्र में प्राप्त होने वाली एक विशेष प्रकार की मिट्टी, तुवरी), गोरोचना और गैरिक (गेरू) को स्थापित करे तथा पूर्व एवं ईशान के मध्यवर्ती नवें अवट (गर्त) को पारद (पारे) से पूरित करे।

(४) चतुर्थावरण में लोह-न्यास[5]—

संहिता के अधोलिखित पाठ के प्रामाण्य के आधार पर किया गया है—
मनःशिला हरितालमञ्जनं श्यामसीसकम् ।
सौराष्ट्रं रोचनं चैव गैरिकं चाष्टदिक्षु वै ।। १५५ ।।
पारदं मध्यमे न्यस्य यथावदनुपूर्वशः ।
(नारदीसंहिता १५।१६५-६)
द्रष्टव्य—
तालकं च शिलावज्रमञ्जनं श्याममेव च ।
काक्षीकासीसमाक्षीकं गैरिकं चादितः क्रमात् ।। (मत्स्य २६६।११)

१. कृष्णाञ्जन का प्रतिष्ठापित मूर्ति में लेप करने का विधान प्रतिष्ठामयूख के अतिरिक्त मत्स्यपुराण में भी प्राप्त होता है—
पञ्चमे कृष्णाञ्जनतिलचूर्णेन ।—प्रतिष्ठामयूख।
कृष्णाञ्जनं तिलं तद्वत् पञ्चमेऽपि निवेदयेत् ।। मत्स्यपुराण २६६।५८

२. पारमेश्वरसंहिता क्रियाकाण्ड १५।७३६ के आधार पर संगृहीत।

३. रसरत्नसमुच्चय में कासीस के दो भेद बतलाये गये हैं—
बालुका-कासीस और पुष्प-कासीस—
कासीसं बालुकाद्येकं पुष्पपूर्वमथापरम् । (रसरत्नसमुच्चय ३।५२)

४. सौराष्ट्राश्मनि संभूता मृत्स्ना सा तुबरी मता। (रसरत्नसमुच्चय ३।६२)

५. लोह शब्द का प्रयोग सोना, चाँदी आदि धातुओं (metals) के अर्थ में हुआ है। लोह के तीन भेद होते हैं–शुद्धलोह, पूतिलोह और मिश्रलोह। सोना, चाँदी, ताम्र और लोहा–ये चार शुद्धलोह हैं। नाग (सीसा) और वङ्ग (राँगा) ये दो पूतिलोह हैं। पीतल, काँसा और वर्तलोह

चतुर्थ परिधि या आवरण में पूर्वादि ईशान पर्यन्त आठ दिशाओं में बने गर्तों में क्रमशः सुवर्ण, रौप्य (रजत), ताम्र, आयस (लोह)[1], त्रपु (रांगा), सीस (सीसा), कांस्य (कांसा), और आरकूट (पीतल) को पूरित करे और पूर्व तथा ईशान के मध्यवर्ती गर्त में तीक्ष्ण लोह[2] को पूरित करे।

(५) पञ्चमावरण में ओषधि-न्यास—

पाँचवीं परिधि या आवरण में पूर्वादि ईशान पर्यन्त आठ गर्तों में क्रमशः श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, अगुरु, अर्जुन वृक्ष की छाल, उशीर (खस), वैष्णवी[3] (तुलसी या शतावरी या अपराजिता या विष्णुक्रान्ता), सहदेवी और लक्ष्मणा[4] (पुत्रकन्दा, या नागपत्री) को भरे और पूर्व तथा ईशान के मध्यवर्ती गर्त में शंखपुष्प[5] को पूरित

या पञ्चलोह (भरत) ये तीन मिश्रलोह हैं।

शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारं
पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम्।
मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्तं
धातुर्लोहे लुह् इति मतः सोऽप्यनेकार्थवाची॥
(रसरत्नसमुच्चय ५।१)

१. लोह के तीन प्रकार होते हैं—मुण्डलोह, तीक्ष्णलोह और कान्तलोह।
मुण्डं तीक्ष्णं च कान्तं च त्रिप्रकारमयः स्मृतम्।
(रसरत्नसमुच्चय ५।६७)

२. तीक्ष्णलोह के छः भेद होते हैं—खर, सार, हृन्नाल, तारावट्ट, वाजिर और काललोह। (रसरत्नसमुच्चय ५।७६)

३. इसका प्रयोग विष्णुक्रान्ता के अर्थ में है।

४. लक्ष्मणा और श्वेतकण्टकारी पृथक् द्रव्य हैं—
(द्र० अष्टाङ्गहृदय, शारीरस्थान ४०-४१)

५. प्रतिष्ठामयूख के मूलपाठ में यह नहीं है। संपादक के द्वारा विश्वामित्र संहिता १४।१५२ ३; जयाख्यसंहिता २०।३१५ और श्रीप्रश्नसंहिता २०।२६ के पाठ के आधार पर यहाँ पर 'शंखपुष्प' को जोड़ा गया है।

करे।[1] विश्वामित्रसंहिता (१४।१५३) के अनुसार इन ओषधियों के मूल (जड़) को गर्तों में भरा जायेगा—मूलमेषां च विन्यसेत्।

रत्नादिन्यास में दिशा विशेष में बीजादिन्यास का क्रम—

दिशा	बीज	रत्न	धातु	लोह	ओषधि
पूर्व	यव	वज्र	मनःशिला	सुवर्ण	श्वेतचन्दन
आग्नेय	व्रीहि	मौक्तिक	हरिताल	रौप्य	रक्तचन्दन
दक्षिण	निष्पाव	वैदूर्य	अञ्जन	ताम्र	अगुरु
नैऋत्य	प्रियङ्गु	शंख	[श्याम/ माक्षीक]	आयस	अर्जुन
पश्चिम	तिल	स्फटिक	कासीस	त्रपु	उशीर
वायव्य	माष	पुष्पराग	सौराष्ट्री	सीस	वैष्णवी
उत्तर	नीवार	चन्द्रकान्त	रोचना	कांस्य	सहदेवी
ईशान	शालि	इन्द्रनील	गैरिक	आरकूट	लक्ष्मणा
पूर्वेशान-मध्य	सिद्धार्थक	पद्मराग	पारद	तीक्ष्णलोह	[शंख-पुष्प]

रत्नादिन्यास बोधक चक्र अग्रिम पृष्ठ में दिखलाया गया है—

१. तु० न्यस्य क्रमेण पूर्वादि चन्दनं रक्तचन्दनम्।
अगुरुं चाञ्जनं चापि उशीरं च ततः परम्॥ १३॥
वैष्णवीं सहदेवीं च लक्ष्मणां च ततः परम्। (मत्स्य २६६।१३-४)
ह्रीबेरं रजनीं मांसीं सहदेवीं वचां ततः।
विष्णुक्रान्तां बलां मोटां श्यामाकं शङ्खपुष्पकम्॥
(जयाख्यसहिता २०।३११)

ऐन्द्रादि दिक्षु हृदये मांसीं द्विजवरात्मज।
वचां विल्वं च विन्यस्य कोणेषु रजनीं पुनः॥ १५२॥
सहदेवीं विष्णुपूर्वां क्रान्तामैन्द्र्यां क्रमाच्चरेत्।
मध्यमे शंखपुष्पञ्च मूलमेषां च विन्यसेत्॥
(विश्वामित्रसंहिता १४।१५२-३)

[रत्नाद्यभावे विकल्पः]

तत्र बीजानामभावे यवान् रत्नानामभावे वज्रं धातूनामभावे हरितालं ताम्राद्यभावे सुवर्णमोषधीनामभावे सहदेवीं न्यसेदिति ।

रत्नन्यास बोधक चक्र

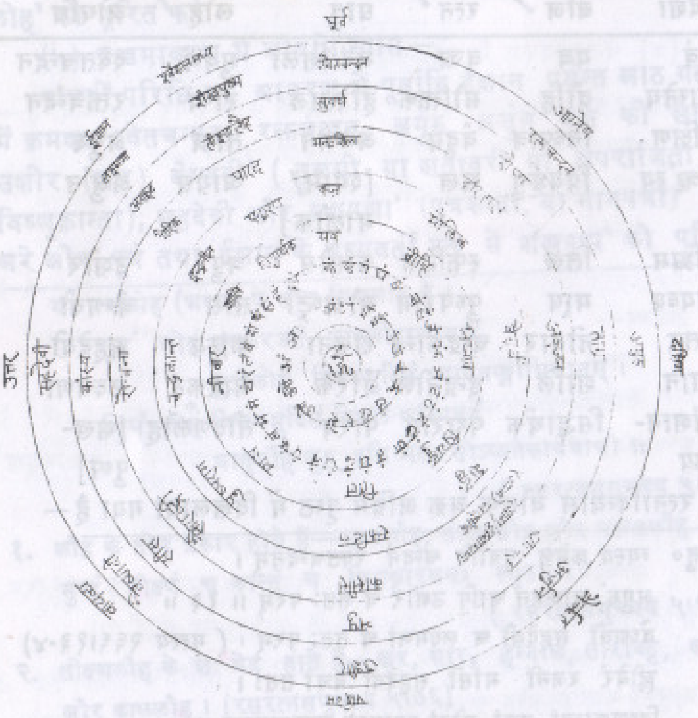

रत्नादि के अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य—

यव, व्रीहि आदि नौ बीजों के अभाव में मात्र यव, वज्र-मौक्तिक आदि नौ रत्नों के अभाव में वज्र (हीरा), मनःशिलादि धातुओं (minerals) के अभाव में हरिताल, सुवर्ण, रौप्य आदि लोहों (metals) के अभाव में सुवर्ण और श्वेतचन्दनादि ओषधियों के

[रत्नादिस्थिरीकरणं]

एवं न्यस्तानां रत्नानां दिक्पालमन्त्रैरालम्भनं कृत्वा पृथिवीमेरुकूर्मवाहनानि सौवर्णानि द्वारोन्मुखानि पारदं च तस्मिन्मध्यश्वभ्रे निधाय गुग्गुलरसेन रत्नादिकं स्थिरीकृत्य मधुपायसेनश्वभ्रमनुलिप्य वस्त्रेणाच्छाद्य कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य

अभाव में सहदेवी का न्यास करें ।

रत्नादि का दिक्पाल-मन्त्रों से आलभन और स्थिरीकरण—

इस प्रकार पिण्डिका के श्वभ्रों (गर्तों) में पूर्वादि क्रम से स्थापित किये गये रत्नों का क्रमश इन्द्र, अग्नि आदि दिक्पालों के मन्त्रों का पाठ करते हुए आलम्भन (स्पर्श) करके उन्हें अभि-

१. [क] अलाभे सर्वबीजानां शालिबीजं प्रशस्यते ॥ १६८
रत्नानामप्यलाभे तु शस्तं मुक्ताफलं भवेत् ।
धातूनामप्यलाभे तु हरितालं विशिष्यते ॥ १६९
लोहानामप्यलाभे तु सुवर्णं शस्यते परम् ।
(नारदीयसंहिता १५।१६८-७०)

(ख) बीजादीनामलाभेऽपि तत्स्थानेषु यथाक्रमम् । ३६
शालिमुक्ताहरीतालसुवर्णानि न्यसेद् बुधः ।
(विष्णुसंहिता १८।३६-३७)

(ग) रत्नादीनामलाभे तु मौक्तिकं स्वर्णमेव वा ।
रजतं वाथ विन्यस्य हुत्वाऽऽज्यं पयसा द्विज ॥
(विश्वामित्रसंहिता १४।१५५)

(घ) अभावात् सर्ववस्तूनां हेमं सर्वत्र विन्यसेत् ।
(जयाख्यसंहिता २०।३१६)

(ङ) काञ्चनं हरितालं च सर्वाभावेऽपि निक्षिपेत् ।
दद्याद् बीजौषधीस्थाने सहदेवीं यवानपि ॥
(मत्स्यपुराण २६६।१८)

मन्त्रित करे।[1]

तब सुवर्ण निर्मित पृथिवी[2], मेरु, कूर्म और स्थाप्य देवता के वाहन की प्रतिमा को द्वाराभिमुख रखकर और तब उस पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त) में पारद को भर कर उन श्वभ्रस्थ (अर्थात् गर्तों में स्थापित) रत्नों को गुग्गुल के रस से स्थिर (सुदृढ) करके पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त) को मधु और पायस (खीर) से अनुलिप्त करके उसे वस्त्र से आच्छादित कर कवच से अवगुण्ठन[3] करे और तब अस्त्रमन्त्र (अस्त्राय फट्) से उसे संरक्षित करे।

---

१. स्वलोकपालनाम्ना तु न्यसेदोङ्कारपूर्वकम् ॥ (मत्स्य २६६।१४)
इन्द्रादि दिक्पालों के मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं—
[विस्तृत विवरण हेतु देखें-पीछे पृ० १५६-५७]
(अ) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं० ।
(ब) त्वन्नो अग्ने तव देव० ।
(स) यमाय त्वाङ्गिरस्वते० ।
(द) असुन्वन्तमयजमानमिच्छ० ।
(य) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा०
(र) वायो ये ते सहस्रिणो० अथवा—'आ नो नियुद्भिः०'
(ल) वय ँ सोम व्रते तव० ।
(व) तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं० ।
(श) अस्मे रुद्रा मेहना० अथवा –'ब्रह्म जज्ञानं०' ।
(स) स्योना पृथिवि नो० ।

२. द्रष्टव्य—विन्यस्य तस्योपरि च कच्छपं स्वर्णनिर्मितम् ।
देवीं च वसुधां न्यस्य नागराजं च रूप्यकम् ॥
(विश्वामित्र संहिता, १४।१५०)

३. अवगुण्ठन-मुद्रा का लक्षण यह है—
सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता सती ॥ (शारदातिलक २३।१११)

[प्रासादाभिषेचनं, बलिदानञ्च]

गृहा वै प्रतिष्ठा०' इति प्रासादमभिषिच्येन्द्रादिभ्यो बलिं दत्त्वाऽऽचामेत् । एवं पिण्डिकां प्रतिष्ठाप्य,

[प्रासादबहिरष्टदिक्षु स्थण्डिलेषु होमः]

प्रासादाद्बहिरष्टदिक्षु स्थण्डिलानि संपाद्य संस्कृत्य तत्र स्थण्डिलानामीशानभागेषु कलशान्मन्त्रवद्विन्यस्याग्नीन्प्रणीय प्रतिस्थण्डिलं पलाशसमिधामष्टोत्तरसहस्रमष्टशतं वा मूलमन्त्रेण हुत्वाऽऽज्येन च 'ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥' इति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा हुत्वा

प्रासादाभिषेचन—

तदनन्तर 'गृहा वै प्रतिष्ठा०'[1] इस मन्त्र से प्रासाद को अभिषिञ्चित (प्रोक्षित) करके इन्द्रादि दिक्पालों को उनके पृथक् पृथक् मन्त्रों[2] से अथवा एकतन्त्रेण[3] बलि देकर [हाथ-पैर धोकर] आचमन करे इस प्रकार पिण्डिका की प्रतिष्ठा सम्पन्न करके प्रासाद के बाहर आठ दिशाओं में मूलमन्त्र से होम करे।

प्रासाद के बाहर आठों दिशाओं में होम—

प्रासाद के बाहर आठों दिशाओं में आठ स्थण्डिलों का निर्माण करके उनमें पञ्च-भू-संस्कार करके उन सभी स्थण्डिलों के ईशान

---

१. गृहा वै प्रतिष्ठासूक्तं, तत्प्रतिष्ठिततमया वाचा शंस्तव्यं, तस्माद् यद्यपि दूर इव पशूँल्लभते, गृहानेवैनानाजिगमिषति, गृहा वै पशूनां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा । (ऐतरेय ब्राह्मण ३।१२।१३)

२. दिक्पालों के मन्त्रों के लिए देखिए-पीछे पृ० १५६-७ ।

३. एकतन्त्रेण दिक्पाल बलि इस मन्त्र से दी जाती है—
ॐ प्राच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहाऽवाच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ (यजु० २२।२४)

[देवमूर्ध्न्यभिषेकः]

आचार्योऽष्टदिक् संस्थेभ्यः कुम्भेभ्यः पात्रे तोयमुद्धृत्य मूलमन्त्रेण शतकृत्वोभिमन्त्र्य प्रतिमा-सन्निधौ गत्वा 'सर्वतीर्थमयमिदं जलम्' इति ध्यायन्देवमूर्ध्न्यभिषिञ्चेत् ।

[देवप्रबोधनम्]

ततः नारसिंहेन हुंफडन्तेन देवस्य दिग्बन्धनं कृत्वा मूर्तिपैः सह देवं प्रार्थयेत्—

प्रबुध्यस्व महाभाग ! देवदेव जगत्पते ।
मेघश्याम गदापाणे प्रबुद्ध कमलेक्षण ॥
प्रबुद्ध भूधरानन्त वासुदेव नमोऽस्तु ते । इति

भाग में आठ कलशों का समन्त्रक स्थापन करके अग्नि प्रणयन (स्थापन) करके प्रत्येक स्थण्डिल में पलाश की समिधाओं से एक हजार आठ बार अथवा एक सौ आठ बार (स्थाप्य देवता के) मूलमन्त्र से होम करके 'ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।' इस मन्त्र से (या स्थाप्य देवता के वैदिक मन्त्र से) एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा आठ बार आज्य-होम करे ।

देव-मस्तकाभिषेक—

तब आचार्य देव-प्रासाद के बाहर आठ दिशाओं में स्थण्डिलों के ईशान कोणों में स्थापित आठ कलशों में से एक पात्र में जल निकालकर उसे स्थाप्य देवता के मूलमन्त्र से एक सौ बार अभिमन्त्रित करके स्थाप्य देवता की प्रतिमा के निकट जाकर 'यह पात्रस्थ जल सर्वतीर्थमय है' ऐसा ध्यान (विचार) करते हुए स्थाप्य देव-प्रतिमा का मस्तकाभिषेक करे ।

देव-प्रबोधन—

तब हुंफडन्त नृसिंह मन्त्र (ॐ नृसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हुं फट्) से देवता का दिग्बन्ध करके मूर्तिप संज्ञक

[अर्घ्यदानम्]

ततः जलक्षीरकुशाग्रतिलतन्दुलयवसिद्धार्थकपुष्पाणि शङ्खे कृत्वा शङ्खमुद्रया शङ्खेन देवायार्घ्यं दत्वा

[देवस्य रथयात्रा]

'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' इति देवमुत्थाप्य [रथे तिष्ठन्० इति] रथमुपवेश्य देवस्य पुरतो गुरुः पृष्ठतो यजमानः पार्श्वतो मूर्तिपा

ऋत्विजों के साथ देवता की प्रार्थना 'प्रबुध्यस्व महाभाग०' इत्यादि मन्त्र से करे । यह प्रार्थना विष्णु की है । दूसरे स्थाप्य देवता की प्रार्थना में तदनुकूल संज्ञाओं का ऊह कर लेना चाहिए ।

अर्घ्यदान—

तदनन्तर शङ्ख में जल, दूध, कुशों के अग्रभाग, तिल, तण्डुल (चावल), यव (जौ), सिद्धार्थक (सरसों) और पुष्पों को भरकर शङ्खमुद्रा[1] प्रदर्शित करके स्थाप्य देवता को शङ्ख से अर्घ्य प्रदान करे ।

रथयात्रा—

तब 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०[2]' इस मन्त्र से देवता को उठाकर

---

१. वामाङ्गुष्ठं तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानां ततो मुष्टिमङ्गुष्ठं तु प्रसारयेत् ॥
वामाङ्गुल्यस्तथाश्लिष्टाः संयुक्ताः स्युः प्रसारिताः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंस्पृष्टा मुद्रैषा शङ्खमुद्रिका ॥
(मन्त्रमहार्णव में उद्धृत)

द्रष्टव्य—नारदसंहिता ६।२३-४; विष्णुसंहिता ७।२८-२९; जयाख्यसंहिता ८।३७-८; विश्वामित्रसंहिता १३।४७-४९ ।

२. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥
(ऋ० १।४०।१; यजु० ३४।५६)

एवं परिभ्राम्य रथादवतार्य प्रासादद्वारसंमुखं लिङ्गं कृत्वाऽर्घ्यं दत्वा प्रासादं प्रवेशयेदिति।

['रथे तिष्ठन्०'[1] इस मन्त्र से रथ में बैठाकर जय-जयकार और 'आ नो भद्रा०'[2] 'तथा द्यौः शान्ति०'[3] इत्यादि वेदमन्त्रों की ध्वनि तथा शङ्ख निनाद एवं पटह (नगाड़े) आदि माङ्गलिक वाद्यों के घोष के साथ-साथ भजन-कीर्तन करते हुए देवता की रथयात्रा करावे।[4] इस रथयात्रा में देवता के आगे गुरु (आचार्य), देवता के पीछे यजमान और देवता के दोनों पार्श्वों में दोनों ओर अगल-बगल) मूर्तिप[5] ब्राह्मण (मूर्ति की रक्षा करने वाले ऋत्विज) चलें।

१. रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः॥
(ऋ० ६।७५।६)

२. ऋ० १।८९।१-१०; यजु० २५।१४-२३।

३. यजु० ३६।१७।

४. द्रष्टव्य—पुण्याहजयघोषेण वेदध्वनियुतेन च।
शङ्खवादित्रनिर्घोषपटहैर्गीतिभिस्सह॥ १९१॥
सुघुर्भैरतुलैर्विप्र समारोप्याचलं यथा (रथे?)।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य ग्रामं प्रासादपूर्वकम्॥ १९२॥
तं रथं रथमार्गेण राजवेश्मप्रवेशयेत्।
भक्त्याऽर्घ्यपाद्ये दत्वादौ द्वाराग्रस्थस्य वै ततः॥ १९३॥
(जयाख्यसंहिता २०।१९१-३)

५. विष्णोर्यानस्य ०स्तिो भगवद्बिम्बरक्षकाः॥ ८॥
शरचापधराः केचिच्छाक्तिका याष्टिकाः परे।
नैस्त्रिंशिकाश्च काण्डीरास्तथा फलकपाणयः॥ २९॥
कौन्तिका द्रुघणाः केचित् कञ्चुकोष्णीषधारिणः।
पुरतो देवदेवस्य चतुरङ्गं बलं व्रजेत्॥
(श्रीप्रश्नसंहिता ३५।२८-३०)

[पिण्डिकायां देवतास्थापनम्]

ततः सयजमानो दैशिको देवं पिण्डिकायां स्थापयेत्। तद्यथा—सुलग्ने ईश्वरं भावयन्श्वभ्रन्यासद्रव्यसहितं सौवर्णं पद्मं श्वभ्रे निधाय

प्रधानपुरुषौ यावद्यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
तावत् त्वमनया शक्त्या युक्तोऽत्रैव स्थिरो भव।
लोकानुग्रहहेत्वर्थं स्थिरो भव सुखाय नः।
सान्निध्यं कुरु देवेश प्रत्यक्षं परिपालय॥'

इत्युक्त्वा 'ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी०' इति मन्त्रं पठित्वा यथायथार्थं बोत्तराश्रितमीशानाश्रितं वा देवं पिण्डिकाश्वभ्रे निधाय

इस प्रकार देवता को रथ में भ्रमण कराकर रथ से उतार कर प्रासाद के द्वार के सम्मुख देव-प्रतिमा अथवा लिङ्ग को [पीठासन पर] रख कर अर्घ्य देकर प्रासाद में प्रविष्ट करावे।

देवता का पिण्डिका में स्थापन—

तब आचार्य यजमान के सहयोग से देवता को पिण्डिका में स्थापित करे। इसका विधान इस प्रकार है—शुभ लग्न में ईश्वर का ध्यान करते हुए पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त) में न्यास के लिए विहित द्रव्यों (सुवर्ण रचित पृथिवी, मेरु, कूर्म, वाहन[1]) के सहित सुवर्ण निर्मित पद्म को उस पिण्डिका के श्वभ्र में रखकर यह प्रार्थना करे—

जब तक प्रकृति और पुरुष तथा सूर्य और चन्द्रमा विद्यमान रहें तब तक आप अपनी इस शक्ति के साथ संयुक्त होकर यहाँ पर स्थिर रहें।

[हे देवेश! आप लोकानुग्रह हेतु तथा हमारे सुख के लिए इस पिण्डिका में स्थिर होकर रहें, हमारे सन्निकट रहें और प्रत्यक्षतः

१. पं० दौलतराम गौड़ जी के द्वारा प्रतिष्ठामयूख की अपनी भाषाटीका में उद्धृत।

२. द्र०—पीछे पृ० २४९ में मूल पाठ।

'स्थिरो भव' 'शाश्वतो भव' इत्युक्त्वा पिण्डिकालिङ्गान्तरालं बालुकासीसकादिभिर्दृढं पूरयित्वा पुनर्न चालयेत् ।

हमारा पालन करें ।]

ऐसा कहकर 'ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी०'[1] इत्यादि मन्त्र पढते हुए देवता को पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त) के मध्य-केन्द्र से यव (जौ) अथवा यवार्द्ध (आधा जौ) के माप के बराबर उत्तर अथवा ईशान कोण की ओर रखकर 'स्थिरो भव । शाश्वतो भव' (स्थिर और शाश्वत रहो) ऐसा कहकर पिण्डिका के (श्वभ्र तथा लिङ्ग या मूर्ति के अन्तराल (रिक्त स्थान) को बालू और सीसा आदि के वज्रलेप

---

१. (क) ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ ४
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥ ५
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥
(ऋ० १०।१७३।४-६)

(ख) ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवाश्च मे नगाः सर्वे ध्रुवा पतिकुले स्त्रियः ।
(मानव गृ० सू० १।१४।१०)

(ग) ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्यच्छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥
(यजु० ५।२८)

(घ) आ त्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ (यजु० १२।११)

(ङ) ध्रुवासि धरुणाऽऽस्तृता विश्वकर्मणा ।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृंह ॥
(यजु० १३।१६)

[प्राणप्रतिष्ठा]

ततो देव-मूर्ध्नि हृदये वा स्पृष्ट्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । सा यथा, पूर्तकमलाकरोक्तां प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत । तस्यां देवस्य वा हरेरिति कालिकापुराणात्कार्या । अस्य प्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः । ऋग्यजुः सामानि छन्दांसि । क्रियामयवपुःप्राणाख्या देवता । आं बीजम् । ह्रीं शक्तिः । क्रौं कीलकम् । प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः तत ऋष्यादीन्क्रमेण शिरोमुखहृदयनाभिगुह्यपादेषु विन्यस्य—

(या आधुनिक युग में सीमेण्ट) से दृढतया पूरित (भर) कर [स्थिर करे और] उसे पुनः न हिलावे ।

प्राण-प्रतिष्ठा—

तदनन्तर देवता के शिर अथवा हृदय का स्पर्श करके प्राण-प्रतिष्ठा करे । यह प्राणप्रतिष्ठा पूर्तकमलाकरोक्त विधानानुसार करे । यदि देवता (?) या हरि (विष्णु) की प्रतिष्ठा करना हो तो कालिकापुराणोक्त विधानानुसार करे ।

प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का विनियोग—

ॐ अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-रुद्रा ऋषयः, ऋग्यजुः-सामानि छन्दांसि, क्रियामयवपुःप्राणाख्या देवता,[1] आं बीजं, ह्रीं शक्तिः क्रौं कीलकं, प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः ।

प्राणप्रतिष्ठा का अङ्गभूत ऋष्यादिन्यास—

तब प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता आदि का न्यास क्रमशः शिर, मुख, हृदय, नाभि, गुह्याङ्ग और पैरों में पूर्तकमला-करोक्त विधि से इस प्रकार करे - [यह न्यास अपने शरीर में और देव-प्रतिमा में भी किया जायेगा]

ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्र-ऋषिभ्यो नमः—शिरसि ।

,, ऋग्यजुःसामछन्दोभ्यो नमः – मुखे ।

---

१. प्राणशक्तिर्देवता । पाठान्तर ।

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः

ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा।

ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट्।

ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम्।

ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट्।

प्राणाख्य देवतायै नमः—हृदि।
,, आं बीजाय नमः—गुह्ये। (उदकस्पर्शः)।
,, ॐ ह्रीं शक्त्यै नमः—पादयोः।
,, क्रों कीलकाय नमः—नाभौ।

प्राणप्रतिष्ठाङ्गभूत हृदयादि न्यास—

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः।

,, चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा।

,, टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट्।

,, तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम्।

,, पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्।

,, यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट्।

एवमात्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत्।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः। पुनः - ॐ आं ह्रीं क्रों इत्यादि देवस्य जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों इत्यादि देवस्य सर्वेन्द्रियाणि। ॐ आं ह्रीं क्रों इत्यादि देवस्य वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इति।

इस प्रकार अपने शरीर में और देवता में न्यास करे। इस प्रसंग में क्वचित् प्राणाख्य देवता (प्राणशक्ति) का ध्यान भी किया जाता है, जो इस प्रकार है—

प्राण-शक्ति का ध्यान—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथ गुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु शुभकरी[1] प्राणशक्तिः[2] परा नः[3]॥

इस प्रकार ध्यान करके प्राणशक्ति का मानसोपचारों से पूजन करे।

तब देव-प्रतिमा का स्पर्श करके प्राण-प्रतिष्ठा के अधोलिखित बीज-मन्त्रों को पढ़े—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः [अमुक] देवस्य प्राणा इह प्राणाः।

,, आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः [अमुक] देवस्य जीव इह स्थितः।

,, आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः [अमुक] देवस्य सर्वेन्द्रियाणि [इह स्थितानि]।

---

१. सुखकरी। पाठान्तर।
२. प्राणविद्या। पाठान्तर।
३. पराख्या। पाठान्तर।

ततः—'ध्रुवा द्यौरि'ति सूक्तं च जप्त्वा ततोर्चाहृद्यङ्गुष्ठं दत्त्वा जपेत्—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः [अमुक] देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणपाणिपादपायूपस्थानि इहागत्य स्वस्तये सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।

तब 'ध्रुवा द्यौः०' इस ध्रुवसूक्त का जप (पाठ) करके तदनन्तर

---

१. ऋग्वेदीय ध्रुवसूक्त—ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ ४
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥ ५
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करात् ॥
(ऋ० १०।१७३।४-६)

ध्रुवसूक्त के स्थानापन्न यजुर्वेदीय मन्त्र—

(क) ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमा सीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाऽश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह ॥
(यजु० १४।१)

(ख) ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥
(यजु० ५।२८)

(ग) आ त्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ (यजु० १२।११)

(घ) ध्रुवासि धरुणाऽऽस्तृता विश्वकर्मणा ।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृँह ॥
(यजु० १३।१६)

(ङ) ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासश्च मे नगाः सर्वे ध्रुवाः पतिकुले स्त्रियः ॥
(मानव गृ० सू० ११४।१०: प्रतिष्ठामहोदधि में उद्धृत)

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
अस्यै देवत्वमर्चायै स्वाहेति यजुरीरयेत् ॥

इति प्रणवेन संरुध्य देवं सजीवं ध्यात्वा विश्वतश्चक्षुरित्युक्त्वा

देवता (देव-प्रतिमा) के हृदय में अङ्गुष्ठ रखकर यह पढ़े—

ॐ तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥
(ऋ० ५।४७।६)

ॐ एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे ।
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥ (यजु० २।१२)

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥
(यजु० २।१३)

ॐ उपयाम गृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥
(यजु० ८।८)

ॐ एष वै प्रतिष्ठा नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रतिष्ठितं भवति ॥

ॐ 'अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
अस्यै देवत्वमर्चायै स्वाहे'ति यजुरीरयेत्' (मामहेति च कश्चन) ॥

ऐसा कहकर प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए संरुद्ध (संनिरोधन मुद्रा का प्रदर्शन²) करके देवता के सजीव स्वरूप का

---

१. अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन । —पद्धतियों में प्रयुक्त ।

२. आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मका ॥ १०८ ॥
सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ।
अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता ।
(शारदातिलक २३।१०८-१०९)

देवमूर्ध्नि हस्तं निधाय परं देवं ध्यात्वा रुद्रसूक्तरैवत सामनी जप्त्वा प्रतिष्ठिकान्मन्त्रांश्च जपेत्।

"विश्वतश्चक्षु०" इस मन्त्र का पाठ करके देवता (देव-प्रतिमा) के शिर में हाथ रखकर परम देव का ध्यान करके रुद्रसूक्त और रैवतसाम का जप (पाठ) करके प्रतिष्ठिक (प्रतिष्ठा-सम्बन्धी) मन्त्रों का भी पाठ करे।

---

१. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥
(ऋ० १० ८१।३; यजु० १७।१९)

२. द्रष्टव्य—यजु० अध्याय १६।

३. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम॥ (ऋ० १।३०।१३; साम १५३; १०८४) इस ऋचा पर गाये जाने वाले दो आरण्यगानों को रैवत-साम कहा गया है (द्र० आरण्यगान २, प्रथम अर्धसाम १७-१८)

४. प्राणो रक्षति विश्वमेजत्। इर्यो भूत्वा बहुधा बहूनि। स इत्सर्वं व्यानशे। यो देवेषु विभूरन्तः। आवृदूदात्क्षेत्रियध्वगद्वृषा। तमित्प्राण मनसोपशिक्षत। अग्रं देवानामिदमत्तु नो हविः। मनसश्चित्तेदम्। भूतं भव्यं च गुप्यते। तद्धि देवेष्वग्रियम्। १ आ न एतु पुरश्चरम्। सह देवैरिमं हवम्। मनश्श्रेयसि श्रेयसि। कर्मन् यज्ञपतिं दधत्। जुषतां मे वागिदं हविः। विराड् देवी पुरोहिता। हव्यवाडनपायिनी। यया रूपाणि बहुधा वदन्ति। पेशांसि देवाः परमे जनित्रे। सा नो विराडनपस्फुरन्ती। २ वाग्देवी जुषतामिदं हविः। चक्षुर्देवानां ज्योतिरमृते न्यक्तम्। अस्य विज्ञानाय बहुधा निधीयते। तस्य सुम्नमशीमहि। मा नो हासीद्विचक्षणम्। आयुरिन्नः प्रतीर्यताम्। अनन्धाश्चक्षुषा वयम्। जीवा ज्योतिरशीमहि। सुवर्ज्योतिरुतामृतम्। श्रोत्रेण भद्रमुत शृण्वन्ति सत्यम्। श्रोत्रेण वाचं बहुधोद्यमानाम्। श्रोत्रेण मोदश्च महश्च श्रूयते। श्रोत्रेण सर्वा दिश आ शृणोमि। येन प्राच्या उत दक्षिणा। प्रतीच्यै दिशश्शृण्वन्त्युत्त-

[देवस्य ध्यानम्]

तत्र विष्णोः—

अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम्॥ (मत्स्य २६६ ३५)

रुद्रस्य—

त्र्यक्षं च दशबाहुं च चन्द्रार्धकृतशेखरम्।
गणेशं वृषभस्थं च स्थापयामि त्रिलोचनम्॥
(मत्स्य २६६।३६)

ब्रह्मणः—

ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम्।
पितामहं महाप्राज्ञं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम्॥
(मत्स्य २६६।३७)

स्थापित देवता का ध्यान—

तदनन्तर स्थापित देवता के स्वरूप का ध्यान करे। विष्णु की प्रतिष्ठा में 'अतसी पुष्प-सङ्काश०' इस मन्त्र को पढ़े, जिसका आशय है कि मैं देवस्वरूप होकर अतसी (तीसी) के पुष्प के समान श्याम वर्ण वाले शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले देवेश जनार्दन विष्णु की स्थापना करता हूँ।

शिव की प्रतिष्ठा में 'त्र्यक्षं च०' इत्यादि श्लोक पढ़े, जिसका आशय है कि तीन नेत्रों वाले, दश भुजाओं वाले, मस्तक में अर्धचन्द्र धारण करने वाले, वृषभ में आरूढ गणेश्वर शिव की मैं स्थापना करता हूँ।

रात्। तदिच्छ्रोत्रं बहुधोद्यमानम्। अरान्न नेमिः परि सर्वं बभूव। अग्निरमनपस्फुरन्ती सत्यं सप्त च॥
(तैत्तरीय ब्राह्मण २।१ पृ० २२५-२२९)

१. आत्मानमीश्वरं कृत्वा नानाभरणभूषितम्।
यस्य देवस्य यद् रूपं तद् ध्याने संस्मरेत् तथा॥ (मत्स्य २६६ ३४)

सूर्यस्य—

सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसेवितम् ।

पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम् ॥

(मत्स्य २६६।३८)

ततो देवस्य हृदयं स्पृशन जपेत् । तद्यथा – विष्णोः पुरुषसूक्तम् । रुद्रस्य रौद्रम । ब्रह्मणो ब्राह्मम् । रवेः सौरम । अन्येषां तत्तत्प्रकाशकान्मन्त्रान् जप्त्वा प्रणवव्याहृतिशिरःसहितां गायत्रीं प्राणसूक्तं च जपित्वा ।

ब्रह्मा की स्थापना में 'ऋषिभिः संस्तुत०' इत्यादि श्लोक पढ़े, जिसका यह आशय है कि ऋषियों के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी है ऐसे चतुर्मुख, जटाधारी, महाबुद्धिमान, कमल में उत्पन्न पितामह ब्रह्मा की मैं स्थापना करता हूँ ।

सूर्य की स्थापना में सहस्रकिरणं०' इत्यादि श्लोक पढे, जिसका आशय है कि मैं सहस्रों किरणों वाले, शान्त स्वभाव वाले, अप्सरा गणों के द्वारा सेवित, हाथ मे कमल धारण करने वाले महाबाहु सूर्य की स्थापना करता हूँ ।

स्थापित देवता के मन्त्र का जप –

तदनन्तर स्थापित देवता के हृदय का स्पर्श करते हुए उसके मन्त्रों का जप करे ।[1] उदाहरणार्थ – विष्णु की स्थापना मे पुरुषसूक्त,[2] शिव की स्थापना में रुद्रसूक्त (रुद्राध्याय)[3], ब्रह्मा की स्थापना में ब्राह्मसूक्त,[1] सूर्य की स्थापना में सूर्यसूक्त[2] का जप करे। अन्य देवताओं की स्थापना में तत्तत् देवता से सम्बन्धित मन्त्रों का जप करे।

उदाहरणार्थ—देवी की स्थापना में श्रीसूक्त[3] या देवीसूक्त[4] या 'गौरीर्मिमाय०'[5] इत्यादि मन्त्र लक्ष्मी की स्थापना में श्रीसूक्त[6] या 'श्रीश्च ते०'[7] इत्यादिमन्त्र, सरस्वती की स्थापना में 'पावका नः सरस्वती०'[8] इत्यादि मन्त्र, गणपति की स्थापना में 'गणानान्त्वा०'[9] इत्यादि मन्त्र का जप (पाठ) करे जिन देवताओं के प्रकाशक वैदिक मन्त्र न हों उनका जप – ध्यान लौकिक मन्त्रों

---

१. देवमन्त्रांस्तथा रौद्रान् रुद्रस्य स्थापने जपेत् ।
विष्णोस्तु वैष्णवांस्तद्वद् ब्राह्मान् वै ब्रह्मणो बुधः ॥ ३९ ॥
सौराः सूर्यस्य जप्तव्यास्तथान्येषु तदाश्रयाः ।
वेदमन्त्रप्रतिष्ठा तु यस्मादानन्ददायिनी ॥
(मत्स्य २६६।३९-४०)

२. यजु० ३१।१-१६ ; द्रष्टव्य-ऋ० १०।९०।१-१६ ।

३. नमस्ते रुद्रमन्यव० । इत्यादि । यजु० १६।१-६६ ।

---

१. (क) ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥
(यजु० १३।३)
(ख) आः ब्रह्मन् ब्राह्मणो० – इत्यादि । (यजु० २२ २२)
(ग) हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे० – इत्यादि । (ऋ० १०।१२१।१-१०)

२. (क) ऋ० १०।१७०।१-४;
(ख) विभ्राड् बृहत्० इत्यादि । यजु० ३३।३०-४३ ।

३. ऋग्वेद परिशिष्ट ११।१-१६ ।

४. ऋ० १०।१२५।१-८ (वागाम्भृणीसूक्त) ।

५. गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन ॥
(ऋ० १।१६४।४१)

६. ऋग्वेद परिशिष्ट ११।१-१६

७. यजु० ३१ २२ ।

८. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ।
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥
(ऋ० १।३।११-२; यजु० २०।८४-५)

९. यजु० २३।१९ ।

से करे।'

गायत्री जप—

तब प्रणव और सात महाव्याहृतियों सहित और शिरः सञ्ज्ञक मन्त्र (ॐ आपो ज्योती रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्) से युक्त गायत्री मन्त्र का जप करे,[2] जो इस प्रकार है—

ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।

यह ब्रह्मगायत्री है। यहाँ प्रसङ्गानुकूल विभिन्न देवताओं के गायत्री मन्त्रों का संकलन तैत्तिरीय आरण्यक (दशम प्रपाठक के परिशिष्ट के प्रथम अनुवाक). नारायणोपनिषत्,—महानारायणोपनिषत्, लिङ्गपुराण, मन्त्रमहार्णव, मन्त्रमहोदधि, पुरश्चर्यार्णव, ब्रह्म नित्यकर्म समुच्चय, यज्ञमीमांसा आदि ग्रन्थों से दिया जा रहा है—

---

१. पं० दौलतराम गौड़ जी ने अपने प्रतिष्ठामयूख की भाषाटीका म भगवान् राम का 'प्र तद् विष्णुस्तवते०' (ऋ० १।१५४।१), लक्ष्मण का 'इदं विष्णुर्वि चक्रमे०' (ऋ० १।२२।७; यजु० ५।१५), नर का 'विष्णोर्नु क वीर्याणि०' (ऋ० १।१५४ १ यजु० ५।१८), नारायण का 'विष्णुर्गोपा०' (ऋ०३।५५।१०), नारद का 'ऋषिर्हि पूर्वजा असि०' (ऋ० ८।६ ४१) गरुड का 'सुपर्णं वस्ते मृगो०' (ऋ० ६।७५।११), राधा का 'स मातरा न ददृशान०' (ऋ० ९।७०।६) कृष्ण का 'कृष्णां यदेनीमभि०' (ऋ० १०।३।२) हनुमान् का 'वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः०' (ऋ० ३।५५।१८) यह वैदिक मन्त्र दिया है।

२. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० १४४, प्रतिष्ठामहोदधि पृ० ३२१। द्रष्टव्य—ततः प्रणवेन संरुध्य सजीवं ध्यात्वा ध्रुवा द्यौः' इति तृचं जप्त्वा कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च जप्त्वा पुरुषसूक्तेनोपस्थाय पादनाभिशिरःसु स्पृष्ट्वा 'इहैवैधि' इति त्रिर्जपेत्। निर्णयसिन्धु, पृ० २५०।

गायत्री मन्त्रों की सूची—

१. विष्णु— ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

२. शिव —ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

३. गणेश—ॐ एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।[3]

४. दुर्गा — ॐ कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमार्यै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्।[4]

५. सूर्य — ,, भास्कराय विद्महे महातेजाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।[5]

६. राम — ,, दाशरथाय विद्महे सीतावराय धीमहि। तन्नो

---

३. ॐ लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥ (अग्निपुराण ७१।६)

४. ,, कात्यायनाय विद्महे कन्याकुमारि धीमहि। तन्नो दुर्गिः प्रचदयात्॥ (तैत्ति० आधे०)

५. [क] ,, भास्कराय विद्महे दिवाकराय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।

[ख] ,, भास्कराय विद्महे महद्द्युतिकराय धीमहि। तन्नोऽऽआदित्यः प्रचोदयात्। तैत्ति० आर०।

[ग] ,, आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्। सूर्योपनिषत्॥

[घ] ,, आदित्याय विद्महे प्रभाकराय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्॥

[ङ] ,, आदित्याय विद्महे मार्तण्डाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।

[च] ,, सप्ततुरगाय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नो रविः प्रचोदयात्।

राम: प्रचोदयात् ।'

७. जानकी– ॐ जनकात्मजायै विद्महे रामप्रियायै धीमहि । तन्नः सीता प्रचोदयात् ।

८. लक्ष्मण– ,, दाशरथाय विद्महे उर्मिलेशाय धीमहि । तन्नो लक्ष्मण: प्रचोदयात् ।

९. भरत— ,, दाशरथाय विद्महे माण्डवीवल्लभाय धीमहि । तन्नो भरत: प्रचोदयात् ।

१०. शत्रुघ्न– ,, दाशरथाय विद्महे श्रुतिकीर्तिवल्लभाय धीमहि । तन्नो शत्रुघ्न: प्रचोदयात् ।

११. हनुमान– ,, अञ्जनीजाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि । तन्नो वीर: प्रचोदयात् ।''

१२. ब्रह्मा — ,, चतुर्मुखाय विद्महे पद्मासनाय धीमहि । तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात् ''

१३. कृष्ण — ,, देवकीनन्दनाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नः कृष्ण: प्रचोदयात् ।

१४. गोपाल– ,, दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नः कृष्ण: प्रचोदयात् ।''

---

६. ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचोदयात् ।
महानारायणोपनिषत् ।

११. [क] ,, अञ्जनीजाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि । तन्नो हनुमत् प्रचो०
[ख] ,, अञ्जनीसुताय ,, ,, ,, ,, ,, ,,
[ग] ,, रामदूताय ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।
[घ] ,, हनुमते ,, आञ्जनेयाय ,, । तन्नो वीरः प्रचोदयात् ।

१२. [क] ,, वेदात्मनाय , हिरण्यगर्भाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचो० ।
—तैत्ति० आर०; नारायणोपनिषत् ।
[ख] ,, वेदात्मने च ,, हिरण्यगर्भाय धीमहि तन्नो ब्रह्मा प्रचो० ।

१४. ,, गोपीप्रियाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो गोप: प्रचोदयात् ।
तै० आ० ।

१५. राधा— ॐ वृषभानुजायै विद्महे कृष्णप्रियायै धीमहि । तन्नो राधा प्रचोदयात् ।

१६. लक्ष्मी– ,, महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मी: प्रचोदयात् ।''

१७. गरुड — ,, वैनतेयाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुड: प्रचोदयात् ।''

१८. नृसिंह— ,, वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नृसिंह: प्रचोदयात् ।''

१९. परशुराम– ,, जामदग्न्याय विद्महे महावीराय धीमहि । तन्नो विप्र: प्रचोदयात् ।''

२०. हयग्रीव — ,, वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि । तन्नो हंस: प्रचोदयात् ।

२१. कार्तवीर्य– ,, कार्तवीर्याय विद्महे महावीर्याय धीमहि । तन्नोऽर्जुन: प्रचोदयात् ।''

२२. स्कन्द — ,, महासेनाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि । तन्नः

---

१६. क] ऋग्वेद परिशिष्ट (ऊपर पृ० २६९ में क्रमसंख्या १६ में उद्धृत) ।
ख] ॐ महाम्बिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मी: प्रचोदयात् । (लिङ्ग उ० ४८।१३)
ग] ,, महालक्ष्म्यै विद्महे महाश्रियै: ,, । तन्न: श्री: प्रचोदयात् ।

१७. क] ,, तत्पुरुषाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुड: प्रचो० ।
(तै०आ०) ।
ख] ,, सुपर्णाय ,, पक्षिराजाय ,, । ,, ,, , । (मेरुतन्त्र ।)

१८. क] ,, वज्रनखाय ,, तीक्ष्णदंष्ट्राय ,, । तन्नो नारसिंह: प्रचो०
(तै० आ०)
[ख] ॐ नृसिंहाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्न: सिंह: प्रचो० ।

१९. ॐ जामदग्न्याय ,, महावीराय धीमहि । तन्न: परशुराम: ,, ।

२१. ,, कीर्तवीर्याय ,, सहस्रकराय ।। तन्नो अर्जुन: प्रचोदयात् ।

स्कन्दः प्रचोदयात् ।"

२३. नन्दिकेश्वर ॐ हरिवक्त्राय विद्महे रुद्रवक्त्राय धीमहि । तन्नो
(नन्दी) नन्दी प्रचोदयात् ।"

२४. वृष — ,, तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे वेदपादाय धीमहि ।
तन्नो वृषः प्रचोदयात् ।"

२५. कुबेर— ,, यक्षेश्वराय विद्महे गदाहस्ताय धीमहि ।
तन्नो यक्षः प्रचोदयात् ।

२६. गुरु — ,, परब्रह्मणे विद्महे गुरुदेवाय धीमहि । तन्नो गुरुः
प्रचोदयात् ।"

२७. काम— ,, कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि । तन्नोऽ-
ऽनङ्गः प्रचोदयात् ।"

२८. कामकला- ,, अनङ्गाकुलायै विद्महे मदनातुरायै धीमहि ।
तन्नः कामकला प्रचोदयात् ।

२९. गौरी — ,, गणाम्बिकायै विद्महे कर्मसिद्धयै च धीमहि ।
तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।"

३०. महिष- — ,, महिषमर्दिन्यै विद्महे दुर्गायै च धीमहि । तन्नो
मर्दिनी देवी प्रचोदयात् ।

---

२२. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि । तन्नः षण्मुखः प्रचो० ।
(तै० आ०)

२३. ,, तत्पुरुषाय ,, चक्रतुण्डाय ,, । तन्नो नन्दिः प्रचो० ।
(तै० आ०)

२४. ,, तीक्ष्णशृंगाय विद्महे वक्रपादाय धीमहि तन्नो वृषभः प्रचोदयात् ।

२६. ,, गुरुदेवाय विद्महे परब्रह्माय धीमहि । तन्नो गुरुः प्रचोदयात् ।

२७. ,, मन्मथेशाय विद्महे कामदेवाय धीमहि । तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ।

२९. (क) ,, सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचो० ।
(ख) ,, चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।

३१. काली — ॐ कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि ।
तन्नोऽघोरा प्रचोदयात् ।"

३२. तारा — ,, महोग्रायै विद्महे तारायै धीमहि । तन्नो देवी
प्रचोदयात् ।"

३३. षोडशी — ,, ऐं त्रिपुरादेव्यै विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै धीमहि ।
[त्रिपुरसुन्दरी] सौस्तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।"

३४. भैरवी — ,, त्रिपुरायै च विद्महे भैरव्यै च धीमहि तन्नो
देवी प्रचोदयात् ।

३५. भुवनेश्वरी ,, नारायण्यै च विद्महे भुवनेश्वर्यै च धीमहि ।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ।"

३६. छिन्नमस्ता ,, वैरोचिन्यै च विद्महे छिन्नमस्तायै धीमहि ।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ।

३७. धूमावती ,, धूं धूमावत्यै च विद्महे विवर्णादेव्यै धीमहि ।
तन्नो घोरे प्रचोदयात् ।"

३८. मातङ्गी ,, शुकप्रियायै विद्महे श्रीकामेश्वर्यै धीमहि । तन्नः
श्यामा प्रचोदयात् ।"

३९. बगलामुखी ,, बगलामुख्यै विद्महे दुष्टस्तम्भन्यै धीमहि । तन्नो

---

३१ ॐ कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि । तन्नो देवी ,, ।

३२. (क) ,, तारायै च विद्महे महोग्रायै च धीमहि ,, ,, ,, ।
(ख) ,, एकाजटायै ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।

३३. (क) ,, क्लीं त्रिपुरादेव्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि । तन्नः क्लिन्ने प्र० ।
(ख) ,, त्रिपुरा देवि विद्महे शक्तीश्वरि च धीमहि । तन्नोऽमृता प्रचो० ।
[महात्रिपुरसुन्दरीपूजापद्धति (दतिया)]

३५. ,, भुवनेश्वर्यै च विद्महे आद्यायै धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ।

३७. ,, धूमावत्यै च विद्महे संहारिण्यै च धीमहि । तन्नो धूमा ,, ।

३८. ,, मातङ्ग्यै च विद्महे उच्छिष्टचाण्डाल्यै च धीमहि । तन्नो देवी प्र०

देवी प्रचोदयात्[३९]।

४०. त्वरिता ॐ त्वरितायै विद्महे महानित्यायै धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।

४१. अन्नपूर्णा ,, भगवत्यै च विद्महे माहेश्वर्यै च धीमहि। तन्नोऽन्नपूर्णा प्रचोदयात्।

४२. सरस्वती ,, ऐं वाग्देव्यै च विद्महे सरस्वत्यै च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।

४३. गङ्गा ,, भागीरथ्यै च विद्मह विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो गङ्गा प्रचोदयात्।

४४. शङ्ख ,, पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि। तन्नो शङ्खः प्रचोदयात्।

४५. यन्त्र ॐ यन्त्रराजाय विद्महे वरप्रदाय धीमहि। तन्नो यन्त्र प्रचोदयात्।[४५]

४६. अग्नि ,, पावकाय विद्महे सप्तजिह्वाय धीमहि। तन्नो वह्निः प्रचोदयात्।

४७. व्यास ,, पूर्णज्ञानाय विद्महे पूर्णानन्दाय धीमहि। तन्नो व्यासः प्रचोदयात्।

नवग्रह गायत्री—

४८. सूर्य ॐ आदित्याय विद्महे प्रभाकराय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।[४८]

३९. (क) ॐ बगलामुख्यै च विद्महे स्तम्भन्यै च धीमहि। तन्ना देवा प्र०
(पं० शिवदत्तमिश्र कृत बगलोपासनापद्धति)
(ख) ,, कुलकुमार्यै विद्महे पीताम्बरायै धीमहि। तन्नो बगला प्र०।
(बगलापूजापद्धति, प्रयाग)
(ग) ,, ह्लीं बगलामुखीं विद्महे दुष्टस्तम्भनीं धीमहि। तन्नः शक्तिः प्र०
(श्रीबगलामुखीरहस्यम् (दतिया) पृ० ३६८)

४५. ,, यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि। तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्।

४८. द्र० पीछे, पृ० २६७, क्रमसंख्या ५ एवं टि० ५।

४९. चन्द्र ॐ अमृताङ्गाय विद्महे कलारूपाय धीमहि। तन्नः सोमः प्रचोदयात्।[४९]

५०. भौम ,, अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि। तन्नो भौमः प्रचोदयात्।

५१. बुध ,, सौम्यरूपाय विद्महे बाणेशाय धीमहि। तन्नः सौम्यः प्रचोदयात्।[५१]

५२. बृह० ,, आङ्गिरसाय विद्महे दिव्यदेहाय धीमहि। तन्नो जीवः प्रचोदयात्।[५२]

५३. शुक्र ,, भृगुजाय विद्महे दिव्यदेहाय धीमहि। तन्नः शुक्रः प्रचोदयात्।[५३]

५४. शनि ,, सूर्यपुत्राय विद्महे मृत्युरूपाय धीमहि। तन्नः सौरिः प्रचोदयात्।[५४]

५५. राहु ,, शिरोरूपाय विद्महे अमृतेशाय धीमहि। तन्नो राहुः प्रचोदयात्।

५६. केतु ,, पद्मपुत्राय विद्महे अमृतेशाय धीमहि। तन्नः केतुः प्रचोदयात्।

प्राणसूक्त-जप—

तब प्राण-सूक्त का जप करे। [ऋग्वेदीय प्राणसूक्त में 'असुनीते०'[१]

४९. (क) ॐ अमृताङ्गाय विद्महे कलारूपाय धीमहि। तन्नश्चन्द्रः प्रचो०।
(ख) ,, अत्रिपुत्राय विद्महे सागरोद्भवाय धीमहि। ,, ,,
(ग) ,, क्षीरपुत्राय विद्महे अमृततत्त्वाय धीमहि। ,, ,,

५१. ॐ सौम्यरूपाय विद्महे बाणेशाय ,, तन्नो बुधः ,,

५२. ,, आङ्गिरसाय विद्महे दण्डायुधाय ,, ,, जीवः ,,

५३. ,, भृगुसुताय विद्महे दिग्देशाय ,, तन्नः शुक्रः ,,

५४. ,, भगभवाय विद्महे मृत्युरूपाय ,, तन्नो शनिः ,,

५६. ,, गदाहस्ताय विद्महे अमृतेशाय ,, तन्नः केतुः ॥

१. असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।

और 'पुनर्नो०'[२] इत्यादि मन्त्र हैं। यजुर्वेद में प्राणसूक्त के स्थानापन्न मन्त्रों के रूप में 'यः प्राणतो निमिषतो०'[३] (ऋग्वेद में भी), प्राणश्च मेऽपानश्च मे०'[४], 'शिरो मे श्रीर्यशो०'[५], 'पुनर्मनः पुमरायुर्मं आऽगन्०'[६] 'प्राणाय मे वर्चोदा०'[७] 'मनो मे तर्पयत०',[८] 'प्राणपा मे०'[९] 'प्राणं मे पाह्य-

ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति ॥
ऋग्वेद १०।५९ ६ (संस्काररत्नमाला पृ० ७५५ में प्राणप्रतिष्ठा प्रसग में उद्धृत)

२. पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां३ या स्वस्तिः ॥
(ऋ० १०।५९ ७)

३. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(ऋ० १०।१२१ ३; यजु० २३।३; २५।११)

४. प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं
च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे
चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं
च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ (यजु० १८ २)

५. शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ (यजु० २०।५)

६. पुनर्मनः पुनरायुर्म आऽगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म
आऽगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आऽगन्।
वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ (यजु० ४।१५)

७. प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतुदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ (यजु० ७।२७)

८. मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वि तृषन् ॥ (यजु० ६।३१)

९. प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे।

पाणं मे पाहि०'[१], 'आयुर्मे पाहि०'[२] 'अयं पुरो भुवस्तस्य०',[३] 'अयं दक्षिणा०'[४], 'अयं पश्चाद्०',[५] 'इदमुत्तरात्०',[६] 'इयमुपरि०',[७] 'ऐन्द्रा

वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ (यजु० २०।३४)

१. प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या वि भाहि श्रोत्रं मे श्लोकय अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय
(यजु० १४।८)

२. आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥
(यजु० १४ १७)

३. अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥
(यजु० १३।५४)

४. अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारं स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात् पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥
(यजु० १३।५५)

५. अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात् सप्तदशः सप्तदशाद् वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥
(यजु० १३।५६)-

६. इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रं सौवं शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकविंश एकविंशाद् वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ (यजु० १३।५७।)

७. इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पंक्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रायण आग्रायणात् त्रिणव त्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वररैवते विश्वकर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ता इन्द्रम् ॥ (यजु० १३।५८)

प्राणो०',[1] 'अपां पेरु०',[2] 'सं ते मनो०',[3] 'विश्वस्मै प्राणाया-पानाय०',[4] 'विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं०',[5] 'विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्०',[6] 'वाचं

---

१. ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे नि दीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः ।
देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥
(यजु० ६।२०)

२. अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित् सद्देवहविः ।
स ते प्राणो वातेन गच्छताꣳ समङ्गानि यजत्रैः स यज्ञपतिराशिषा ॥
(यजु० ६।१०)

३. सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणा-त्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णोरꣳह्या ऊष्मणा व्यथिषत् प्रयुतं द्वेषः ॥ (यजु० ६।१८)

४. विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
अग्निष्ट्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतया-
ऽङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद ॥
(यजु० १३।१९)

५. विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं
यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
वायुष्ट्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया
देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ (यजु० १४।१२)

६. विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ (यजु० १४।१४)

ते शुन्धामि०',[1] 'मनस्त आ प्यायतां०',[2] 'प्राणाय स्वाहा०',[3] इत्यादि मन्त्रों का पाठ किया जा सकता है।[4] प्राणसूक्त का पाठ प्राण-शक्ति का संवर्धन-कारक माना गया है।[5]

षोडश-संस्कार सम्पादन—

इस प्रकार स्थापित देवता का पञ्चोपचार पूजन करके षोडश बार प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके देवता के गर्भाधानादि विवाह पर्यन्त षोडश संस्कारों (कुछ विद्वानों के मत में पञ्चदश संस्कारों) की भावना करे। और अन्त में 'अनेन अस्या अमुक देवप्रतिमायाः गर्भाधानादि षोडष (अथवा पञ्चदश) संस्कारान् संपादयामि' ऐसा कहे।

अथवा प्रत्येक संस्कार के निमित्त अधोलिखित वाक्य बोले—

१. ॐ अमुक देवस्य गर्भाधानं सम्पादयामि ।
२. ,, ,, पुंसवनं ,, ।
३. ,, ,, सीमन्तोन्नयनं ,, ।
४. ,, ,, जातकर्म ,, ।

---

१. वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि । (यजु० ६।१४)

२. मनस्त आ प्यायतां वाक्त आ प्यायतां प्राणस्त आ प्यायतां चक्षुस्त आ प्यायताꣳ श्रोत्रं त आ प्यायताम् ।
यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः । (यजु० ६।१५)

३. प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ (यजु० २२।२३)।

४. प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव के अनुसार इन प्राणमन्त्रों का अथवा प्राणसूक्त का जप करे।

५. प्राणसूक्तं च कथितं तथा प्राणविवर्द्धनम् । विष्णुधर्मोत्तर २।१२७।३६

[सान्निध्य-प्रार्थनम्]

सान्निध्य कुर्यात्—

नमस्ते त्यक्तसङ्गाय सन्तोषपरमात्मने ।
ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोऽनुशालिने ॥ १ ॥
गुणातिक्रान्तवेगाय पुरुषाय महात्मने ।
अव्यक्ताय पुराणाय विष्णो सन्निहितो भव ॥ २ ॥
भगवन् देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् ।
त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३ ॥

५. ॐ अमुकदेवस्य		नामकरणं सम्पादयामि	।
६. ,,	,,	निष्क्रमणं ,,	।
७. ,,	,,	अन्नप्राशनं ,,	।
८. ,,	,,	चूडाकरणं ,,	।
९. ,,	,,	उपनयनं ,,	।
१०-१३. ॐ	,,	वेदव्रतचतुष्टयं ,,	।
१४. ,,	,,	गोदानं ,,	।
१५. ,,	,,	व्रतविसर्गं ,,	।
१६. ,,	,,	विवाहं ,,	।

तत्पश्चात् षोडशोपचारों से पूजन अथवा राजोपचारों से पूजन करना चाहिए ।

प्रतिमा में देवता के सान्निध्य हेतु प्रार्थना—

आसक्तिरहित, सन्तोषमय, ज्ञानविज्ञानरूप, ब्रह्मतेज से युक्त परमात्मा को नमस्कार है । १

गुणों को वेग से अतिक्रान्त करने वाले (त्रिगुणातीत), परमपुरुष, महात्मा (परमात्मा), अव्यक्त और पुराण-पुरुष हे विष्णो ! आप इस प्रतिमा में सन्निहित होकर रहें । २

हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! आप सभी देहधारियों के पिता हैं । आप समस्त स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) जगत् में व्याप्त हैं । ३

त्वमिन्द्रः पावकश्चैव यमो निर्ऋतिरेव च ।
वरुणो मारुतः[1] सोम ईशानः प्रभुरव्ययः ॥ ४ ॥
येन रूपेण भगवन् त्वया व्याप्तं चराचरम् ।
तेन रूपेण देवेश अर्चायाः सन्निधो भव ॥ ५ ॥
सर्वमन्त्रादिसंयुक्तो लोकानुग्रहकाम्यया ।
अत्रार्चायां महादेव[2] भव सन्निहितः सदा ॥ ६ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ यावद्यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
तावत्त्वया देवेश स्थातव्यं स्वेच्छया प्रभो ॥ ७ ॥ इति ।

[परिवार देवता-स्थापनम्]

अथ स्थापितस्य परिवारदेवताः ।

आप ही इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, और अव्यय प्रभु-परमात्मा हैं ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! आप जिस रूप से चराचर जगत् में व्याप्त हैं, हे देवेश ! आप उसी रूप से इस अर्चा-विग्रह (प्रतिमा) में सन्निहित होवें ॥ ५ ॥

हे महादेव ! [विष्णु की स्थापना में—हे महाविष्णो !] आप लोकानुग्रह की कामना से सभी मन्त्रों आदि की शक्तियों से संयुक्त होकर इस अर्चाविग्रह (प्रतिमा) में सदैव सन्निहित रहें । ६ ॥

हे देवेश ! हे प्रभो ! जब तक सूर्य तथा चन्द्रमा विद्यमान हैं । तथा जब तक पृथिवी स्थित है तब तक आप स्वेच्छया यहाँ पर इस मूर्ति में स्थित रहें ॥ ७ ॥

परिवार-देवता-स्थापन

स्थापित देवता को प्रधान देवता के रूप में स्वीकार करते हुए

---

१. उ्यानिलः । पाठान्तर

२. विष्णु को स्थापना में 'महाविष्णो' और अन्य देवता की स्थापना में तत्तन्नामानुसार ऊह करना चाहिए ।

नन्दि-महाकाल-वृषभ-भृंगि-रिटि-स्कन्दोमा-विनायक-विष्णु-ब्रह्म-जयन्तेन्द्राग्नि यम-निर्ऋति-वरुण-वायु-सोमेशानाप्सरोगण-गन्धर्व-गुह्यक-विद्याधरादीन् रुद्रस्य।

ब्रह्मणो विष्ण्वादयः परिवारदेवताः। विष्णोर्ब्रह्मादयः। एवं चण्डीविनायकादीनामपि परिवारकल्पनम्।

उसके चारों ओर परिवार देवताओं की स्थापना करे[1]। परिवार देवताओं का विवरण इस प्रकार है—

शिव के परिवार देवता—

नन्दी, महाकाल, वृषभ, भृङ्गी, रिटि, स्कन्द, उमा विनायक, विष्णु, ब्रह्मा, जयन्त, इन्द्र, अग्नि यम निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, अप्सरागण, गन्धर्व, गुह्यक विद्याधर आदि शिव के परिवार देवता हैं। [शिव के सहित इन सब की संख्या २४ होती है]।

विष्णु आदि के परिवार देवता—

ब्रह्मा के परिवार देवता विष्णु आदि हैं। विष्णु के परिवार देवता ब्रह्मादि है। चण्डी और विनायक के परिवार देवता वही हैं जो शिव के हैं[2]। इसी प्रकार अन्य देवताओं के भी परिवार की कल्पना कर लेनी चाहिए। [यथा—सूर्य के परिवार देवता दण्ड, पिङ्गल, माठर, अरुण आदि हैं[3]। राम के परिवार देवताओं में सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, सुग्रीव अङ्गद, विभीषण, आदि हैं। कृष्ण के परिवार देवता बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,

---

१. स्थापितं देवं प्रधानं कृत्वा तस्य परितः परिवारदेवताः स्थापयेत्।
सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १२६

२. विष्णोर्ब्रह्मादयश्चतुर्दश परिवारदेवताः, ब्रह्मणो विष्ण्वादयश्चतुर्दश-परिवारदेवताः। शक्तिविनायकयोरपि शिवस्यैव परिवारदेवताश्चतुर्विंशतिः। प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ४७४।

३. द्रष्टव्य सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १२६।

[कुण्डेषु अङ्गहोमः]

तत कुण्डेष्वङ्गहोमः। ततः पूर्वकुण्डे हृदयमन्त्रेणाज्याहुतिर्विंशतिकम् दक्षिणकुण्डे शिरोमन्त्रेण। पश्चिमे शिखामन्त्रेण। उत्तरे कवचमन्त्रेण। आचार्यकुण्डे नेत्रमन्त्रेण। पुनः पूर्वकुण्डेऽस्त्र-मन्त्रेणेति।

उद्धव, राधा, गोप-गोपियाँ आदि हैं। प्रधान देवता की स्थापना के पश्चात् परिवार देवताओं की स्थापना की जाती है]।

परिवार देवताओं के लिए होम-मन्त्र—

इस प्रसंग में पं० दौलत राम गौड़ जी ने रुद्र के परिवार देवताओं के लिए वैदिक मन्त्र अथवा नाम मन्त्र से होम विहित किया है[1]।

अङ्गहोम—

तदनन्तर आचार्य पाँचों कुण्डों में (एक कुण्डी पक्ष में केवल एक ही कुण्ड में) घृत से अङ्गहोम करे[2]। यथा—

---

१. शिव के परिवार देवताओं के नाममन्त्रों और वैदिक मन्त्रों के विवरण हेतु द्रष्टव्य—पं० दौलतराम गौड़ कृत–प्रतिष्ठामयूख, भाषाटीका, पृ० १५८ तथा प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ४७३।

२ (क) हृदयं पूर्वकुण्डे तु दक्षिणे तु शिरस्तथा।
पश्चिमे तु शिखां कुर्यादुत्तरे कवचं तथा॥ १३१
नेत्रास्त्रयोर्न कार्योऽत्र होमः स्यान्मूर्तिभिस्तु वा।
समिदाज्यचरून् लाजान् सर्षपांश्च यवांस्तिलान्॥ १३२
व्रीहीनाज्यं पुनश्चैवं सर्वकुण्डेषु होमयेत्।
मूलेनाष्टसहस्रन्तु तदाचार्यस्तु होमयेत्।
शतमष्टोत्तरं चात्र पूर्णां दद्यात् शते शते॥
विष्णुसंहिता १७।१३१–१३२

(ख) ततः कुण्डेष्वङ्गहोमः शान्तिद्रव्येण कार्यः।
–सर्वदेव-प्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १२६।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाᳩ सुरे स्वाहा ॥ हृदयाय नमः स्वाहा । इस वैदिक मन्त्र से अथवा—'ॐ विष्णवे नमो हृदयाय नमः स्वाहा ।' इस नाम मन्त्र से विष्णु की स्थापना में तथा अन्य देवों की स्थापना में उनके वैदिक मन्त्र से अथवा नाममन्त्र से बीस बार पूर्वकुण्ड में हवन करे।

(ग) अत्राङ्गहोमो हृदयमन्त्रेण शिरोमन्त्रेण कार्यः इत्युक्तम् । तत्र किं 'ॐ हृदयाय नमः स्वाहा—इति मन्त्रः । उत ॐ नमः स्वाहा—इति मन्त्रः, उत तत्तदेवताको वैदिको वा मन्त्रः, उत तान्त्रिको वा मन्त्रः । तत्र नाद्यः प्रायेण अस्य मन्त्रस्य अन्यमन्त्रपूर्वकतया दृष्टत्वात् । (यथा-महारुद्रादौ अङ्गन्यासे 'ॐ मनो जूतिजुं०' इत्युच्चार्य हृदयाय नमः—इति प्रयुज्यते न स्वतन्त्रतया ॥ न द्वितीयः । तस्य सङ्केतोपयोगित्वात् न तृतीयः षडङ्गत्वाभावात् । न चतुर्थः । एकस्या देवताया अनेकमन्त्रास्तेषां मध्ये कस्य अङ्गानि ग्राह्याणीति विनिगमनाविरहात् । तस्मात् 'अङ्गहीनस्य मन्त्रस्य स्वेनैवाङ्गानि कल्पयेत्' इति शारदातिलकवचनात् । ॐ विष्णवे हृदयाय नमः स्वाहा । ॐ विष्णवे नमः शिरसे स्वाहा । ॐ विष्णवे नमः शिखायै वषट् स्वाहा । इत्यादि प्रकारको बोध्यः । अत्राद्ये मन्त्रे नमोऽन्तस्य मन्त्रत्वात् नमः पदप्रयोगः कार्य एव । नमस्ते रुद्र—इति मन्त्रे० मुतते नमः स्वाहेति वत् । द्वितीयमन्त्रे— मन्त्रान्ते या वह्निजाया सा तु मन्त्रस्वरूपिणी । तदन्तेऽन्यां प्रयुञ्जीत ध्यायन्वै मन्त्रदेवताम् ॥ इति वचनात् स्वाहान्तस्य मन्त्रतया तदन्ते द्वितीयः स्वाहा शब्द प्रयुक्तः । अयं द्वितीयः स्वाहा शब्दस्तान्त्रिकमन्त्रेष्वेव प्रयोक्तव्यो न वैदिकेषु । तत्र मन्त्रस्य स्वाहापदे एव होम कार्यः । उक्त वचनस्य तान्त्रिकत्वात् । वैदिको वा तथा कृत्वा ग्राह्यः । ॐ इदं विष्णुर्वि० सुरे हृदयाय नमः स्वाहा । इत्यादि । (—पं० दौलतराम गौड़ कृत प्रतिष्ठामयूख भाषाटीका, पृ० १५९-१६० से साभार ।)

[आयुधमन्त्रैर्होमः]
तत आयुधमन्त्रैर्हुत्वा

इसी प्रकार स्थापित देवता के वैदिक मन्त्र या नाममन्त्र के साथ 'शिरसे स्वाहा' इस शिरोमन्त्र का उच्चारण करके दक्षिण कुण्ड में 'शिखायै वषट् स्वाहा' से पश्चिम कुण्ड में, 'कवचाय हुम् स्वाहा' से उत्तर कुण्ड में, 'नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा' से, आचार्य कुण्ड में और पुनः पूर्वकुण्ड में 'अस्त्राय फट्' से बीस बार होम करे। इसका स्पष्टीकरण नीचे देखा जा सकता है—

पूर्वकुण्डे—ॐ विष्णवे नमो हृदयाय नमः स्वाहा ।
दक्षिणकुण्डे—ॐ विष्णवे नमः शिरसे स्वाहा ।
पश्चिम कुण्डे —ॐ विष्णवे नमः शिखायै वषट् स्वाहा ।
उत्तरकुण्डे—ॐ विष्णवे नमः कवचाय हुम् स्वाहा ।
आचार्यकुण्डे—ॐ विष्णवे नमः नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा ।
पुनःपूर्वकुण्डे—ॐ विष्णवे नमः अस्त्राय फट् स्वाहा ।

दूसरे देवताओं की प्रतिष्ठा में विष्णु के नाम-मन्त्र के स्थान पर तत्तत् (स्थापित) देवता के वैदिकमन्त्र या नाम-मन्त्र के साथ 'हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि अङ्गमन्त्रों को जोड़ कर होम करे। यह विधान पञ्चकुण्डी पक्ष में है। एककुण्डी पक्ष में एक ही कुण्ड में अङ्गहोम होगा। यह अङ्गहोम आचार्यकर्तृक ही है।

आयुध मन्त्रों से होम—

तत्पश्चात् आचार्य स्थापित देवता के आयुध मन्त्रों से होम करे। शिव और दुर्गा की प्रतिष्ठा में आयुध होम अधोलिखित नाम मन्त्रों से करे—

(१) ॐ वज्राय स्वाहा ।
(२) „ शक्तये „ ।
(३) „ दण्डाय „ ।
(४) „ खड्गाय „ ।

[स्थापित देवस्य प्रार्थना]

प्रार्थयेत्—

लोकानुग्रहहेत्वर्थं स्थिरो भव सुखासने।
सान्निध्यं हि सदा देव प्रत्यहं पारवर्तय ॥ १ ॥
मा भूत्पूजाविरामोऽस्मिन्यजमानः समृध्यताम्।
संपालय सतां राष्ट्रं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥ २ ॥

(५) ॐ पाशाय स्वाहा।
(६) ,, अङ्कुशाय स्वाहा।
(७) ,, गदायै स्वाहा।
(८) ,, त्रिशूलाय स्वाहा।

विष्णु प्रतिष्ठा में आयुध मन्त्रों से होम का क्रम इस प्रकार बतलाया गया है—

(१) ॐ खड्गाय स्वाहा।
(२) ,, शार्ङ्गाय ,, ।
(३) ,, मुसलाय ,, ।
(४) ,, हलाय ,, ।
(५) ॐ चक्राय ,, ।
(६) ,, शंखाय ,, ।
(७) ,, गदायै ,, ।
(८) ,, पद्माय ,, ।

स्थापित देव की प्रार्थना—

हे देव! लोक के अनुग्रह हेतु आप सुखप्रद आसन में स्थिर होवें और प्रतिदिन सदैव यहाँ इस प्रतिमा के सान्निध्य में विराजमान रहें ॥ १ ॥

आपकी इस प्रतिमा की पूजा कभी अवरुद्ध न हो। इसको स्थापित करने वाला यजमान समृद्धिशाली बने। आप सत्पुरुषों से युक्त राष्ट्र को सभी उपद्रवों से मुक्त बनाकर उसका पालन करें ॥२॥

क्षेमेण वृद्धिमतुलां सुखमक्षय्यमश्नुताम्।
इति संप्रार्थ्य विधिना देवं साङ्गं तमर्चयेत् ॥ ३ ॥

इति।

[दिक्पाल स्थापनम्]

ततो बहिरिन्द्रादीन् तत्तन्नाममन्त्रैः स्थापयेत्।

[द्वारपाल-स्थापनम्]

विष्णुश्चेच्चण्डप्रचण्डजयविजयादीन्। शिवश्चेन्नन्दिमहाकाल-भृङ्गिगणेशादीन्। सूर्यश्चेद्दण्डपिङ्गलमाठराडादीन्।

इस राष्ट्र के सभी नागरिक सकुशल रहते हुए अतुल वृद्धि तथा अक्षय्य सुख को प्राप्त करें।

इस प्रकार प्रार्थना करके स्थापित देवता का साङ्ग पूजन करे ॥ ३ ॥

दिक्पाल-स्थापन—

तत्पश्चात् प्रासाद के बाहर पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों का स्थापन प्रतिमा या उसके अभाव में अक्षतपुञ्जों में करे।[1]

द्वारपाल-स्थापन—

विष्णु की स्थापना में प्रासाद के द्वार के दाहिनी ओर 'ॐ चण्डं जयं च स्थापयामि' और बाँयी ओर 'ॐ प्रचण्डं विजयं च स्थापयामि' कहते हुए क्रमशः चण्ड और जय तथा प्रचण्ड और विजय की स्थापना तथा वहीं पर विष्वक्सेन की भी स्थापना करे।[2]

शिव की स्थापना में प्रासाद-द्वार के दाँयी ओर तथा बाँयी ओर क्रमशः नन्दी (नन्दिकेश्वर) और महाकाल तथा भृङ्गी और गणेश की स्थापना प्रतिमा में अथवा उसके अभाव में अक्षतपुञ्जोपरि

१. दिक्पालों के वैदिक मन्त्रों के लिए देखिए—पीछे पृ० १५६–५७।

२. ततः प्रासाद-द्वारदेशे दक्षे विष्णोः 'चण्डं जयं च स्थापयामि', वामे 'प्रचण्डं विजयं च स्थापयामि',...तत्रैव विष्वक्सेनं च स्थापयेत्। सर्वदेव-प्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १२६।

[वाहनस्थापनम्]

अथ शिवस्य वाहनादि स्थाप्य पूजयेत् ।

करे ।

सूर्य की स्थापना में प्रासाद द्वार के दाँयी ओर और बांयी ओर क्रमशः दण्ड एवं पिङ्गल और माठर एवं अरुण की स्थापना प्रतिमा में अथवा उसके अभाव में अक्षतपुञ्जोपरि करे ।

वाहन स्थापन—

तत्पश्चात् प्रासाद के आगे बने हुए मण्डप में स्थापित देवता शिव (या विष्णु या अन्य जो भी हो) के वाहन की स्थापना वैदिक मन्त्र अथवा नाममन्त्र से करे। शिव का वाहन नन्दी,[1] विष्णु का गरुड[2], देवी का सिंह[3], गणपति का मूषक[4], स्कन्द का मयूर, रामचन्द्र का हनुमान्, ब्रह्मा का हंस[5], सूर्य का अश्वयुक्त रथ[6], तथा भैरव का

१. ॐ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः ... । यजु० १७।३३

२. ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृँह ॥ यजु० १७।७२

३. ॐ खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिँहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ यजु० २४।४०

४. एष ते रुद्रः भागः सह स्वस्रा... । यजु० ३।५७

५. हँसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिसदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ यजु० १०।२४; १२।१४ ।

६. ॐ वातरँहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ यजु० ९।९

[स्थापितदेवस्यावाहनम्]

[आवाहयेत् तदा रुद्र मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥ ४४]

यस्य सिंहा रथे युक्ता व्याघ्रा भूतास्तथोरगाः ।
ऋषयो लोकपालाश्च देवः स्कन्दस्तथा वृषः ॥ ४५ ॥
प्रिया गणा मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः ।
नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः ॥ ४६ ॥
तमहं त्र्यक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।
आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम् ॥ ४७ ॥
आगच्छ भगवन् रुद्रानुग्रहाय शिवो भव ।
शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः ॥ ४८ ॥

(मत्स्य २६६।४४-४८)

कुक्कुर[1] वाहन है। इनमें से प्रत्येक वाहन का यथोपलब्ध वैदिक मन्त्र पीछे पृ० २८६ की टिप्पणी में उद्धृत हैं। वाहन का स्थापन गर्भगृह में नहीं करना चाहिए।

स्थापित देवता–शिव का आवाहन—

मत्स्यपुराण के अनुसार स्थापित देवता रुद्र का आवाहन 'यस्य सिंहा रथे युक्ता०' इत्यादि मन्त्रों से करे जिनका आशय इस प्रकार है—

जिनके रथ में सिंह, व्याघ्र, भूतगण, नाग, ऋषिगण, लोकपाल, देवता, स्कन्द, वृषभ, प्रमथादि गण, मातृकाएँ, सोम (चन्द्रमा), विष्णु, ब्रह्मा, सर्प, यक्ष, गन्धर्व तथा अन्य आकाशचारी जीव जोते गये हैं उन तीन नयनों वाले ईशान, उमापति, वृषभ-ध्वज, रुद्र–शिव का उनके गणों तथा उनकी पत्नी सहित मैं आवाहन करता हूँ। हे भगवन् रुद्र! आप आवें और भक्तानुग्रह हेतु कल्याणकारक (शिव) बनें। इस प्रतिमा में शाश्वत (सदा के लिए विराजमान) होवें और मेरी पूजा ग्रहण करें। आपको बारम्बार नमस्कार है।

१. ॐ खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः... । यजु० २४।४०

[स्वागतवचनम्]

स्वागतमनुस्वागतं भगवते नमो नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय ।

[अर्घ्यादिदानम्]

प्रतिगृह्णातु भगवन्मन्त्रपूतमिदमर्घ्यं पाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा । इति । 'आगच्छ भगवान्न' इत्यादिका मन्त्रा ऊहेन सर्वसाधारणाः ।

यदि स्थापित देवता विष्णु या अन्य कोई हो तो उसका आवाहन तत्तद् देवता लिङ्गक मन्त्रों से करना चाहिए।

स्वागत वचन—

तब उमा और प्रमथगणों तथा परिवार देवताओं सहित शिव का स्वागत इन शब्दों से करे—

'स्वागतमनुस्वागतं भगवते नमो नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय ।

अर्घ्यादिदान—

तब 'प्रतिगृह्णातु भगवन् मन्त्रपूतमिदमर्घ्यं पाद्यमाचमनीयमासन ब्रह्मणाभिहित नमो नमः स्वाहा' इन वचनों से क्रमशः अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और आसन प्रदान करे। यदि स्थापित देवता कोई अन्य हो तो ऊपर आवाहन प्रकरण में कथित 'आगच्छ भगवन् रुद्र' इत्यादि मन्त्र में रुद्र पद के स्थान में उस देवता के बोधक शब्द का प्रयोग करना चाहिए तथा स्वागत और अर्घ्यादि दान के मन्त्रों में भी ऊह करके उसी (स्थापित) देवता के बोधक शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार ऊह करने से उपर्युक्त मन्त्रों को अन्य स्थापित देवता के लिए भी समान रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है। यथा—विष्णु की स्थापना में आवाहन आदि इस प्रकार होगा—

'आगच्छ भगवन् विष्णो लोकानुग्रहहेतवे ।
शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः ॥

[पञ्चामृतस्नानम्]

एवं संपूज्य दधिदुग्धघृतमधुशर्कराख्यैः समन्त्रैर्मध्ये सुगन्धजलयुतैः स्नापयेत् ।

[देवस्य पाद-नाभि-वक्षःस्थलादिस्पर्शः]

ततो 'यज्जाग्रतो०' 'तस्माद् विराट्०' । 'सहस्रशीर्षा०' 'अभि-

स्वागतमनुस्वागतं भगवते नमो नमः श्रीसहिताय सपार्षदाय सपरिवाराय । प्रतिगृह्णातु०० ।' इससे अर्घ्यादि प्रदान करे ।

पञ्चामृत स्नान—

इस प्रकार अर्घ्य, पाद्य, आचमन आदि से पूजा करके क्रमशः दुग्ध, दधि, घृत, मधु और शर्करा से तथा इनके बीच-बीच में सुगन्धित जल से तत्तद् द्रव्य के वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हुए स्नान करावे ।

यथा—

१. दुग्धस्नान—आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ।।

२. शुद्धोदक स्नान।

३. दधिस्नान—दधि क्राव्णो अकारिषं०० ।

४. शुद्धोदक स्नान ।

५. घृतस्नान—घृतं मिमिक्षे०० अथवा 'घृतं घृतपावानः००' ।

६. शुद्धोदक स्नान ।

७. मधुस्नान—मधु वाता ऋतायते ।

८. शुद्धोदक स्नान ।

९. शर्करास्नान—आयं गौः पृश्निरक्रमीत्० (यजु० ३।६) ।

१०. शुद्धोदक स्नान ।

देवता के चरण, नाभि, वक्षःस्थल और शिर का स्पर्श—

तदनन्तर 'यज्जाग्रतो०'[1] 'तस्माद् विराडजायत० (ततो विराड-

---

1. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ऋ० परि० ३३।३; यजु० ३४।१

त्वा शूर नोनुमो०' 'पुरुष एवेदम्०' ; 'त्रिपादूर्ध्व०' ; 'येनेदं भूतम्०' 'न त्वावां अन्यो दिव्यो०' । इति चतुःकृत्वो जपेत् । प्रतिपर्यायं च जलेन देवस्य पादौ नाभिं वक्षः शिरश्च स्पृशेत् ।

जायत०),[1] 'सहस्रशीर्षा०',[2] 'अभि त्वा शूर नो नुमो०',[3] 'पुरुष एवेदम्०',[4] 'त्रिपादूर्ध्व०',[5] 'येनेदं भूतं०',[6] 'न त्वावां अन्यो दिव्यो',[7] इन मन्त्रों का क्रमशः चार बार पाठ करते हुए क्रमशः जल से देवता के चरणों, नाभि, वक्षःस्थल और शिर का स्पर्श करे अर्थात् प्रथम बार उक्त मन्त्रों के पाठ के अन्त में जल से देवता के चरणों का स्पर्श, दूसरी बार के पाठ के अन्त में जल से देवता की नाभि का

1. तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ऋ० १०।९०।५; द्र०-ततो विराडजायत विराजो० । यजु० ३१।५
2. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ऋ० १०।९०।१; तु० सहस्रशीर्षा.... स भूमि सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ यजु० ३१।१
3. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ऋ० ७।३२।२२; यजु० २७।३५
4. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ऋ० १०।९०।२; तु० यजु० ३१।२ । यजुर्वेद में 'भव्यं' के स्थान पर 'भाव्यं' पाठ है ।
5. त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ ऋ० १०।९०।४; यजु० ३१।४
6. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि गृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ऋ० परि० ३३।१; यजु० ३४।४
7. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ऋ० ७।३२।२३; यजु० २७।३६; अथर्व० २०।१२१।२; साम० ६८१

[लिङ्गमन्त्रैः प्रार्थना]

ततो लिङ्गमन्त्रैः प्रार्थयेत्—

भगवन्देवदेवेश धर्मकामार्थमोक्षद ।
विद्या-विद्येश्वरै रुद्रैर्गणशैर्लोकपालकैः ॥ १
देवदानवगन्धर्व-यक्षैश्च किन्नरैः सह ।
अस्मिँल्लिङ्गे[1] महादेव सर्वदा वस वै प्रभो ॥ २
दासानामनुग्रहार्थाय पृथिव्यां स्वेच्छया प्रभो ।
परावरेण भावेन स्थातव्यं सर्वदा त्वया ॥ ३ ॥

स्पर्श, तीसरी बार के पाठ के अन्त में जल से देवता के वक्षःस्थल का स्पर्श और चौथी बार के पाठ के अन्त में जल से देवता के शिर का स्पर्श करे ।

सर्वदेवप्रतिष्ठा प्रकाश के अनुसार उपर्युक्त आठ मन्त्रों के स्थान पर केवल पाँच मन्त्रों 'ततो विराडजायत०' 'सहस्रशीर्षा पुरुषः', 'अभित्वा शूर नोनुमो०' 'पुरुष एवेदं०' और 'न त्वावाँ अन्यो दिव्यो०' के पाठ की प्रथम आवृत्ति के अन्त में जल से देवता के चरणों का स्पर्श, द्वितीय आवृत्ति के अन्त में जल से देवता की नाभि का स्पर्श तृतीय आवृत्ति के अन्त में जल से देवता के वक्षःस्थल का स्पर्श और चतुर्थ पर्याय के अन्त में जल से देवता के शिर का स्पर्श करना चाहिए ।

प्रार्थना—देवता-लिङ्गक मन्त्रों से (शिव की प्रार्थना)—

तब स्थापित-देवता बोधक मन्त्रों से उसकी प्रार्थना करे यथा—शिव की प्रार्थना इस आशय के मन्त्रों से की गयी है—

हे भगवन् ! देवाधिदेव ! महादेव ! प्रभो ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले आप विद्याओं, विद्येश्वरों, रुद्रों, गणेशों, (विनायकों), लोकपालों, देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों तथा किन्नरों के साथ इस लिङ्ग में सर्वदा निवास करें ॥ १-२ ॥

1. विष्णु-स्थापना में—'अस्यां मूर्तौ महाविष्णो । सर्वदा वस वै प्रभो ।'

सर्वविघ्नहरः पुंसां सर्वदुःखहरः सदा ।
सर्वदा यजमानस्य इच्छासंपत्करो भव ॥ ४ ॥
नमस्ते सर्वधर्माय सन्तोषविजितात्मने ।
ज्ञानविज्ञानतृप्ताय ब्रह्मतेजोभिशालिने ॥ ५ ॥
नमस्ते शुद्धदेहाय पुरुषाय महात्मने ।
स्थापकानां मूर्तिपानां शिल्पिनां च विभो सदा ।
ग्रामदेशनृपाणां च शान्तिर्भवतु सर्वदा ॥ ६ ॥
पूजकाराधकानां च भक्तानां भक्तवत्सल ।
सर्वेषां च जगन्नाथ इच्छासिद्धिप्रदो भव ॥ ७ ॥
[1]चन्द्रार्कावनिपर्यन्तं लिङ्गेऽस्मिन्परमेश्वर
स्थातव्यमनया सार्धं सर्वलोकानुकम्पया ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! आप इस पृथिवी में मनुष्यों को अनुगृहीत करने के लिए स्वेच्छया सदैव परावर भाव से इस मूर्ति में स्थित रहें ॥ ३ ॥ आप सदा मनुष्यों के सभी विघ्नों तथा दुःखों को दूर करने वाले और यजमान की इच्छा पूर्ण करने वाले एवं उसे धन-वैभव सम्पन्न करने वाले होवें ॥ ४ ॥

सर्व धर्ममय, सन्तोष भाव से आत्मजयी, ज्ञान विज्ञान से तृप्त, ब्रह्मतेजोमय, शुद्धदेह वाले, महात्मा और परम पुरुष स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥

मूर्ति की स्थापना करने वाले यजमान और आचार्य, मूर्ति की स्थापना में सहायक पुरोहितों-मूर्ति रक्षक ऋत्विजों, शिल्पियों, मूर्ति स्थापना में सहयोगी ग्राम, देश और वहाँ के राजा के राज्य में सर्वदा शान्ति हो ॥ ६

हे भक्तवत्सल ! हे जगन्नाथ ! आप अपनी पूजा तथा आराधना करने वाले सभी भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाले होवें ॥ ७ ॥

---

१. विष्णु की स्थापना में—
अस्यां मूर्तौ महाविष्णो सान्निध्यं सर्वदा कुरु ।
चन्द्रार्कावनि पर्यन्तं मूर्तावस्यां रमेश्वर ॥

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
तावत्त्वयाऽत्र देवेश स्थातव्यं स्वेच्छया विभो ॥ ९ ॥
इति ।

[षोडशोपचारपूजनम्]

ततः पुरुषसूक्तेन विष्णोः षोडशोपचारं कृत्वा पुराणमन्त्रैरन्यैर्वा स्तुत्वा नमेत् ।

हे देवेश ! जब तक सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथिवी की सत्ता रहेगी, हे प्रभो ! तब तक आप यहाँ (इस लिङ्ग में) स्वेच्छया स्थित रहें ॥ ८ ॥

पूजन—

तब स्थापित देवता यदि विष्णु हों तो उनका पुरुषसूक्त से षोडशोपचार पूजन करके पुराणोक्त मन्त्रों अथवा अन्य मन्त्रों से स्तुति करके प्रणाम करे ।

षोडशोपचार पूजन-मन्त्र—

१. आवाहनम्—ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।
आगच्छ देवदेवेश तेजोराशे जगत्पते ।
क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम ॥
श्रीविष्णवे नमः । आवाहनार्थं पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

२. आसनम्— ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

रम्यं सुशोभनं दिव्य सर्वसौख्यकरं शुभम् ।
आसनं च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥
श्रीविष्णवे नमः । आसनं समर्पयामि ।

३. पाद्यम्[1]—ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
उष्णोदकं (तीर्थोदकं) निर्मल च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं मे प्रतिगृह्यताम् ॥
श्रीविष्णवे नमः । पाद्यं समर्पयामि ।

४. अर्घ्यम्[2]—ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाऽभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥
अर्घ्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैयुतम् ।
ताम्रपात्रस्थितं चैव फलतोयसमन्वितम् ॥
श्रीविष्णवे नमः । अर्घ्यं समर्पयामि ।

५. आचमनीयम्[3]—
ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥
सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धि निर्मलं जलम् ।
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर ॥
श्रीविष्णवे नमः । आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

---

१. पाद्यपात्रे प्रदातव्या दूर्वा श्यामाकमेव च ।
पद्मं च विष्णुक्रान्तां च पाद्यसिद्धयै प्रपूजयेत् । पूजाप्रकाश पृ० १०५ ।

२. तथार्घ्यपात्रे दातव्या गन्धपुष्पयवाक्षताः ।
कुशाग्रतिलदूर्वाश्च सर्षपाश्चार्घ्य सिद्धये । पूजाप्रकाश, पृ० १०५ ।

३. एलालवङ्गकर्पूरकङ्कोलं जातिकाफलम् ।
मुराख्यां चैव षट् द्रव्याण्यादायाऽऽचामपात्रके ॥ पूजाप्रकाश, १०५ ।

६. स्नानम्—ॐ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥
गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीसरयूजलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव ह्यतः शान्तिं कुरुष्व मे ॥
श्रीविष्णवे नमः । स्नानं समर्पयामि ।

पञ्चामृतस्नानम् (एकतन्त्रेण)—
ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत् सरित् ॥ (यजु० ३४।११)
पयो दधि घृतं चैव मधु शर्करया युतम् ।
पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
श्रीविष्णवे नमः । पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।

पञ्चामृतस्नानम् (पृथक् पृथक् द्रव्यैः)—
पयः स्नानम्—ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।
पयस्वती प्र दिशः सन्तु मह्यम् ॥
(यजु० १८।३६)

कामधेनुसमुत्पन्नं सर्वेषां जीवनं परम् ।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ॥
श्री विष्णवे नमः । पयःस्नानं समर्पयामि । पयः स्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

दधिस्नानम्—
ॐ दधि क्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखाकरत् प्र ण आयूँषि तारिषत् ॥
(यजु० २३।३२)
पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् ।
दध्यानीतं मया देव ! स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
श्री विष्णवे नमः । दधिस्नानं समर्पयामि । दधिस्नानान्ते शुद्धोदकस्नान समर्पयामि ।

घृतस्नानम्[1]—
ॐ घृत मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ।।
(यजु० १७ ८८)

मधुस्नानम्—ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।।
मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ।।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।। (यजु० १३।२७)
तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुर मधु ।
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।
श्री विष्णवे नमः। मधुस्नानं समर्पयामि । मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

शर्करास्नानम्—
ॐ अपा ँ रसमुद्वयस ँ सूर्ये सन्त ँ समाहितम् ।
अपा ँ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयाम
गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय
त्वा जुष्टतमम् ।। (यजु० ९।३)

---

१. अन्य मन्त्र—
(क) घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबान्तरिक्षस्य
हविरसि स्वाहा ।
दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ।।
(यजु० ६।१९)
(ख) घृतवती भुवनानामभि श्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ।
(यजु० ३४।४५)

इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिकारिका ।
मलापहारिका नित्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।
श्रीविष्णवे नमः। शर्करास्नानं समर्पयामि । शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

गन्धोदकस्नानम्—
ॐ गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परि दधातु विश्वस्यारिष्टयै ।
यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ।।
(यजु० २।३)
मलयाचलसम्भूतं चन्दनागुरुसम्भवम् ।
चन्दनं देवदेवेश स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।
श्रीविष्णवे नमः। गन्धोदकस्नानं समर्पयामि । गन्धोदकस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

उद्वर्तनस्नानम्—
ॐ अ ँ शुनाते अ ँ शुः पृच्यतां परुषा परुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽच्युतः ।। (यजु० २०।२७)
नानासुगन्धि द्रव्यं च चन्दनं रजनीयुतम् ।
उद्वर्तनं मया दत्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।
श्रीविष्णवे नमः। उद्वर्तनस्नानं समर्पयामि । उद्वर्तनस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

शुद्धोदकस्नानम्—
ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः
श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा
यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ।।
(यजु० २४।३)
श्रीविष्णवे नमः। शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि । शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि ।

७–वस्त्रम्¹—ॐ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँ सि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥
शीतवातोष्णसंत्राण लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालंकरणं वस्त्रं गृहीत्वा प्रीतिमावह ॥
श्रीविष्णवे नमः। वस्त्रं समर्पयामि। वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

८–यज्ञोपवीतम्—ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥
यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।
नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
सोत्तरीयं ब्रह्मसूत्रं गृहाण परमेश्वर ॥
श्रीविष्णवे नमः। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

उपवस्त्रम्²—
ॐ युवा सुवासाः परिवीत आ गात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥
श्री विष्णवे नमः। उपवस्त्रं समर्पयामि। उपवस्त्रान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

---

१. ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूपँ संव्ययस्व विभावसो ॥ (यजु० ११।४०)

२. वस्त्रोपवस्त्र अर्पण के संयुक्त मन्त्र—
(क) वेदसूक्तसमायुक्ते यज्ञसामसमन्विते।
सर्ववर्णप्रदे देव वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥
(ख) सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥

९–गन्धम्¹—ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥
श्री विष्णवे नमः। गन्धं समर्पयामि।

कुङ्कुमम्—कुङ्कुमं कान्तिदं दिव्यं देवानां प्रीतिवर्धनम्।
माङ्गल्यं कामदं चापि कुङ्कुमं प्रतिगृह्यताम् ॥
श्रीविष्णवे नमः। कुङ्कुमं समर्पयामि।

अक्षताः—ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया
मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥ (यजु० ३।५१)
श्रीविष्णवे नमः। अक्षतान् समर्पयामि।

सिन्दूरम्—
ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो
वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी
काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥
(यजु० १७।९५)
सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यसुखवर्धनम्।
शुभदं कामदञ्चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥
श्रीविष्णवे नमः। सिन्दूरं समर्पयामि।

नाना परिमल-द्रव्याणि²—
ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुञ्ज्याया हेतिं परिबाधमानः।

---

१. त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥ (यजु० १२।९८)

२. नाना परिमलद्रव्यैः निर्मितं चूर्णमुत्तमम्।
अबीरनामकं चूर्णं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमा ँ सं परिपातु विश्वतः ॥
(यजु० २९।५१)

अबीरं च गुलालं च हरिद्रादिसमन्वितम् ।
नाना परिमलद्रव्यं गृहाण सुरसत्तम ॥

श्रीविष्णवे नमः । नाना परिमल द्रव्याणि समर्पयामि ।

१०-पुष्पाणि—ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।
ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥
(यजु० १२।७७)

श्रीविष्णवे नमः । पुष्पमालां समर्पयामि ।
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयानीतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

श्रीविष्णवे नमः । पुष्पाणि समर्पयामि ।

तुलसी—ॐ मिलत्परिमलामोदभृङ्गसङ्गीत-संस्तुताम् ।
तुलसीमञ्जरीं मञ्जु अञ्जसा स्वीकुरु प्रभो ।
तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपाञ्च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥
तुलस्याः पत्रकं विष्णोः शिरस्यारोपितं कला ।
आरोपयति सर्वाणि श्रेयांसि वरमस्तके ॥

श्रीविष्णवे नमः । तुलसीमञ्जरीं (दलं) समर्पयामि ।

११-धूपम्—ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ शूद्रो अजायत ॥
ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्वं तं योऽस्मान्
धूर्वति तं धूर्वं यं वयं धूर्वामः ।
देवानामसि वह्नितम ँ सस्नितमं
पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥
(यजु० १।८)

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

श्रीविष्णवे नमः । धूपमाघ्रापयामि ।

१२-दीपम्[1]—ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।
सुप्रकाशो महान् दीपः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
साज्यं च वर्तिसयुक्तं वह्निना योजितं मया
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥

श्रीविष्णवे नमः । प्रत्यक्षदीपं दर्शयामि ।

१३-नैवेद्यम्—देवाग्रे नैवेद्यं स्थाप्य तदुपरि तुलसीदलं प्रक्षिप्य
ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् ॥

श्रीविष्णवे नमः । नैवेद्यं निवेदयामि ।

ग्रासमुद्राप्रदर्शनम्—प्राणाय स्वाहा । अपानाय स्वाहा । व्यानाय स्वाहा । उदानाय स्वाहा । समानाय स्वाहा । पूर्वोपाशानं समर्पयामि ।.....मध्ये पानीयं समर्पयामि ।

'ॐ विष्णवे नमः' अथवा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इति मन्त्रजपं विधाय । उत्तरापोशानं समर्पयामि ।

करोद्वर्तनम्— अ ँशुनाते अ ँशुः पृच्यतां परुषा परुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽच्युतः ॥
करोद्वर्तनार्थं चन्दनं समर्पयामि ।

फलम्—याः फलिनी या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पति-प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व ँ हसः ॥

---

१. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहाः । अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चोज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ (यजु० ३।९)

इदं फलं मया देव स्थापित पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥
फलेश्च फलित सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तस्मात् फलप्रदानेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥
श्रीविष्णवे नमः । फलं (अखण्ड ऋतुफलानि) समर्पयामि ।

१४-ताम्बूलम्—ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥

ॐ उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः
पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि
दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥
(यजु० ९।१५)

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥
श्रीविष्णवे नमः । मुखवासार्थं ताम्बूलं समर्पयामि ।

दक्षिणा—
ॐ हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(ऋ० १०।१२१।१; यजु० १३।४; २३।१; २५।१०)

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अर्प्यते देवदेवेश ह्यतः शान्ति कुरुष्व मे ॥
पूजाफल-समृद्धयर्थं दक्षिणा च तवाग्रतः ।
अर्पिता तेन देवेश ! पूर्णान् कुरु मनोरथान् ।
श्रीविष्णवेः नमः । द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि ।

आरातिक्यम्[1]—
ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।
अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा
सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ (यजु० ३।९)
ॐ अन्तस्तेजो बहिस्तेजः एकीकृत्यामितप्रभम् ।
आरातिक्यमिदं देव गृहाण सुरसत्तम् ॥
चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्त्वमेव च ।
त्वमेव सर्वज्योतींषि आरार्तिः प्रतिगृह्यताम ॥
कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम् ।
आरातिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदोत्तम ।[2]
श्रीविष्णवे नमः । आरातिक्यं समर्पयामि ।

१५-प्रदक्षिणा[1]—
ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् ॥
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥
श्रीविष्णवे नमः । प्रदक्षिणां समर्पयामि (करोमि) ।

---

१. (क) इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरं सर्वगणं स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि ॥
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽस्मासु धत्त ॥
(यजु० १९।४८)
(ख) अविनयमविष्णो०००।
२. कर्पूरवर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितञ्च यत् ।
नीराजनं च देवेश ! गृहाण सुरसत्तम ॥
१. एका चण्डयां रवौ सप्त तिस्रो दद्यात् विनायके ।
चतस्रः केशवे दद्याच्छवे त्वर्द्धं प्रदक्षिणम् ॥

१६–पुष्पाञ्जलिः—

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने

नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।

स मे कामान् कामकामाय

मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ।

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥

ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं

राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् ।

सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात्

पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति ॥

तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो—

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।

आवीक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद ॥ इति ॥

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो

विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै-

र्द्यावाभूमी जनयन् देव एक ॥

नानापुष्पसमाकीर्णं नानासौरभ-संयुतम् ।

पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥

श्रीविष्णवे नमः । मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

प्रणामः—नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।

साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

क्षमापनम्—मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।

यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

अज्ञानाद् विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥

समर्पणम्—अनया पूजया श्रीविष्णुः प्रीयताम् । तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

शिवस्य षोडशोपचार-पूजनम्—

१. आवाहनम्—नमस्ते रुद्र मन्यव० ।

२. आसनम्—या ते रुद्र शिवा तनू० ।

३. पाद्यम्—यामिषुं गिरिशन्त० ।

४. अर्घ्यम्—शिवेन वचसा त्वा० ।

५. आचमनीयम्—अध्यवोचदधिवक्ता० । मधुपर्कः—यन्मधुनो मधव्यं० ।

६. स्नानम्—असौ यस्ताम्रो० । पञ्चामृतस्नानम्—पञ्चनद्यः ।

महाभिषेकस्नानम्—नमस्ते रुद्र मन्यव० इति रुद्रसूक्तेन ।

गन्धोदकस्नानम्—त्वां गन्धर्वा० । विजयास्नानम्—विज्यं धनुः ।

७. वस्त्रम्—असौ योऽवसर्पति० ।

८. यज्ञोपवीतम्—नमोऽस्तु नीलग्रीवाय० ।

९. गन्धः (चन्दनम्)—प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयो:० ।

भस्म—प्रसद्य भस्मना० । अक्षताः—अक्षन्नमीमदन्त० ।

नाना परिमलद्रव्याणि—अहिरिव० ।

१०. पुष्पमाला—विज्यं धनुः कपर्दिनो० । बिल्वपत्रम्—नमो बिल्मिने च० ।

११. धूपम्—या ते हेतिर्मीढुष्टम० ।

१२. दीपम्—परि ते धन्वनो० ।

१३. नैवेद्यम्—अवतत्य धनुष्टवं सहस्राक्ष० ।

ऋतुफलानि—याः फलिनी र्या अफला० । धत्तूरफलम्—कार्षिरसि० ।

१४. ताम्बूलम्—नमस्त आयुधायानातताय० ।

१५. दक्षिणा—मा नो महान्तमुत मा नो० ।

आरातिक्यम्—इदं हवि० । आ रात्रि० । कर्पूरगौरं० ।

१६. मन्त्रपुष्पाञ्जलिः—मा नस्तोके तनये० । यज्ञेन० ।

राजाधिराजाय० । स्वस्ति साम्राज्यं० । तदप्येष० । विश्वत० ।

शिवगायत्री—ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय० ।

प्रदक्षिणा—ये तीर्थानि० । सप्तास्यासन्० ।

प्रणामः—नमः शम्भवाय च० ।

क्षमाप्रार्थना—मन्त्रहीनं० ॥ इत्यादि ।

देव्याः षोडशोपचार पूजनम्—

१. आवाहनम्—हिरण्यवर्णां।

२. आसनम्—तां म आवह०।

३. पाद्यम्—अश्वपूर्वां०।

४. अर्घ्यम्—कांसोस्मितां।

५. आचमनीयम्—चन्द्रां प्रभासां। मधुपर्कः—यन्मधुनो०।

६. स्नानम्—आदित्यवर्णे०। पञ्चामृतस्नानम्—पञ्चनद्यः।

शुद्धोदकस्नानम्—शुद्धवालः।

महाभिषेकः—हिरण्यवर्णां० इत्यादि।

७. वस्त्रम्—उपैतु मां०।

८. सोत्तरीयं यज्ञसूत्रं—क्षुत्पिपासां०।

९. गन्धम्—गन्धद्वारां०। अक्षताः—अक्षन्नमी०। सिन्दूरम्—

सिन्धोरिव०। नानापरिमलद्रव्याणि—अहिरिव०।

१०. पुष्पाणि—मनसः काम०।

११. धूपम्—कर्दमेन०।

१२. दीपम्—आपः सृजन्तु०।

१३. नैवेद्यम्—आर्द्रां पुष्करिणीं०।

ऋतुफलानि—याः फलिनी०।

१४. ताम्बूलम्—आर्द्रां यः करिणीं०।

दक्षिणा—हिरण्यगर्भः०।

नीराजनम्—आ रात्रि०।

१५. प्रदक्षिणा—तां म आवह०।

१६. पुष्पाञ्जलिः—यः शुचिः प्रयतो०। राजाधि०। स्वस्ति०।

प्रणामः—नमस्ते देवि! देवेशि०।, नमः सर्वहितार्थायै०।

क्षमापनम्—एषा भक्त्या तव विरचिता०।

अच्छिद्रधारणम्–दुर्गे देवि महाभागे यादृक्पूजा मया कृता।

अच्छिद्रास्तु शिवे साङ्गा तव देवि प्रसादतः॥

अर्पणम्—कामेश्वरि जगन्मातः०। इत्यादि।

महाविद्या स्तोत्र—

सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० १२६-१२८ के अनुसार विष्णु की पूजा के पश्चात् उनकी स्तुति अधोलिखित महाविद्या स्तोत्र से करनी चाहिए।

ॐ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज॥ १॥

नमो हिरण्यगर्भाय प्रधानाव्यक्तरूपिणे।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे॥ २॥

देवानां दानवानाञ्च सामान्यमसि[धि] दैवतम्।
सर्वदा चरणद्वन्द्वं व्रजामि शरणं तव॥ ३॥

एकस्त्वमसि लोकस्य स्रष्टा संहारकस्तथा।
अध्यक्षश्चानुमन्ता च गुणमायासमावृतः॥ ४॥

संसारसागरं घोरमनन्तं क्लेशभाजनम्।
त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः॥ ५॥

न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम्।
तथापि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे॥ ६॥

नैव किञ्चित् परोक्षन्ते प्रत्यक्षोऽसि न कस्यचित्।
नैव किञ्चिदसाध्यं ते न च साध्योऽसि कस्यचित्॥ ७

कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम्।
योगिनां परमां सिद्धिं परमं ते परं विदुः॥ ८॥

अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन् महाभये।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष न जाने शरणं परम्॥ ९॥

कालेष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाच्युत।
शरीरेऽपि गतौ चापि वर्तते मे महद् भयम्॥ १०॥

[प्रार्थना]

पुनः प्रार्थयेच्च—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यावद्विधिरनुष्ठितः ।

स सर्वस्त्वत्प्रसादेन समग्रो भवतान्मम ।। इति ।।

शिवस्यापि— ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि भगवन्यत्कृत मया ।

तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रासादादधोक्षज ।।

[देवनामकरणम्]

अथ कर्तृनामयुतं देवस्य नाम कुर्यात्सर्वदा व्यवहारार्थम् ।

त्वत्पादकमलादन्यन्न मे जन्मान्तरेष्वपि ।

निमित्तं कुशलस्यास्ति येन गच्छामि सद्गतिम् ।। ११

विज्ञानं यदिदं प्राप्तं यदिदं ज्ञानमर्जितम् ।

जन्मान्तरेऽपि मे देव मा भूदस्य परिक्षयः ।। १२

दुर्गतावपि जातायां त्वं गतिस्त्वं मतिर्मम ।

यदि नाथ च विज्ञेयं तावताऽस्मि कृती सदा ।। १३ ।।

अकामकलुषं चित्तं मम ते पादयोः स्थितम् ।

कामये वैष्णवत्वं तु सर्वजन्मसु केवलम् ।। १४ ।।

तदनन्तर यह प्रार्थना करे—

प्रार्थना—

हे प्रभो ! मैंने ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञान में पूजा विधि का जो अनुष्ठान (सम्पादन) किया है वह सब आपकी कृपा से पूर्ण हो जाय । यह प्रार्थना विष्णु विषयक है ।

शिव की प्रतिष्ठा के अङ्ग रूप में की गयी पूजा के अन्त में यह प्रार्थना करे—

हे भगवन् ! हे अधोक्षज ! मैंने ज्ञान में अथवा अज्ञान में जो भी पूजन किया है वह सब आपकी कृपा से सम्पूर्णता को प्राप्त होवे ।

देवता का नामकरण—

तदनन्तर आचार्य लोक-व्यवहार में सदा प्रयोग हेतु प्रतिष्ठा

तच्च विष्णोरमुकस्वामी । अमुकनारायण इति वा । शिवस्यामुकेश्वरः । भानोरमुकादित्यः । देव्या अमुकेश्वरी । गणपतेरमुकविनायक इति ।

करने वाले यजमान के नाम के साथ प्रतिष्ठापित देवता का नाम जोड़कर नामकरण करे । यथा—विष्णु की प्रतिष्ठा में अमुक स्वामी या अमुकनारायण (उदाहरणार्थ—यदि प्रतिष्ठा करने वाले यजमान का नाम लोकमणि हो तो प्रतिष्ठापित देवता का नाम लोकमणि स्वामी या लोकमणिनारायण होगा अथवा लोकस्वामी या लोकनारायण यह नाम होगा) । शिव की प्रतिष्ठा में अमुकेश्वर (यथा-लोकेश्वर), सूर्य की प्रतिष्ठा में अमुकादित्य (यथा-लोकादित्य), देवी की प्रतिष्ठा में अमुकेश्वरी (यथा-लोकेश्वरी), और गणपति की प्रतिष्ठा में अमुकविनायक (यथा-लोकविनायक) ऐसा नाम होगा । तब नामकरणानन्तर ब्राह्मणों से यह कहे—

'भो ब्राह्मणाः ! अस्य देवस्य अमुक इति नाम सुप्रतिष्ठितमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु ।' और तब ब्राह्मण 'सुप्रतिष्ठितमस्तु' ऐसा कहें ।

पुण्याहवाचन—

कुछ पद्धतिकारों के मतानुसार प्रतिष्ठापित देवता के नामकरण के पश्चात् पुण्याहवाचन करना चाहिए, जिसके लिए संकल्प और ब्राह्मणवरण आदि करके—

'भो ब्राह्मणाः अमुकदेवस्य कृतैतन्नामकरणकर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु'...'ॐपुण्याहम्–३ ।...' इसी प्रकार '......कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु'......'ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु'... 'श्रीरस्तु' इति भवन्तो ब्रुवन्तु' इत्यादि पुण्याह-वचनों का वाचन करावे ।

तदनन्तर 'कृतैतन्नामकरणकर्मणः साद्गुण्यार्थं पुण्याहवाचकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो मनसोद्दिष्टां दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।' ऐसा संकल्प करके दक्षिणा प्रदान करे ।

[नैमित्तिक दोषे प्रायश्चित्तम्]

अथ नैमित्तिकदोषे प्रायश्चित्तम्। तत्र स्थाप्यमानदेवार्चा लिङ्गं वा यां यां दिशमुपाश्रयेत्तत्तद्दिगीशमन्त्रेणाष्टोत्तरशतसंख्यया शमीपलाशान्यतरसमिद्धोमं तिलहोमं वा कृत्वा पूर्णाहुत्यन्तं कुर्यात्। दिगीशमन्त्रास्तु त्रातारमिन्द्रमित्यादयः प्रसिद्धाः।

देवता के निमित्त पूजोपकरण-समर्पण—

तत्पश्चात् यजमान देव-पूजा में नित्य उपयोग में आने वाले उपकरणों यथा—कलश, कमण्डलु पञ्चपात्र, आचमनपात्र, अर्घ्य-पात्र, ताम्र आदि की थाली, और चन्दन, कुङ्कुम, अक्षत, सिन्दूर आदि रखने के पात्र, पुष्प रखने का पात्र, धूपदानी, दीपक, नैवेद्य-पात्र, शङ्ख, घण्टा, वस्त्र, आभूषण, मुकुट, छत्र चामर, पादुका, दर्पण, सपरिच्छद शय्या आदि को देवता के निमित समर्पित करे। नित्यभोग-प्रसाद की व्यवस्था हेतु खेत, ग्राम आदि का दान भी इसी अवसर पर किया जा सकता है।

नैमित्तिक दोष के लिए प्रायश्चित—

प्रतिष्ठा कर्म में कोई नैमित्तिक दोष आ जाय तो प्रायश्चित करे। स्थापना के समय स्थाप्यमान देवता की प्रतिमा या लिङ्ग जिस दिशा की ओर बढे या झुके उसी दिशा के स्वामी के मन्त्र से एक सौ आठ बार शमी या पलाश की समिधा से घृताक्त तिलों का होम करके पूर्णाहुति पर्यन्त सभी कर्म करे।' दिक्पालों के मन्त्र 'त्रातारमिन्द्र०' इत्यादि प्रसिद्ध ही हैं।'

१. स्थितं न चालयेद् देवमन्यथा दोषभाग्भवेत् ॥ ६० ॥
पूरयेत् सिकताभिस्तु निश्छिद्रं सर्वतो भवेत्।
लोकपालस्य दिग्भागे यस्य संचलते विभुः ॥ ६१ ॥
तस्य लोकपतेः शान्तिर्दयाश्चेमाश्च दक्षिणाः। (मत्स्य २६६।६०–६२)

२. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० १५६-७।

[दिक्पालहोम–दक्षिणा]

अत्राचार्यदक्षिणाश्च क्रमतो गजो मेषो महिषोऽजः शुक्तिर्मुक्ताफलं सवस्त्रयुग्मा[सवस्त्रयुग्मं रीतिकं]धेनुर्ऋषभ इत्यादिकाः, तदभावे सुवर्णप्रतिकृतयः राजतो वा वृषभ इति।

[शान्ति होमः]

ततः स्थाप्यमाने देवे शब्दोत्थाने श्वभ्रान्ते स्फुटिते वा शान्त्यर्थं मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा

दिक्पाल होम की दक्षिणा'—

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान इन दिक्पालों के होम की दक्षिणा क्रमशः हाथी, मेष, भैंस, बकरा, शुक्ति (सीपी), मोती, एक जोड़ा वस्त्र सहित [पीतल,] धेनु, (दुधारू गाय) और वृषभ (बैल) हैं। इनके अभाव में इनकी सोने की प्रतिमाएँ अथवा चाँदी का वृषभ दक्षिणा रूप में दिया जाय।

शान्तिहोम—

[तब शान्ति होम करे। यह होम नैमित्तिक है और आचार्य-कर्तृक है। आचार्य के द्वारा यह होम प्रत्येक कुण्ड में किया

१. लोकपालहोम की दक्षिणा
इन्द्राय वारणं दद्यात् काञ्चनं चाल्पवित्तवान् ॥ ६२ ॥
अग्नेः सुवर्णमेव स्याद्यमस्य महिषं तथा।
अजं च काञ्चनं दद्यान्नैर्ऋतं राक्षसं प्रति ॥ ६३ ॥
वरुणं प्रति मुक्तानि सद्युक्तानि प्रदापयेत्।
रीतिकं वायवे दद्याद् वस्त्रयुग्मेन संयुतम् ॥ ६४ ॥
सोमाय धेनुर्दातव्या राजतं वृषभं शिवे।
यस्यां यस्यां सचलनं शान्तिः स्यात् तत्र तत्र तु ॥ ६५ ॥
अन्यथा तु महद् घोरं भयं कुलविनाशनम्।
अचलं कारयेत् तस्मात् सिकताभिः सुरेश्वरम् ॥ ६६ ॥
(मत्स्यपुराण २६६।६२-६६)

[प्रतिष्ठा होम:]

प्रतिष्ठाहोमं कुर्यात्—

ॐ शिवाय स्थिरो भव स्वाहा । ॐ शिवायाप्रमेयो भव स्वाहा । ॐ शिवायानादिबोधो भव स्वाहा । ॐ शिवाय नित्यो भव स्वाहा । ॐ शिवाय सर्वगो भव स्वाहा । ॐ शिवायाविनाशो भव स्वाहा । ॐ शिवायाक्लमो भव स्वाहा । इति ।

[सर्वशान्त्यर्थमघोर मन्त्रेण होम:]

अथ सर्वशान्त्यर्थमघोरमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं स्विष्टकृदन्तं हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तं पूर्णाहुतिं च हुत्वा ईशाने बलिं दत्त्वाऽऽचम्य

जायेगा ।] शान्तिहोम अधोलिखित कारणों से किया जाता है—

यदि स्थाप्यमान देवता को स्थापना के निमित्त उठाते-बैठाते समय टक्कर लगने या घर्षण होने से ध्वनि उत्पन्न हो अथवा ब्रह्मशिला या पिण्डिका में बैठाते समय श्वभ्र (गर्त) के किनारे का कोई भाग टूट-फूट जाय तो शान्ति हेतु स्थाप्य देवता के मूलमन्त्र से एक सौ आठ बार घृत से होम करे।

प्रतिष्ठा-होम—

तब इन अधोलिखित मन्त्रों से प्रतिष्ठा होम करे [यह होम भी घृत से किया जायेगा]

ॐ शिवाय स्थिरो भव स्वाहा ।
ॐ शिवायाप्रमेयो भव स्वाहा ।
ॐ शिवायानादिबोधो भव स्वाहा ।
ॐ शिवाय नित्यो भव स्वाहा ।
ॐ शिवाय सर्वगो भव स्वाहा ।
ॐ शिवायाविनाशो भव स्वाहा ।
ॐ शिवायाक्लमो भव स्वाहा ।

अघोरमन्त्र-होम—

तब प्रतिमा-स्थापन-कर्म में जनित सभी दोषों की शान्ति हेतु

अघोर-मन्त्र[1] से एक सौ आठ बार होम करे।

सर्वतोभद्रमण्डलदेवतादि होम—

तत्पश्चात् सर्वतोभद्रमण्डल में स्थापित ब्रह्मादि देवों का आज्य से होम भी पद्धतियों में दिया गया है।[2]

स्विष्टकृत् होम—

तदनन्तर 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इससे स्विष्टकृत्[3] होम करे। अथवा 'देवो अग्नि:०'[4] इस मन्त्र से स्विष्टकृत् किया जा सकता है।

---

१. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतेभ्य। ।
सर्वेभ्यो सर्व शर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्य: ।। (तै० आ० ।)

२. १. ब्रह्मणे नम: स्वाहा, २. सोमाय०, ३. ईशानाय०, ४. इन्द्राय०, ५. अग्नये०, ६. यमाय०, ७. निर्ऋतये०, ८. वरुणाय०, ९. वायवे०, १०. अष्टवसुभ्यो०, ११. एकादशरुद्रेभ्यो०, १२. द्वादशादित्येभ्यो०, १३. अश्विभ्याम्०, १४. सपैतृकविश्वेभ्यो देवेभ्य:०, १५. सप्तयक्षेभ्यो०, १६. भूतनागेभ्यो०, १७. गन्धर्वाऽप्सरोभ्यो० १८ स्कन्दाय०, १९. नन्दीश्वराय०, २०. शूलमहाकालाभ्याम्०, २१. सप्तप्रजापतिभ्यो०, २२. विष्णवे०, २३. दुर्गायै०, २४. स्वधासहितपितृभ्या०, २५. मृत्युरोगाभ्याम्०, २६. गणपतये०, २७. अद्भ्यो०, २८. मरुद्भ्यो०, २९. पृथिव्यै०, ३०. गङ्गादिनदीभ्यो०, ३१. सप्तसागरेभ्यो०, ३२०. मेरवे०, ३३. गौतमाय०, ३४. भरद्वाजाय०, ३५. विश्वामित्राय०, ३६. कश्यपाय० ३७. जमदग्नये०, ३८. वशिष्ठाय०, ३९. अत्रये०, ४०. अरुन्धत्यै, ४१. गदायै०, ४२. त्रिशूलाय०, ४३. वज्राय०, ४४. शक्तयै० ४५. दण्डाय०, ४६. खड्गाय०, ४७. पाशाय०, ४८. अङ्कुशाय०, ४९. ऐन्द्रयै०, ५० कौमार्यै० ५१. ब्राह्म्यै०, ५२.वाराह्यै०, ५३. चामुण्डायै०, ५४. वैष्णव्यै०, ५५. माहेश्वर्यै०, ५६. वैनायक्यै नम: स्वाहा । द्रष्टव्य—प्रतिष्ठामहोदधि, पृ० ३२९–३३३ ; प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ३२८-९ ।

३. अनेकदिननिर्वर्त्ये होमेस्विष्टकृदर्थं हविःशेषं पर्युषितदोषपरिहारार्थं धृतमध्ये स्थापयेत् । नष्टे दुष्टे पा हविषि आज्येनैव स्विष्टकृद्धोम: ।

४. देवो अग्नि: स्विष्टकृद् देवान् यक्षद् यथायथ ँ होतारावन्द्रमश्विना वाचा वाच ँ सरस्वतीमग्नि ँ सोम ँ स्विष्टकृत् स्विष्ट इन्द्र: सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पति: स्विष्टा देवा आज्यपा: स्विष्टो अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद् यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचिति ँ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।। (यजु० २१।५८)

सर्वप्रायश्चित्त-होम-

तब ब्रह्मा से अन्वारब्ध होकर आचार्य हवन कर्म में हुई त्रुटियों से जनित दोषों के प्रशमनार्थ अधोलिखित मन्त्रों से सर्वप्रायश्चित्त होम करे [और प्रत्येक आहुति के पश्चात् हुतशेष द्रव्य का प्रोक्षणी पात्र में त्याग करे]।

ॐ भूः स्वाहा। इदमग्नये न मम।
,, भुवः स्वाहा। इदं वायवे न मम।
,, स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय न मम।
,, त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा ँसि प्र मुमुग्ध्य-
स्मत् स्वाहा।

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अवयक्ष्व नो वरुण ँ रराणो वीहि मृडीक ँ सुहवो न
एधि स्वाहा॥

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभि शस्ति पाश्च सत्यमित्वमया असि।
अया नो यज्ञ वहास्यया नो धेहि भेषज ँ स्वाहा॥
इदमग्नये अयसे न मम।
,, ये ते शतं वरुण ये सहस्र ँ यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः
स्वर्काः स्वाहा॥

इद वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः
स्वर्केभ्यश्च न मम॥

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥
इदं वरुणायादित्यायादितये च न मम।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।

बलिदान-प्रयोगः—[1]

यद्यपि नीलकण्ठ ने पूर्णाहुति के पश्चात् बलिदान का उल्लेख किया है, किन्तु प्रायः बलिदान पूर्णाहुति के पूर्व ही किया जाता है।

दिक्पालादिबलिदानम्—

यागमण्डपस्य वेद्याः प्रधानवेद्या वा ईशानकोणे गत्वा हस्ते जलं गृहीत्वा देश-कालादि संकीर्त्य 'अमुककर्मणः यागसाङ्गता सिद्धयर्थं दिक्पालदेवतानां, स्थापितदेवतानां नवग्रहादीनां च बलिदानं करिष्ये' इति जलमुत्सृज्य मृण्मयादिपात्रे पर्णपुटके वा बलि-सामग्रीं संस्थाप्य दीप-प्रज्वालनं कृत्वा सर्वेभ्य इन्द्रादिदिक्पालेभ्य एकतन्त्रेणैकमेव बलिं दद्यात्—

'ॐ प्राच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा॥ (यजु० २२।२४)।

इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः। इति गन्धाक्षतपुष्पैः बलिं संपूज्य पुनः हस्ते जलं गृहीत्वा

'इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्य इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि।' इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्—

'भो भो इन्द्रादिदशदिक्पालाः साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः स्वां स्वां दिशं रक्षत बलिं भक्षत मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्तारः शुभकर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारस्तुष्टिकर्तारो निर्विघ्नकर्तारः कल्याणकर्तारः वरदा भवत।'

---

१. अग्न्यासु च वीथीषु प्रतिलोमैः स्थितासु च॥ १३॥
न दद्याद् बलिदानं तु ह्यालयेष्वेव कारयेत्।
(श्रीप्रश्नसंहिता ३५।१३-१४)

इति संप्रार्थ्य, हस्ते जलं गृहीत्वा 'अनेन बलिदानेन इन्द्रादि दश दिक्पालाः प्रीयन्ताम् । इति जलं विसृजेत् ।

स्थापित-देवता-बलिदानम्—

गणेशबलिः—ॐ गणानान्त्वा० । गणपतये नमः । इति संपूज्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'गणपतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि ।' इति जलमुत्सृज्य 'भो गणपते ! इमं सदीपं दधि-माष-भक्त-बलिं गृहाण । मम सकुटुम्बस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता, शान्तिकर्ता, पुष्टिकर्ता, तुष्टिकर्ता, निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता वरदो भव । 'इति संप्रार्थ्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'अनेन बलिदानेन गणपतिः प्रीयताम्' इति जलमुत्सृजेत् ।

रुद्रबलिः—ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव० । रुद्राय नमः । इति संपूज्य, हस्ते जलं गृहीत्वा 'रुद्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपं दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि' इति जलं विसृज्य, प्रार्थयेत्—'भो रुद्र ! इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं गृहाण । मम सकुटुम्बस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता, शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता, तुष्टिकर्ता, निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता, वरदो भव ।' इति संप्रार्थ्य हस्ते जलं गृहीत्वा अनेन बलिदानेन रुद्रः प्रीयताम् ।' इति जलं विसृजेत् ।

विष्णु-बलिः—ॐ इदं विष्णुर्वि० । विष्णवे नमः । इति संपूज्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'विष्णवे साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीप-दधि-माष भक्तबलिं समर्पयामि' । इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत् 'भो विष्णो ! इमं सदीपं दधि-माष-भक्तबलिं गृहाण । मम सकुटुम्बस्य आयुःकर्ता, क्षेमकर्ता, शान्तिकर्ता, पुष्टिकर्ता, तुष्टिकर्ता, निर्विघ्नकर्ता, कल्याणकर्ता वरदो भव ।' इति संप्रार्थ्य पुनर्हस्ते जलं गृहीत्वा 'अनेन बलिदानेन विष्णुः प्रीयताम्' । इति जलं विसृजेत् ।

दुर्गा-बलिः—

ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके० । दुर्गायै नमः । इति संपूज्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'दुर्गायै साङ्गायै सपरिवारायै सशक्तिकायै इमं सदीपं दधि-माष-भक्त-बलिं समर्पयामि ।' इति जलं विसृज्य प्रार्थयेत्—

'भो दुर्गे ! इमं सदीपं दधि-माष-भक्त बलिं गृहाण । मम सकुटुम्बस्य आयुःकर्त्री क्षेमकर्त्री, शान्तिकर्त्री, पुष्टिकर्त्री, तुष्टिकर्त्री, निर्विघ्नकर्त्री कल्याणकर्त्री वरदा भव ।' इति संप्रार्थ्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'अनेन बलिदानेन दुर्गा प्रीयताम्' इति जलमुत्सृजेत् ।

षोडश मातृका-बलिः—

ॐ समख्ये देव्या धिया० । षोडशमातृकाभ्यो नमः । इति संपूज्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'गौर्यादिषोडशमातृकाभ्यः साङ्गाभ्यः सपरिवाराभ्यः सायुधाभ्यः सशक्तिकाभ्य इमं सदीपं दधि-माष भक्त-बलिं समर्पयामि । इति जलं विसृज्य 'भो भो गौर्यादिषोडशमातरः । इमं बलिं भक्षत, मम सकुटुम्बस्य आयुः कर्त्र्यः, क्षेमकर्त्र्यः, शान्तिकर्त्र्यः, पुष्टिकर्त्र्यः, तुष्टिकर्त्र्यः, निर्विघ्नकर्त्र्यः, कल्याणकर्त्र्यः वरदा भवत' । इति संप्रार्थ्य पुनर्हस्ते जलमादाय 'अनेन बलिदानेन षोडशमातृकाः प्रीयन्ताम्' इति जलमुत्सृजेत् ।

ग्रहबलिः—

सर्वेभ्यो ग्रहेभ्य एकतन्त्रेणैव बलिं दद्यात् ।

ॐ ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विषिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जं समग्रभमुपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ (यजु० ९।४)

'सूर्यादिवास्तोष्पत्यन्त देवताभ्यो नमः' इति गन्धाक्षतपुष्पैः संपूज्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'सूर्यादिनवग्रहेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्य, अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-गणपत्यादिपञ्च लोकपाल-वास्तोष्पति सहितेभ्य इमं सदीपं दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि ।

इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्—

'भो भो सूर्यादिनवग्रहाः ! अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-पञ्चलोक-

पाल-वास्तोष्पतिसहिताः स्वां स्वां दिशं रक्षत इमं बलिं भक्षत मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारस्तुष्टिकर्तारो निर्विघ्नकर्तारः कल्याणकर्तारः वरदा भवत।' पुनर्हस्ते जलं गृहीत्वा 'अनेन बलिदानेन सूर्यादिनवग्रहाः अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-पञ्चलोकपाल-वास्तोष्पतिसहिताः प्रीयन्ताम' इति जलंविसृजेत्।

वास्तोष्पति बलिः—

ॐ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशोऽनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥
वास्तोष्पतये नमः। इति गन्धाक्षतादिभिः संपूज्य हस्ते जलं गृहीत्वा वास्तोष्पतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपं दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि।

इति जलं विसृज्य प्रार्थयेत्—

'भो! वास्तोष्पते! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य आयुःकर्ता, क्षेमकर्ता, शान्तिकर्ता, पुष्टिर्ता, तुष्टिकर्ता, निर्विघ्नकर्ता, कल्याणकर्ता वरदो भव।'

पुनर्हस्ते जलं गृहीत्वा 'अनेन बलिदानेन वास्तोष्पतिः प्रीयताम्'। इति जलं विसृजेत्।

क्षेत्रपालबलिदानम्—

एकस्मिन् वंशादिनिर्मित पात्रे, मृण्मय-पात्रे वा पर्ण-पुटे वा कुशास्तीर्यं तदुपरि मनुष्याहार-परिमितं माष दध्योदनं (कृसरान्नं वा), जलपूर्णपात्र, ताम्बूल, द्रव्य च निधाय, तत्रैव चतुर्मुख दीपं प्रज्वाल्य लोकाचारमनुसृत्य तद्बलिं हरिद्रा-कुङ्कुम-सिन्दूर-पताकादियुतं कृत्वा हस्ते जलमादाय देशकालौ संकीर्त्य 'मम सकलारिष्ट शान्तिपूर्वकं अमुककर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं क्षेत्रपालपूजन-पूर्वकं बलिदानं करिष्ये,' इति जलं विसृज्य बलिदानपात्रस्थ पूगीफले अक्षतपुञ्जोपरि वा क्षेत्रपालमावाहयेत्—

ॐ न हि स्पशमविदन्नन्यस्माद् वैश्वानरात्पुर एतारमग्नेः।

एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः॥
(यजु० ३३ ६०)

भ्राजद्वक्त्र जटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनाद्रिप्रभम्
दोर्दण्डान्तगदाकपालमरुणस्रग्गन्धवस्त्रावृतम्।
घण्टाघर्घरमेखलाध्वनिमिलद्धुंकारभीम विभुम्
वन्दे संहितसर्पकुण्डलधरं श्रीक्षेत्रपाल सदा॥

क्षेत्रपालाय नमः, क्षेत्रपालमावाहयामि, इत्यावाह्य नाममन्त्रेण गन्धादि-पञ्चोपचारैः सपूज्य प्रार्थयेत्—

नमामि क्षेत्रपाल त्वां भूतप्रेतगणाधिप।
पूजां बलिं गृहाणेमं सौम्यो भवतु सर्वदा॥
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे।
आयुरारोग्यं मे देहि निर्विघ्नं कुरु सर्वदा॥
मा विघ्नं मास्तु मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः।
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः॥

यं यं यं यक्षरूपं दशदिशिवदनं भूमिकम्पायमानं
सं सं संहारमूर्तिं शिरमुकुटजटाशेखरं चन्द्रबिम्बम्।
दं दं दं दीर्घकेशं विकृतनखमुखं चोर्ध्वरेखाकपालम्।
पं पं पं पापनाशं प्रणतपशुपतिं भैरवं क्षेत्रपालम्॥

इति संप्रार्थ्य हस्ते जलं गृहीत्वा 'क्षेत्रपालाय [बर्बरकेशाय] साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय मारीगण-भैरव-राक्षस-कूष्माण्ड-वेताल-भूत-प्रेत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी-पिशाचिनी-गणसहिताय एतं सदीपं-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि' इति जलं विसृज्य 'भो क्षेत्रपाल! सर्वतो दिशं रक्ष (क्षेत्र रक्ष), बलिं भक्ष, दीपं पश्य, मम (यजमानस्य) सकुटुम्बस्य गृहे आयुःकर्ता, क्षेमकर्ता, शुभकर्ता, शान्तिकर्ता, पुष्टिकर्ता, तुष्टिकर्ता, निर्विघ्नकर्ता, कल्याणकर्ता वरदो भव।' इति प्रार्थयेत्। ततो हस्ते जलं गृहीत्वा 'अनेन बलिदानेन क्षेत्रपालः प्रीयताम्' इति जलमुत्सृजेत्।

ततः कश्चिद् दुर्ब्राह्मणो वा शूद्रो वा गृहकर्मकरो वा नापितो वा तं बलिं यजमानमस्तकोपरि सकृद् भ्रामयित्वा पश्चादनवेक्षमाणः (अपराङ्मुखो) गत्वा चतुष्पथे स्थापयेत् । यजमानश्च तदुपरि—

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं
दृँहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।
पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यँ रक्ष ॥
(यजु० १।११)

इति मन्त्रेण तण्डुलाक्षतान् प्रक्षिपेत् । ततो 'हिङ्काराय स्वाहे'ति मन्त्रेण यजमानो तस्य (क्षेत्रपालबलिनेतुः) पष्ठतो द्वारपर्यन्तं जलेन प्रोक्षणं कुर्यात्—

ॐ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सँहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ (यजु० २२।७) ।

ततो हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य आचम्य पूर्णाहुतिं जुहुयात् ।

पूर्णाहुतिः—

चार बार स्रुवा से घृत लेकर स्रुच में भरे । तब उसके ऊपर पुष्पमाला, रक्तवस्त्र तथा रक्तसूत्र से वेष्टित नारियल या पूगीफल रख कर 'ॐ पूर्णाहुत्यै नमः' इस नाममन्त्र से उसकी पूजा करके उसके ऊपर बाँये हाथ से अधोमुख स्रुवा रखकर स्रुच के पिछले भाग को बाँये वक्षस्थल के समीप लाकर आचार्य यजमान से अन्वारब्ध होकर निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़कर अन्तिम मन्त्र के अन्त में स्वाहाकार के साथ पूर्णाहुति करे ।

पूर्णाहुति-मन्त्राः—

ॐ समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ २ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य
नाभिः ॥ ८९

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्
यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं
चतुः शृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ॥ ९० ॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्याँ २ आ विवेश ॥ ९१ ॥
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं
गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकँ सूर्यं एकं जजान
वेनादेकँ स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ९२ ॥
एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य
आसाम् ॥ ९३ ॥
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना
अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ९४ ॥
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी
काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ९५ ॥
अभि प्रवन्त समनेव योषाः
कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।

घृतस्य धारा। समिधो नसन्त
ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ९६ ॥

कन्या इव वहतुमेतवा उ
अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।

यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो
घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥ ९७ ॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजि-
मस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।

इमं यज्ञं नयत देवता नो
घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥

धामं ते विश्वं भुवनमधि श्रित-
मन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृत-
स्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥
(यजु० १७।८९ ९९)

पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः
समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व
सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
(यजु० १२।४४)

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः
सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्रा। सप्तधा त्वा यजन्ति
सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा ॥
(यजु० १७।७९)

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या
वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।

कविं सम्राजमतिथिं जनाना
मासन्ना पात्रं जनयन्त देवा। ॥
(यजु० ७।२४;३३।८)

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
वस्नेव विक्रीडावहा इष मूर्जं शतक्रतो ॥ स्वाहा ॥
(यजु० ३।४९)

वसोर्धारा—

घृत से पूरित स्रुच की प्रणाली में से घृत की धारा अग्नि पर गिराते हुए निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़े—

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः
सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति
सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ ७९ ॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च ।
शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यँहाः । ८० ॥

ईदृङ् चान्यादङ् च सदङ् च प्रतिसदङ् च ।
मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥ ८१ ॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च ।
धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च ।
अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ॥ ८३ ॥

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः
सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन ।
मितासश्च सम्मितासो नो अद्य
सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥ ८४ ॥

स्वतवांश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च ।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ८५ ॥

[यजमानाभिषेकः]

शोभनासने यजमानमुपवेश्याथर्वणसाम्ना मन्त्रान्तरैश्चाभिषिञ्चेत् ।

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्-
यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् ।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो
मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥
इमं स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये ।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियं सदनमा विशस्व ॥ ८७
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ८८
(यजु० १७।७९-८८)

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा
कामधुक्षः ॥ स्वाहा ॥

तत्पश्चात् त्र्यायुषकरण, संस्रवप्राशन, प्रणीतोदक से मार्जन, अग्नि में पवित्र-प्रतिपत्ति, ब्रह्मा को पूर्णपात्र दान और प्रणीताविमोक करके आचार्य यजमान को श्रेयोदान करे ।

श्रेयोदान—

आचार्य अपने हाथ में पुष्प, अक्षत, पूगीफल और जल लेकर निम्नलिखित वचनों को बोलते हुए यजमान के हाथ में प्रदान करे—

'भवन्नियोगेन एभिर्ब्राह्मणैः सह मया कृतेन प्रतिष्ठाकर्मणा यज्जनितं श्रेयस्तदमुना साक्षतेन सपुष्पेन सजलेन पूगीफलेन तुभ्यमहं संप्रददे । तेन श्रेयसा त्वं श्रेयोवान् भव ।' और तब यजमान 'भवामि' कह कर नतमस्तक होकर उसे हाथ में ग्रहण करके शिर से लगाते हुए स्वीकार करे ।

यजमान का अभिषेक—

तब रुद्रकलश, प्रधानकलश, शान्तिकलश आदि का जल एक

पात्र में लेकर आचार्य इतर ब्राह्मणों (ऋत्विजों आदि) के साथ उत्तराभिमुख होकर सपरिवार यजमान को सुशोभित आसन में [पूर्वाभिमुख] बैठाकर अथर्वणसाम[1] तथा निम्नलिखित वैदिक और पौराणिक मन्त्रों से अभिषिञ्चित करे—

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा
साम्राज्येनाभि षिञ्चाम्यसौ ।
(यजु० ९।३०)

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥
(यजु० १८।३७)

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन, तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि
षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन
वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्ये-
न्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि ॥ (यजु० २०।३)

1. २ र र र २र र र २ र र २ र र र
ओं उहुवा ओ हा । औ हो वा । शन्नो देवीः । उ हु वा ओ हा ।
१र ३र २ १ २ २ १ २
औ हो वा हा उ । वा । आ ब त । अभिष्टा २३ या ३ इ ।
२ र र र र र २ र २ र र र
उहुवा ओ हा । औ हो वा । शन्नो भवा । उ हु वा ओ हा ।
१र ३र २ १ २ २ १र २
औ हो वा हा उ । वा । सू वः । तु पी ता २३ या ३ इ ।
२ र र र २र र र २ र र र
उ हु वा ओ हा । औ हो वा । शं यो र भि उ हु वा ओ हा ।
१र ३र २ १ २ २ १ २
औ हो वा हा उ । वा । ज्योतिः । स्रवन्तु २३ ना ३ ।
२ र र २ १र ३र २ १ १ १ १
उहुवा ओ हा । औ हो वा हा उ । वा ३ । ई २ ३ ४ ५ ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष्ँ शान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥
(यजु० ३६।१७)

पालाशम्भवति तेन ब्राह्मणोऽभिषिञ्चति। ब्रह्म
वै पालाशो ब्रह्मणैवेनमेतदभिषिञ्चति।
सर्वेषां वा एष वेदानाँ रसो यत्साम
सर्वेषामेवैतद् वेदानाँ रसेनाभिषिञ्चति॥
ॐ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहितः शेषो[१] दिक्पालाः पान्तु ते सदा॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यस्समागताः।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
ऋषयो मुनयो[२] गावो देवमातर एव च।
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः॥
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये॥

१. सहिताः सर्वे। दानमयूख, पृ० ९२॥
२. मनवो—दानमयूख, पृ० ९३।

[आचार्यपूजनम्]

अथाचार्यपूजनम्। तत्र यजमान आचार्यमासने उपवेश्य सत्कृत्य ग्रामं गोसहस्रमर्धं तदर्धं वा गोशतमर्धं तदर्धं वृषभैकादशकं पञ्चैकां वा गां सालङ्कृतां यथाशक्ति सन्निधाय देशकालौ संकीर्त्य—'देवप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहमाचार्याय सम्प्रददे न मम' इत्युक्त्वा तद्धस्ते गोपुच्छादिसकुशतिलयवजलं निक्षिपेत्। विज्ञापयेच्च—

सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥

ॐ शान्तिरस्तु पुष्टिरस्तु वृद्धिरस्तु अमृताभिषेकोऽस्तु यच्छ्रेयस्तदस्तु यत्पापं रोगः शोकः कष्टं दुःख दारिद्र्यं तत् दूरे प्रतिहतमस्तु। अमृताभिषेकोऽस्तु।

आचार्य दक्षिणा—

तत्पश्चात् आचार्य का पूजन करे। इसमें यजमान आचार्य को आसन में बैठा कर गन्ध, पुष्प आदि से उसका सत्कार (पूजन) करके उसको देने के लिए ग्रामदान का संकल्प करे अथवा यथाशक्ति एक हजार गायें या उसकी आधी (पाँच सौ) या उसकी भी आधी दो सौ पचास अथवा एक सौ गायें अथवा उसकी आधी (पचास) या उसकी आधी (पच्चीस) या दश गायें तथा एक बैल अथवा पाँच गायें अथवा एक गाय को अलंकृत करके समीप में लाकर ग्रामदान या भूमिदान तथा गोदान के संकल्प हेतु हाथ में जल लेकर देश काल आदि का उच्चारण करके—

'देवप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहमाचार्याय संप्रददे न मम' ऐसा कहकर आचार्य के हाथ में गाय की पूँछ, कुश, तिल, यव या अक्षत रखकर उस पर जल छोड़े और तब यह निवेदन करे—

३. धर्म।—पाठान्तर।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ शिवधर्मपरायण ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ शिवशास्त्रविशारद ॥ १ ॥
अनादिजन्मसन्ताने ह्यप्रमेये भवार्णवे ।
अद्य मे ह्युत्तमं जन्म अद्य मे सफलं धनम् ॥ २ ॥

अद्य मे जननोच्छित्तिरद्य मे परमं पदम् ।
मोचितोऽहं त्वया नाथ उच्छेद्याद्भवबन्धनात् ॥ ३ ॥

ईश त्रातस्त्वया यस्मात्प्लवेनेव भवार्णवात् ।
मुक्तोऽहं मर्त्यसंसारात्प्रपन्नोऽहं तवान्तिकम् ॥ ४ ॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यन्न्यूनं यत्कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादात्क्षमस्व मे ॥ ५ ॥ इति ।

[आशीर्वादः]

गुरुरपि—समस्तजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारकः ।
शिवः सानुचरस्त्वाद्यः सर्वदा सर्वकामदः ॥ १ ॥

द्रव्यहीनं तु यत्किञ्चिद्विधिहीनं तु यद्भवेत् ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसादात्कारणस्य तु ॥ २ ॥

सब धर्मों को जानने वाले, शिवधर्म में पारङ्गत, सभी शास्त्रों के अर्थ के तत्त्वज्ञ, शिवशास्त्र के विद्वान् हे भगवन् ! इस अनादि काल से जन्म-मरण के चक्र वाले अप्रमेय भवसागर में आज मेरा जन्म सार्थक हुआ है और मेरा धन सफल हुआ है। आज मेरे जन्म का बन्धन कट गया है। आज मेरे लिए परमपद सुप्राप्य हो गया है। हे नाथ ! आज आपने उच्छेद्य (काटने योग्य) भव-बन्धन से मुझे मुक्त कर दिया है। हे प्रभो ! नाव के समान आपने मुझे भवसागर में से उबार लिया है। मैं मरणशील इस संसार से मुक्त होकर आपके समीप आया हूँ। मैंने ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञान में जो कुछ न्यून कर्म किया हो वह सब आपके प्रसाद (प्रसन्नता.-आशीर्वाद) से पूर्ण हो। आप मुझे क्षमा करें।

स्थापकस्य मूर्तिपानां वर्णिनां शिल्पिनां तथा ।
सराष्ट्रपार्थिवानां च शान्तिर्भवतु सर्वदा ॥ ३ ॥

भृत्यपुत्रकलत्रैश्च स्वमित्रबलवाहनैः ।
कारणस्य प्रसादेन सर्वलोकेश्वरो भव ॥ ४ ॥

आशीर्वचन—
ॐ दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ॥

आशीर्वाद[1]—
तब आचार्य यजमान को यह आशीर्वाद दे—
समस्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाले शिव अपने अनुचरों सहित सर्वदा आपकी समस्त कामनाएं पूर्ण करें ॥ १ ॥

समुचित द्रव्य से रहित तथा विधि-विधान के बिना जो भी कर्म सम्पादित किया गया हो वह सब अपूर्ण कृत्य भी देवता के प्रसाद (अनुकम्पा, प्रसन्नता) से पूर्ण हो जाय ॥ २ ॥

प्रतिमा की स्थापना करवाने वाले यजमान, मूर्तिप, चारों वर्णों के लोगों तथा मूर्ति के शिल्पियों तथा समस्त राष्ट्र [के नागरिकों] सहित राजाओं के जीवन में सुख-शान्ति हो ॥ ३ ॥

देवता के प्रसाद (अनुग्रह) के कारण से (?) तुम अपने भृत्यों (सेवकों), पुत्रों, पत्नी, मित्रों, सेना और वाहनों से युक्त होकर समस्त लोक के स्वामी बनो ॥ ४ ॥

---

१. आचार्यं आशिषं ब्रूयात् राज्ञो राष्ट्रस्य वृद्धये ॥ १३८
'भवन्तु ताः' द्विजाः सर्वे पश्चाद् ब्रूयुस्तथैव च ।
अस्मिन् काले यदाचार्यः प्रब्रूयाद् देवसन्निधौ ॥ १३९
तत् तथैव भवेदेव देवोऽपिप्रियमाप्नुयात् ।
(नारदीयसंहिता १९।१३८-१३९)

इत्युक्त्वा यजमानायाशिषं दद्यात् ।

ततः स्थापकमूर्तिपजापिनः ऋत्विक्स्थपतिदैवज्ञान् संपूज्य तेभ्यः शक्तितो दक्षिणां दद्यात् ।

ॐ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धताम् पुनर्ब्रह्माणो
वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
ॐ विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व ।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः ।
पमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥
ॐ शत जीव शरदो वर्धमानः शत हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥
ॐ शतञ्जीव शरदो वर्धमान इत्यपि निगमो भवति । शतमिति
शतं दीर्घमायुर्मरुते मां वर्धयन्ति । शतमेव शतमात्मानं
भवति । शतमिति शतं दीर्घमायुः ॥
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा०० ॥
ॐ श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात् पवमानं महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥
ॐ आयुष्कामो यशस्कामो पुत्रपौत्रस्तथैव च ।
आरोग्य धनकामश्च सर्वे कामा भवन्तु ते ॥
,, शान्तिरस्तु शिवं चास्तु शुभं चास्तु धनं तथा ।
ऋद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु ब्राह्मणानां प्रसादतः ॥
,, मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥

आचार्य इन वचनों को कह कर यजमान को आशीर्वाद प्रदान करे ।

दक्षिणा—

आचार्य को दक्षिणा देकर उससे आशीर्वाद ग्रहण के अनन्तर

[लेपनद्रव्यादिविधानम्]

अधिवासनं तु सद्यो वा बहुकालसाध्यं वा । तत्र सद्यः पक्षे वक्ष्यमाणमधुकुङ्कुमादिसर्वद्रव्यैस्तद्दिन एव देवं लेपयेत् । अन्त्ये तु प्रथमेऽहनि कुङ्कुमेन देवं लेपयित्वा पूजयेत् । द्वितीये दिने हरिद्रा-सिद्धार्थकचूर्णेन । एवं तृतीयदिने पिष्टसितचन्दनयवचूर्णेन । चतुर्थे मनःशिलाप्रियङ्गुचूर्णेन । पञ्चमे कृष्णाञ्जनतिलचूर्णेन । षष्ठे रक्त-चन्दनपद्मकेसरचूर्णेन । सप्तमे गोरोचननागकेसरचूर्णेन । सर्वलेपन-द्रव्येषु कपिलाघृतमिश्रणं ज्ञेयम् ।

यजमान देवता की मूर्ति के स्थापन में सहयोग करने वाले अन्य ब्राह्मणों मूर्तिप-ब्राह्मणों, जापकों, ऋत्विजों, स्थपति तथा देवज्ञ (मूर्ति-स्थापन का लग्न बतलाने वाले ज्योतिषी) ब्राह्मण की गन्धाक्षत-पुष्पमाला आदि से पूजा करके उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे ।

अधिवासनकर्मणि लेपनद्रव्यादिविधानम्—

अधिवासन या तो सद्यः (प्राणप्रतिष्ठा के तत्काल बाद उसी दिन) किया जाता है अथवा बहुकाल साध्य (यथा-प्रतिष्ठामयूखा-नुसार सात दिनों में सम्पाद्य) होता है ।

सद्योऽधिवासन पक्षे लेपन-द्रव्यविधानम्—

सद्यः अर्थात् प्रतिष्ठोत्तर काल में उसी दिन तत्काल ही अधि-वासन का पक्ष अभीष्ट हो तो कपिला गौ के गोघृत से मिश्रित वक्ष्यमाण द्रव्यों (१) मधु और कुङ्कुम, (२) हरिद्राचूर्ण एवं सिद्धार्थक चूर्ण (सरसों का कल्क), (३) श्वेतचन्दन के लेप या चूर्ण एवं यवचूर्ण, (४) मनःशिला चूर्ण और प्रियङ्गु चूर्ण, (५) कृष्णाञ्जन एव तिलचूर्ण (६) रक्तचन्दन चूर्ण (लेप) एवं पद्मकेसर चूर्ण तथा (७) गोरोचना चूर्ण और नागकेसर चूर्ण—इन सभी द्रव्यों का क्रमशः मूर्ति में लेपन उसी दिन करके पूजन करे ।

साप्ताहिकाधिवासनपक्षे लेपन द्रव्यविधानम्[1]—

अन्य पक्ष में अर्थात् जब सप्ताहावधि (अथवा अधिक दिनों) तक अधिवासन करना अभीष्ट हो तो प्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात् प्रथम दिन कपिला गोघृत-मिश्रित मधु और कुङ्कुम से देव-प्रतिमा या लिङ्ग का लेपन करके पूजा करे। दूसरे दिन कपिला गो-घृत मिश्रित हरिद्राचूर्ण और सिद्धार्थक चूर्ण (सरसों के कल्क) से लेपन कर पूजन करे। तीसरे दिन कपिला गोघृत मिश्रित श्वेतचन्दन के लेप या चूर्ण और यवचूर्ण के मिश्रण से, चौथे दिन कपिला गोघृत मिश्रित मनःशिला (मैनसिल) के चूर्ण तथा प्रियङ्गु के चूर्ण से. पाँचवें दिन कपिला गोघृत मिश्रित कृष्णाञ्जन संज्ञक खनिज के चूर्ण तथा तिल के चूर्ण से, छठे दिन कपिला-गोघृत-मिश्रित रक्तचन्दन और पद्म (कमल) के केसर के चूर्ण से, सातवें दिन कपिला-गोघृत मिश्रित गोरोचना चूर्ण तथा नागकेसर चूर्ण से देवता (प्रतिमा या

---

१. स्थापिते तु ततो देवे यजमानोऽथमूर्तिपम्।
आचार्यं पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः ।। ५४
दीनान्धकृपणांस्तद्वद् ये चान्ये समुपस्थिताः।
ततस्तु मधुना देवं प्रथमेऽहनि लेपयेत् ।। ५५
हरिद्रयाऽथ सिद्धार्थैर्द्वितीयेऽहनि तत्त्वतः।
चन्दनेन यवैस्तद्वत् तृतीयेऽहनि लेपयेत् ।। ५६
मनःशिला प्रियङ्गुभ्यां चतुर्थेऽहनि लेपयेत्।
सौभाग्यशुभदं यस्माल्लेपनं व्याधिनाशनम्। ५७
परं प्रीतिकरं नृणामेतद् वेदविदो विदुः।
कृष्णाञ्जनं तिल तद्वत् पञ्चमेऽपि निवेदयेत् ।। ५८
षष्ठे तु सघृतं दद्याच्चन्दन पद्मकेसरम्।
रोचनागरुधूप तु सप्तमेऽहनि दापयेत् ।। ५९
यत्र सद्योऽधिवासः स्यात् तत्र सर्वं निवेदयेत्।
स्थितं न चालयेद् देवमन्यथा दोषभाग्भवेत् ।। ६०
(मत्स्य २६६।५४-६०)

प्रतिमानां लेपत्रयं दिनत्रये क्रमेण कृत्वा शेषलेपांश्चतुर्थदिने युगपत्कृत्वा त्रिसन्ध्यं बलिदानं च निवर्त्य प्रतिकुण्डे हवनं सम्पादयेत्। शान्तिहोमं च ऋत्विजः कुर्युरित्यनेकदिननिर्वर्त्येऽधिवासने ज्ञेयम्।

[शिवस्य प्रतिष्ठोत्तरकाले लेपनान्ते महोत्सवः]

शिवस्य तु यदा प्रतिष्ठोत्तरकाले सप्तसु दिनेषु मधुकुङ्कुमादिलेपाः क्रियन्ते तदाष्टमदिने स्नपनार्चनादिमहानुत्सवो विधेयः। इति सर्वदेवप्रतिष्ठाविधिः।

लिङ्ग) का लेपन [करके पूजन] करे। उपर्युक्त सभी लेपन द्रव्यों में कपिला[1] गोघृत (अभावे गोघृतमात्र) का मिश्रण अवश्य करना चाहिए।

चतुर्दिवसीय अधिवासनपक्षे लेपन-विधानम्—

अथवा तीन दिनों तक प्रतिमाओं में क्रमशः प्रथम दिन गोघृत-मिश्रित मधु-कुङ्कुम-लेपन, द्वितीय दिन गोघृत-मिश्रित हरिद्राचूर्ण एवं सिद्धार्थक चूर्ण के मिश्रण से लेपन और तृतीय दिन गोघृत-मिश्रित श्वेतचन्दन के पिष्ट (लेप) या चूर्ण और यवचूर्ण के मिश्रण से लेपन करके चौथे दिन शेष सभी द्रव्यों से लेपन सम्पन्न करके तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न और सायकाल) के समय बलिदान सम्पन्न करके प्रत्येक कुण्ड में हवन करावे और ऋत्विज शान्तिहोम भी करें। यह व्यवस्था अनेक दिन में साध्य अधिवासन के विषय में है।

शिवप्रतिष्ठानन्तर लेपन के पश्चात् महोत्सव—

जब शिव की प्रतिष्ठा के पश्चात् सात दिनों तक क्रमशः मधु-कुङ्कुमादि द्रव्यों का लेपन किया जाता है तो आठवें दिन शिव-लिङ्ग (या मूर्ति) के स्नपन और पूजनादि का महान् उत्सव करना

---

१. नवाम्रपल्लवाभा या पीतनेत्रा सुलक्षणा।
सा धेनुः कपिला ज्ञेया साक्षाद् विष्णुस्वरूपिणी ।।
(विधानमाला पृ० २८२ में उद्धृत)

[चतुर्थीकर्म]

अथ चतुर्थीकर्म। तच्चचतुर्थदिने द्वितीये वा कुर्यात्। 'अमुकलिङ्गप्रतिष्ठाङ्गतया चतुर्थीकर्म करिष्ये' इति संकल्प्य तत्र प्राग्वृत एवाचार्यो मूर्तिपयजमानद्वारपालादिभिः सह मण्डपं पश्चिमद्वारेण प्रविश्य तत्र महास्नानसंभारादिकमुपकल्प्य वेद्याः प्रादक्षिण्येन गत्वा कुण्डे स्थापितदैवत्यं चरुं श्रपयित्वा पञ्चब्रह्मभिरङ्गसहितैः सहस्राहुतिहोमं कुर्यात्।

चाहिए। इस प्रकार सर्वदेवप्रतिष्ठाविधि सम्पन्न होती है।

चतुर्थी कर्म—

अब चतुर्थी कर्म का विधान बतलाते हैं। स्थापित देवता का चतुर्थी कर्म प्राण-प्रतिष्ठा के उपरान्त चौथे दिन अथवा दूसरे ही दिन करें[1]। [अन्य देवता के चतुर्थी कर्म की अपेक्षा शिव के चतुर्थी-कर्म में कुछ वैशिष्ट्य को ध्यान में रखते हुए सर्व-प्रथम शिव के चतुर्थी कर्म का विधान बतलाया गया है।]

शिव का चतुर्थी-कर्म—

शिव के चतुर्थी कर्म हेतु संकल्प में देशकालादिसंकीर्तनपूर्वक 'अमुकलिङ्गस्य प्रतिष्ठाङ्गतया चतुर्थीकर्म करिष्ये' ऐसा कहकर संकल्प के जल को छोड़े

तब पर्वतः [प्रतिष्ठा कर्म हेतु] वरण किया गया आचार्य ही मूर्तिप-ऋत्विजों, यजमान और [चारों वेदों के] द्वारपाल ब्राह्मणों के साथ प्रतिष्ठा-मण्डप (याग-मण्डप) में पश्चिम द्वार से प्रवेश करके वहाँ शिव [या स्थापित देवता] के महा-स्नानादि की सामग्रियों को यथास्थान रख कर वेदी [सर्वतोभद्र या लिङ्गतोभद्र वेदी] के प्रादक्षिण्य क्रम से चलकर स्थापित दैवता के निमित्त

---

१. प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ५१०–५११ में भी लेपन द्रव्य विधानोपरान्त चतुर्थीकर्म विहित है।

कुण्ड [या स्थण्डिल] में चरु को पकाकर कुशकण्डिकादि आघाराज्य होम पर्यन्त कर्म करके पञ्चब्रह्म मन्त्रों (पाँच ब्रह्मसंज्ञक मन्त्रों, जिन्हें अन्यत्र आगमों में और पुराणों में 'पञ्चोपनिषदः'[1] पाँच उपनिषत् मन्त्र भी कहा गया है) से और पाँच: अङ्ग मन्त्रों से एक सहस्र आहुतियों का होम करे। अर्थात् पाँच ब्रह्ममन्त्रों और पाँच अङ्ग-मन्त्रों–कुल दश मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र से एक सौ आहुति के क्रम से कुल मिलाकर एक हजार आहुतियों का होम होगा।

चतुर्थीकर्म होम विषयक विचार—

चतुर्थीकर्म होम के विषय में प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में चार पक्ष दिये गये हैं, प्रथम पक्ष मयूखकारोक्त है। द्वितीय पक्ष सौकर्य हेतु अपनाया जाता है, क्योंकि इसमें कुशकण्डिकादि कर्म नहीं करने पड़ते। तृतीय पक्ष के अनुसार पूर्वकृत होमकर्म के स्विष्टकृत् होम के पूर्व चतुर्थीकर्म का होम अङ्गरूप में किया जा सकता है। चतुर्थपक्ष के अनुसार इस होम के लिए पुनः अग्निस्थापन करना चाहिए।[2]

---

१. पञ्चोपनिषदस्तत्पुरुषाघोर-सद्योजातवामदेवेशानरूपा मन्त्राः। श्रीमद्भागवतमहापुराण ८।७।२९ की भावार्थदीपिका (श्रीधरी टीका)।

२. तत्र तद् दिनेऽपि सर्वं कर्म समाप्य अग्निविसर्जनात् पूर्वं कार्यमित्येकः पक्षः। वसोर्धारा होमान्ते संस्रवप्राशनपूर्णपात्रविमोकादितः पूर्वं कार्यमितिद्वितीयः पक्षः। स्विष्टकृदादिहोमात्पूर्वं कार्यमिति तृतीयः पक्षः। अभ्यन्तरे कार्यमिति चतुर्थः पक्षः। तत्र प्रथम पक्षे ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यभागान्तं पुनः कार्यम्। अयमेव पक्षो मयूखादिसकलनिबन्धाभिमतः। अतोऽयमेव पक्षः श्रेष्ठतमः। पुनर्ब्रह्मोपवेशनादिकुशकण्डिकाकरणाशक्तौ सौकर्यार्थं द्वितीयः पक्षो ग्राह्यः। तत्र प्रणीताप्रोक्षणीपात्रादेरविमोकेन प्रणीतादीनां वर्तमानतया कुशकण्डिकाऽभावप्रयुक्तलाघवात्। न च द्वितीयपक्षे स्विष्टकृतो नवाहुतीनां च निवृत्ततया तदनन्तरं कथं चतुर्थीकर्म-होम इति वाच्यम्। स्विष्टकृदाहुतेः प्रधानाहुतिपूर्वकतया अङ्गत्वेन

[ब्रह्ममन्त्रा:]

ब्रह्ममन्त्रा यथा—ईशान: सर्वंवि० । तत्पुरुषाय वि० । अघोरेभ्योऽथ० । वामदेवाय नमो० । सद्योजातं प्र० । इति प्रागुक्ता: ।

पञ्च-ब्रह्ममन्त्र—

पञ्च-ब्रह्ममन्त्र इस प्रकार हैं—(१) ईशान: सर्वविद्यानाम्०, (२) तत्पुरुषाय विद्महे०, (३) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य:०, (४) वामदेवाय नमो:० और (५) सद्योजातं प्रपद्यामि०। इन पञ्च ब्रह्ममन्त्रों से होम इस प्रकार होगा—[इनमें प्रत्येक मन्त्र से एक सौ आहुतियाँ दी जायेंगी]—

पञ्च-ब्रह्ममन्त्रों से होम—

ॐ ईशान: सर्वविद्यानामीश्वर: सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ॥ स्वाहा ॥

इदं शिवाय न मम ।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्र: प्रचोदयात् ॥ स्वाहा ॥ इदं शिवाय न मम ।

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य: ।
सर्वेभ्य: सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्य: । स्वाहा ॥

इदं शिवाय न मम ।

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नम: श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नम: कालाय नम: कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नम: ॥
स्वाहा ॥ इदं शिवाय न मम ।

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नम: ।
भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नम: ॥ स्वाहा ॥
इदं शिवाय न मम ।

विहितहोमस्य स्विष्टकृदनन्तरमपि करणे क्षत्यभावात् । ··· ··· ··· एवं तृतीयचतुर्थपक्षावपि यथासंभवं कार्याविति ।—प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ५१३ ।

[अङ्गमन्त्रा:]

अङ्गमन्त्रा अपि । अद्भ्य: संभृत: पृथिव्यै० । वेदाहमे० । प्रजापतिश्चरति० । यो देवेभ्य आ० । रुच ब्राह्मम्० ।

अङ्गमन्त्र—

अङ्ग मन्त्र इस प्रकार हैं—(१) अद्भ्य: संभृत: पृथिव्यै०, (२) वेदाहमेतं पुरुषं०, (३) प्रजापतिश्चरति०, (४) यो देवेभ्य आ तपति०, और (५) रुचं ब्राह्मं जनयन्तो०। ये पाँच अङ्ग मन्त्र हैं। [इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक सौ आहुतियाँ दी जायेंगी।]

अङ्गमन्त्रों से होम—

ॐ अद्भ्य: संभृत: पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मण: समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥
स्वाहा । इदं शिवाय न मम ।

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस: परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
स्वाहा ।
इदं शिवाय न मम

ॐ प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिम्परि पश्यति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ स्वाहा ॥
इदं शिवाय न मम ।

ॐ यो देवेभ्य आ तपति यो देवानाम्पुरोहित: ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ स्वाहा ॥
इदं शिवाय न मम ।

ॐ रुच ब्राह्मञ्जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे ॥ स्वाहा ॥
इदं शिवाय न मम ।

[ऋत्विक् कर्तृकं ब्रह्ममन्त्राङ्गमन्त्र-देवपत्नीमन्त्रैश्च होमः]

तत ऋत्विजो घृतेन तिलैर्वा स्वस्वकुण्डेषु शतं शतं हुत्वा 'गौरीर्मिमाय' (ऋ० १।१६४।२८) इति मन्त्रेण च जुहुयुरिति शिवस्य चतुर्थीकर्म ।

[अन्य देवानां चतुर्थी कर्म]

एवमन्यदेवविषयेऽपि पूर्ववत्स्थापितदैवत्यं चरुं श्रपयित्वा स्वमन्त्रैः पत्नीमन्त्रैश्च सहस्रहोमं कुर्यात् । ऋत्विजोऽपि घृतेन शतं शतं प्रतिकुण्डं हुत्वा पूर्णाहुतिं जुहुयुः ।

ऋत्विजों के द्वारा ब्रह्ममन्त्र, अङ्गमन्त्र और देवपत्नी-मन्त्र से होम—

तदनन्तर ऋत्विज् गण अपने अपने कुण्डों में घृत या तिलों से पाँच ब्रह्मन्त्रों तथा पाँच अङ्गमन्त्रों (कुल दश मन्त्रों) से दश दश आहुतियों के क्रम से कुल सौ-सौ आहुतियों का होम करके "गौरी-मिमाय०" इस मन्त्र अथवा 'अम्बे अम्बिके०' इस पत्नी मन्त्र से दश दश आहुतियों के क्रम से एक सौ आहुतियों का होम करें ।' अन्त में आचार्य अपने कुण्ड में और ऋत्विज अपने अपने कुण्डों में पूर्णाहुति करें ।'

अन्य देवता का चतुर्थी कर्म—

इसी प्रकार अन्य देवता की प्रतिष्ठा के पश्चात् चौथे दिन या

---

१. गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥

२. अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । स सस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥

३. द्रष्टव्य—'तत ऋत्विजोऽपि घृतेनतिलैर्वा स्व-स्व-कुण्डेषु पूर्वोक्तैर्दशभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं दश दशेति शतं हुत्वा 'ॐ अम्बेऽम्बिके'ति दश दश वारं जुहुयुरिति ।'—प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ५१२ ।

४. ऋत्विजोऽपि घृतेन शतं शतं प्रतिकुण्डं हुत्वा पूर्णाहुतिं जुहुयुः । प्रतिष्ठा-मयूख में आगे कथित वचन ।

[अथ महास्नान-प्रयोगः]

गुरुश्च शीतलतोयेन मूर्तिं सिक्त्वा निर्माल्यमवसाय पुन पूजयित्वा एकाशीतिघटान् पूर्ववत्संस्थाप्य स्नापयेदिति । यद्वा पुराणान्तरोक्तप्रकारेण पूजयेत् ।

दूसरे दिन किये जाने वाले चतुर्थीकर्म हेतु भी पूर्वोक्त (शिव के चतुर्थी कर्म के प्रसंग में कथित) विधि से ही संकल्पादि करके स्थापित देवता के निमित्त चरु पका कर उसमें आचार्य उस देवता के मन्त्रों (यथा—स्थापित देवता विष्णु हो तो 'इदं विष्णु०, गणेश हो तो 'गणानान्त्वा०', सूर्य हो तो 'आकृष्णेन रजसा०') से पाँच सौ आहुतियों का होम और स्थापित देवता की पत्नी के मन्त्र (यथा—विष्णु-पत्नी का मन्त्र 'श्रीश्च ते०' सूर्य पत्नी का मन्त्र 'उषस्तच्चित्र-माभर०' इत्यादि) से भी पाँच सौ आहुतियों का होम – इस तरह कुल मिलाकर एक हजार आहुतियों का होम आचार्य करे ।'

सभी ऋत्विज् भी अपने-अपने कुण्डों में स्थापित देवता के मन्त्र से पचास आहुतियों का होम और स्थापित देवता की पत्नी के मन्त्र से भी पचास आहुतियों का होम—कुल मिलाकर प्रत्येक कुण्ड में सौ आहुतियों का होम घृत (अथवा घृताक्त तिलों) से करें ।

तदनन्तर आचार्य अपने कुण्ड में और ऋत्विज् अपने-अपने कुण्डों में पूर्णाहुति करें ।

महास्नान-प्रयोग—

तदनन्तर आचार्य देव-प्रतिमा या लिङ्ग को 'सिञ्चन्ति परि

---

१. पं० चतुर्थीलाल जी ने सर्वदेवप्रतिष्ठा प्रकाश (पृ० १३७) में शिव की पूजा में विहित अङ्गमन्त्रों का होम सभी देवताओं के चतुर्थी कर्म में विहित किया है—'अङ्गमन्त्रास्तु सर्वेषां पूर्वोक्ता एव' ।

तत्र दध्यक्षतकुशाग्रक्षीरदूर्वामधुयवसिद्धार्थकपुष्पफलतोयान्वित-मर्घ्यपात्रमासाद्य कलशाष्टसहस्रमष्टशतमष्टौ चतुरो वा कलशान् सौवर्णान् राजतान्ताम्रान्रीतिकमयान् मृन्मयान् वोपकल्प्य तेषु 'शन्नो देवी०' 'आपो हि ष्ठे'ति मन्त्रैरुद्धृतं तीर्थजलं प्रक्षिप्य मृद्-गोमयक्षीरदधिमधुघृतशर्करौषधिपुष्पफलकुशरत्नगन्धपञ्चगव्यादिकं च प्रक्षिप्य तत 'समुद्रं वः प्रहिणोमि०' इति मन्त्रेण देवायार्घ्यं समर्प्य स्नापयेत्।

षिञ्चन्त्युरिसञ्चन्ति पुनन्ति च'' इस मन्त्र से शीतल जल से अभिषिक्त करके निर्माल्य को अपसारित (हटा) कर पुनः पूजन करके पूर्व कथित विधि के अनुसार इक्यासी कलशों को स्थापित करके उनसे अधोलिखित विधि से देवता को स्नान करावे। देवता का पूजन [और स्नानादि] पुराणोक्त पद्धति से भी किया जा सकता है।

इस क्रम में दधि, अक्षत, कुशा के अग्रभाग, दूध, दूर्वा, मधु, जौ, सरसों (पीली सरसों), पुष्प, फल तथा जल से पूर्ण अर्घ्य पात्र स्थापित कर सोने या चाँदी या ताँबे या पीतल अथवा अभाव में मिट्टी के बने हुए एक हजार आठ या एक सौ आठ अथवा आठ या चार कलशों को स्थापित कर उनमें 'शन्नो देवी०' तथा आपो हि ष्ठा०' इन तीन मन्त्रों से उठाये गये तीर्थ जल को डालकर मृत्तिका (सप्तमृत्तिका), गोबर, दूध, दही, मधु, घृत, शर्करा, औषधी (सर्वौषधी), पुष्प, फल, कुश, रत्न (पञ्चरत्न), गन्ध (चन्दन), पञ्चगव्य आदि डाले। तब—

ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभि गच्छत

अरिष्टाऽस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥[ख]

१. सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सञ्चन्ति पुनन्ति च। सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥ (यजु० २०।२८)

२. (क) पारस्कर गृह्यसूत्र।

तद्यथा—पञ्चनद्य० इति पञ्चगव्येन। दधिक्राव्ण० इति दध्ना। आप्यायस्वेति क्षीरेण। तेजोऽसीति घृतेन। मधु वाता० इति मधुना। देवस्य त्वा० सरस्वत्यै भैषज्येनेति पुष्पोद-केन। परिव्राजपतिः कवि० इति रत्नोदकेन। देवस्य त्वेति कुशो-दकेन। अग्न आयाहीति फलोदकेन। गायत्र्या गन्धोदकेन। ओषधीः प्रतिमोदध्वमिति सहदेवीव्याघ्रीबलातिबलाशंखपुष्पीवचासिंहीसुवर्च-लोदकेन। समुद्रज्येष्ठा इति पूर्वकल्पितशीतलजलेन। वसोः पवित्र-मिति सहस्रधाराकुम्भेन। ततस्तूष्णीं स्नपनम्।

इस मन्त्र से देवता को अर्घ्य देकर अधोलिखित मन्त्रों से स्नान करावे—

यथा—'पञ्च नद्यः०'' इस मन्त्र से पञ्चगव्य से, 'दधि क्राव्णो०'' इस मन्त्र से दधि से, 'आ प्यायस्व०'' इस मन्त्र से दूध से, 'तेजोऽसि'०

(ख) समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभि गच्छत।
अच्छिद्रः प्रजया भूयासं मा परासेचि मत्पयः ॥
(भारद्वाजश्रौतसूत्र ४।२०।५)

१. पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत्सरित् ॥ (यजु० ३४।११)

२. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ (ऋ० ४।३९।६; यजु० २३।३२)

३. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे ॥ (ऋ० १।९१।१६; यजु० १२।११२)।

४. (क) तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि। प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ (यजु० १।३१)

(ख) तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ (यजु० १९।९)

इस मन्त्र से घृत से, 'मधु वाता०'[1] इस मन्त्र से मधु से, 'देवस्य त्वा सवितुः० सरस्वत्यै भैषज्येन०'[2] इस मन्त्र से पुष्पोदक से, 'परि-वाजपतिः कविरग्नि०'[3] इस मन्त्र से रत्नोदक से, 'देवस्य त्वा सवितुः०'[4] इस मन्त्र से कुशोदक से, 'अग्न आ याहि०'[5] इस मन्त्र से फलोदक से, गायत्री (तत्सवितुः०)[6] मन्त्र से गन्धोदक से, 'ओषधीः प्रति मोदध्वं०'[7] इस मन्त्र से सहदेवी, व्याघ्री, बला, अतिबला, शंखपुष्पी, वचा, सिंही तथा सुवर्चला संज्ञक ओषधियों

(ग) तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥
(यजु० २२।१)

१. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥
(ऋ० १।९०।६-८; यजु० १३।२७-२९)

२. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि.
सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण
बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥ (यजु० २०।३)

३. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद् रत्नानि दाशुषे ॥
(ऋ० ४।१५।३; यजु० ११।२५)

४. द्रष्टव्य–ऊपर टि० २ ।

५. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥
(ऋग्वेद ६।१६।१०; साम १।६६०

६. तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
(ऋ० ३।६२।१०; यजु० ३।३५)।

७. ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः
पारयिष्ण्वः ॥ (ऋ० १०।९७।३; यजु० १२।७७) ।

से मिश्रित जल से, 'समुद्रज्येष्ठा०'[1] इस मन्त्र से पहले से प्रस्तुत (तैयार) किये गये शीतल जल से, 'वसोः पवित्रमसि०'[2] इस मन्त्र से सहस्रधारा कलश से स्नान कराने के पश्चात् तूष्णीं (चुपचाप, अमन्त्रक) स्नान करावे ।

महास्नान–द्रव्य एवं मन्त्र बोधक सूची—

क्रमसंख्या	कलशस्थद्रव्य	मन्त्र
१	पञ्चगव्य	पञ्चनद्यः सरस्वतीम्०
२	दधि	दधिक्राव्णो०
३	दुग्ध	आ प्यायस्व०
४	घृत	तेजोऽसि०
५	मधु	मधुवाता०
६	पुष्पोदक	देवस्य त्वा सवितुः० (यजु० २०।३)
७	रत्नोदक	परिवाजपतिः कवि०
८	कुशोदक	देवस्य त्वा सवितुः० (यजु० २०।३)
९	फलोदक	अग्न आ याहि०
१०	गन्धोदक	तत्सवितुः०
११	सहदेवी-व्याघ्री-बलाऽतिबला-शंख-पुष्पी-वचा-सिंही-सुवर्चलोदक	ओषधीः प्रतिमोदध्वं०
१२	शीतल जल	समुद्रज्येष्ठा०
१३	सहस्रधाराकुम्भ	वसोः पवित्रमसि० ।

---

१. (क) समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥
(ऋ० ७।४९।१)

(ख) समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः स त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ॥
(यजु० ८।२५; २०।१९)

२. वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥
(यजु० १।३)

तत 'अन्धस्थान्धो वो०' इति पञ्चवर्णसूत्रेण नीराज्य बलिं हरेत्। मुञ्चन्तु मा शपथ्यादिति कौतुकं विमुच्य सुगन्धवस्त्रेण पञ्च नद्य इति देवं परिमार्ष्टि।

[आचमनीयम्]

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम्।
तदिदं कल्पितं देव सम्यगाचम्यतां त्वया॥

इत्याचमनीयं निवेदयेत्।

[वस्त्रम्]

वेदसूक्तसमायुक्ते यज्ञसामसमन्विते।
सर्ववर्णप्रदे देव वाससी ते विनिर्मिते।

देवप्रतिमा या लिङ्ग को तूष्णीं स्नान कराने के पश्चात् 'अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय०' इस मन्त्र को पढ़ते हुए पाँच वर्णों (रंगों) वाले सूत्र से देवता का नीराजन करके बलि प्रदान करे। तब 'मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो०' इस मन्त्र को पढते हुए कौतुक (देवता के हाथ में बँधा कङ्कण) को खोल कर 'पञ्च नद्यः०' इस मन्त्र को पढते हुए देवता को सुगन्धित वस्त्र से पोंछे। तब अधोलिखित मन्त्रों से पूजन करे।

हे देव! मन्दाकिनी का सर्वपापहारी शुभजल मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। इससे आप आचमन करें। इस आशय के मन्त्र से आचमनीय निवेदित करे।

१. अन्धस्थान्धो वो भक्षीय महस्थ महो वो भक्षीयोर्जस्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोषस्थ रायस्पोषं वो भक्षीय॥ (यजु० ३।२०)

२. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देव-किल्बिषात्॥
(ऋ० १०।९७।१६; यजु० १२।९०)

३. पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत् सरित्॥ (यजु० ३४.११)

इति वस्त्रयुग्मम्।

[चन्दनम्]

शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च।
मया निवेदितं भक्त्या चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥

इति कुङ्कुमकर्पूरयुक्तचन्दनम्।

[पुष्पम्]

मणिमुक्ताप्रवालाद्यैः स्वर्णपुष्पैर्मया कृता।
पूजा तु देवदेवेश प्रसादाद्भवतस्तव॥ इति पुष्पम्।

[धूपम्]

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति धूपः।

हे देव! वेद-सूक्त तथा यज्ञ-साम से युक्त और सर्ववर्ण प्रद वस्त्र आप के लिए निर्मित किये गये हैं। इस आशय के मन्त्र से एक जोड़ा वस्त्र समर्पित करे।

हे देव! मैं आपके शरीर का स्वरूप नहीं जानता हूँ। आपकी चेष्टा को तो जानता ही नहीं हूँ। आप मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित किये गये चन्दन को ग्रहण करें। इस आशय के मन्त्र से कुङ्कुम तथा कर्पूर युक्त चन्दन अर्पित करे।

हे देवदेवेश! मैंने आपके प्रसाद (=अनुग्रह) से प्राप्त मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि से तथा सुवर्ण-निर्मित पुष्पों से आपकी पूजा की है। इस [आशय के मन्त्र] से पुष्प चढावे।

वनस्पति के रस से युक्त, सुगन्ध से भरपूर, मनमोहक, सभी देवताओं के सूँघने योग्य यह धूप आप ग्रहण करें। [इस अर्थ वाले मन्त्र] से धूप प्रदान करे।

[दीपम्]

त्वं चन्द्रस्त्वं रविर्विष्णुस्त्वं रत्नानि हुताशनः ।
त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इत्यशीत्या चत्वारिंशता वा दीपैरारार्तिकम् ।

[नैवेद्यम्]

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति नैवेद्यम् ।

संभूषाय ते नमः ।—इति भूषणानि दत्त्वा पूर्वकृतं होमं निवेद्य प्रार्थयेत्—

यन्मया भक्तियोगेन पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
आवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ इति ।

आप ही चन्द्र, सूर्य, विष्णु, विविध रत्न, अग्नि तथा सर्व-ज्योति स्वरूप हैं। आप यह दीप ग्रहण करें।

इस [अर्थ वाले मन्त्र] से अस्सी या चालीस दीपकों से आरती करे। [अथवा केवल दीप दिखावे और आरती नैवेद्य के बाद करे]

[हे देव!] छः रसों तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थों से युक्त चारों तरह के अन्न का नैवेद्य स्वीकार करें। इस [आशय के मन्त्र] से नैवेद्य समर्पित करे।

तब 'संभूषाय ते नमः'।—इससे देवता को आभूषण पहनाकर पूर्वकृत होम का निवेदन करके यह प्रार्थना करे—

हे देव मैंने भक्तिपूर्वक जो भी पत्र, पुष्प, फल, जल और नैवेद्य आपको निवेदित किया है उसे आप कृपापूर्वक ग्रहण करें॥

हे देव! मैंने मन्त्र से हीन, क्रिया से हीन तथा भक्तिहीन जो कुछ भी पूजन किया है वह मेरे लिए परिपूर्ण हो॥ इति।

ततः पुनरष्टोत्तरसहस्रं मूलमन्त्रेण हुत्वाङ्गानां दशांशेन पूर्णाहुत्यन्तं कृत्वा स्वस्तिवाचनं कारयित्वा इन्द्रादिभ्यो बलिं दत्त्वाऽऽचम्य शेषं समापयेदिति । इति चतुर्थीकर्मविधिः ।

[चण्ड-स्थापना]

चतुर्थीकर्मदिने दिनान्तरे वा 'अमुकलिङ्गप्रतिष्ठाङ्गतया चण्डप्रतिष्ठां करिष्ये' इति सकल्प्य प्रासादाद्बहिर्गर्भगृहाद्धंसूत्रान्तराले ईशान्यां चण्डस्थाने पीठादौ चण्डमूर्तिं संस्थाप्य पूजयेत् ।

तब पुनः स्थापित देवता के मूलमन्त्र से एक हजार आठ बार तथा अङ्गमन्त्रों[1] से दशमांश अर्थात् एक सौ आठ बार [यदि मूलमन्त्र से केवल एक सौ आठ आठ बार होम हो तो अङ्गमन्त्रों से उसका दशमांश] होम कर स्विष्टकृत्, व्याहृति होम, पञ्च-वारुणी होम से लेकर 'मूर्धानं दिवो अरतिं०' इत्यादि अथवा केवल 'पूर्णा दर्वि परा पत०' इत्यादि मन्त्र से पूर्णाहुति पर्यन्त कर्म सम्पन्न करके पुनः स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन?) कराकर [एकतन्त्रेण] इन्द्रादि दिक्पालों को सदीप-दधि-माष-भक्त-बलि देकर आचमन करके शेष कर्म सम्पन्न करे। इस तरह चतुर्थीकर्म की विधि पूर्ण हुई।

चण्ड-स्थापन—

कहीं-कहीं शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा के पश्चात् चण्ड के स्थापन का भी विधान है। इसके लिए शिव की प्रतिष्ठा के चतुर्थी कर्म के दिन अथवा दूसरे या अन्य किसी दिन देश, काल आदि का उच्चारण करके 'अमुकोऽहं' कहते हुए 'अमुकलिङ्गप्रतिष्ठाङ्गतया चण्डप्रतिष्ठां करिष्ये।' ऐसा संकल्प करके गणेशाम्बिकादि पूजन के पश्चात् प्रासाद (मन्दिर) के बाहर गर्भगृह के मध्य से सूत्र से नाप लेते हुए किञ्चित् ईशान कोण में चण्ड के स्थान में पीठ आदि

१. द्रष्टव्य—पीछे पृ० ३३७ ।

[चण्डस्य ध्यानम् आवाहनञ्च]

तत्र ध्यानम्—

रुद्राग्नेः प्रभवं चण्डं कज्जलाभं भयानकम् ।
शूलदण्डधरं रौद्रं चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ॥
मुखोद्गीर्णमहाज्वालं रक्तद्वादशलोचनम् ।
जटामुकुटखण्डेन्दुमण्डितं फणिकङ्कणम् ॥
व्यालयज्ञोपवीतं च साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।
श्वेतपद्मासनासीनं भक्तिप्रह्वार्तिनाशनम् ॥

इत्येवं ध्यात्वा 'ॐ चण्डासनाय नमः । ॐ चण्डमूर्तये नमः । ॐ धनुश्चण्डेश्वराय' हुं फट स्वाहा' इति मन्त्रेणावाह्य

में चण्ड की मूर्ति स्थापित करके उसकी पूजा करे ।

चण्ड का ध्यान—

तब चण्ड के इस स्वरूप का ध्यान करे—रुद्राग्नि से उत्पन्न, काजल के समान वर्ण वाला, भयानक, शूल तथा दण्ड को धारण करने वाला, रौद्र (क्रोधावेशयुक्त), चारमुख तथा चार भुजाओं वाला, मुख से निकली हुई अग्नि की विशाल लपटों वाला, लाल-लाल बारह नेत्रों वाला, शिर में जटा, मुकुट तथा आधे चन्द्रमा को धारण करने वाला, सर्पों को कङ्कड़ (कँगना) के रूप में धारण करने वाला तथा सर्प को ही यज्ञोपवीत के रूप में धारण करने वाला, अक्षसूत्र (रुद्राक्ष की माला) तथा कमण्डलु धारण किया हुआ श्वेत कमल के आसन पर बैठा हुआ चण्ड भक्ति परायण मनुष्यों के कष्ट को दूर करने वाला है ।

चण्ड के इस स्वरूप का ध्यान करके 'ॐ चण्डासनाय नमः । ॐ चण्डमूर्तये नमः । ॐ धनुश्चण्डेश्वराय हुं फट् स्वाहा' इन मन्त्रों से चण्ड का आवाहन करे ।

---

१. धुनिचण्डेश्वराय नमः – सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १३९ ।

[चण्डस्य हृदयादि न्यासः]

ॐ चण्डहृदयाय हुं फट् नमः । ॐ चण्डशिरसे हुं फट् नमः । ॐ चण्डशिखायै हुं फट् नमः । ॐ चण्डकवचाय हुं फट् नमः । ॐ चण्डास्त्राय हूं फट् करयोरस्त्रम् । ॐ च सद्योजाताय हुं फट् नमः । ॐ चि वामदेवाय हुं फट् नमः । ॐ चुं अघोराय हुं फट् नमः । ॐ चैं तत्पुरुषाय हुं फट नमः । ॐ चौं ईशानाय हुं फट नमः । इति न्यासान् कृत्वा षोडशोपचारैः संपूज्य विज्ञापयेत्—

चण्ड का न्यास—

'ॐ चण्डहृदयाय हुं फट् नमः' इससे हृदय में न्यास करे ।
'ॐ चण्डशिरसे हुँ फट नमः' इससे शिर ,, ,, ,, ।
'ॐ चण्डशिखायै हुँ फट् नमः' इससे शिखा में न्यास करे ।
'ॐ चण्डकवचाय हुँ फट नमः' इससे कवच में न्यास करे ।
['ॐ चण्डनेत्राय हुँ फट् नमः' इससे नेत्रत्रय में न्यास करे ।]
ॐ चण्डास्त्राय हुँ फट् [नमः] इससे हाथों में अस्त्र-न्यास करे ।

सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश (पृ० १३९) में उपर्युक्त चण्डन्यास को अधोलिखित रूप में दिया गया है—

ॐ चण्ड हृदयाय हुँ फट् नमः ।
ॐ चण्ड शिरसे ,, ,, ,, ।
ॐ चण्ड शिखायै ,, ,, ,, ।
ॐ चण्ड कवचाय ,, ,, ,, ।
ॐ चण्ड नेत्रत्रयाय ,, ,, ,, ।
ॐ चण्डमस्त्राय ,, ,, करयोरस्त्रम् ।

चण्ड न्यास का अन्य क्रम—

ॐ चं सद्योजाताय हुँ फट् नमः ।
ॐ चि वामदेवाय ,, ,, ,, ।
ॐ चुं अघोराय ,, ,, ,, ।
ॐ चैं तत्पुरुषाय ,, ,, ,, ।
ॐ चों ईशानाय ,, ,, ,, ।

यावत्तिष्ठति लोकेऽस्मिन्देवदेवो महेश्वरः।
तावत्कालं त्वया देव स्थातव्यं शिवसन्निधौ। इति।
ततो दिग्बलिं दत्त्वा भूतानि विज्ञापयेत्—
यथा—यावत्कालं महादेवो लिंगमाश्रित्य तिष्ठति।
तावत्कालं तु रक्षार्थं यूयं तिष्ठत सर्वदा॥ इति।

इस तरह से न्यास करके षोडशोपचारों से चण्ड का पूजन करके यह प्रार्थना करे—

जब तक इस लोक में देवाधिदेव शिव रहें, हे देव! तब तक आप शिव के समीप स्थित रहें।

तत्पश्चात दिशाओं में बलि [दिक्पालबलि या भूतबलि' ?]

---

१. भूतबलि-प्रयोगः—
शूर्पमध्ये पिष्टमयदीप-माषान्न-दध्योदन-हरिद्रा-सिन्दूर-कज्जल गन्ध-रक्त-पुष्पाणि संस्थाप्य गीतवादित्रकुटुम्बजनसहितश्चत्वरे गत्वा तत्र गन्ध-पुष्पाद्यर्चितं शूर्पं स्थापयेदेभिर्मन्त्रैः—
ॐ बलिं गृह्णन्तु ते देवा आदित्या वसवस्तथा।
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः॥ १॥
जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माला विद्याधरानुगाः।
असुरा यातुधानाश्च पिशाचा डाकिनीगणाः॥ २॥
शक्तयो यक्षवेताला ये च विघ्नविनायकाः।
जगतां शान्तिकर्तारः क्रमाद्याश्चैव मातरः॥ ३॥
मा विघ्नं मा च मे रोगो मा सन्तु परिपन्थिनः।
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूताः प्रेताः सुखावहाः॥ ४॥
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु रक्षां कुर्वन्तु मेऽध्वरे।
देवताभ्यः पितृभ्यश्च भूतेभ्यः सहजन्तुभिः। ५॥
एतत्स्थानाधिवासिभ्यः प्रयच्छामि बलिं नमः।
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ६॥
ब्रह्माविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः॥ ७॥

देकर भूतों से यह प्रार्थना करे—

जब तक महादेव इस लिङ्ग में स्थित हैं तब तक आप लोकरक्षार्थ सर्वदा इस लिङ्ग के समीप रहें।

चण्ड स्थापनादि विषयक विचार—

सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश' में कहा गया है—'क्वचिच्चण्डोनास्तीति त्रिविक्रमः। सिद्धान्तशेखरे तथा। उक्तं च—

बाणलिङ्गे च लोहे च सिद्धलोहे [? लिङ्गे] स्वयंभुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥ १
धरा-हिरण्य-गो रत्न-ताम्र-रौप्यांशुकादिकान्।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्॥ २॥
अन्यदन्नादि पानीयं ताम्बूलं गन्धपुष्पकम।
दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभुक्तं तु सर्वशः॥ ३॥
आचार्यशिवचण्डानामाज्ञाभङ्गे तु लक्षकम्।
धनस्य भक्षणे तेषां पादोनं लक्षमीरितम्॥ ४॥
लिङ्गे स्वयंभुवे बाणे रत्नजे रत्ननिर्मिते।
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥ ५॥
यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः।
चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः॥ ६॥

कीर्तिमुख-स्थापनम्—

सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश में कीर्तिमुख के स्थापन का विधान भी दिया गया है, जो इस प्रकार है—

ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च।
एते ममाध्वरे रक्षां कुर्वन्तु प्रमदान्विताः॥ ८॥
एतेभ्यो भूतेभ्यो गन्धादिकं वः स्वाहा। इति दत्त्वा गृहमागत्य पाणिपादौ प्रक्षाल्याचमनं कुर्यात्।

१ सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १३९

ततोः गुरुः कर्मशेष सम्पाद्य भद्रासने यजमानमुपवेश्याभिषिञ्चेत् । तत्र देवस्य त्वेति० शन्नोदेवीरभिष्टय० अथर्वणसाम० सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त्वित्यादयश्च मन्त्राः ।

"ततः प्रासादाद् बहिर्द्वारदेशे कीर्तिस्तम्भं स्थापयेत् । तदुक्तं पद्मपुराणे । ईश्वर उवाच—

त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद् द्वारिगः सदा ।
त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियङ्कुराः ॥ ३१ ॥
तदा प्रभृति देवस्य द्वारे कीर्तिमुखः स्थितः ।
नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥(पद्म ६।९९।३१–३२)

कीर्तिमुखस्थापन प्रयोगः—

देश-कालौ संकीर्त्य, श्रीसदाशिवप्रीतये कीर्तिमुखस्थापनं करिष्ये । इति संकल्प्य पूर्ववत् चण्डविधिना स्थापयेत् ।"[1]

यजमान का अभिषेक—

तब आचार्य शेष कृत्यो को सम्पन्न करके यजमान को भद्रासन[2] में बैठाकर उसका अभिषेक करे । अभिषेक के मन्त्र 'देवस्य त्वा सवितु०'[3] 'शन्नो देवीरभिष्टय०'[4] अथर्वणसाम[5] तथा 'सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु०'[1] इत्यादि हैं ।

---

१ सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० १३९ से उद्धृत ।

२. यहाँ भद्रासन का तात्पर्य यजमान के बैठने के लिए प्रयुक्त प्रशस्त आसन से है । जबकि अन्यत्र भद्रासन का तात्पर्य राजा के बैठने के लिए प्रयुक्त सिंहासन होता है । योगासन की एक विशेष मुद्रा को भी भद्रासन कहा जाता है ।

३. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि,
सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥ (यजु० २०।३)

४. शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं यो रभिस्रवन्तु नः ॥

५. उहुवा ओ हा । औ हो वा शन्नो देवीः । इत्यादि अथर्वणसाम आरण्यगान, साम २३१ प्रपाठक । द्र० पीछे पृ० ३२५ टि० १ में उद्धृत ।

ततो यजमानो महाजलाशये अवभृथस्नानं कृत्वा मण्डपमागत्य गुर्वादीन्सपूज्य हिरण्यादिदक्षिणां दत्वा सोपस्करां गां च दद्यात् ।

गुरुश्च—समस्तजगदुत्पत्तिस्थित्यनुग्रहकारकः ।
शिवः सानुचरः स्याद्वः सर्वदा सर्वकामदः ॥
इति मन्त्रेणाशिषो दद्यात् । यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनम् ।

तब यजमान किसी बड़े जलाशय में जाकर अवभृथ स्नान करके लौटकर यागमण्डप में जाकर आचार्य और ऋत्विजों आदि का पूजन करके उन्हें सुवर्ण आदि की दक्षिणा देकर सोपस्करा गौ (गाय तथा उसके साथ काम आने वाले उपकरण और गाय दुधारु हो तो उसको दुहने का पात्र और बछड़ा आदि) का दान करे ।

तब आचार्य यजमान को 'समस्तजगदुत्पत्ति०' इत्यादि श्लोकोक्त आशीर्वाद दे, जिसका आशय है कि समस्त जगत की उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले शिव अपने अनुचरों सहित सदा आपकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करें ।

---

१. सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥ १ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते । आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥ २ वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु त्वां सदा ॥ ३ कीर्तिर्लक्ष्मीधृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिस्तु मातरः ॥ ४ एतास्त्वामभि षिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः । आदित्यचन्द्रमाभौमबुधजीवसितार्कजाः ॥ ५ ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुःकेतुश्च तर्पिताः । देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ६ ऋषयो मनवो गावा देवमातर एव च । देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ७ अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च । औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥ ८ सरितः सागराः सर्वे तीर्थानि जलदा नदाः । एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ९

[चण्ड-स्थापनायाः क्वचिन्निषेधः]

क्वचिच्चण्डो नास्तीति त्रिविक्रमः—

बाणलिङ्गे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥ इति ॥

इति चण्डपूजा ।

चण्ड-स्थापना का क्वचिन्निषेध—

त्रिविक्रम के मतानुसार कहीं-कहीं चण्ड की प्रतिष्ठा नहीं की जाती। यथा-बाणलिङ्ग, लोह-लिङ्ग (सुवर्णादि धातु का लिङ्ग), सिद्धलिङ्ग, स्वयंभू लिङ्ग तथा सभी प्रतिमाओं की स्थापना में चण्ड की स्थापना नहीं होती है।

ध्वजारोपणम्—

असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः ।
ध्वजहीने तु प्रासादे वस्तुमिच्छन्ति नित्यदा ॥
तस्माद् ध्वजविहीनं तु न कुर्यात् सुरमन्दिरम् ।
यावन्तस्तन्तवस्तस्य ध्वजस्य वरवर्णिनि ॥
तावद् वर्षसहस्राणि कर्ता स्वर्गे महीयते ।
यथा विधूते वातेन ध्वजः प्रासादमस्तके ॥
तथा कर्ता त्यजेत् पापं सप्तजन्मार्जितं क्षणात् ।
यत्रैतत्क्रियते राष्ट्रे ध्वजयष्टिनिवेशनम् ॥
नाकालमृत्युस्तत्रास्ति नालक्ष्मीः पापकृत्स्वपि ।
नोपसर्गभयं तत्र नापि रोगा न विभ्रमः ॥
विपरीतानि नो तत्र नराणामपि भूयसाम् ।
स्वकालवर्षी पर्जन्यः सुभिक्षं विजयी नृपः ॥
शान्तानि सर्वभूतानि पयस्विन्यः पयोभृतः ।
कृतघ्नो ब्रह्महा गोघ्नो दृष्ट्वा ध्वजनिवासिनम् ॥
प्राप्नोति पापनिर्मोक्षं किमु कर्तुः कुलद्वयम् ।

चक्र-त्रिशूलादिचिह्नितं देव-वाहनाङ्कितं च ध्वजं किङ्किणी-क्षुद्रघण्टिकादिभिर्युतं कृत्वा देवमन्त्रेण वाहनमन्त्रेण[1] च गन्धपुष्पादिभिः संपूज्य वृक्षसारमयेऽश्मसारमये लोहमये वा ध्वजदण्डे[2] निबध्नीयात् । ततः तं ध्वजदण्डं—

ॐ उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञ वाहसे ॥[3]

इति मन्त्रेणोच्छ्रित्य प्रासादस्येशानदिग्भागे (पृष्ठे वा, नैर्ऋत्ये वा वायव्ये वा) भूमौ निखाय मृद्भिर्गर्तमापूर्य 'सुप्रतिष्ठितो भव चिरकालं स्थिरो भव सर्वसौख्यप्रदो भव' इति पठन् दृढीकुर्यात् । ततस्तं ध्वजमधोलिखितमंत्रैरनुमन्त्रयेत—

ॐ आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा
द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा
ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥[4]

ॐ शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु स्थानस्यास्य शुभं तथा ।
प्राणिनः सुखिनः सन्तु राजा च विजयी भवेत् ॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावदत्र स्थिरो भव ।
दुरितं दुष्टसत्त्वानि भूतादीनि धुनोतु च ।
प्रजाहानिश्च दुर्भिक्षं मा भूज्जगति सर्वदा ।
त्वत्प्रासादाच्च लोकानां शर्म भवतु ते नमः ॥

---

१. यथा—विष्णु के वाहन का 'सुपर्णोऽसि०' के अतिरिक्त अधोलिखित मन्त्र भी है—

वाहनाय महाविष्णोः तार्क्ष्यायामिततेजसे ॥ ५९
गरुडाय नमस्तेऽस्तु सर्वसर्पेन्द्रमृत्यवे । नारदीयसंहीता १८।५९-६०

२. ध्वजदण्डश्च प्रासादसम्मितस्तदधिको वा, चतुर्दशहस्तो वा नवहस्तो वा । तथा चोक्तमाग्नेये -

शक्रैर्ग्रहै रसैर्वापि हस्तैर्दण्डस्तु सम्मितः ।
उत्तमादिक्रमेणैव विज्ञेयः सूरिभिस्ततः ॥ (अग्नि १०२।६-७)

३. ऋ० ३।८।३ । ४. ऋ० ३।८।८ ।

अथ बोधायनाद्युक्ता

चल प्रतिष्ठा

तत्र शुचौ देशे मण्डपं तदन्तः प्रतीच्यामुदीच्यामीशान्यां वा कुण्डं कुर्यात्। मण्डपाकरणपक्षे कुण्डस्थाने स्थण्डिलं कुर्यात्। तदुत्तरतः स्नानोपकरणानि नैर्ऋते वास्तुमण्डलं मध्ये वेद्यां सर्वतोभद्रादिमण्डलं विष्णुप्रतिष्ठायां सर्वतोभद्रं शिवप्रतिष्ठायां लिङ्गतोभद्रं तदुत्तरतः स्वस्तिकोपरि शय्यास्थानं च कृत्वा पूर्वदिने वा देशकालौ स्मृत्वा 'दाहादिदोषदुष्टायामस्यां मूर्तौ पुनर्देवकलासान्निध्यार्थमायुः श्रीसर्वफलायुष्य सुपुत्रावाप्त्यादिसुखकाम ईश्वरप्रीतिकामो वा परिवारदेवतोपेताममुकमूर्तेश्चलप्रतिष्ठां करिष्ये' इति सङ्कल्प्य तदङ्गत्वेन गणेशपूजापुण्याहवाचनमातृपूजनाभ्युदयिकश्राद्धानि कृत्वा गुरुमष्टौ चतुरो वा ऋत्विज वृत्वा पूजयेत्।

बोधायनादि प्रोक्त

चल-प्रतिष्ठा—

मूर्तियाँ दो प्रकार की होती हैं चलमूर्ति और अचलमूर्ति।[1] चलमूर्ति की प्रतिष्ठा घर में और अचलमूर्ति की प्रतिष्ठा मन्दिर में की जाती है।[2] घर के अन्दर एक अंगुल से लेकर एक वितस्ति (बारह अंगुल) ऊँची मूर्ति का पूजन हो सकता है उससे अधिक ऊँची मूर्ति का घर में पूजन विद्वानों ने शुभ नहीं बतलाया है।[3]

१. चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम्।
उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने॥ १३॥
अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेद् द्वयम्।
(भाग० ११।२७।१३-४)

२. गृहे चलार्चा विज्ञेया प्रासादे स्थिरसंज्ञिका।—लौगाक्षि।

३. अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥ (मत्स्य २५८।२२)

घर में एक से अधिक मूर्तियों का पूजन कल्याणकारी होता है।[1]

चल-प्रतिमा की प्रतिष्ठा के लिए शुद्ध स्थान में मण्डप बना कर उसके अन्दर पश्चिम में या उत्तर में अथवा ईशानकोण में कुण्ड बनावे। यदि चल-प्रतिमा की प्रतिष्ठा के लिए मण्डप न बनवाना हो तो कुण्ड के स्थान पर (कुण्ड बनाने के बजाय) स्थण्डिल बनवावे। उस कुण्ड या स्थण्डिल के उत्तर में देवता के स्नान की सामग्री रखे, नैऋत कोण में वास्तुमण्डल, मध्य में वेदी के ऊपर सर्वतोभद्रादि मण्डल बनावे। सर्वतोभद्र मण्डल की रचना विष्णु (या अन्य देवों) की प्रतिष्ठा मे की जाती है और शिव की प्रतिष्ठा में लिङ्गतोभद्र बनाया जाता है। उसके उत्तर में स्वस्तिक बना कर उस पर स्थाप्य देवता की शय्या रखने का स्थान बनावे। ये कार्य प्रतिष्ठा के दिन अथवा उसके एक दिन पूर्व भी किये जा सकते हैं।

प्रतिष्ठा के दिन आचमन, प्राणायाम आदि करके यजमान संकल्प हेतु हाथ में जल लेकर देश, काल तथा अपना गोत्र, नाम आदि का उच्चारण करके—'दाहादिदोषदुष्टायामस्यां मूर्तौ पुनर्देवकलासान्निध्यार्थमायु'[2]श्रीसर्वफलायुष्यसुपुत्रावाप्त्यादिसुखकामः। ईश्वरप्रीतिकामो वा। परिवारदेवतोपेताममुकमूर्तेश्चलप्रतिष्ठां करिष्ये। [तथा तदङ्गत्वेन गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजनं, नान्दीश्राद्धम् आचार्यवरणम् ऋत्विग्वरणादिकं च करिष्ये]।

इस प्रकार संकल्प करके चलमूर्ति की प्रतिष्ठा के अङ्गरूप में गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, षोडशमातृका पूजन, घृतमातृकापूजन,

१. एका मूर्तिर्न पूज्यैव गृहिणा स्वेष्टमिच्छता।
अनेकमूर्तिसम्पन्नः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥

२. संकल्प का यह अंश चलप्रतिष्ठा में संयोजनीय नहीं है।

३. दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽहमस्यां मूर्तौलिङ्गे वा देवकलासान्निध्यार्थं ... ... इत्यादिरूपेण संकल्प अधिक संगत है।

तत मण्डपकरणपक्षे गुरुर्मण्डपप्रतिष्ठाग्निस्थापनं च कृत्वा [अत्र ग्रहस्थापनं केचिदिच्छन्ति] स्थाप्य-दैवत्यं नैवार चरुं श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थापामार्गसमिधां प्रत्येकमष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा प्रतिदैवतं लोकपालमन्त्रैर्व्याहृतिभिर्वा जुहुयात् । तावत्संख्याकमाज्यहोमं कृत्वा स्थाप्यदेवताकमन्त्रेण समित्तिलाज्यानां प्रतिद्रव्यं दशदशाहुतिं स्विष्टकृतं च हुत्वाऽष्टसहस्रमष्टशतं वा स्थाप्य-देवतामन्त्रं जपेत् । अथ यजमानो गुरवे वरं दद्यात् ।

आभ्युदयिक श्राद्ध आदि करके गुरु (आचार्य) तथा आठ अथवा चार ऋत्विजों का वरण करके उनका पूजन करे ।

यदि मण्डप बनाया गया हो तो आचार्य मण्डप की प्रतिष्ठा भी करे तब अग्निस्थापन करे । इसके पश्चात् कुछ आचार्य ग्रहस्थापन करते हैं । तब स्थाप्य देवता के लिए नीवार (तिन्नी के चावल) का चरु पकाकर अग्नि में आघार तथा आज्यभाग की आहुतियाँ देकर ग्रहहोम करके पलाश, उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल) तथा अपामार्ग (चिचड़ा) की समिधाओं से लोकपालों में से प्रत्येक को तत्तत् लोकपाल के मन्त्र से अथवा व्याहृतियों (भूः, भुवः स्वः) से एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ या अट्ठाईस या आठ की संख्या में होम करे तथा उपर्युक्त समिधाओं से होम के पश्चात् उतनी ही संख्या में उन्हीं मन्त्रों से लोकपालों के लिए आज्य होम करके स्थाप्य देवता के मन्त्र से समिधा, तिल (=घृताक्त तिल) तथा आज्य में से प्रत्येक द्रव्य से दश दश आहुतियों का होम करके स्विष्टकृत् होम करे । तब स्थाप्य देवता के मन्त्र का एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ की संख्या में जप करे । तब यजमान आचार्य को वर (दक्षिणा) दे ।

[देवस्नपनम्

ततो गुरुर्देवं पञ्चगव्यैः पञ्चामृतैश्च पृथक् तत्तन्मन्त्रैः शन्नोदेवीरिति संस्रावकलशेन च संस्राव्य श्रीखण्डाद्यैरनुलिप्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य पुनश्चतुर्भिः कलशैः 'समुद्रज्येष्ठा' इत्याद्यभिषकमन्त्रैरभिषिच्य भद्रपीठे निवेश्य तत्र परितोऽष्टौ कलशांस्तोयपूर्णान्पूर्वादिक्रमेण संस्थाप्य सप्तमृदः, पल्लवान्कुशान्शाल्युदकं प्रस्रवणोदकं यवान् पुष्पाणि फलानि च क्रमेण निक्षिप्य स्थापनक्रमेण कुम्भैः स्नापयेत् । तत्तन्मन्त्राः—आपो हिष्ठेति तृचः । हिरण्यवर्णाः शुचय इति चतुष्टयम् । पवमानः सुवर्जनः इत्यनुवाकश्चेति ।

चल प्रतिमा के स्नान का विधान—

तदनन्तर गुरु 'पयः पृथिव्यां' इस मन्त्र से पञ्चगव्य[1] से तथा पञ्चामृत[2] के पृथक् पृथक् द्रव्यों से उनके मन्त्रों को पढ़ते हुए देवता को स्नान कराकर तथा 'शन्नो देवी०'[3] इस मन्त्र से संस्राव कलश से स्नान कराकर श्रीखण्ड (चन्दन) आदि से अनुलेपन कर तथा उष्ण

---

१. पञ्चगव्य—ताम्राऽरुणश्वेतकृष्णनीलानामाहरेद्गवाम् ।
गोमूत्र-गोमय-क्षीर-दधि-सर्पींषि च क्रमात् ॥ (स्कान्दे)
वीरमित्रोदय परिभाषाप्रकाश, पृ० ११४ ।

तत्रैव —विष्णु-वह्नीन्द्र-वाय्वर्कदैवत्यानि यथाक्रमम् ।
विद्यधेतानि कुशोदं च पितृराजाधिदैवतम् ॥
प्रोक्ताभावे त्वथैतानि कपिलायाः प्रकल्पयेत् ।
वीरमित्रोदय, परिभाषाप्रकाश, पृ० ११४–५ ।

२. पञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं नृप ।
वीरमित्रोदय, परिभाषाप्रकाश, पृ० ११४ ।

३. शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं यो रभि स्रवन्तु नः ॥

जल से प्रक्षालित करके पुन: चार कलशों के जल से 'समुद्रज्येष्ठा'[1] इत्यादि चार मन्त्रों से अभिषिक्त कर देवता (की प्रतिमा) को भद्रपीठ में रख करके उसके चारों ओर जल से भरे हुए आठ कलशों को पूर्वादि क्रम से आठों दिशाओं में स्थापित करके उनमें क्रमशः सप्तमृत्तिका, पञ्चपल्लव, कुश, शालि धान से मिश्रित जल(?) प्रस्रवण (झरने ?) का जल, जौ, पुष्प, तथा फलों को डालकर स्थापन क्रम से (पूर्वादि दिशाओं के) कलशों से देवता को क्रमशः 'आपो हिष्ठा०'[2] इत्यादि तीन ऋचाओं, 'हिरण्यवर्णा: शुचय:'[3]

१. समुद्रज्येष्ठा: सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमाना: ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥
या आपो दिव्या उतवा स्रवन्ति खनित्रिमा उतवा या: स्वयंजा: ।
समुद्रार्था या: शुचय: पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥
यासां राजा वरुणा याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुत शुचयो या. पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥
यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वेदेवा यासूर्जं मदन्ति
वैश्वानरो यास्वग्नि: प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामन्तु ॥
(ऋ० ७।४९।१-४)

२. आपो हि ष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥
यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न: । उशतीरिव मातर: ॥ २ ॥
तस्मा अर गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपो जनयथा च न: ॥
(ऋ० १०।९।१-३; यजु० ११।५०-५२)

३. हिरण्यवर्णा: शुचय, पावका यासु जात: कश्यपो यास्विन्द्र: । अग्नि
या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आप: शं स्योना भवन्तु ॥ यासां राजा
वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुन: शुचयो या:
पावकास्ता न आप: शं स्योना भवन्तु ॥ यासां देवा दिवि कृण्वन्ति
भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति । या: पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न
आप: शं स्योना भवन्तु ॥ शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया
तनुवोप: स्पृशत त्वचं मे । सर्वां अग्नीं रप्सुषदो हुवे वो मयि
वर्चो बलमोजो नि धत्त ॥ (तै० सं० ५।६।१-४) ।

ततो वाससी परिधाप्य उपवीतं दत्त्वा गन्धपुष्पधूपदीपै: संपूज्य पिष्टैरष्टभिर्दीपैर्नीराज्य हिरण्यगर्भ इत्यष्टभिर्हिरण्यशलाकां गृहीत्वा चित्रं देवानामित्यनेन देवनेत्रे उन्मील्याञ्जन्ति त्वामध्वर इत्यञ्जयित्वा पुनर्मधुघृतशर्कराभिर्देवस्य त्वेत्यञ्जयेत् । मन्त्रान्ते अनज्मीति वाक्यशेष: । ततो भक्ष्यभोज्यादर्शादि दर्शयेत् । तदाऽग्रे कोऽपि न तिष्ठेत् । ततो दर्भेष्वासीनो दर्भान्धारयमाण: पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा वंशपात्रे पञ्चवर्णान्वितमन्नं प्रक्षिप्य देवं नीराज्य ॐ नमो भूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमापतये सर्वविद्याधिपतये रुद्राय नम: शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहेति बलिं दत्त्वाऽऽचामेत् ।

इत्यादि चार मन्त्रों तथा 'पवमान: सुवर्जन:'[1] इस अनुवाक का पाठ करते हुए स्नान करावे।

तब देवता को वस्त्र पहना कर यज्ञोपवीत प्रदान कर गन्ध (चन्दन, कुङ्कुम आदि), पुष्प, धूप, दीप से पूजन करके पिष्ट (आटा) के बने आठ दीपकों से 'हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे०'[2] इत्यादि

१. पवमान: सुवर्जन: पवित्रेण विचर्षणि । य: पोता स पुनातु मा ॥ पुनन्तु मा देवजना: पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्व आयव: जातवेद: पवित्रवत् ॥ पवित्रेण पुनाहि शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूं रनु ॥ यत्ते पवित्रमर्चिषि अग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीमहे ॥ उभाभ्यां देव सवित: पवित्रेण सवेन च । इन्द्र ब्रह्म पुनीमहे ॥ इत्यादि ।
तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।८।१

२. हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवा: ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्यु: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥
य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

आठ मन्त्रों से नीराजन (आरती) करके सोने की शलाका लेकर उससे—

'ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।

इस आधी ऋचा से देवता का नेत्रोन्मीलन करे।

तब 'ॐ अञ्जन्ति त्वामध्वरे०'[1] इस मन्त्र से देवता को अञ्जन लगा कर पुनः मधु, घृत, शर्करा आदि से—

'ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्याम्

अनज्मि।

इस मन्त्र से अञ्जन (लेप) करे।

उस समय देवता के समक्ष कोई न रहे। तब पायस आदि भक्ष्य-भोज्यान्न तथा दर्पण शीघ्र देवता को दिखाये।

तब कुशाओं या कुशासन में बैठाकर तथा हाथ में कुश धारण

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृल्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥
(ऋ० १०।१२१।१–८)

१. अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन। यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद् यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे॥ (ऋ० ३।८।१, तै० बा० ब्रा० ३।६।१।१)।

ततो ब्रह्माद्याः सर्वतोभद्रमण्डलदेवता आवाह्य गन्धादिना संपूज्य स्थाप्य देवं तत्तल्लिङ्गमन्त्रैरावाह्य कर्णिकायां प्रतिष्ठाप्य गन्धाद्यैः संपूज्य कुण्डे मण्डलदेवतानां नाममन्त्रैर्दशदश तिलाहुतीर्हुत्वा शय्यायां देवमारोप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां ब्राह्मणैः सहोपतिष्ठेत्।

कर पुरुषसूक्त' से देवता की स्तुति करके एक बांस के पात्र (बांस की डलिया या टोकरी) में पांच वर्णों (रंगों) वाले अन्नों को डाल कर उससे देवता का नीराजन करके रुद्र को—

ॐ नमो भूताधिपतते दीप्तशूलधरायोमापतये सर्वविद्याधिपतये रुद्राय नमः। शिवमगर्हितं कर्माऽस्तु स्वाहा।

इस मन्त्र से बलि दे। उस बलि को चतुष्पथ में रखवा कर आचमन करे।

तब ब्रह्मा आदि सर्वतोभद्र [या लिङ्गतोभद्र] मण्डल देवताओं का आवाहन कर गन्ध पुष्प आदि से उनका पूजन करके स्थाप्य देवता का आवाहन उसके मन्त्रों से करके सर्वतोभद्रमण्डल की कर्णिका में उसको प्रतिष्ठापित करके गन्ध-पुष्प आदि से पूजन करके कुण्ड (या स्थण्डिल) में सर्वतोभद्रमण्डल देवताओं के नाममन्त्रों से दश दश आहुतियों से होम करके स्थाप्य देवता को शय्या में रख कर ब्राह्मणों के साथ पुरुषसूक्त[1] तथा उत्तरनारायण मन्त्रों[2] से स्तुति करे।

तब देवता [की प्रतिमा या लिङ्ग] में निम्नलिखित न्यास करे—

---

१. 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि सोलह मन्त्र। (यजु० ३१।१-१६; द्रष्टव्य ऋ० १०।९०।१-१६)।

२. उत्तरनारायण मन्त्र—
ॐ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥

ततो देवे 'ॐ पुरुषात्मने नमः। ॐ प्राणात्मने नमः।' इति शरीरे व्यापकं न्यसेत्। 'प्रकृतितत्त्वाय नमः। बुद्धितत्त्वाय नमः। अहङ्कारतत्त्वाय नमः। मनस्तत्त्वाय नमः।' हृदि। शब्द तत्त्वाय नमः।' इति शिरसि। 'स्पर्शतत्त्वाय नमः।' इति त्वचि। रूप-

'ॐ पुरुषात्मने नमः। ॐ प्राणात्मने नमः।' इन नाममन्त्रों से देवता के शरीर में व्यापक (अर्थात् देवता के चरणों से मस्तक पर्यन्त अथवा शिर से चरणों तक सर्वाङ्गस्पर्श या सर्वाङ्गन्यास) करे।

'ॐ प्रकृतितत्त्वाय नमः।
ॐ बुद्धितत्त्वाय नमः।
ॐ अहङ्कारतत्त्वाय नमः।
ॐ मनस्तत्त्वाय नमः।—हृदि।'

यह कहते हुए प्रकृति, बुद्धि, अहंकार तथा मनस्तत्त्व का न्यास देवता के हृदय में [स्पर्श करके] करे।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ १८॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ १९॥
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥ २०॥
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे॥ २१॥
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥ २२॥
(यजु० ३१।१७-२२)

तत्त्वाय नमः।' इति हृदि। रसतत्त्वाय नमः।' इति वस्तौ। 'गन्ध-तत्त्वाय नमः।' पादयोः। 'श्रोत्रतत्त्वाय नमः।' कर्णयोः। 'त्वक्-तत्त्वाय नमः।' इति सर्वशरीरे। 'चक्षुस्तत्त्वाय नमः।' इति चक्षुषोः। 'जिह्वातत्त्वाय नमः।' इति जिह्वायाम्। 'घ्राण-तत्त्वाय नमः।' इति इति घ्राणे। 'वाक्तत्त्वाय नमः' इति वाचि। 'पाणितत्त्वाय नमः।' इति पाण्योः। पादतत्त्वाय नमः।' इति

'ॐ शब्दतत्त्वाय नमः-शिरसि।' इससे देवता के शिर में शब्द-तत्त्व का,
,, स्पर्शतत्त्वाय नमः—त्वचि।' इससे देवता की त्वचा में स्पर्शतत्त्व का,
,, रूपतत्त्वाय नमः—हृदि।' इससे रूपतत्त्व का न्यास देवता के हृदय में,
,, रसतत्त्वाय नमः—वस्तौ।' इससे रसतत्त्व का न्यास देवता के वस्तिप्रदेश में,
'ॐ गन्धतत्त्वाय नमः—पादयोः। इससे देवता के पैरों में गन्ध-तत्त्व का,
,, श्रोत्रतत्त्वाय नमः—कर्णयोः। इससे देवता के कानों में श्रोत्रतत्त्व का,
,, त्वक्तत्त्वाय नमः—सर्वशरीरे।' इससे त्वचा का न्यास देवता के समस्त शरीर में,
,, चक्षुस्तत्त्वाय नमः—चक्षुषोः।' इससे नेत्रतत्त्व का देवता के नेत्रों में,
'ॐ जिह्वातत्त्वाय नमः—जिह्वायाम्।' इससे जिह्वातत्त्व का देवता की जिह्वा में,
,, घ्राणतत्त्वाय नमः—घ्राणे।' इससे घ्राणतत्त्व का न्यास देवता की नासिका में,
,, वाक्तत्त्वाय नमः—वाचि।' इससे वाक्तत्त्व का न्यास देवता की वाणी (-जिह्वा) में,

पादयोः । 'पायुतत्त्वाय नमः ।' इति पायौ । 'उपस्थतत्त्वाय नमः ।' इति उपस्थे । 'पृथ्वीतत्त्वाय नमः ।' इति पादयोः । 'अप्तत्त्वाय नमः । इति वस्तौ । 'तेजस्तत्त्वाय नमः ।' इति हृदि । 'वायुतत्त्वाय नमः ।' इति घ्राणे । 'आकाशतत्त्वाय नमः ।' इति शिरसि । रजस्तत्त्वाय नमः । तमस्तत्त्वाय नमः । सत्त्वतत्त्वाय नमः । देहतत्त्वाय नमः ।' इति देहे । ततोऽपि पुरुषसूक्तन्यासं कृत्वा ।

'ॐ पाणितत्त्वाय नमः—पाण्योः ।' इससे पाणितत्त्व का न्यास देवता के हाथों में,

,, पादतत्त्वाय नमः—पादयोः ।' इससे चरणतत्त्व का न्यास देवता के चरणों में,

,, पायुतत्त्वाय नमः—पायौ ।' इससे पायु (गुदा) तत्त्व का न्यास देवता के पायु (गुदा-स्थल) में,

,, उपस्थतत्त्वाय नमः—उपस्थे ।' इससे उपस्थ (लिङ्ग) तत्त्व का न्यास देवता के उपस्थ में,

,, पृथ्वीतत्त्वाय नमः—पादयोः ।' इससे पृथ्वीतत्त्व का न्यास देवता के चरणों में,

'ॐ अप्ततत्त्वाय नमः—वस्तौ ।' इससे जलतत्त्व का न्यास देवता के वस्तिप्रदेश में,

,, तेजस्तत्त्वाय नमः—हृदि ।' इससे तेजस्तत्त्व का न्यास देवता के हृदय में,

,, वायुस्तत्त्वाय नमः—घ्राणे ।' इससे वायुतत्त्व का न्यास देवता की नासिका में,

,, आकाशतत्त्वाय नमः—शिरसि ।' इससे आकाशतत्त्व का न्यास देवता के शिर में,

'ॐ रजस्तत्त्वाय नमः । ॐ तमस्तत्त्वाय नमः । ॐ सत्त्वतत्त्वाय नमः । ॐ देहतत्त्वाय नमः ।'

इन मन्त्रों से रज-तम-सत्त्वाख्य तत्त्वों तथा देहतत्त्व का न्यास देवता की देह में करे । तत्पश्चात् पुरुषसूक्त न्यास भी करे ।

पुरुषसूक्तन्यास—

नीलकण्ठ को अभीष्ट पुरुषसूक्तन्यास का क्रम पीछे पृ० १३९-१४१ में उल्लिखित है इसका अन्य क्रम इस प्रकार है—

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि ँ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
(दक्षिणकरे)—इस मन्त्र का न्यास देवता के दाहिने हाथ में करे ।

ॐ पुरुष एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
(वामकरे)—इस मन्त्र का न्यास देवता के बाँये हाथ में करे ।

,, एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
(दक्षिणपादे)—इसका न्यास देवता के दाहिने चरण में करे ।

,, त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥
(वामपादे)—इस मन्त्र का न्यास देवता के बाँये चरण में करे ।

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥
(दक्षिणजानौ)—इस मन्त्र का न्यास देवता के दाहिने घुटने में करे ।

ॐ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्याग्राम्याश्च ये ॥
(वामजानौ)—इसका न्यास देवता के बाँये घुटने में करे ।

,, तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
(दक्षिणकटयाम्)—इसका न्यास देवता की दाहिनी कटि में करे ।

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥
(वामकट्याम्)—इसका न्यास देवता की बाँयी कटि में करे।

,, तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥
(नाभौ)—इसका न्यास देवता के नाभि में करे।

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥
(हृदि)—इसका न्यास देवता के हृदय में करे।

,, ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(कण्ठे)—इसका न्यास देवता के कण्ठ में करे।

,, चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥
(दक्षिण बाहौ)-इसका न्यास देवता की दाहिनी भुजा में करे।

,, नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥
(वामबाहौ)—इसका न्यास देवता की बाँयी भुजा में करे।

,, यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥
(मुखे)—इसका न्यास देवता के मुख में करे।

,, सप्तस्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥
(अक्ष्णोः)—इसका न्यास देवता के दोनों नेत्रों में करे।

,, यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
(शिरसि)—इस मन्त्र का न्यास देवता के शिर में करे।

संपूज्याधिवासयेत्। ततो मण्डलशय्ययोर्मध्ये न गन्तव्यम्। मण्डलदेवतानामुपहारनिवेदनम्। तत्र सर्वान्नं ब्रह्मणे। घृतान्नं सोदकमिन्द्राय। आज्यान्नमग्नये। माषान्नं यमाय। कृष्णव्रीह्यन्नं सघृतं निर्ऋतये। नवनीतोदनं वरुणाय। यवोदनं वायवे। प्रैयंगवं सोमाय। गवेधुकमीशानाय। पायसं सर्वेभ्यः।

ततः शय्याप्रदेशे नैवारं चरुं स्थापयित्वा तेन दिग्बलिं दत्त्वा निशां नयेदित्यधिवासनम्।

शय्याधिवासन—

तब देवता की पूजा करके 'सुखशायी भव'—ऐसा कहते हुए शय्या में देवता को स्थापित कर वस्त्र से आच्छादित करके सुला कर शिरःप्रदेश में निद्राकलश रखकर अधिवासन करे। तब मण्डल (सर्वतोभद्र या लिङ्गतोभद्र) तथा शय्या के मध्य में कोई न जाय।

तब मण्डल में स्थापित देवताओं को नाममन्त्रों से बलि अथवा उपहार निवेदन करे। उसका विवरण इस प्रकार है—ब्रह्मा को सभी प्रकार के अन्न प्रदान करे। इन्द्र के लिए जल सहित घृताक्त अन्न, अग्नि के लिए आज्यान्न (तरल घृत में मिश्रित अन्न), यम के लिए उड़द का अन्न, निर्ऋति के लिए घृतयुत काले धान का अन्न, वरुण के लिए नवनीत तथा ओदन (भात), वायु के लिए यव (जौ) का ओदन, सोम के लिए प्रैयङ्गव अर्थात् पकायी हुई प्रियङ्गु (ककुनी) का भोजन, ईशान के लिए गवेधुक (एक प्रकार का धान्य?) की बलि या उपहार निवेदन करे। [अथवा] उपर्युक्त तथा अन्य सभी देवताओं को पायस (खीर) प्रदान करे।

तब देवता की शय्या के स्थल में नीवार धान्य (तिन्नी के चावल) के चरु को स्थापित कर उससे दिक्पालों को बलि देकर [जागरण करके गीत वाद्य आदि करते हुए] रात बिताये। यह अधिवासन की विधि है।

प्रातः पुरोदयाद्देवमुत्थाप्य मूलमन्त्रेणोपस्थाय घृतेन चरुं श्रपयित्वाऽभिघार्य मूलमन्त्रेणाऽष्टोत्तरसहस्रमष्टशतं वा हुत्वा घृतं तावद्धुत्वा चरुशेषेण—

अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। परमेष्ठिने स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा। अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्नयेऽन्नादाय स्वाहा। अग्नयेऽन्नपतये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। सर्वेभ्यो भूतेभ्यः स्वाहा। भूर्भुवः स्वः स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। —इति जुहुयात्। ततो यजमानो गुरवे वरं दद्यात्।

तब प्रातः काल अरुणोदय वेला से कुछ पहले देवता को—

ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥
(यजु० ३४।५६)

इस मन्त्र से तथा प्रातः जागरण की स्तुतियों [यथा-विष्णु की स्थापना में 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द०' इत्यादि] तथा देवता से सम्बद्ध 'सुप्रभातम्' वाले श्लोकों के पाठ और गीतवादित्र आदि की मङ्गल-ध्वनि के साथ देवता को प्रबोधित कर मूलमन्त्र से देवता का उपस्थान करके घृत मिला हुआ चरु पका कर उसे पुनः घृत से अभिधारित (घृत की धारा से मिश्रित) करके उससे स्थाप्य देवता के मूलमन्त्र से एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ की संख्या में होम करे और पुनः उतनी ही बार घृत से होम करे। तब शेष चरु से निम्नलिखित 'अग्नये स्वाहा' इत्यादि मन्त्रों से होम करे—

तब ऊपर (मूलपाठ में) कथित अग्नये स्वाहा' से लेकर 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' पर्यन्त मन्त्रों से आहुति प्रदान करने के अनन्तर यजमान गुरु (आचार्य) को वर (दक्षिणा) प्रदान करे।

तत उदिते सूर्ये गुरुर्वेद्यां मेर्वभिमुखं देवं कृत्वा रत्नपुष्पमूलफलौषध्यादि दर्शयित्वा ताम्रपात्रे शान्तिजलमादाय मूलमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य देवशिरसि तेनैव मन्त्रेणासिच्योत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इत्युत्थाप्य विश्वतश्चक्षुरित्युपस्थाय देवस्य पुरस्तात्—

ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः। ॐ दिक्पालेभ्यो नमः। ॐ वसुभ्यो नमः। ॐ रुद्रेभ्यो नमः। ॐ आदित्येभ्यो नमः। ॐ अश्विभ्यां नमः। ॐ मरुद्भ्यो नमः। ॐ कुबेराय नमः। ॐ गङ्गादिमहानदीभ्यो नमः। ॐ अग्नीषोमाभ्यां नमः। ॐ इन्द्राग्निभ्यां नमः। ॐ द्यावापृथिवीभ्यां नमः। ॐ धन्वन्तरये नमः। ॐ सर्वेशाय नमः। ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ ब्रह्मणे नमः। —इति जप्त्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।

तब सूर्योदय हो जाने पर गुरु (आचार्य) देवता को वेदी में ही मेरु की ओर अभिमुख करके (अर्थात् देवता का मुख मेरु की ओर करके) रत्न, पुष्प, मूल, फल तथा औषधियों आदि को दिखलाकर एक ताम्रपात्र में शान्ति-जल लेकर उसे देवता के मूल-मन्त्र से एक सौ बार अभिमन्त्रित करके उस जल तथा उसी मूल मन्त्र से देवता को शिर में अभिषिक्त करके—

'ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥

इस मन्त्र से देवता को उठाकर—

'ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥
(यजु० १७।१९)

इस मन्त्र से उपस्थान करे। तब देवता के समक्ष आगे कथित 'ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः' इत्यादि (ऊपर मूल पाठोक्त) मन्त्रों का जप करे—

उपर्युक्त (पृ० २७१ में मूलपाठोक्त) 'ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः'। से लेकर अन्तिम 'ॐ ब्रह्मणे नमः' पर्यन्त नाममन्त्रों का जप करके ['प्रतिष्ठित परमेश्वराय नमः' इससे पुष्पाञ्जलि देकर] प्राण-प्रतिष्ठा करे।

आधुनिक समय में चलमूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा के पूर्व अग्न्युत्तारण भी किया जाता है। अतः यहाँ पहले अग्न्युत्तारण-प्रयोग भी दिया जा रहा है।

आग्न्युत्तारण—

हस्ते जलमादाय देशकालादिसंकीर्त्य अमुकोऽहं अस्याः प्रतिमायाः[1] लिङ्गस्य वा अग्नितपन-ताडनावघातादि[2] दोषपरिहारार्थमग्न्युत्तारणं करिष्ये।

इति संकल्पं विधाय मूर्त्तिं ताम्रादिपात्रे निधाय घृतेनाभ्यज्य तदुपरि दुग्धधारां जलधारां च (दुग्धमिश्रित-जलधारां वा) पातयेदेभिर्मन्त्रैः—

ॐ समुद्रस्य त्वावकयाऽग्ने परि व्ययामसि।
पावकोऽ अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ४ ॥
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि।
पावकोऽ अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ५ ॥
उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा।
अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि
सेमं नो यज्ञं पावकवर्णं शिवं कृधि ॥ ६ ॥
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्।
अन्यांस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः
पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ७ ॥

---

१. एक साथ अनेक प्रतिमाओं में प्राण-प्रतिष्ठा करना हो तो अग्न्युत्तारण संकल्प में 'आसां [अमुकामुक] मूर्तीनां०'—इत्यादि प्रकारेण संकल्प होगा।

२. अग्नितपन-ताडन-टंकघनावघातादि० ।—ऐसा भी कहा जा सकता है।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ २ इहा वह।
उप यज्ञ हविश्च नः ॥ ९ ॥
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा
क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण
आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ १० ॥
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।
अन्यांस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः
पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ११ ॥
नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड्
वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥ १२ ॥
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानां संवत्सरीणामुप भागमासते।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्
स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ १३ ॥
ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्
ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य।
येभ्यो न ऋते पवते धाम किञ्चन
न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ १४ ॥
प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा परिवोदा।
अन्यांस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः
पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ १५ ॥
(यजु० १७।४-१५)

चलमूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा—

ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः ऋग्यजुः

सामानि छन्दांसि क्रियामयवपुः परा प्राणशक्तिर्देवता[1] आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकम् अस्यां मूर्तौ[2] प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः ।

तब देवता के शिर अथवा हृदय का स्पर्श करके यह न्यास करे—

ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः [शिरसि]—इसका न्यास शिर में

,, ऋग्यजुःसामछन्दोभ्यो नमः [मुखे]—इसका मुख में,

,, प्राणाख्यदेवतायै नमः (हृदि)—इसका न्यास हृदय में,

,, आं बीजाय नमः (गुह्ये)—इसका गुह्याङ्ग में,

,, ह्रीं शक्त्यै नमः (पादयोः)—इसका न्यास चरणों में करे । और

ॐ क्रों कीलकाय नमः [नाभौ] इसका न्यास नाभि में करे ।

तब निम्नलिखित न्यास देवता के शरीर में करे—

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः । इसका न्यास देवता के हृदय में करे ।

,, चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा । इसका न्यास देवता की शिर में करे ।

,, टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट् । इसका न्यास देवता की शिखा में करे ।

,, तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम् । इसका न्यास देवता के कवच में करे ।

ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानगतिविसर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् । इसका न्यास देवता के नेत्रत्रय में करे ।

,, यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अं मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट् । इसका न्यास देवता के अस्त्र में करे ।

तब प्राण-शक्ति का ध्यान करे—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथ गुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान् ।

१. प्राणाख्या देवता—इत्यपि पाठः ।
२. एक साथ अनेक देवताओं की प्राण-प्रतिष्ठा करनी हो तो 'आसु अमुकामुकमूर्तिषु' कहना चाहिए ।

देवस्य पुरतो यजमानमभिषिच्य देवमन्त्रं जप्त्वा ध्रुवसूक्तेन तल्लिङ्गमन्त्रेण पुरुषसूक्तेन गायत्र्या व्याहृतिभिश्च देवं प्रतिष्ठाप्य

विभ्राणाऽसृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥

तब देवता का स्पर्श करके यह जप करे अर्थात् यह पढ़े—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः ।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य जीव इह स्थितः ।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि ।

,, आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।

तब प्रतिमा या लिङ्ग के हृदय में अङ्गुष्ठ से स्पर्श करके यह जपे (बोले)—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म् प्रतिष्ठ ॥

ॐ एष वै प्रतिष्ठा नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते— सर्वमेव प्रतिष्ठितं भवति ॥

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥

तदनन्तर देवता के आगे यजमान का अभिषेक करे । तब देवता के मन्त्र का जप करके ध्रुवसूक्त[1] देवतालिङ्गक (देवता व्यापक या देवता से सम्बद्ध) मन्त्र, पुरुषसूक्त, स्थाप्य देवता के गायत्रीमन्त्र[2] तथा व्याहृतियों (अर्थात् व्याहृतियों सहित गायत्री मन्त्र) से देवता की प्रतिष्ठा करे ।

१. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० २५६ ।
२. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० २६६-२७२ ।

प्रतिमायां निजवाहनायुधपरिवारादिकं ध्यात्वा पुनः पूजयित्वा मुद्रां प्रदर्श्य मूलमन्त्रमष्टोत्तरशत जप्त्वा स्तुत्वा नत्वाऽऽचम्य स्विष्ट-

तब प्रणव से सन्निरोधन करके प्रतिमा या लिंग के सजीव होने का ध्यान (भावना) करके षोडश बार प्रणव का उच्चारण करके देवता के षोडश संस्कारों का सम्पादन भावनया करके—

ॐ ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासश्चेमे नगाः सर्वे ध्रुवाः पतिकुले स्त्रियः ॥

इस ऋचा को पढ कर देवता के कान में देवता की गायत्री तथा मन्त्र को जपे (पढे)। तब पुरुषसूक्त से देवता की स्तुति करके तथा क्रमशः देवता के चरणों, नाभि तथा शिर का स्पर्श करके—

ॐ इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवा विचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुपधारय ॥
(ऋ० १०।१७३।२)

इस मन्त्र का तीन बार जप (पाठ) करके यह प्रार्थना करे—

स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात् त्वमिहागतः ।
प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत् परिपालय ॥
धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शिवाय नः ।
सान्निध्यं तु महादेव स्वार्चायां परिकल्पय ॥
यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः ।
तावत् त्वयात्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया ॥
भगवन् देवदेवेश ! त्वं पिता सर्वदेहिनाम् ।
येन रूपेण भगवन् त्वया व्याप्तं चराचरम् ।
तेन रूपेण देवेश अर्चायां सन्निधौ भव ॥

इस तरह प्रार्थना करके प्रणाम करे।

तब पुरुष सूक्त से षोडषोपचार से पूजन[1] करके—

परिवार देवताओं को उनके मन्त्रों से प्रतिष्ठापित करके

१. षोडशोपचार पूजन के मन्त्रों के लिए द्रष्टव्य पीछे पृ० २९३–३०६ ।

कृदाद्युत्तराङ्गानि समापयेत् । ततो यजमानो दक्षिणां दद्याद्विप्रांश्च भोजयेद्यथाशक्ति । इति चलार्चाप्रतिष्ठा ।

कङ्कण (कँगना) खोलकर देवता की प्रतिमा (या लिङ्ग) में उसके वाहन, आयुध तथा परिवार आदि का ध्यान करके शुभमुहूर्त में मन्दिर की वेदिका में स्थापित करके पुनः पूजन करके मुद्रा का प्रदर्शन करके एक सौ आठ बार मूलमन्त्र का जप करके प्रणाम कर आचमन करके स्विष्टकृत् आहुति से लेकर शेष सभी उत्तराङ्गकर्म (अर्थात् पूर्णाहुति इत्यादि कर्म) सम्पन्न करे। तब यजमान आचार्य को बारह या तीन अथवा एक गौ का दान देकर आचार्य तथा ऋत्विजों को दक्षिणा देकर एक सौ अथवा बीस ब्राह्मणों को भोजन करावे। [शेष सभी कर्म पूर्वोक्त अचल प्रतिमा की प्रतिष्ठा के समान ही करे।] चल प्रतिष्ठा की विधि समाप्त हुई।

—•—

अथ जीर्णोद्धारविधिः

अग्निपुराणे—जीर्णादीनां च लिङ्गानामुद्धारविधिमाचरेत् ।
लक्ष्मोज्झितं च भग्नं च स्थूलं वज्रहतं तथा ।।
सम्पुटं स्फुटितं व्यङ्गं लिङ्गमित्येवमादिकम् ।
इत्यादिदुष्टलिङ्गानां स्याज्या पिण्डी तथा वृषः ।।
(अग्नि० १०३।१-२)

लक्ष्मोज्झितं बाणादिभ्रमेण तद्विधिना स्थापितं सल्लक्षण-रहितम् । भग्नमनेकशकलीभूतम् । स्थूलं पिण्डिकाननुरूपम् । वज्रहतं विद्युद्धतम् । सम्पुटं न्युब्जम् । स्फुटितमेकदेशे भग्नम् । व्यङ्गं पिण्डिकाप्रणाल्यादिरहितम् । आदिपदेन चाण्डालस्पृष्टादीनां ग्रहणम् । पिण्डि-वृषयोर्दुष्टत्वे तयोरेव त्यागो न लिङ्गस्य ।

अग्निपुराण के वचनों के अनुसार धार्मिक पुरुष जीर्ण आदि लिङ्गों का विधि पूर्वक उद्धार करे।[1] लक्ष्मोज्झित (लक्षणरहित), भग्न (टूटे हुए), स्थूल, वज्रहत (वज्र से टूटे हुए) सम्पुट (एक तरफ मुड़े हुए) स्फुटित (फूटे हुए), व्यङ्ग (बेडौल) होने आदि के कारण दूषित लिङ्ग तथा प्रतिमा आदि को तथा उसकी पिण्डी तथा वृष (वाहन) को त्याग देना चाहिए।

उपर्युक्त श्लोकों में कथित 'लक्ष्मोज्झित' शब्द का तात्पर्य है बाणलिङ्ग आदि के भ्रम से स्थापित होने पर भी बाणलिङ्ग के लक्षण

१. सर्वात्मनो हरेर्बिम्बे भग्ने जीर्णे चले स्थिते ।
ग्रामराष्ट्रादिनाशः स्यात् तस्मात् कार्या तदुद्धृतिः ।। २ ।।
देहं देही यथा जीर्णं त्यक्त्वा देहान्तरं व्रजेत् ।
त्यक्त्वा जीर्णं तथा बिम्बं देवोऽपि भजते नवम् ।। ३ ।।
अर्चां त्यजति देवेशो जीर्णं जीर्णमिवस्रजम् ।
मा विक्षन यातुधाना इत्युद्धरेदविलम्बितम् ।।
(विष्णुसंहिता १४।२-४)

चालितं चलितं निम्नमत्यर्थं विषमस्थितम् ।
दिङ्मूढं पातितं लिङ्गं मध्यस्थ पतितं तथा ।। ३ ।।
एवंविधं च संस्थाप्यं निर्व्रणं च भवेद्यदि ।
नादेयेन प्रवाहेण तदपाक्रियते यदि ।। ४ ।।
ततोऽन्यत्रापि संस्थाप्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
(अग्नि० १०३ ३-५)

से रहित शिवलिङ्ग। 'भग्न' का तात्पर्य है अनेक टुकडों में टूटा हुआ। 'स्थूल' का तात्पर्य है ऐसा लिङ्ग या मूर्ति जो पिण्डिका के अनुरूप न हो अर्थात् पिण्डिका के अनुपात में बड़ा हो। 'वज्रहत' का तात्पर्य है विद्युत के आघात से ताडित या टूटा हुआ। 'सम्पुट' का तात्पर्य है नीचे (एक तरफ) को मुड़ा हुआ। 'स्फुटित' का अर्थ है जो एक स्थान से टूट गया हो अर्थात् जिसका एक भाग टूट गया हो। 'व्यङ्ग' का अर्थ है अङ्गरहित या विकृत (बेडौल) आकार वाला अथवा ऐसा शिवलिङ्ग जो कि पिण्डिका अथवा प्रणाली आदि से रहित हो। उक्त श्लोक में 'आदि' पद से चाण्डालादि के स्पर्श से दूषित आदि प्रतिमा या लिङ्ग से है यदि पिण्डिका या वृषभ उपर्युक्त दोषों में से किसी दोष से दूषित हो तो उनका ही त्याग करे न कि लिङ्ग का।

चालित (किसी के द्वारा चलाया अर्थात् हिलाया या उखाड़ा हुआ), चलित (अर्थात् जो स्वयं किसी कारणवश विचललित हुआ हो), निम्न (जो बहुत नीचे हो गया हो), जो विषम-स्थान में स्थित हो, जिसकी प्रणाली आदि में दिशा भ्रम हो अर्थात् जिसकी प्रणाली पश्चिम या दक्षिण दिशा में हो, जो किसी के द्वारा गिरा दिया गया हो, जो मध्यस्थ (पिण्डिका के गर्तान्तर्गत अथवा प्रासाद के एकदम मध्य में हो—न कि यवमात्र या यवार्ध परिमित ईशान दिशा में) हो, जो स्वयं गिर पड़ा हो, ऐसा लिङ्ग यदि निर्व्रण (व्रण रहित) हो—

निम्नं सामन्तभूभागान्निम्नायां भूव्यवस्थितम्। विषमस्थितं यत्र पूजादि कर्तुं न शक्यते तस्मिन्देशे व्यवस्थितम्। दिङ्मूढं विशेषविध्यभावेऽपि उदगतिरिक्तदिक्प्रणालीकम्। पातितं गर्तादौ। मध्यस्थं संपूर्ण-पिण्डिकाश्वभ्रेऽन्तर्गतं प्रासादमध्यभागे स्थितमित्यपि केचित्। एवंविधमित्यनेन लक्ष्मोज्झितभग्नस्फुटित-विद्युद्धातातिरिक्तानां ग्रहणम्। तेन जघन्यो निर्व्रणशब्दोऽपि लक्ष्मोज्झिताद्यतिरिक्तानामेवोपलक्षकः।

अर्थात् टूटा-फूटा न हो तो उसकी पुनःप्रतिष्ठा की जा सकती है। यदि कोई लिङ्ग नदी के बहाव (बाढ) से दूर हटा (बहा) दिया गया हो (किन्तु वह अक्षुण्ण हो) तो उसकी उस स्थान से अन्यत्र भी शास्त्रीय विधि-विधानानुसार पुनःस्थापना की जा सकती है।

ऊपरि कथित 'निम्न' शब्द का तात्पर्य सामन्त अर्थात् चारों ओर की भूमि की अपेक्षा नीची भूमि में स्थित लिङ्ग से है। विषम स्थित का तात्पर्य उस लिङ्ग से है जो कि ऐसी भूमि में स्थित हो जहाँ कि पूजा आदि करना संभव न हो। 'दिङ्मूढ' का तात्पर्य उस लिङ्ग से है जिसकी प्रणाली किसी विशेष विधि के अभाव में भी उत्तर या पूर्व दिशा से भिन्न पश्चिम या दक्षिण की ओर हो। 'पातित' का अर्थ है गर्त या गढढे आदि में गिराया हुआ। 'मध्यस्थ' का तात्पर्य ऐसे लिङ्ग से है जो सम्पूर्ण रूप से (पूरी तरह) पिण्डिका के श्वभ्र (गर्त) में धँस गया हो। कुछ आचार्य 'मध्यस्थ' का तात्पर्य मन्दिर के मध्य में स्थापित लिङ्ग से लगाते हैं। उक्त श्लोक में 'एवं विध' से इसके पूर्ववर्ती श्लोकों में कहे हुए 'लक्ष्मोज्झित' 'भग्न' 'स्फुटित' 'विद्युतहत' (='वज्रहत') आदि से अतिरिक्त लिङ्गों का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इसी कारण अग्रिम श्लोक में कथित 'निर्व्रण' शब्द भी पूर्व श्लोक में कथित 'लक्ष्मोज्झित' आदि से अतिरिक्त लिङ्गों का ही बोधक है।

पीठाच्च चालितं लिङ्गं निर्दोषं तु भवेद्यदि।
ततो वै स्थापयेत्तत्र जपेल्लक्षमघोरकम्॥
त्यजेत्सदोषितं लिङ्गं श्वपचाद्यैश्च सेवितम्।
लिङ्गान्तरं प्रतिष्ठाप्य विशुद्धिमाप्नुयाच्छ्रुति॥

इति सिद्धान्तशेखरोक्तेः।

तत्रैव—लिङ्गादीनां च जीर्णानां प्रोच्यते विधिरुच्छ्रितौ।
सर्वारिष्टविनाशार्थं सर्वप्राणिहितावहः॥
लिङ्गस्य पिण्डिकायाश्च प्रतिमामुखलिङ्गयोः।
सर्वेषां परिवाराणां हर्म्यप्राकारयोस्तथा॥
उद्धारश्चावृत्तिः प्रोक्ताऽथोद्धारे[1] हेतुरुच्यते।

आवृत्तिः=पुनःसंस्कारः।

यदि पीठ (पिण्डिका) पर से चालित (हिलाया या उखाड़ कर अलग किया हुआ) लिङ्ग निर्दोष हो तो उसे उसी पीठ पर स्थापित करे तथा अघोरमन्त्र[2] का एक लाख जप करे।

दोषयुक्त, अथवा दूषित तथा चण्डाल आदि के द्वारा सेवित लिङ्ग का त्याग कर उसके बदले दूसरे लिङ्ग की प्रतिष्ठा (स्थापना) करने से शुद्धता प्राप्त होती है। ऐसा सिद्धान्तशेखर में कहा गया है।

उसी (सिद्धान्तशेखर) में यह कहा गया है कि—

जीर्ण लिङ्ग आदि (=प्रतिमा आदि) के उच्छ्रित किये जाने (उद्धार करने) आदि की स्थिति में पुनः प्रतिष्ठा की विधि बतलाई गई है। सभी अरिष्टों के विनाश हेतु तथा प्राणियों के हित के लिए जीर्णादि दोषयुक्त लिङ्ग, पिण्डिका, प्रतिमा, मुखलिङ्ग, सभी परिवार देवताओं का, हर्म्य (=प्रासाद) तथा प्राकार के जीर्णोद्धार तथा आवृत्ति (पुनः प्राण-प्रतिष्ठा) का विधान किया गया है। लिङ्ग या प्रतिमा का उद्धार (जीर्णोद्धार) किन परिस्थितियों

---

१. 'अथो द्वारे' पाठ असंगत है। २. अघोरेभ्योऽथ० इत्यादि।

स्फुटिते खण्डिते भग्ने दग्धे वाऽशनिनाऽग्निना ।।
उन्मत्तैः शत्रुभिश्चौरैः करिणा स्रोतसा हृते ।
लिङ्गे पीठादिके वाऽपि विशीर्णे कालपर्ययात् ।।
देहं जीर्णं यथा देही त्यक्त्वाऽन्यदुपगच्छति ।
लिङ्गादीन्यतिजीर्णानि तथा मुञ्चन्ति देवताः ।।
खण्डित चूर्णितं लिङ्गं प्रेताद्या आश्रयन्ति च ।
लिङ्गाद्यं सत्त्वशून्यत्वात्तथा च ब्रह्मराक्षसाः ।।
कर्तुर्नृपाणां राष्ट्रस्य तद्ग्रामस्य विशेषतः ।
पीडां कुर्वन्ति ते ह्युग्रां दुर्भिक्षं मरणादिकं ।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादुद्धरणक्रियाम् ।

में और किस कारण से किया जाता है यह आगे बतलाते हैं ।

लिङ्ग के किसी एक किनारे से टूटने, खण्डित होने (दो टुकड़ों में टूटने अथवा किसी बड़े अंश के टूटने), भग्न होने (अनेक टुकड़ों में टूटने या अनेक स्थानों से टूटने,) वज्रपात या आग लगने के कारण दग्ध होने, उन्मत्तों (पागलों), शत्रुओं, या चोरों के द्वारा हरण किये जाने पर या हाथी के द्वारा हटा दिये जाने पर अथवा जलप्रवाह (बाढ) के द्वारा [स्थापना स्थल से] बहा दिए जाने पर अथवा बहुत काल बीत जाने से लिङ्ग तथा पीठ (पिण्डिका आदि) के विशीर्ण होने पर उनका जीर्णोद्धार करके नये लिङ्ग तथा पिण्डिका आदि की स्थापना करनी चाहिए ।

जैसे वृद्धावस्था अथवा आधि-व्याधियों से शरीर के जीर्ण (जर्जर) हो जाने पर आत्मा उसे छोड़कर अन्य शरीर में चला जाता है तद्वत् देवता भी अतिजीर्ण लिङ्ग या प्रतिमा आदि को छोड़ देते हैं ।

खण्डित (टूटे फूटे) तथा चूर्णित (जो टूटने से चूर्ण-चूर्ण हो गया हो) लिङ्ग में भूत-प्रेत आदि रहने लगते हैं। देवता के द्वारा छोड़ देने से सत्त्वशून्य लिङ्ग, प्रतिमा आदि में ब्रह्मराक्षस रहने लगते हैं ।

स्वायम्भुवे च दैवे च बाणलिङ्गे तथैव च ।।
ऋषिभिश्चासुरैर्देवैस्तत्त्वविद्भिः प्रतिष्ठिते ।
लिङ्गे जीर्णादिदुष्टेऽपि नोद्धारं तत्र कारयेत् ।।

इदमपि स्वयम्भुवादिव्यक्तिविषयं न तु दैवात्तद्व्यक्तिनाशेन तत्स्थानस्थापितेदानीन्तनतादृशव्यक्तिविषयम् ।

स्वायम्भवादिलिङ्गानां जीर्णपीठं परित्यजेत् ।
उक्तैर्जीर्णादिभिर्दुष्टं मानुषं तु परित्यजेत् ।।

वे (ब्रह्मराक्षस तथा भूत-प्रेत आदि) उस लिङ्ग या प्रतिमा की स्थापना करने वाले यजमान, राजा, राष्ट्र, तथा विशेषतः उस ग्राम (या पुर नगर आदि) को उग्र (कठोर, तीव्र) पीडा देते हैं तथा वहाँ दुर्भिक्ष होता है और लोगों की अकाल मृत्यु होती है ।

अतः जीर्ण-शीर्ण लिङ्ग तथा प्रतिमा आदि के उद्धार और पुनः प्रतिष्ठा हेतु समस्त प्रयत्न करना चाहिए ।

स्वायम्भुव शिवलिङ्ग, स्वयं प्रकट हुए अन्य देवता और बाण-लिङ्ग, प्राचीन काल में ऋषियों, असुरों, देवताओं तथा तत्त्व-दर्शी महात्माओं के द्वारा प्रतिष्ठापित लिङ्ग के जीर्णादि दोष से दूषित होने पर भी उसका उद्धार (जीर्णोद्धार) न करे ।

यह निषेध स्वम्भू-लिङ्ग तथा प्राचीन ऋषि-महात्मा आदि व्यक्तियों के विषय में है न कि दैवात् उनके काल-कवलित होने के पश्चात् उनके स्थान में इस युग के वैसे ही व्यक्तियों के द्वारा स्थापित लिङ्ग आदि के विषय में ।

स्वायम्भुवादि पूर्वोक्त लिङ्गों के जीर्ण (पुराना पड़ने से टूटे-फूटे) पीठ (पिण्डिका) को हटाकर उसके स्थान पर नये पीठ आदि का स्थापन करे ।

यदि मनुष्य द्वारा स्थापित लिङ्ग आदि ऊपरि कथित जीर्ण आदि दोषों से दूषित हो तो उसका त्याग [कर नूतन लिङ्ग आदि की स्थापना] करे ।

दिङ्मूढ पतितं स्थानान्मध्यस्थं स्रोतसा हृतम् ।
चौराद्यैश्चालितं लिङ्गं स्थापयेच्चिरं पुनः ॥

लोहाद्यं छिन्नभिन्नाङ्गं सन्धाय स्थापयेत्पुनः ।

सुवर्णाद्यष्टलोहनिर्मितं लिङ्गं दैवाद्भग्नं सत्तदेव सज्जं कृत्वा पुनः स्थापयेदित्यर्थः ।

बाहुपादशिरोहीनां कर्णनासास्यहीनकाम् ।
तादृशीं परिवाराणां प्रतिमां परिवर्जयेत् ॥
यद्द्रव्यं यत्प्रमाणं च लिंगं वा प्रतिमाऽपि वा ।
तादृक्तेनैव मानेन तद्द्रव्येण प्रकल्पयेत् ॥

दिङ्मूढ अर्थात् प्रणाली को अनुचित दिशा में (पश्चिम या दक्षिण की ओर) करके स्थापित लिङ्ग, गिरा हुआ, पिण्डिका के गर्त के मध्य में धंसा हुआ या प्रासाद के ठीक मध्य में स्थापित किया हुआ, नदी के स्रोत (तेज धार) के द्वारा बहाया हुआ, चोर आदि के द्वारा हिलाया हुआ अथवा स्थापना स्थल से दूर ले जाया हुआ लिङ्ग यदि व्रण रहित हो (टूटा-फूटा न हो) तो उसे पुनः स्थापित करे।

सुवर्णादि धातुओं से निर्मित लिङ्ग या प्रतिमा के अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हों तो उन्हें जोड़कर उसकी पुनः स्थापना (प्रतिष्ठा) करे अर्थात् सुवर्ण आदि अष्टधातु-निर्मित लिङ्ग यदि दैववश टूट-फूट जाय तो उसीको सुधार कर (मरम्मत करके) पुनः स्थापित करे।

बाहु (हाथ) पैर, शिर, कान, नाक या मुख रहित प्रतिमा अथवा देव-विशेष के परिवार की ऐसी प्रतिमा को त्याग दे।

जीर्ण लिङ्ग अथवा प्रतिमा जिस द्रव्य से तथा जितने प्रमाण (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, मोटाइ, भार) की बनी हो, जीर्णोद्धार करते समय उसे उसी प्रकार से उतने ही मान (लम्बाई, चौड़ाई, आदि) की तथा उसी द्रव्य की बनवावे।

कारयेन्नान्यमानेन नान्यद्रव्येण तत्पुनः ।
नान्याकारं च नान्यत्र स्थापयेत्तद् गुरूत्तमः ॥
स्रोतसाऽपहृते लिंगे प्रासादे वा तदन्यतः ।
तत्समीपगते देशे स्थापयेद्बाधवर्जिते ॥
प्रासादे पतिते हर्म्ये गोपुरे मण्डपादिके ।
तदाकारं च तद्द्रव्यैस्तन्मानं तत्र कारयेत् ॥
कर्मयोग्याः शिला ग्राह्या दृढकाश्च तथाविधाः ।
हीनद्रव्यकृतं हर्म्यं श्रेष्ठैर्द्रव्यैः समाचरेत् ॥

जीर्ण लिङ्ग अथवा प्रतिमा को पुनः उससे भिन्न मान तथा भिन्न द्रव्य तथा भिन्न आकार की बनवा कर तथा पूर्ववर्ती स्थान से अन्यत्र (दूसरे स्थान में) स्थापन उत्तम गुरु न करे।

नदी के वेग (बाढ) द्वारा लिङ्ग, प्रतिमा अथवा प्रासाद को बहाये जाने पर उस लिङ्ग, प्रतिमादि का स्थापन पूर्ववर्ती स्थान के समीपवर्ती किन्तु बाढ आदि की बाधा से रहित स्थान में करे और यदि बाढ से प्रासाद सहित लिङ्ग, प्रतिमा आदि भी बह गये हों तो समीप में ही बाढ की बाधा रहित स्थान में प्रासाद का निर्माण करा कर उसकी तथा लिङ्ग अथवा प्रतिमा आदि की पुनः प्रतिष्ठा करे।

प्रासाद, हर्म्य (हवेली) गोपुर (मुख्य द्वार), मण्डप आदि के जीर्ण होने से गिर जाने पर पुनः उसी आकार में उन्हीं द्रव्यों से तथा उसी मान (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई आदि) का बनवावे।

जीर्ण प्रासाद आदि के पुनः निर्माण हेतु कर्म के योग्य (काम मे लाने योग्य) उसी प्रकार की दृढ शिला ग्रहण करे। यदि पहले प्रासाद हीनद्रव्य से निर्मित हो तो जीर्णोद्धार के समय उसका पुनर्निर्माण पहले की अपेक्षा श्रेष्ठद्रव्य से करे।

हीनं वाप्यधिकं मानमाकारं वा न कारयेत् ।
एवमुक्तेन मार्गेण दोषंश्चर्तविचार्य च ।
लिङ्गपीठादिकं जीर्णं तदुद्धारं तथा चरेत् ।।
तिथिनक्षत्रवारादि तदर्थं न विचारयेत् ।
जीर्णं चोद्धारयेद्विद्वानजीर्णं नैव चालयेत् ।।
जीर्णस्य धारणे दोषस्तथाऽजीर्णस्य चालने ।[1]
तस्मान्न धारयेज्जीर्णमजीर्णं रक्षयेद् बुधः ।।
सुस्थितं दुःस्थितं वाऽपि शिवलिंग न चालयेत् ।

नये लिङ्ग, प्रतिमा तथा पीठ (एवं प्रासाद ?) आदि को पुराने (जीर्ण) की अपेक्षा हीन (न्यून) अथवा अधिक मान या आकार का न बनावे।

इस प्रकार ऊपरि कथित विधि से तथा ऊपरि कथित दोषों के विषय में विचार करके जीर्ण लिङ्ग, [प्रतिमा], पीठ आदि का उद्धार करे। इसके लिए तिथि, नक्षत्र, वार आदि का विचार न करे। विद्वान् पुरुष जब चाहे किसी भी समय कभी भी जीर्ण लिङ्ग आदि का उद्धार करे, किन्तु जो लिङ्ग आदि अजीर्ण हो, जीर्ण नहीं हुआ हो उसको चालित न करे। [अर्थात् उसे हटाकर उसके स्थान में नये को स्थापित करने की चेष्टा न करे।]

जीर्ण लिङ्ग आदि को धारण करने (अर्थात् उसको न हटाने) में दोष है तथा अजीर्ण (जो जीर्ण नहीं हुआ हो) लिङ्ग, प्रतिमा आदि के चालन (हटाने) में दोष है। अतः विद्वान् पुरुष जीर्ण लिङ्ग आदि को [उपासनास्थल या मन्दिर] में न रखे तथा अजीर्ण (जो जीर्ण न हो) लिङ्ग आदि की रक्षा [तथा उसका पूजन] करे।

शिव लिङ्ग चाहे [नित्य पूजित होने से] सुस्थित हो या [पूजादि के अभाव में] दुःस्थित हो उसको उसके स्थान से न हिलावे।

1. 'अजीर्णचलने तथा' और 'अजीर्णस्य चलने तथा'—ये दोनों पाठ असगत है।

शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्त्रेण तु चालनम् ।
अस्य श्लोकस्य वाक्यार्थो वर्ण्यतेऽथ यथागमम् ।
नित्यं पूजादिभिर्युक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितम् ।।
हीनं पूजाविधिर्लिङ्गमजीर्णमपि दुःस्थितम् ।
देवतास्थापितं लिंगं मोहान्निम्नत्वमागतम् ।।
तल्लिङ्गं दुःस्थितं वापि तन्त्रज्ञैरिति निश्चितम् ।
सहस्राधिकहोमेन तस्य चालनमीरितम् ।।
स्थापनं शतहोमेन तस्य लिङ्गस्य चोदितम् ।
एवं बहुविधैस्तन्त्रैर्दोषाश्च बहुधोदिताः ।।
परीक्ष्य बहुधा तांश्च जीर्णलिङ्गं समुद्धरेत् ।

यदि नये लिङ्ग का स्थापन करना हो तो उसके पूर्व एक सौ आहुतियों से होम करे और यदि जीर्णादि दोषयुक्त लिङ्ग को हटाना हो तो उसके पूर्व एक हजार आहुतियों की संख्या में होम करना चाहिए।

इस श्लोक के वाक्यार्थ का विवेचन आगम के अनुसार इस प्रकार किया जायेगा—

जिस लिङ्ग का नित्य पूजन आदि होता हो तो वह जीर्णता आदि की स्थित को प्राप्त होने पर भी सुस्थित कहलायेगा और जो लिङ्ग पूजादि से रहित हो वह अजीर्ण होने पर भी (पुराना या टूटा-फूटा न होने पर भी) दुःस्थित कहलायेगा।

यदि देवता के द्वारा स्थापित लिङ्ग निम्नत्व को प्राप्त हो गया हो (आस-पास की भूमि की अपेक्षा नीची सतह में आ गया हो या नीचे धँस गया हो) अथवा वह दुःस्थित हो गया हो तो तन्त्रज्ञों के द्वारा किये गये निश्चय (निर्णय) के अनुसार एक हजार की संख्या में होम करके उसे चालित (उठा कर विसर्जित) करे तथा एक सौ बार होम करके नये लिङ्ग का स्थापन करे।

हयशीर्षागमेऽपि—जीर्णोद्धारविधिं कृत्स्नं संक्षेपात्प्रब्रवीमि ते ।

चालितोत्पाटिता भूमिः केनचित्पापकर्मणा ।
चण्डालवत्यसंस्पर्शदूषिता वह्निना च या ॥
स्वयमापतिता जीर्णा नदीवेगादिपातिता ।
अपुण्यजलसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिता ।
पतितार्चिता श्लेष्मविण्मूत्रादिविदूषिता ।
सव्रणा लक्षणोपेता संस्कार्या देशिकेन तु ।

भूमिर्लिङ्गमीश्वरप्रतिमा च । चण्डालवती तत्स्पृष्टा । असंस्पर्शो

इस प्रकार तन्त्रज्ञों ने अनेक दृष्टियों से जीर्ण आदि लिङ्गों के अनेक तरह के दोष बतलाये हैं। उन दोषों की अनेक प्रकार से परीक्षा (समीक्षा) करके विद्वान् पुरुष जीर्ण लिङ्ग आदि का उद्धार करे।

'हयशीर्षागम' संज्ञक ग्रन्थ में भी यह कहा गया है कि—

मैं तुम्हें जीर्णोद्धार की पूरी विधि संक्षेप में बतलाता हूँ। जो लिङ्ग अथवा प्रतिमा आदि किसी पापी मनुष्य के द्वारा चालित (हिलायी या हटा-बढ़ा दी गयी) हो, भूमि पर से उखाड़ दी गयी हो, चण्डाल तथा अस्पृश्य व्यक्ति (यथा—सूतकी, रजस्वला, अथवा कुत्ता आदि) के स्पर्श से दूषित हो, अग्नि में जलने से क्षतिग्रस्त हुई हो, [पिण्डिकादि के जीर्ण हो जाने से] स्वयं गिर पड़ी हो, जीर्ण हो चुकी हो, नदी की धारा के द्वारा गिरायी या बहायी गयी हो, अपवित्र जल के स्पर्श या ब्राह्मण के रक्तपात से दूषित हो, पतित आदि के द्वारा पूजी गयी हो, श्लेष्म (कफ), विष्ठा, मूत्र आदि से दूषित हो गयी हो, तथा जो लिङ्ग या मूर्ति व्रणयुक्त (किसी किनारे पर टूटी-फूटी) हो, किन्तु उसके अन्य लक्षण ठीक हों तो देशिक (आचार्य) उसका पुनः संस्कार करे।

उपर्युक्त श्लोकों में 'भूमि' पद से लिङ्ग तथा शिव आदि देवों

निषिद्धस्पर्शः। जीर्णा कालबाहुल्येन क्षारादिसम्बन्धेनैव विशीर्णा। सव्रणा एकदेशे भग्ना। देशिक उपासकः।

पूर्वोक्तेन विधानेन वैदिकेन सुरोत्तम।
अचलां दूषितामेवं स्थापयेद्विधिनोद्धृताम् ॥

पूर्वोक्तेन चलार्चा[1]प्रतिष्ठाप्रकारेण। एवं विधिनोद्धृताम-पीत्यन्वयः। वक्ष्यमाणप्रकारेणोद्धृतामित्यर्थः।

की प्रतिमा का ग्रहण करना चाहिए। 'चण्डालवती' का तात्पर्य है चण्डाल के द्वारा स्पर्श की हुई। 'असंस्पर्श' का अर्थ है निषिद्ध-व्यक्ति का स्पर्श अर्थात् जिस व्यक्ति के लिए प्रतिमा का स्पर्श निषिद्ध हो उसके द्वारा उसका (प्रतिमा का) स्पर्श। 'जीर्णा' का तात्पर्य है बहुत समय बीत जाने के कारण पुरानी और क्षार आदि लग जाने से विशीर्ण (जीर्ण-शीर्ण)। 'सव्रणा' का आशय उस मूर्ति से है जो किसी एक देश (एक किनारे) से टूटी हो।

'देशिक' का तात्पर्य नीलकण्ठ ने 'उपासक' बतलाया है जबकि इसका सामान्य अर्थ उपदेशक, गुरु या आचार्य होता है।

हे सुरश्रेष्ठ! दूषित अचल प्रतिमा का यथाविधि उद्धार कर उसके स्थान पर उसी मान, आकार की तथा उसी द्रव्य की नयी प्रतिमा का पूर्वोक्त वैदिक विधि विधानानुसार स्थापन करे।

नीलकण्ठ के विचार से इस श्लोक में पूर्वोक्तेन' पद का तात्पर्य इसके पूर्वप्रतिपादित चलप्रतिष्ठा की विधि से है। किन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है। उपर्युक्त श्लोक में कथित 'अचलां' शब्द से स्पष्ट होता है कि अचल मूर्ति प्रतिष्ठा प्रसंग में कथित विधि से ही उसका स्थापन होगा। 'एवं' का अन्वय 'विधिनोद्धृता' के साथ है। 'उद्धृता' का अर्थ है-आगे कही जाने वाली विधि से उद्धार की हुई।

१. पूर्वोक्तेनाचलार्चाप्रतिष्ठाप्रकारेण।—प्रसङ्ग की दृष्टि से यह पाठ समीचीन है।

पूर्वपीठं परित्यज्य यदन्यदपि तद्गतम्।
ततो यथोक्तविधिना प्रासादे सन्निवेशयेत्॥

दुष्टं पूर्वासनं परित्यज्यान्यस्मिंस्तत्प्रासादगत आसने यथोक्तेन चलार्चास्थापनप्रकारेण पुनः स्थापयेदित्यर्थः।

अतिजीर्णां तथा व्यङ्गां दारवीं शैलजामपि।
परित्यज्य न्यसेदन्यां पूर्वोक्तविधिना गुरुः॥
संहारविधिना तत्र मन्त्रान् संहृत्य देशिकः।
सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद् गुरुः॥

संहारविधिना प्रातिलम्येन मन्त्रान् कला। सहृत्योद्धृत्य। नारसिंहेन नृसिंहमन्त्रेण। होमद्रव्यमाज्यमन्यानादशात्।

(यह स्मरणीय है कि जीर्णादि दोषयुक्त चलार्चा का उद्धार करने पर नूतन चल प्रतिमा की प्रतिष्ठा चल-प्रतिष्ठा प्रकरणोक्त विधि से ही की जायेगी —सम्पादक)।

जीर्णादि दोषयुक्त पूर्वपीठ (पिण्डिका) तथा अन्य जो भी उसमें स्थित हो उसे त्याग कर उसी मान, द्रव्य तथा आकार के नये पीठ आदि को यथोक्त (पूर्वोक्त चल अथवा चल-प्रतिष्ठा की) विधि से प्रासाद में स्थापित करे।

दुष्ट (दोषयुक्त) पुराने आसन को त्याग कर उसी प्रासाद में रखे गये दूसरे आसन में लिङ्ग या प्रतिमा को चल प्रतिमा के स्थापन के प्रसंग में कथित विधि के अनुसार स्थापित करे। [किन्तु अचल मूर्ति के जीर्णत्वादि दोषयुक्त पीठ या पिण्डिका आदि को अचल मूर्ति स्थापनोक्त विधि से ही स्थापित करे]

अत्यन्त जीर्ण, व्यङ्ग (विकृत, बेडौल या न्यूनाधिक अङ्गों वाली) काष्ठनिर्मित अथवा पत्थर की बनी हुई प्रतिमा या लिङ्ग को त्याग कर आचार्य पूर्वोक्त विधि के अनुसार उसी द्रव्य, मान तथा आकार की अन्य प्रतिमा या लिङ्ग को स्थापित करे।

वृषं संयोजयित्वा तु मन्त्रेणोद्वाह्य देशिकः।
दारवीं दाहयेद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले॥
धातुजां रत्नजां वाऽपि प्रक्षिपेन्मकरालये।
अगाधे चान्यतोये च क्षिपेन्नद्यां महाजले॥

वृषं वृषौ वा रज्ज्वा संयोज्य मन्त्रेण पाशुपतेनोद्वाहयेत्' इति त्रिविक्रमः।

देशिक (आचार्य) संहारविधि से (अर्थात् प्रतिलोम या उल्टे क्रम से) मन्त्रों (कलाओं) का संहार करके नृसिंह मन्त्र[1] से एक हजार बार हवन करके जीर्ण मूर्ति या लिङ्ग का उद्धार करे।

ऊपर के श्लोक में संहारविधि का अर्थ प्रातिलोम्य (उलटा) क्रम है। 'मन्त्रान्' का तात्पर्य कलाओं से है। 'संहृत्य' का अर्थ नीलकण्ठ ने 'उद्धृत्य' (उद्धार करके) बतलाया है जबकि इसका अर्थ संहृत करके भी होता है। 'नारसिंहेन' का अर्थ है नृसिंहमन्त्र से। उपर्युक्त श्लोक में [किसी विशेष] होमद्रव्य का निर्देश नहीं है अतः यहाँ होम द्रव्य के रूप में आज्य का प्रयोग करना चाहिए।

किसी बैलगाड़ी या रथ में बैल को रस्सी से जोतकर आचार्य वैदिक और पौराणिक मन्त्रों को पढ़ते हुए उक्त दोषों से युक्त मूर्ति या लिङ्ग को उठवा कर ले जाकर काष्ठ-निर्मित मूर्ति को किसी शुद्ध स्थान में अग्नि में जला दे, पत्थर की बनी मूर्ति को जल में विसर्जित करे, धातु या रत्न से बनी मूर्ति को समुद्र में अथवा नदी या तालाब आदि के अगाध जल में विसर्जित करावे।

ऊपर के श्लोक के सन्दर्भ में त्रिविक्रम ने 'वृषं वृषौ वा संयोज्य' इत्यादि वचनों के द्वारा यह विधान किया है कि रस्सी से एक बैल अथवा दो बैलों को जोत कर [मूर्ति या लिङ्ग को] पाशुपत मन्त्र[2] से उठा कर ले जाये।

१. नृसिंहमन्त्र—ॐ नृसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा। (पीछे पृ० १५२ में कथित) २. ॐ श्लीं पशु हुं फट्।

यानमारोप्य जीर्णार्चां छाद्य वस्त्रादिना गुरुः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥
नीत्वाऽगाधं जलं रम्ये भागीरथ्यामथार्णवे ।
विष्वक्सेनाय बीजेन प्रक्षिपेत्तां ततो गुरुः ॥

यानमारोप्येत्यादिपूर्वोक्तेनैव प्रतिपादनम् इतिकर्तव्यतोक्त्यर्थम् । विष्वक्सेनोद्देशेन बीजेन बीजेन गुरुर्भागीरथ्यादिजले तां प्रतिमां क्षिपेदित्यर्थः ।

रत्नानि क्षिप्तान्याదాय स्वयं दद्यात् तु दक्षिणाम् ।
धेनवो दश वा पञ्च स्वर्णवस्त्राद्यलङ्कृताः ॥
जीर्णोद्धारे प्रदातव्या गुरवे विष्णुतुष्टये ।

लिङ्गगर्तक्षिप्तानि रत्नान्यादाय स्वयं यजमानो दश धेनूः पञ्च वा हेमवस्त्राद्यलङ्कृता गुरवे दक्षिणां दद्यादित्यर्थः ।

जीर्णादि दोषयुक्त प्रतिमा या लिङ्ग को आचार्य यान (रथयान या बैलगाड़ी) में बैठा कर वस्त्र आदि से आच्छादित करके शङ्ख तथा दुन्दुभि (नगाड़ा) आदि वाद्यों के निनाद तथा गीत और वाद्य के शब्दों के साथ गङ्गा [अथवा अन्य निकटस्थ अगाध जल वाली नदी] या महासमुद्र के अगाध जल में ले जाकर बीज मन्त्र का उच्चारण करते हुए विष्वक्सेन के लिए समर्पित करते हुए गिराकर विसर्जित करे ।

उपर्युक्त श्लोक में 'यानमारोप्य०' इत्यादि वचनों से इतिकर्तव्यता का प्रतिपादन किया गया है । आचार्य जीर्ण प्रतिमादि विष्वक्सेन को समर्पित करने के उद्देश्य से उसके बीज [मन्त्र] का उच्चारण करते हुए भागीरथी (गङ्गा) आदि के जल में प्रक्षिप्त [कर विसर्जित] करे ।

लिङ्ग या प्रतिमा [की पिण्डिकादि] के गर्त में [स्थापना के समय] डाले गये रत्नों को स्वयं निकाल कर यजमान उन्हें गुरु (आचार्य) को दक्षिणा रूप में प्रदान करे । लिङ्ग या प्रतिमा आदि के जीर्णोद्धार के समय यजमान भगवान् विष्णु की सन्तुष्टि हेतु सुवर्ण तथा वस्त्र आदि से अलङ्कृत दश या पाँच गायों का दान गुरु (आचार्य) को प्रदान करे ।

भोजनीया विष्णुभक्ता देयमन्नमवारितम् ।
त्रिरात्रमुत्सवः कार्यः पञ्च सप्त ह्यथापि वा ॥
बलिश्च विधिना देयो यथोक्तेन सुरोत्तम ।

यथोक्तेन चलार्चाप्रतिष्ठोक्तप्रकारेण ।

ततो निवेदयेदन्यां प्रतिमां लक्षणान्विताम् ।

निवेदयेत्स्थापयेत् ।

तत्क्षणादेव राजेन्द्र तस्य दोषस्य शान्तये ।
सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नोपेक्षां तत्र कारयेत् ॥

इस अवसर पर भगवान् विष्णु के भक्तों [अथवा उनके साथ ही जिस देवता की प्रतिमा का जीर्णोद्धार किया जा रहा हो उसके भक्तों को भी] विहित शुद्ध अन्न प्रदान करे या भोजन करावे । तीन, पाँच या सात रात्रियों तक उत्सव करे । हे सुरश्रेष्ठ ! यथोक्त विधानानुसार विधि पूर्वक बलि दे । नीलकण्ठ के अनुसार 'यथोक्त' का तात्पर्य चलप्रतिमा की प्रतिष्ठा-विधि में कहे हुए विधानानुसार है ।

किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि अचल प्रतिमा का जीर्णोद्धार करके अचल प्रतिमा की प्रतिष्ठा जहाँ अभीष्ट हो वहाँ अचल प्रतिष्ठा के विधानानुसार ही उक्त कृत्य सम्पन्न होंगे ।

तब लक्षणों से युक्त दूसरी प्रतिमा को निवेदित अर्थात स्थापित करे । जीर्ण प्रतिमा या लिङ्ग से जन्य दोष की शान्ति हेतु उसके विसर्जन के तत्काल बाद नयी प्रतिमा का स्थापन करे । चाहे सम्पत्ति हो अथवा न हो, इस काम में उपेक्षा [और विलम्ब] न करे ।

अपास्य पिण्डिकां पूर्वामन्यां तत्र निवेशयेत् ।
यद्द्रव्या यत्प्रमाणा च या मूर्तिश्चोद्धृता हरेः ।
तद्द्रव्या[1] तत्प्रमाणा च सा मूर्तिस्तत्र कीर्तिता ॥
यत्प्रमाणं यदाकारं यन्मयं बिम्बमुद्धरेत् ।
तत्प्रमाणं तदाकारं तन्मानं तत्र विन्यसेत् ॥
विहाय पिण्डिकां पूर्वां तद्दिने चापरां न्यसेत् ।
द्वितीये वा तृतीये वा दिवसे स्थापयेद्धरिम् ॥
अत ऊर्ध्वं भवेद्दोषो विधिनाऽपि निवेशिते ।
अनेनैव विधानेन लेख्यादींस्तु विसर्जयेत् ॥

लेख्यादीन्कुड्यलिखिताः प्रतिष्ठापिताः प्रतिमाः ।

अन्यांद्विकल्पयेत्तत्र तत्प्रमाणां तदाकृतिम् ॥

पहली पिण्डिका को हटा कर वहाँ पर [उसी तरह की] दूसरी पिण्डिका स्थापित करे। विसर्जित की गयी विष्णु [या इतर देवता] की मूर्ति जिस द्रव्य की और जिस प्रमाण की हो उसी द्रव्य तथा उसी प्रमाण की मूर्ति वहाँ पर स्थापित करने का विधान किया गया है।

जहाँ कहीं से भी जिस प्रमाण की, जिस आकार की तथा जिस द्रव्य से बनी जीर्ण प्रतिमा या लिङ्ग का उद्धार (उठा कर विसर्जन) किया गया हो उसी प्रमाण की उसी आकार की तथा उसी द्रव्य से बनी प्रतिमा या लिङ्ग का वहीं पर स्थापन करे।

[विसर्जित प्रतिमा की] पहली पिण्डिका को उठा कर उसी दिन वहाँ पर दूसरी पिण्डिका स्थापित करे तथा उस पर (उसी दिन) अथवा दूसरे या तीसरे दिन विष्णु की (अथवा दूसरे देवता की) प्रतिमा का स्थापन करे। इसके बाद (दो तीन दिनों के बाद) प्रतिमा को विधिपूर्वक स्थापित करने में भी दोष लगता है।

लेख्य या चित्राङ्कित देवता की प्रतिमा (=आकृति, चित्र) के

---

१. 'तद्वुद्धया' पाठ असंगत है।

एष संक्षेपतः प्रोक्तो जीर्णोद्धारविधिस्तव ।
सर्वेषामेव देवानामेष साधारणः स्मृतः ॥
यो जीर्णविधिना बिम्बं संस्कुर्यान्मानवो भुवि ।
फलं दशगुणं तस्य मूलान्नास्त्यत्र संशयः ॥
वापीकूपतडागानां सुरधाम्नां सदाऽनघ ।
प्रतिमानां सभानां च संस्कर्ता यो नरो भुवि ॥
पुण्यं शतगुणं तस्य भवेन्मूलान्न संशयः ।
संशयोऽत्र न कर्तव्यो जीर्णसंस्कारकर्मणि ।
मूलाद्दशगुणं प्रोक्तं पुण्यं कूपे प्रतिष्ठितम् ।

प्रतिष्ठितमिति भावे क्तः ।

जीर्ण होने पर उसका विसर्जन भी इसी विधि से करे।

उपर्युक्त श्लोक में 'लेख्यादि' का तात्पर्य कुड्य (भित्ति), फलक अर्थात् तख्ती या पट्टी आदि में चित्रित तथा प्रतिष्ठापित देवता की प्रतिमा (चित्र) से है।

कुड्य या फलक आदि में चित्रित प्रतिमा के जीर्णतादि दोषवश विसर्जित कर देने के बाद उसमें उसी प्रमाण (माप) तथा आकार की अन्य प्रतिमा चित्रित करवा कर उसकी प्रतिष्ठा करे।

यह जीर्णोद्धार की विधि मैंने तुम्हें संक्षेप में बतलाई है। यह विधि सभी देवताओं के जीर्णोद्धार के लिए समान रूप से विहित है।

जो मनुष्य इस पृथिवी में किसी भी जीर्णतादि दोषयुक्त बिम्ब (प्रतिमा) का जीर्णोद्धार की विधि से संस्कार करता है उसे उस मूल प्रतिमा के स्थापन से प्राप्य फल की अपेक्षा दशगुना पुण्यफल मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

वापी (बावडी), कूप, तडाग, देवालय, प्रतिमा तथा सभाओं का जीर्णोद्धार जो मनुष्य इस पृथिवी में करता है वह इनके मूल स्थापन (प्रतिष्ठा तथा उत्सर्ग) का सौ गुना अधिक पुण्य प्राप्त करता है। इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए। कूप के मूलतः

प्रतिमायां शतगुणं कूपादेः परिकीर्तितम् ।
प्रतिमादौ दशगुणं जीर्णसंस्कारणाद्भवेत् ॥

कूपप्रतिमयोर्दशगुणशतगुणयोरल्पत्वमहत्त्वापेक्षया व्यवस्था । अग्निपुराणे—

सुस्थितं दुःस्थितं वाऽपि शिवलिंगं न चालयेत् ॥ ५ ॥
शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्रेण तु चालनम् ।
पूजादिभिश्च संयुक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितम् ॥ ६ ॥
(अग्नि १०३।५-६)

निर्माण तथा उत्सर्ग की अपेक्षा दशगुना पुण्य उसके जीर्णोद्धार में होता है ।

इस श्लोक में 'प्रतिष्ठित' शब्द में प्रति उपसर्ग पूर्वक स्था धातु में भाव में क्त प्रत्यय जुड़ा हुआ है ।

कूप आदि के जीर्णोद्धार का सौ गुना पुण्य प्रतिमा के जीर्णोद्धार में होता है । मूल प्रतिमा के स्थापन का दशगुना पुण्य उसके जीर्णोद्धार अथवा पुनः संस्कार (प्रतिष्ठा) करने पर होता है :

कूप तथा प्रतिमा के जीर्णोद्धार में दशगुना या सौगुना पुण्य प्राप्त होने का उल्लेख उनके अल्पत्व तथा महत्त्व (छोटा या बड़ा होने) के कारण है ऐसी व्यवस्था (व्याख्या) करनी चाहिए ।

अग्निपुराण में भी कहा है कि शिवलिङ्ग सुस्थित हो अथवा दुःस्थित उसका चालन न करे । जब जीर्णादि दोषयुक्त शिवलिङ्ग का चालन और विसर्जन करके नये शिवलिङ्ग का स्थापन करना हो तो एक सौ बार हवन करके नये लिङ्ग का स्थापन करे तथा इससे पूर्व एक हजार बार होम करके पुराने शिवलिङ्ग का चालन करे ।

पूजा आदि से संयुक्त प्रतिमा या लिङ्ग जीर्णादि दोषयुक्त होने पर भी सुस्थित कहलाता है तथा जिसकी पूजा न होती हो वह

पूजया रहितं यत्तददुष्टमपि दुःस्थितम् ।

अयं च चालननिषेधो विधिव्यतिरेकेण शतसहस्रसंख्येऽनुक्तसंख्येयत्वाद्गोगते गोश्चाश्वश्चेत्यत्रैव । बहूपकारित्वाद्यः सहस्रं शताश्वमित्यादौ बाहुल्येन दर्शनाच्चेति न्यायविदः । सिद्धान्तशेखरे तु होमगतेयं संख्येत्युक्तम् । तदपि तत्रैव—

असुरैर्मुनिभिर्देवैस्तत्त्वविद्भिः प्रतिष्ठितम् ।
जीर्णं वाऽप्यथ वा भग्नं विधिनाऽपि न चालयेत् ।
इति ॥

तदसुरादिप्रतिष्ठापिततद्व्यक्तिविषयम्, न तु दैवात्तद्व्यक्तिनाशेन तत्स्थानस्थापितेदानीन्तनतादृशव्यक्तिविषयम् ।

प्रतिमा या लिङ्ग जीर्णादि दोष रहित होने पर भी दुःस्थित कहलाता है ।

ऊपर अग्निपुराण के 'सुस्थितं दुःस्थितं वापि' इत्यादि वाक्य में शिवलिङ्ग के चालन का निषेध विधि वचनों से भिन्न है । शत और सहस्र संख्या किस क्रिया या वस्तु की द्योतक है यह बात स्पष्टतः नहीं बतलायी गयी है । सिद्धान्तशेखर के अनुसार यह शत और सहस्र संख्या होम की आहुतियों की है । यद्यपि उसी ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि—

असुरों, मुनियों, देवों; तत्त्ववेत्ता मनुष्यों (विद्वानों) के द्वारा प्रतिष्ठापित लिङ्ग अथवा प्रतिमा के जीर्ण अथवा भग्न (खण्डित, टूट-फूट) हो जाने पर उसे जीर्णोद्धार की विधि के अनुसार भी चालित न करे ।

नीलकण्ठ ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि यह विधान असुरादि व्यक्तियों के [द्वारा स्थापित लिङ्गादि के] विषय में है दैववश उन व्यक्तियों के काल कवलित होने के पश्चात् उनके स्थान पर [या उनके द्वारा स्थापित लिङ्ग आदि के विनष्ट हो

जीर्णोद्धारप्रकारोऽप्यत्रैव—

यम्ये मण्डपमीशे वा प्रत्यग्द्वारैकतोरणम् ।
विधाय द्वारपूजादिस्थण्डिले संप्रपूजनम् ॥
(अग्नि १०३।७)

'द्वारपूजादिशिवकुम्भपूजान्तम्' इति त्रिविक्रमः ।

मन्त्रानसंतर्प्य[1] संपूज्य वास्तु[2]देवांश्च पूर्ववत् ।
दिग्बलिं च बहिर्दत्त्वा समाचम्य स्वयं गुरुः ॥ ८ ॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु शम्भुं विज्ञापयेत्ततः ।
दुष्टलिङ्गमिदं शम्भो शान्तिरुद्धरणेऽस्य चेत ॥ ९ ॥
रुचिस्तवास्ते विधिना अधितिष्ठ च मां शिव ।
एवं विज्ञाप्य देवेशं शान्तिहोमं समाचरेत् ॥ १० ॥
मध्वाज्यक्षीरदूर्वाभिर्मूलेनाष्टाधिकं शतम् ।
ततो लिङ्गं च संस्थाप्य पूजयेत्स्थण्डिले तथा ॥
(अग्नि० १०३।८-११)

जाने पर] इस युग के वैसे व्यक्तियों के द्वारा स्थापित लिङ्गादि के विषय में उक्त विधान नहीं है ।

जीर्णोद्धार की विधि भी उसमें (अग्निपुराण में) इस प्रकार से बतलायी गयी है कि मन्दिर के दक्षिण में या ईशानकोण में पश्चिम की ओर द्वार वाला तथा एक तोरण वाला मण्डप बना कर द्वारपूजा आदि करके स्थण्डिल में पजन करे ।

त्रिविक्रम के अनुसार मण्डप में द्वारपूजा से लेकर शिवकुम्भ (रुद्रकलश) की पूजा तक के कृत्य करे ।

तब गुरु मन्त्रों (कलाओं) तथा वास्तु देवताओं का पूजन करके पूर्वोक्त विधि से मण्डप के बाहर दिशाओं में दिक्पालों को बलि देकर आचमन करे । तब ब्राह्मणों को भोजन कराके शिव से यह प्रार्थना करे कि हे शिव ! यह लिङ्ग जीर्णादि दोषयुक्त हो गया है । अब

१. मन्त्रान्संतर्प्य । पाठान्तर । २. वासुदेवांश्च । -पाठान्तर ।

लिङ्गं लिङ्गाधिष्ठितदेवतां स्थण्डिले संस्थाप्येत्यर्थः ।

ॐ व्यापकेश्वरायेति नाम्नानेन शिवार्चनम् । ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय नमः । ॐ व्यापकेश्वर शिरसे नमः । ॐ व्यापकेश्वर शिखायै नमः । इत्याद्यूह्यम् । इत्यङ्गमन्त्राः ।

इसका उद्धार करने पर ही शान्ति संभव है । यदि इसके जीर्णोद्धार में आपकी रुचि है तब आप विधिपूर्वक मेरे (हृदय) में अधिष्ठित (विराजमान) होवें । शिव से ऐसी प्रार्थना करके शान्तिहोम करे । इस (शान्तिहोम) में मूलमन्त्र से क्रमशः मधु, आज्य, क्षीर (दूध) और दूर्वा में से प्रत्येक द्रव्य से एक सौ आठ बार होम करे । तब लिङ्ग को स्थण्डिल में स्थापित करके उसका पूजन करे ।

यहाँ लिङ्ग का तात्पर्य लिङ्गाधिष्ठित देवता से है 'पूजयेत् स्थण्डिले' का तात्पर्य है स्थण्डिल में स्थापित करके पूजा करे ।

'व्यापकेश्वराय' इस चतुर्थ्यन्त नाम में 'नमः' जोड़कर—'ॐ व्यापकेश्वराय नमः'—इस नाममन्त्र से शिव की पूजा करे । षडङ्ग न्यास करते समय—

ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय नमः, ॐ व्यापकेश्वर शिरसे नमः ।

ॐ व्यापकेश्वर शिखायै नमः । इत्यादि प्रकारेण ऊह करे । यह अङ्गमन्त्र हैं ।

वस्तुतः 'व्यापकेश्वर हृदयाय नमः' इत्यादि की अपेक्षा ऊह करके निम्नलिखित विधि से हृदयादि न्यास करना चाहिए—

ॐ व्यापकेश्वराय हृदयाय नमः । (इससे प्रतिमा या लिङ्ग के हृदय का स्पर्श करे)

ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे स्वाहा । (इससे प्रतिमा या लिङ्ग के शिर का स्पर्श करे)

ॐ व्यापकेश्वराय शिखायै वषट् । (इससे प्रतिमा या लिङ्ग की शिखा का स्पर्श करे)

ततस्तन्त्रा[?तत्रा]श्रितं मन्त्रं [?तत्त्वं] वारयेदस्त्रबन्धनः[1]।
सत्त्वः कोऽपीह यः कश्चिल्लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठति ॥
लिंगं त्यक्त्वा शिवाज्ञाभिर्यत्रेष्टं तत्र गच्छतु।
विद्याविद्येश्वरैः शंभुः [?युक्तः] शंभुरत्र भविष्यति ॥
सहस्रं प्रतिभागं च ततः पाशुपताणुना[2]।
हुत्वा शान्त्यम्बुना प्रोक्ष्य स्पृष्ट्वा कुशैर्जपेत्ततः ॥
(द्रष्टव्य–अग्नि १०३.१२–१५)

ॐ व्यापकेश्वराय कवचाय हुम्। (इससे प्रतिमा या लिङ्ग के कवच का स्पर्श करे)

ॐ व्यापकेश्वराय नेत्रत्रयाय वौषट्। (इससे प्रतिमा या लिङ्ग के नेत्रत्रय का स्पर्श करे)

ॐ व्यापकेश्वराय अस्त्राय फट्। (इससे प्रतिमा या लिङ्ग के अस्त्र का स्पर्श करे अर्थात् प्रतिमा के हाथों में अस्त्र का न्यास करे)।

तब अस्त्रबन्धन से युक्त होकर आचार्य उस लिङ्ग या प्रतिमा में स्थित सत्त्व (भूत आदि) को निवारित अर्थात् अपसारित करे। वह कहे कि—

इस लिङ्ग का आश्रय लेकर जो कोई सत्त्व (प्राणी, देवादि या भूतादि) स्थित हो वह शिव की आज्ञा से इस लिङ्ग को छोड़ कर जहाँ अभीष्ट हो (जहाँ इच्छा करे) वहाँ जाय। विद्याओं ता विद्येश्वरों

१. ततस्तत्राश्रितं तत्त्वं श्रावेद्स्त्रमन्त्रतः ॥ अग्नि० १०३।१२।

२. अथ वक्ष्ये महेशान मन्त्रं पाशुपताह्वयम्।
अस्त्रराजं समस्तापत् तारणं शत्रुकृन्तनम् ॥ १
तारो बकेशः शान्तीन्द्रभूषितचन्द्रशेखरः।
शिखीशपूर्वो वान्तश्च पञ्चमस्वरसंयुतः ॥ २

ब्रह्मशिलापिण्डिलिंगात्मकदेवताभागत्रयसंस्कारार्थं पाशुपतास्त्रेण[1] हुत्वा शान्तिकलशोदकेन देवं संप्रोक्ष्य कुशैश्च स्पृष्ट्वा

के साथ कल्याण कारक शम्भु (शिव) यहाँ रहेंगे। तब पाशुपत अणु (पाशुपत मन्त्र)[1] से ब्रह्मशिला पिण्डिका तथा लिङ्ग में से प्रत्येक भाग के लिए एक-एक हजार की संख्या में होम करके शान्ति कलश के जल से प्रोक्षण करके कुशों से स्पर्श करके जप करे।

उपर्युक्त (अन्तिम) श्लोक (के अर्थ) का स्पष्टीकरण इस प्रकार

वर्मास्त्रान्तः षडर्णोऽयं षडाननसमीरितः।... ॥ ३
— शिवरहस्य (श्रीविद्यार्णव के तीसवें श्वास में उद्धृत)
तारो वान्तो धरासंस्थो वामनेत्रेन्दु भूषितः।
पार्श्वो बकः कर्णयुतो वर्मास्त्रान्तः षडक्षरः ॥
मनुः पाशुपतास्त्राख्यो ग्रहक्षुद्रनिवारणः।
षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि हुं फडन्तैः सजातिभिः ॥
शारदातिलक २०।२६–२७

१. पाशुपत मन्त्र, उसका विनियोग तथा न्यास—
ॐ अस्य पाशुपतास्त्रमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः
रुद्रः पशुपतिर्देवता जपे होमे वा विनियोगः ॥
श्रीविद्यार्णवोक्त-हृदयादिन्यासः—
ॐ हुं फट् हृदयाय नमः।
श्लीं हुं फट् शिरसे स्वाहा।
प हुं फट् शिखायै वषट्।
शुं हुं फट् कवचाय हुम्।
हुं हुं फट् नेत्रत्रयाय वौषट्।
फट् हुं फट् अस्त्राय फट्।
अथ मन्त्रः—ॐ श्लीं पशु हुं फट्। –शारदातिलक एवं श्रीविद्यार्णव में कथित। होम करते समय इस मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' पद जोड़ा जायेगा।

होमसंख्यया पाशुपतमन्त्रं जपेत् ।

दत्त्वाऽर्घ्यं च विलोमेन तत्त्वतत्त्वाधिपांस्ततः ।
मूर्तिमूर्तीश्वरांल्लिंग पिण्डिकासंस्थितान्गुरुः ॥
विसृज्य स्वर्णपाशेन वृषस्कन्धस्थया[1] तथा ।
रज्ज्वा बद्ध्वा तथा[2] नीत्वा शंवमन्त्र गृणञ्शनैः ॥
तज्जले निक्षिपेन्मन्त्री पुष्टयर्थं जुहुयाच्छतम् ।
तृप्तये दिक्पतीनां च वास्तुशुद्ध्यै शतं शतम् ।
रक्षां विधाय तद्धाम्नि महापाशुपतास्त्रतः ।
लिंगमन्यत्ततस्तत्र स्थापयेद्विधिवद् गुरुः ॥

है—देवता (शिव) के ब्रह्मशिला, पिण्डिका तथा लिङ्गात्मक भागत्रय (तीनों भागों) के संस्कार के लिए पाशुपत अस्त्र (मन्त्र) से [प्रत्येक के लिए एक-एक हजार की संख्या में] होम करके देवता (लिङ्ग) का शान्तिकलश के जल से प्रोक्षण कर तथा कुशों से स्पर्श कर होम की संख्यानुसार पाशुपत मन्त्र का जप भी करे।

तब अर्घ्यपात्र को विलोम (पराङ्मुख, अर्थात् अर्घ्यपात्र का मुख देवता की ओर करने के बजाय अपनी ओर) करके अर्घ्य दे। तदनन्तर आचार्य लिङ्ग तथा पिण्डिका में स्थापित तत्त्वों और उनके अधिपतियों एवं मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरों को विसर्जित करे और तब जीर्ण लिङ्ग या प्रतिमा को गाड़ी में रख कर उसे सोने के पाश (रस्सी) से बैल के गले में बँधी हुई रस्सी के साथ बाँध कर आचार्य शिव के मन्त्र को जपते हुए उसे शनैः शनैः ले जाकर गहरे जल में छोड दे।

तत्पश्चात् पुष्टि हेतु शिव-मन्त्र से एक सौ बार होम करे। तब दिक्पालों में से प्रत्येक की सन्तुष्टि हेतु तत्तद् दिक्पाल के मन्त्र से

१. तया—अपपाठ।
२. तया—पाठान्तर।

एक सौ बार होम करे और तब वास्तुशुद्धि के लिए एक सौ बार (वास्तोष्पति मन्त्र से) होम करे। तब उस धाम (देवालय) में महापाशुपत[1] अस्त्र (मन्त्र) से रक्षा-विधान करके आचार्य वहाँ

१. महापाशुपतास्त्र मन्त्र-(अग्निपुराण के तीन सौ बाईस अध्याय में कथित)—
ॐ नमो भगवते महापाशुपतायातुलवीर्यपराक्रमाय त्रिपञ्चनयनाय नानारूपाय नानाप्रहारणोद्यताय सर्वाङ्गरक्ताय भिन्नाञ्जनचयप्रख्याय श्मशानवेतालप्रियाय सर्वविघ्ननिकृन्तनाय सर्वसिद्धिप्रदाय भक्तानुकम्पिनेऽसंख्यवक्त्रभुजपादाय तस्मिन् सिद्धाय वेतालवित्रासिने शाकिनीक्षोभजनकाय व्याधिनिग्रहकारिणे पापभञ्जनाय सूर्यसोमाग्निनेत्राय विष्णुकवचाय खडग वज्रहस्ताय यमदण्डवरुणपाशाय रुद्रशूलाय ज्वलज्जिह्वाय सर्वरोगविद्रावणाय ग्रहनिग्रहकारिणे दुष्टनाशक्षयकारिणे ।
ॐ कृष्णपिङ्गलाय फट् । हुंकारास्त्राय फट् । वज्रहस्ताय फट् । शक्तये फट् । दण्डाय फट् । खड्गाय फट् । यमाय फट् । नैर्ऋताय फट । वरुणाय फट । वज्राय फट् । पाशाय फट् । ध्वजाय फट् । अंकुशाय फट । गदायै फट् । कुबेराय फट । त्रिशूलाय फट् । मुद्गराय फट् । चक्राय फट् । पद्माय फट । नागास्त्राय फट् । ईशानाय फट् । खेटकास्त्राय फट् । मुण्डाय फट् । मुण्डास्त्राय फट् । कंकालास्त्राय फट् । पिच्छिकास्त्राय फट् । क्षुरिकास्त्राय फट् । ब्रह्मास्त्राय फट् । शक्त्यस्त्राय फट् । गणास्त्राय फट् । सिद्धास्त्राय फट् । पिलिपिच्छास्त्राय फट् । गन्धर्वास्त्राय फट् । पूर्वास्त्राय फट् । दक्षिणास्त्राय फट् । वामास्त्राय फट । पश्चिमास्त्राय फट् । मन्त्रास्त्राय फट् । शाकिन्यस्त्राय फट् । योगिन्यस्त्राय फट् । दण्डास्त्राय फट् । महादण्डास्त्राय फट् । नागाऽस्त्राय फट् । शिवास्त्राय फट् । ईशानास्त्राय फट् । पुरुषास्त्राय फट् । अघोरास्त्राय फट् । सद्योजातास्त्राय फट् । हृदयास्त्राय फट् । महास्त्राय फट । गरुडास्त्राय फट् । राक्षसास्त्राय फट् । दानवास्त्राय फट् । क्षौं नरसिंहास्त्राय फट् । त्वष्ट्रस्त्राय फट् । सर्वास्त्राय फट् । नः फट् । वः फट् । पः फट् । फः फट् । मः फट् । मः फट् । श्रीः फट् । फेः फट् । भूः फट् । भुवः फट् ।

विलोमेन पराङ्मुखसंज्ञकम् । तत्वतत्वाधिपमूर्ति-मूर्तीश्वराः

वक्ष्यन्ते ।

सिद्धान्तशेखरे —जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये समासात्तत्र चोदितम् ।

ईशान्यां दक्षिणे वापि मण्डप पश्चिमामुखम् ।

कुर्वीत पूर्ववत्सर्वमेकास्य चैकतोरणम ।।

पूर्ववत्सर्वं स्तम्भादि

पर विधिवत् अन्य लिङ्ग की स्थापना (प्रतिष्ठा) करे ।

ऊपर (पृ० ४०२) के पहले श्लोक में 'विलोम' शब्द से पराङ्मुख अर्थात् सामान्य की अपेक्षा ठीक विपरीत दिशा की ओर अर्घ्यपात्र का मुख करने को कहा गया है। तत्त्वों तथा तत्त्वों के अधिपतियों और मूर्तियों एवं मूर्तियों के अधिपतियों की चर्चा आगे की जायेगी ।[1]

सिद्धान्तशेखर में भी यह कहा गया है—

वहाँ कथित जीर्णोद्धार की विधि को संक्षेप में बतलाता हूँ ।

स्वः: फट् । महः फट् । जनः फट् । तपः फट् । सत्यं फट् । सर्व लोक फट् । सर्वपाताल फट् । सर्वतत्त्व फट् । सर्वप्राण फट् । सर्वनाडी फट् । सर्वकारण फट् । सर्वदेव फट् । ह्रीं फट् । श्रीं फट् । हं फट् । स्र फट् । स्वां फट् । लां फट् । वैराग्याय [?रास्त्राय] फट् । मायास्त्राय फट् । कामास्त्राय फट् । क्षेत्रपालास्त्राय फट् । हुंकारास्त्राय फट् । भास्करास्त्राय फट । चन्द्रास्त्राय फट् । विघ्नेश्वरास्त्राय फट् । गौः गां फट् । ख्रो ख्रौं फट् । हों हीं फट् । भ्रामय भ्रामय फट् । सन्तापय सन्तापय फट् । छादय छादय फट् उन्मूलय उन्मूलन फट् । त्रासय त्रासय फट् । सजीवय संजीवय फट् । विद्रावय विद्राय फट् । सर्वदुरितं नाशय नाशय फट् ।

१. तत्त्वों तथा तत्त्वाधिपतियों की चर्चा पीछे पृष्ठ १२८ तथा १३४ में है और मूर्तियों तथा उनके अधिपवियों की चर्चा पीछे पृष्ठ १६३–१६५ में है ।

द्वारपालार्चनं कुर्यात्स्थण्डिलेऽग्नौ शिवार्चनम् ।

द्वारपालार्चनं मण्डपप्रतिष्ठाप्रकारेण ।

मन्त्राणां तर्पणं कुर्याद्वास्तुदेवार्चनं तथा ।

मन्त्राणां देवस्थापितकलानाम् ।

अन्तर्बहिर्बलिं दद्याच्छिवभक्तांश्च भोजयेत् ।

'शिवभक्तान्पञ्च' इति त्रिविक्रमः ।

द्विजान्कर्मकरादींश्च ततो विज्ञापयेच्छिवम् ।

दोर्घलिंगमिदं दुष्टं शान्तिरस्त्वस्य चोद्धृतौ ।

तस्मादेनं विधानेन अधितिष्ठ महेश्वर ।

भवत्विति वचस्तेन प्रोक्तं तद्भावयेद् गुरुः ।।

तेन शिवेन प्रोक्तं शान्तिर्भवत्विति वचो गुरुर्भावयेत् ।

देवालय के ईशान कोण या दक्षिण में पश्चिमाभिमुख मण्डप बनवाये, जो एक मुख (द्वार, पश्चिम की ओर द्वार) वाला तथा एक तोरण वाला हो तथा जिसकी अन्य सब बनावट अर्थात् स्तम्भ आदि पूर्ववत् (अर्थात् प्रतिष्ठा के समय बनाये गये मण्डप) के समान हो ।

तब द्वारपालपूजन करके स्थण्डिल में अग्निस्थापन कर शिव की पूजा करे ।

द्वारपालों का पूजन मण्डप-प्रतिष्ठाप्रकरणोक्त विधान से करे ।

मन्त्रों (लिङ्ग में स्थापित कलाओं) का तर्पण करे तथा वास्तु-देवताओं का पूजन करे ।

इस प्रसंग में मन्त्रों का तात्पर्य देवता (लिङ्ग या प्रतिमा) में स्थापित कलाओं[1] से है ।

मण्डप के अन्दर तथा बाहर बलि प्रदान करे और तब शिव के भक्तों को भोजन करावे। त्रिविक्रम के अनुसार शिव के पाँच भक्तों को भोजन करावे ।

ब्राह्मणों तथा सेवकों (नौकरों) आदि को भी भोजन करावे ।

---

१. कलाओं का विवरण पीछे पृ० १४७–१५१ में देखें ।

विज्ञाप्यैवं शिवं भक्त्या शान्तिहोमं समाचरेत् ।
मधुनाऽऽज्येन दुग्धेन दूर्वाभिर्मूलमन्त्रतः ॥
शतमष्टाधिकं मन्त्रं प्रत्येकं जुहुयात्ततः ।

मन्त्रं मूलमन्त्रमुच्चार्येत्यर्थः ॥

त्रिमिश्च मधुरैः सार्द्धं समिधोऽघोरमन्त्रतः ।
शान्त्यर्थं वर्तुले कुण्डे सहस्रं जुहुयाद् गुरुः ॥

तब शिव से यह निवेदन करे कि दोषों के आ जाने के कारण यह लिङ्ग दुष्ट हो गया है। अतः इसका उद्धार करने पर ही शान्ति सम्भव होगी।

अतः हे परमेश्वर! इसमें यथाविधान वास करें (अर्थात् इसके उद्धार के पश्चात् नये निर्दोष लिङ्ग में वास करें)।

तब आचार्य यह भावना (कल्पना) करे कि शिव ने प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) में 'ऐसा ही हो' यह कहा है। अर्थात् गुरु अपने वचनों से यह भावना व्यक्त करे कि शिव ने 'शान्ति हो' ऐसे वचन कहे हैं।

इस तरह शिव से भक्तिपूर्वक निवेदन करके शान्तिहोम करे। इस क्रम में मधु, आज्य, दुग्ध तथा दूर्वा में से प्रत्येक से एक सौ आठ बार मूलमन्त्र से होम करे।

तदनन्तर आचार्य शान्ति हेतु वर्तुल (गोलाकार) कुण्ड में त्रिमधु (मधु, शर्करा या गुड़ तथा घृत) का समिधाओं के साथ अघोरमन्त्र[1] से एक हजार की संख्या में होम करे।

---

१. (क) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यो सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽअस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

(ख) विद्यार्णव तन्त्रोक्त अघोरास्त्रमन्त्र—
ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतरतनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह बम बम बन्ध बन्ध घातय घातय हुँ फट्। —इस इक्यावन अक्षर के मन्त्र के न्यास आदि की विधि विद्यार्णवतन्त्र के तीसवें श्वास में दी गयी है।

अथवाऽस्त्रेण[1] जुहुयाद् व्याहृतीभिश्च पूर्णया।
बध्नीयात्कङ्कणं हैमं लिंगस्योत्तानके करे ॥

लिंगस्योत्तानं करं भावयित्वा तत्र हैमं कङ्कणं बध्नीयादित्यर्थः।

लिंगं संस्नाप्य संपूज्य पूर्वोक्तविधिना ततः।
साङ्गं संपूजयेद्भक्त्या स्थण्डिले व्यापकेश्वरम् ॥
लिंगाश्रितानि भूतानि ताडयेदस्त्रमन्त्रतः।
यानि कानि च भूतानि तिष्ठन्त्याश्रित्य लिङ्गकम् ॥

अथवा एक हजार आहुतियों का यह होम अघोरमन्त्र के बजाय अस्त्रमन्त्र[1] से भी किया जा सकता है। इसके अन्त में व्याहृतिहोम आदि तथा पूर्णाहुति करे।

तब लिङ्ग के उत्तान (सीधे पसारे हुए) हाथ में कङ्कण (कंगना) बांधे अर्थात् लिङ्ग के हाथ के उत्तान (सीधे पसारे हुए) होने की कल्पना करके उसमें सोने का कङ्कण बांधे।

तब लिङ्ग को स्नान करा कर पूर्वोक्त विधि से पूजन करे। तदनन्तर स्थण्डिल में व्यापकेश्वर (शिव) का साङ्ग (अङ्गों सहित) पूजन करे[2]।

---

१. (क) पूर्तकमलाकरोक्त अस्त्रमन्त्र— ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह बम बम घातय घातय हुँ फट् स्वाहा अस्त्राय नमः।

(ख) ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोरघोरतनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह बम बम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्। (श्रीविद्यार्णवतन्त्र)

२. व्यापकेश्वर का साङ्गपूजन—इन नाम मन्त्रों से करे—
व्यापकेश्वर हृदयाय नमः। व्यापकेश्वर शिरसे नमः। व्यापकेश्वर शिखायै नमः। व्यापकेश्वर कवचाय नमः। व्यापकेश्वराय नेत्रत्रयाय नमः। व्यापकेश्वर अस्त्राय नमः।

त्यक्त्वा शिवाज्ञया तानि व्रजन्तु स्थानमीप्सितम् ।

विद्याविद्येश्वरैर्युक्तः शिवो लिंगे भविष्यति ।

इति दत्त्वा शिवस्याज्ञां ततो भागत्रये गुरुः ॥

हुत्वा हुत्वाऽस्त्रमन्त्रेण तथा पाशुपतास्त्रतः ।

प्रतिभागं सहस्रं च सिञ्चेच्छान्तिघटोदकैः ॥

ब्रह्मशिलापिण्डीलिङ्गात्मकदेवभागत्रयं संस्कर्तुं त्रिसहस्रमन्त्रेण हुत्वा तेनैव प्रतिभागं कलशसहस्रेणाभिषिञ्चेदित्यर्थः ।

तब लिङ्ग का आश्रय लेकर स्थित भूतादिक को अस्त्र-मन्त्र से ताडित करते हुए यह कहे—

यानि कानि च भूतानि तिष्ठन्त्याश्रित्य लिङ्गकम् ।
त्यक्त्वा शिवाज्ञया तानि व्रजन्तु स्थानमीप्सितम् ॥
विद्याविद्येश्वरैर्युक्तः शिवो लिङ्गे भविष्यति ।

अर्थात् जो कोइ प्राणी इस लिङ्ग का आश्रय लेकर रह रहे हैं वे शिव की आज्ञा से इस [लिङ्ग] को छोड़कर अपने अभीष्ट स्थान को (जहाँ चाहें वहाँ) जावें । विद्याओं तथा विद्येश्वरों से युक्त शिव इस लिङ्ग में रहेंगे ।

इस प्रकार शिव की आज्ञा को सुना कर आचार्य अस्त्रमन्त्रों तथा पाशुपतास्त्र मन्त्र से ब्रह्मशिला, पिण्डिका तथा लिङ्ग में से प्रत्येक भाग के लिए एक हजार आहुतियों से हवन करके शान्तिकलश के जल से एक हजार बार प्रत्येक भाग को अभिषिक्त करे ।

अर्थात् ब्रह्मशिला, पिण्डिका और लिङ्ग—इन तीनों भागों को संस्कृत अर्थात् शोधित करने के लिए एक-एक हजार करके कुल मिला कर तीन हजार बार अस्त्रमन्त्र या पाशुपतास्त्रमन्त्र से हवन करके उसी मन्त्र से एकहजार कलशों से अभिषिक्त करे (जिन्हें नीलकण्ठ का यह वचन अव्यावहारिक लगे—जो एक हजार कलश न जुटा सकें वे शान्तिकलश के जल से एक हजार बार अभिषेक करें ।)

मूलमध्याग्रकैर्दर्भैः स्पृष्ट्वा च जपमाचरेत् ।

ब्रह्मशिलां मूलेन पिण्डीं मध्येन लिङ्गमग्रेण दर्भैः स्पृष्ट्वेत्यर्थः ।

प्राग्वत्पाशुपतास्त्रं च जपेद्धोमस्य संख्यया ।

सद्योजातादिवक्त्रेषु दद्यादर्घं पराङ्मुखम् ॥

दुष्टलिङ्गप्रतिपत्तिमाह—

सौधं भूमौ परित्याज्यं दारुजं चाग्निना दहेत् ।

सौधं सुधानिर्मितं लिंगम् ।

लोहजं तेन कार्यं स्याच्छैलजं चाप्सु निक्षिपेत् ॥

सुवर्णाद्यष्टलोहनिर्मितं भग्नं चेत्तेनैव सुवर्णादिना तत्कार्यमित्यर्थः

ब्रह्मशिला, पिण्डिका तथा लिङ्ग को क्रमशः कुशों के मूलभाग, मध्यभाग तथा अग्रभाग से स्पर्श करके [मूलमन्त्र का] जप करे ।

अर्थात् ब्रह्मशिला को कुशों के मूलभाग से, पिण्डिका को कुशों के मध्य भाग से तथा लिङ्ग को कुशों के अग्रभाग से स्पर्श करके मूलमन्त्र का जप करे ।

पूर्वोक्त की ही भाँति जितनी संख्या में होम किया गया हो उतनी ही बार पाशुपतास्त्र मन्त्र का जप करे । तदनन्तर शिव के सद्योजात आदि मुखों में पराङमुख (उलटा, अर्घ्यपात्र का अग्रभाग विपरीत दिशा को करके) अर्घ्य प्रदान करे ।

जीर्णादिदोषों से दूसित लिङ्ग का क्या करे—इस विषय में बतलाते हैं—

सुधा अर्थात् चूने से बने हुए लिङ्ग को दूर ले जाकर शुद्धभूमि में त्याग दे काष्ठ-निर्मित लिङ्ग को अग्नि में जला दे । लोहज अर्थात् सुवर्णादि धातुनिर्मित लिङ्ग को तत्तत धातु से जोड़ कर ठीक करले । तथा पत्थर से निर्मित लिङ्ग को अगाध जल में डबो देना चाहिए । 'लोहजं०' इत्यादि वाक्यांश का तात्पर्य बतलाते हुए नीलकण्ठ ने कहा है कि सुवर्ण आदि अष्टधातु निर्मित लिङ्ग यदि टूट जाय तो

तत्त्वतत्त्वेश्वरांल्लिङ्गान्मूर्तिमूर्तीश्वरानपि।
तासामेव तत्रैव संस्कारसंभवात् स्थलान्तरनयनाविधानाभावाच्च (?)। एतेन स्वस्थानादचलितस्याविकृतस्य च विद्युद्धतदग्धादेरप्येवमेव व्यवस्था।

स्थानाच्चालितस्य तु पुनस्तत्रैव प्रतिष्ठा। स्थानान्तरविधानाभावाच्चलितस्य च त्यागस्तादृशस्यान्यस्य प्रतिष्ठा च।

स्थूले पूर्वपिण्डीब्रह्मशिलाया अप्युद्धारः, प्रतिपत्तिविधिना पिण्डिकान्तरादिनिवेशश्च। व्यङ्गे तु पूर्वपिण्डिकादीनां भग्नत्वे एवमेव।

उसी सुवर्णादि धातु से उसके खण्डित अंश को जोड़कर लिङ्ग को सही और पूर्ण आकार प्रदान करे।

तत्त्वों एवं तत्त्वाधिपतियों एवं मूर्तियों तथा मूर्त्यधिपतियों से सम्बन्धित लिङ्गों की भी वैसी ही व्यवस्था करे, क्योंकि उनका संस्कार (उसी स्थान में) सम्भव है और उनको दूसरे स्थान पर ले जाने का विधान भी नहीं प्राप्त होता। इस वचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विद्युत-दग्ध (जिसमें बिजली गिरी हो) आदि लिङ्ग यदि अपने स्थान से अविचलित तथा अखण्डित (अक्षुण्ण) हो तो उसका संस्कार भी उक्त व्यवस्था के अनुसार उसी स्थान पर करे।

जो लिङ्ग अपने स्थान से चलित हो (पागल मनुष्य, चोर, हाथी बाढ आदि के कारण अपने स्थान से विचलित करके अन्यत्र पहुँचा दिया गया हो) उसकी पुनः वहीं पर प्रतिष्ठा करे। इस तरह के चलित लिङ्ग को दूसरे स्थान पर प्रतिष्ठापित करने के विधान के अभाव में उसको त्याग कर उसके स्थान में उसी तरह के अन्य लिङ्ग की प्रतिष्ठा भी की जा सकती है।

जो लिङ्ग स्थूल हो (पिण्डिका के अनुरूप न हो) उसकी पूर्ववर्ती पण्डी तथा ब्रह्मशिला आदि का भी उद्धार करे तथा यथोक्त विधि से

पिण्डाद्यभावे तु पिण्डिकाद्यन्तरस्थापनमात्र'मित्यादिदुष्टलिङ्गानामि'त्यग्निपुराणवाक्यात् 'लिङ्गे पीठादिके वाऽपो'ति सिद्धान्तशेखरवाक्यात्, पूर्वपीठं परित्यज्ये'ति हयशीर्षवाक्याच्च।

सुवर्णादिनिर्मितभङ्गादौ तु तेनैव सुवर्णादिना तादृशं तावत्परिमाणं च लिंगादि कृत्वा तत्रैव पुनः स्थाप्यम्। यदि तेन सुवर्णादिना तादृशं कर्तुं न शक्यते तदा समुद्रे क्षिपेत्। रत्नजा तु समुद्र एव क्षेप्तव्या। 'रत्नजा यदि दग्धाऽपि स्वकान्ति न जहाति तदा सैव

दूसरी पिण्डिका, ब्रह्मशिला आदि का स्थापन करे। जो लिङ्ग व्यङ्ग (बेडौल या विकृति अङ्ग वाला) हो उसकी पूर्ववर्ती पिण्डी, ब्रह्मशिला आदि यदि भग्न (टूटी-फूटी) हो तो उनका उद्धार करके नयी उसी द्रव्य तथा आकार की पिण्डी और ब्रह्मशिला का स्थापन करे [और यदि वे अक्षुण्ण और अच्छी स्थिति में हों तो उन्हें न बदले]।

पिण्डिका आदि के अभाव में अथवा उनके जीर्ण-भग्न आदि दोषों से दूषित होने पर मात्र दूसरी पिण्डिका आदि का स्थापन करे और उसी पूर्व स्थापित [अदूषित] लिङ्ग को उसके ऊपर प्रतिष्ठापित करे। यही आशय पीछे अग्निपुराण के 'इत्यादिदुष्टलिङ्गानां०'[1] इत्यादि वचनों का है। सिद्धान्तशेखर के 'लिङ्गे पीठादिके वापि०'[2] इत्यादि वचनों और हयशीर्षागम के 'पूर्वपीठ परित्यज्य०'[3] इत्यादि वचनों का भी यही तात्पर्य है।

सुवर्ण आदि धातुओं से निर्मित लिङ्ग (या प्रतिमा) के टूटने आदि की स्थिति में उसी सुवर्ण आदि से, उसी आकार-प्रकार तथा उतने ही परिमाण का लिङ्ग (या प्रतिमा) बनवा कर उसे पुनः वहीं

१. द्र० पीछे, पृ० ३७८।
२. द्र० पीछे, पृ० ३८२।
३. द्र० पीछे, पृ० ३९०।

स्थाप्या' इति त्रिविक्रमः। 'लोहाद्य छिन्नभिन्नाङ्गमि'ति सिद्धान्त-शेखरवाक्यात्। 'धातुजां रत्नजां वापो'ति हयशीर्षवाक्यात् ॥ इति जीर्णोद्धारविधिः।

अथास्य प्रयोगः। यजमान उत्थाय दक्षिणस्यामीशान्यां वा जातीयद्रव्यनिर्मितं तन्मानं तदाकारं लिङ्गं तादृशीं प्रतिमां च स्थापयेत्।

पर स्थापित करे। यदि उस सुवर्ण आदि से उस भग्न-लिङ्ग (या प्रतिमा) को उसी रूप में नहीं बनाया जा सकता तो उसे समुद्र में ले जाकर छोड़ दे। रत्न-निर्मित मूर्ति या लिङ्ग [यदि जीर्ण भग्न आदि दोषों से दूषित हों तो उन] को भी ले जाकर समुद्र में ही छोड़े। इस विषय में त्रिविक्रम का यह मत है कि यदि रत्न से निर्मित प्रतिमा या लिङ्ग दग्ध होने पर भी अपनी कान्ति को नहीं छोड़े तो पुनः उसी को स्थापित करे। इस विषय में पूर्वोद्धृत मतों का पुनः संकेत करते हुए नीलकण्ठ ने कहा है कि सिद्धान्त-शेखर के वचनों में भी 'लोहाद्यं छिन्न-भिन्नाङ्गं०'[1] इत्यादि वाक्यांश में छिन्न (कटी) तथा भिन्न (=भग्न) प्रतिमा या लिङ्ग को जोड़ कर पुनः स्थापन का विधान है तथा हयशीर्षागम के वचनों के अनुसार 'धातुजां रत्नजां वापि०'[2] इत्यादि वाक्य में धातु या रत्न की बनी हुई (भग्न-जीर्ण) प्रतिमा या लिङ्ग को समुद्र में, अगाध जल वाले सरोवर आदि में या प्रभूत जल वाली नदी में छोड़ दे। यहाँ पर जीर्णोद्धार विधि का विवेचन समाप्त हुआ।

अब जीर्णोद्धार विधि का प्रयोग बतलाते हैं। जीर्णादिदोषयुक्त लिङ्ग जिस द्रव्य का, जिस मान (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गोलाई

१. द्र० पीछे, पृ० ३८४ वहाँ 'लोहाद्यं०' इत्यादि पाठ है।
२. द्र० पीछे, पृ० ३९१ वहाँ प्रदत्त 'धातुजां० रत्नजां' इत्यादि पाठ समीचीन है।

'अतिजीर्णमि'ति पूर्वोक्ताद्धयशीर्षवाक्यात्। 'पीठाच्च चालितं लिङ्गमि'ति 'त्यजेत्सदोषं लिंगमि'ति 'बाहुपादशिरोहीनामि'ति 'यद्द्रव्यं यत्प्रमाणं चे'ति शिद्धान्तशेखरोक्तेः।

और भार) तथा जिस आकार का हो, उसी द्रव्य, उसी मान तथा उसी आकार का नया लिङ्ग (या प्रतिमा) लाकर यजमान स्वयं उठ कर उसे ले जाकर मण्डप के दक्षिण में या ईशानकोण में रखे।

कौन से लिङ्ग या प्रतिमा को हटाकर उसके स्थान पर नये लिङ्ग या प्रतिमा का स्थापन होगा और कौन पुनः स्थापित किया जायेगा इस विषय में पहले विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। उनमें से कुछ वचनों की ओर नीलकण्ठ ने पुनः संकेत किया है। जैसे कि पहले कहे गये 'हयशीर्षागम' के 'अतिजीर्णां तथा व्यङ्गां०'[1] इत्यादि वाक्य में काष्ठ या पत्थर से बनी अतिजीर्ण तथा व्यङ्ग (बेडौल, विकृत अङ्ग या न्यूनाङ्ग) प्रतिमा या लिङ्ग को त्याग कर अन्य प्रतिमा के स्थापन का विधान है। 'सिद्धान्तशेखर' में 'पीठाच्च चालितं लिङ्गं०'[2] इत्यादि वाक्य में यह विधान है कि पिण्डिका में से उखाड़ा हुआ लिङ्ग यदि निर्दोष हो तो अघोरमन्त्र का एक सौ बार जप करके उसे वहीं (उसी पिण्डिका) पर पुनः स्थापित करे। 'त्यजेत् सदोषं लिङ्गं०'[3] इत्यादि वाक्य में जीर्णतादि दोष-युक्त तथा श्वपच (चाण्डाल) आदि के स्पर्श से दूषित लिङ्ग को त्याग कर अन्य लिङ्ग को प्रतिष्ठित करने का विधान है। 'बाहुपादशिरो हीनां०'[4] इत्यादि वाक्य में हाथ, पैर, शिर, कान, नाक या मुख से रहित प्रतिमा के त्याग का विधान है। 'यद् द्रव्या यत्प्रमाणाच०'[5] इत्यादि

१. द्र० पीछे, पृ० ३९०। २. द्र० पीछे, पृ० ३८१।
३. द्र० पीछे, पृ० ३८१। ४. द्र० पीछे, पृ० ३८४।
५. द्र० पीछे, पृ० ३८४ तुलनीय—यद् द्रव्यं यत्प्रमाणञ्च इत्यादि, पृ० ३९४।

तस्मादेव वाक्यनिचयात्प्रतिपत्तिप्रयोजकदोषाभावाच्च न्युब्ज-निम्नविषमस्थदिङ्मूढानां च वेधचालनं तेषामेव पुनः स्थापनं च।

भग्नचूर्णितयोस्तदवयवानां प्रतिपादनपूर्वकं नूतनानां स्थापनम्।
अनेकशकलत्वेन चूर्णितत्वेन चोद्धार-पुनःस्थापनविध्योरप्रवृत्तेः।

चालित-चलित-पातित-पतित-मध्यस्थानां तु नोद्धारो न च

वाक्य में यह विधान है कि पुराना लिङ्ग या पुरानी प्रतिमा जिस द्रव्य की तथा जिस प्रमाण की बनी हो नये लिङ्ग या नयी प्रतिमा को भी उसी द्रव्य से तथा उसी प्रमाण की बनावे।

पूर्वोद्धृत वाक्यसमूह के आधार पर तथा प्रतिपत्ति प्रयोजक दोष (मूर्ति या लिङ्ग के जीर्ण, भग्न होने आदि) के अभाव में न्युब्ज (नीचे की ओर झुके हुए) तथा निम्नविषयस्थ (गढढे या गहरी जगह में स्थित) तथा दिङ्मूढ (जिसकी पिण्डिका का मुख अनुचित दिशा--पश्चिम या दक्षिण में स्थित हो) आदि लिङ्गों का यथाविधि चालन (अपने स्थान से हटा) कर पुनः [सम्यक् रूपेण] स्थापन करे।

भग्न तथा चूर्णित अवयवों वाला लिङ्ग यदि सुवर्ण आदि धातु का हो तो उसको उसी धातु से सम्यक् रूप से जोड़कर पुनः स्थापित करे और यदि ऐसा लिङ्ग पत्थर या रत्न आदि का हो तो उसको त्याग कर उसी द्रव्य, मान और आकार के नये लिङ्ग का स्थापन करे।

जो लिङ्ग या प्रतिमा अनेक टुकड़ों में टूटी हो या चूर्णित (चूर-चूर) हो गई हो उसके उद्धार के बाद पुनः उसी के स्थापन की विधि की प्रवृत्ति कहीं देखी नहीं जाती। तात्पर्य यह है कि ऐसी स्थिति में उसके स्थान पर उसी द्रव्य, उसी मान तथा उसी आकार की नयी प्रतिमा या लिङ्ग का स्थापन होगा।

अपने स्थान से चालित (हिलाये, हटाये या उखाड़े हुए)

त्यागः। किन्तु तेषामेव पुनः स्थापनम्। उद्धृतस्योद्धारासंभवान्निर्दुष्टत्वेन प्रतिपत्तिविध्यप्रवृत्तेश्च। एतेनैव नदीवेगापहृतोन्मत्त-शत्रु चोरहस्ताद्यपहृतानां लाभे तान्येव पुनः स्थाप्यानि। तेषामलाभे तु तादृशान्यन्यानि स्थाप्यानि।

निषिद्धस्पर्शदूषित-निषिद्धजलस्पृष्ट-विप्रक्षतजदूषित-पतितार्चित-श्लेष्मविण्मूत्रादिदूषितानां स्वस्थानस्थितानामेव पुनः संस्कारो

या चलित (हटे हुए), पातित (गिराये हुए) या पतित (गिरे हुए) अथवा मध्यस्थ (प्रासाद के मध्य में स्थापित न कि मध्य से यवमात्र या यवार्द्धमात्र उत्तर में स्थापित, अथवा--पिण्डिका के मध्य में धंसे हुए) लिङ्ग या प्रतिमा का न तो उद्धार होगा और न उसका त्याग ही किया जायेगा। ऐसे लिङ्ग की उसी स्थान पर पुनः स्थापना की जायेगी। जो लिङ्ग [चालित. चलित, पातित या पतित होने से] पहले से उद्धृत है उसका उद्धार (पिण्डिकादि पर से हटाना) असंभव है। ऐसे लिङ्ग के तथा प्रासाद के मध्यस्थ या पिण्डिका के मध्य धंसे हुए लिङ्ग के दोष रहित होने से उनके विषय में प्रतिपत्ति (उद्धार और त्याग) की विधि लागू नहीं होती। इसी व्याख्यान से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नदी के वेग (बाढ) के द्वारा अपहृत (प्रवाहित), उन्मत्त (पागल), शत्रु, चोर, हाथी, आदि के द्वारा अपहृत (उठा कर दूर फेंके हुए) लिङ्ग या प्रतिमा के प्राप्त हो जाने पर उनका ही पुनः स्थापन करना चाहिए। ऐसे लिङ्ग या प्रतिमा की पुनः प्राप्ति न हो सकने की स्थिति में वैसे ही द्रव्य, उसी मान तथा उसी आकार के नये लिङ्ग या प्रतिमा का स्थापन करना चाहिए।

निषिद्ध-स्पर्श (सूतकी, रजस्वला, चाण्डाल आदि अशुचि व्यक्ति के स्पर्श) से दूषित, निषिद्ध जल के स्पर्श से दूषित, विप्र के रक्तपात से दूषित, पतित आदि के द्वारा पूजित, श्लेष्म (कफ), विष्ठा, मूत्र आदि के स्पर्श से दूषित लिङ्ग या प्रतिमा आदि को उनके स्थान

नोद्धरणं नापि प्रतिपत्तिः । 'अतिजीर्णामि'ति 'पीठाच्च चालितमि'ति 'त्यजेत्सदोषितं लिङ्गमि'ति पूर्वोक्ताद्वाक्यनिचयात् ।

लिङ्गस्थान्[1] विसृजेन्मन्त्री पीठब्रह्मशिलागतान् ।
वृषस्थान्[1] विसृजेत्तद्वदङ्गमूर्तिस्थितानपि ॥
ततः सुवर्णपाशेन रज्ज्वा गोचर्मजातया ।
वृषस्कन्धस्थया बद्ध्वा लिङ्गं पीठं च चर्मणा ॥
शिवमस्त्वित तद्बाह्यं स (?) जनोऽप्याहरेद् गुरुः ।
उद्धारार्थं च लिङ्गस्य तौ वृषौ प्रेरयेत्ततः ॥
बहिर्नीत्वा ततो लिङ्गं पीठं ब्रह्मशिलावृषम् ।
रथादिके समारोप्य समुद्रे निक्षिपेत्ततः ॥

पर स्थित रखते हुए ही उनका पुनः संस्कार करे। उनका उद्धार और त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। ये वचन 'हयशीर्षागम' और 'सिद्धान्तशेखर आदि ग्रन्थों के पूर्वोद्धृत (पीछे उल्लिखित) "अतिजीर्णा. तथा व्यङ्गं॰" 'पीठाच्च चालितं लिङ्गं॰'' त्यजेत् 'सदोषितं लिङ्गं॰'' इत्यादि वाक्य-समूह से अनुमोदित हैं।

मन्त्रज्ञ आचार्य लिङ्ग, पीठ (पिण्डिका), ब्रह्मशिला, वृषभ (नन्दी), अङ्ग तथा मूर्ति में जिन तत्त्वों, कलाओं, देवताओं का न्यास किया गया हो उनका विसर्जन करे।

तब बैल के कन्धे में बँधी हुई सुवर्ण-पाश युक्त गोचर्म की रस्सी से लिङ्ग (या प्रतिमा) तथा पीठ (पिण्डिका) को बाँध कर आचार्य यजमान आदि जनों सहित 'शिवमस्तु' (कल्याण हो) ऐसा कहते हुए बाहर लाये। तब उस लिङ्ग (या प्रतिमा) आदि के उद्धार

१. लिङ्गस्थात् । —पाठान्तर ।
१. वृषस्थाद् । —पाठान्तर ।
२. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० ३९० ।
३. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० ३८१ ।
४. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० ३८१ ।

स्थूललिङ्गोद्धृतौ बद्ध्वा गजं वा प्रेषयेद् गुरुः ।
सौधं भूमौ परित्यज्य [?त्याज्यं] दारुजं चानले दहेत् ॥
सर्वं वा निक्षिपेत्तोये लिङ्गं वा प्रतिमादिकम् ।
ततः पाशुपतास्त्रेण शान्त्यर्थं जुहुयाच्छतम् ।
लोकपालाणुभिस्तद्वद् वास्तुशान्त्यै शतं शतम् ॥

प्रतिदैवतं शतं जुहुयादित्यर्थः ।

रक्षां कुर्याच्च तद्धर्म्ये महापाशुपताणुना ।
तन्मानं तन्मयं लिङ्गं तत्र संस्थापयेत्पुनः ॥
प्रतिष्ठोक्तेन मार्गेण सर्वं कर्म समाचरेत् ।

(उठा कर-खींच कर ले जाने) के लिए उन दोनों वृषभों (अथवा वृषभ) को प्रेरित करे (हाँके)। इस तरह उस लिङ्ग, पीठ ब्रह्मशिला तथा वृषभ (नन्दी) को बाहर लाकर रथ या बैलगाड़ी आदि में चढ़ा कर समुद्र में ले जाकर त्याग दे। स्थूल (मोटे-बड़े) लिङ्ग के उद्धार हेतु उसे हाथी की पीठ में बाँध कर उसके द्वारा समुद्रादि में ले जाकर त्यागे।

सुधा के चूर्ण (चूने) से निर्मित लिङ्ग को भूमि में त्याग दे और काष्ठ-निर्मित लिङ्ग को अग्नि में दग्ध करे। अथवा लिङ्ग या प्रतिमा आदि (तथा जीर्ण पिण्डिका आदि) सभी को समुद्र या नदी, सरोवर आदि के अगाध जल में छोड़े।

तत्पश्चात् शान्ति हेतु एक सौ बार पाशुपतास्त्र मन्त्र[1] से होम करे। तदनन्तर लोकपालों में से प्रत्येक के मन्त्र से एक-एक सौ बार होम करे और तब वास्तुदेवताओं में से प्रत्येक के लिए नाममन्त्र से एक-एक सौ बार होम करे।

तब उस प्रासाद या देवालय की रक्षा महापाशुपतास्त्र मन्त्र से करे। इसके बाद उस प्रासाद या देवालय में उसी [विसर्जित लिङ्ग या प्रतिमा] के मान (प्रमाण अर्थात् —लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई,

१. पूर्तकमलाकरोक्त पाशुपतास्त्रमन्त्र-ॐ प्रमथ प्रमथ पाशुपताय नमः हुं फट् ।

हर्म्यस्य परिवाराणां प्राकारादेः समुद्धृतौ ॥
सर्वेषामपि जीर्णानामेष एव विधिः स्मृतः ।
कर्ताऽत्र दक्षिणां दद्याद् गुर्वादिभ्यो यथोदिताम् ।
यत्पुण्यं स्थापने प्रोक्तं तत्फलमेतदुद्धृतौ ॥

अयमत्र निर्गलितोऽर्थः । लक्ष्मोज्झित[1]-स्फुटित-विशीर्ण-श्वपच-सेवितानां तादृशीनां बाहुपादशिरःकर्णनासास्यहीनानां प्रतिमानां च विध्युक्तप्रकारेण चालनं जलादौ प्रतिपादनं च कृत्वा नूतनप्रकारेण तस्मिन्नेव स्थाने पूर्वपश्चिमद्वारकतोरणं मण्डपं तन्मध्यभागे वेदीं

मोटाई, भार, आकार-प्रकार) तथा उसी द्रव्य से निर्मित नवीन लिङ्ग अथवा प्रतिमा का स्थापन करे। नये लिङ्ग की स्थापना तथा प्रतिष्ठा सम्बन्धी समस्त कृत्य पीछे अचल तथा चलप्रतिष्ठा प्रकरणोक्त विधि से सम्पादित करे।

जीर्ण हर्म्य (हवेली, प्रासाद या देवालय), परिवार देवताओं, प्राकार आदि सभी का जीर्णोद्धार इसी विधि से करे और पुनर्निर्मित हर्म्य-प्राकार आदि की प्रतिष्ठा पूर्वोक्त विधि से करे।

इसके बाद जीर्णोद्धारकर्ता यजमान अपने आचार्य आदि को यथा विहित दक्षिणा दे। [जीर्णोद्धार की फलश्रुति में कहा गया है कि] जो फल नये लिङ्ग, प्रतिमा, प्रासाद आदि के स्थापन या प्रतिष्ठा से प्राप्त होता है वही उसके जीर्णोद्धार से भी प्राप्त होता है।

उपरि प्रतिपादित सिद्धान्त वचनों का निर्गलित (सारभूत) अर्थ यह है कि—लक्षणरहित, टूटी हुई, जीर्ण-शीर्ण, चण्डाल आदि के द्वारा सेवित प्रतिमाओं (तथा लिङ्ग आदि) और हाथ, पैर, शिर कान, नाक तथा मुख आदि अङ्गों से रहित प्रतिमाओं का जीर्णोद्धार की विधि में बतलाये गये विधान के अनुसार चालन करके जल आदि में त्याग कर उस विसर्जित प्रतिमा या लिङ्ग के पुराने स्थान पर ही पूर्व-पश्चिम द्वार वाले तथा एक तोरण वाले नूतन (नये)

१. लक्ष्मोज्झितः ।—मूल में मुद्रित पाठ ।

पूर्वभागे वर्तुलं चतुरस्रं वा कुण्डं स्थण्डिलं वा पश्चिमे वास्तुपीठमुत्तरे वालुकया स्थण्डिलं च कृत्वा

सङ्कल्पः—देशकालादि स्मृत्वा मौलफलाच्छतगुणफलकामोऽल्पप्रतिमायां तु दशगुणफलकामो वा जीर्णादिदोषदुष्टस्य लिङ्गस्य प्रतिमाया वा उद्धारमुच्छ्रयणं वा करिष्ये—इति सङ्कल्पयेत् । पिण्डिकावृषगरुडप्रासादकलशेषु तु ईश्वरप्रीतिकाम इति विशेषः । सर्वत्रेश्वरप्रीतिकामो वा ।

मण्डप का निर्माण करके उस मण्डप के मध्यभाग में वेदी, पूर्वभाग में वर्तुल (गोल) या चतुरस्र (चौकोर) कुण्ड अथवा स्थण्डिल, पश्चिम-भाग में वास्तुपीठ और उत्तर में बालू से स्थण्डिल का निर्माण करे।

[तब यजमान जीर्णोद्धार के संकल्प हेतु हाथ में जल लेकर] देश-काल आदि का उच्चारण करके 'मौलफलाच्छतगुणफलकामः' अथवा—यदि प्रतिमा या लिङ्ग छोटा हो तो उसके विषय में 'दशगुणफलकामो' ऐसा बोलकर 'जीर्णादिदोषदुष्टस्य लिङ्गस्य' अथवा 'जीर्णादिदोषदुष्टायाः प्रतिमायाः' 'उद्धारं करिष्ये' अथवा यदि उसी प्रतिमा या लिङ्ग का पुनः स्थापन करना हो तो 'उच्छ्रयणं करिष्ये' ऐसा संकल्प करे। पिण्डिका, वृषभ (नन्दी), गरुड तथा प्रासादोपरि-स्थापित कलश आदि के उद्धार के संकल्प में 'मौलफलाच्छतगुणफलकामो' या 'दशगुणफलकामो' के स्थान पर केवल 'ईश्वरप्रीतिकामो' यह बोले। अथवा लिङ्ग, पिण्डिका, प्रतिमा आदि के 'जीर्णोद्धार के संकल्प में 'मौलफलाच्छतगुण०' इत्यादि के स्थान में 'ईश्वरप्रीतिकामो' इत्यादि उच्चारण करे।

उसी प्रधान सकल्प के अन्त में 'तदङ्गत्वेन आदौ गणपतिपूजनं, स्वस्तिवाचनं (पुण्याहवाचनं), मातृकापूजनं, नान्दीश्राद्धं, आचार्यादिवरणं च करिष्ये' ऐसा संकल्प बोल कर हाथ में लिया हुआ जल छोड़ दे।

ततो गणेशपूजास्वस्तिवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि नूतनप्रतिष्ठावत्कृत्वा तद्वदेव ब्रह्माचार्यसदस्यान्द्वात्रिंशत्षोडशाष्टौ चतुरो वा ऋत्विजो द्वारपालांश्चाष्टौ चतुरो वा वृत्वा वस्त्रालङ्कारमधुपर्कादिभिस्तान् पूजयेत्।

अथाचार्यो मण्डपपूजादिशिवकुम्भपूजान्तं कृत्वा वास्तुमण्डले महावेद्यां च देवतास्थापनं कृत्वा पीठादौ प्रणवेनासनं दत्त्वा ॐ व्यापकेश्वर एह्येहि नमः। ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय नमः। ॐ व्यापकेश्वर शिरसे स्वाहा। ॐ व्यापकेश्वर शिखायै वषट्। ॐ व्यापकेश्वर कवचाय हुम्। ॐ व्यापकेश्वर नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ व्यापकेश्वर अस्त्राय फट्। इति मन्त्रैः शिवमर्चयेत्।

देवतान्तरोद्धारे मूलमन्त्रेणार्चयेत्।

तब नूतन प्रतिष्ठा-कर्म की ही भाँति गणपतिपूजन, स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन), मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध करे और नूतन प्रतिष्ठाकर्म की ही भाँति ब्रह्मा, आचार्य तथा सदस्यों और बत्तीस या सोलह या आठ अथवा चार ऋत्विजों, एवं आठ या चार द्वारपालों का वरण करके उनका वस्त्र, अलङ्कार, मधुपर्क आदि से पूजन करे।

इसके बाद आचार्य मण्डपपजन से लेकर शिवकुम्भ (रुद्रकलश) पूजन पर्यन्त कर्म सम्पादित करके वास्तुमण्डल में वास्तुदेवताओं और महावेदी में सर्वतोभद्रमण्डल या लिङ्गतोभद्रमण्डल देवताओं का स्थापन करके प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए पीठ आद में आसन रख कर—

'ॐ व्यापकेश्वर एह्येहि नमः।' इससे आवाहन करे और तब निम्नलिखित मन्त्रों से हृदयादिन्यास करे—

ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय नमः।

ॐ व्यापकेश्वर शिरसे स्वाहा।

ततोऽग्निं संस्थाप्य लिङ्गचालनार्थं मूलमन्त्रेण तिलाहुतिसहस्रं हुत्वा मण्डलदेवताहोमं पूर्णाहुतिं च कृत्वा—

जीर्णं भग्नमिदं देव सर्वदोषावहं नृणाम्।
अस्योद्धारे कृते शान्तिः शास्त्रेऽस्मिन्कथिता त्वया॥
जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम्।
तदत्राधिष्ठितान्देव प्रोद्धरामि तवाज्ञया॥

ॐ व्यापकेश्वर शिखायै वषट्।

ॐ व्यापकेश्वर कवचाय हुम्।

ॐ व्यापकेश्वर नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ व्यापकेश्वर अस्त्राय फट्।

इस तरह शिव का आवाहन तथा अङ्गन्यास करके 'ॐ व्यापकेश्वराय नमः' इसी नाममन्त्र से पूजन करे। इतर देवताओं के जीर्णोद्धार में प्रतिमा का पूजन उनके मूलमन्त्रों से ही करे।

तब अग्निस्थापन करके लिङ्ग (या प्रतिमा) के चालन के अधिकार की प्राप्ति हेतु मूलमन्त्र से तिलों (घृताक्त तिलों) की एक हजार आहुतियों से हवन करके मण्डल (लिङ्गतोभद्र या सर्वतोभद्र) में स्थापित देवताओं के लिए होम करके पूर्णाहुति करे और तब देवता से यह निवेदन करे—

हे देव! यह जीर्ण, भग्न (खण्डित) प्रतिमा या लिङ्ग [प्रेत आदि का आश्रय होने से मनुष्यों के लिए दुर्भिक्ष, मरण, उग्र पीडा आदि] सभी तरह के दोषों का जनक है। आपने इस प्रतिष्ठा सम्बन्धी शास्त्र में स्वयं बतलाया है कि ऐसी प्रतिमा या लिङ्ग के जीर्णोद्धार करने से ही उक्त दोषों की शान्ति होती है।

जीर्णादि दोषयुक्त लिङ्ग या प्रतिमा के विधिपूर्वक जीर्णोद्धार करने से राजा तथा राष्ट्र (प्रजा) दोनों का हित होता है। अतः हे देव! मैं आपकी आज्ञानुसार ही इस—[जीर्णादिदोषयुक्त लिङ्ग

इति देवस्य जीर्णदोषं श्रावयित्वा शिल्पियुतः साङ्गं शिवं विसृज्य यजमानस्य सौवर्णं कङ्कणं बद्ध्वा सौवर्णखनित्रेणोद्धृत्य रथमारोप्य तरुच्छाये पर्यन्तदेशे वृषमूले [?वृक्षमूले] अगाधनदीहृदे वा वामदेवेन क्षिपेत्। प्रतिमां तु प्रणवेन क्षिपेत्। दारुजं चेत्तदुत्तरे दहेत्। रत्नजं लिङ्गं यदि निजकान्तिमदेव भवति तदा तदेव पूर्ववत्स्थापयेत्। सुवर्णादिमयं तदेव साग्रं कृत्वा स्थापयेत्।

या प्रतिमा)-में स्थित देवादि सत्त्वों अथवा इसके आश्रित भूतादि का उद्धार कर रहा हूँ।

इस प्रकार देवता को जीर्ण लिङ्ग या प्रतिमा के दोषों को सुना कर शिल्पी को साथ लेकर साङ्ग (अङ्गों के सहित) शिव का विसर्जन करके यजमान के हाथ में सोने का कङ्कण (कँगना) बाँध कर सोने के बने हुए [अथवा उसके अभाव में सुनहले] खनित्र (खोदने के लिए प्रयुक्त कुदाल, आदि) से जीर्ण लिङ्ग या प्रतिमा आदि को खोदकर—उखाड़ कर रथ में बैठा कर ले जाकर देवालय के परिसर के समीप में स्थित किसी छायादार वृक्ष के नीचे अथवा वृष (एक औषधि) के मूल में (यदि 'वृक्षमूले' पाठ किसी पाण्डुलिपि में हो तो—वृक्ष के मूल में) अथवा अगाध नदी या अगाध तालाब या सरोवर अथवा समुद्र में वामदेव मन्त्र[1] को पढते हुए लिङ्ग को गिरा दे और यदि प्रतिमा हो तो उसे प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए गिराये। यदि प्रतिमा आदि काष्ठ-निर्मित हो तो उसे प्रासाद के उत्तर में ले जाकर जलाये। रत्ननिर्मित लिङ्ग यदि [टूटा-फूटा न हो और] अपनी कान्ति न छोड़ा हो तो उसी को पूर्ववत् स्थापित करे। सुवर्ण आदि धातुनिर्मित लिङ्ग को [त्यागने के बजाय] उसी को अग्रभाग पर्यन्त सुधार कर पुनः पहले की भाँति ही स्थापित करे।

१. ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः। कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः॥

प्रासादे त्वयं विशेषः। प्रासादमन्त्रान् खड्गे छुरिकायां वा संयोज्य नूतनप्रासादसिद्धिपर्यन्तं खड्गादिकमर्चयित्वा प्रासादे सिद्धे खड्गादिमन्त्रान्यथास्थानं प्रतिष्ठाकाले न्यस्य यजमानमभिषिञ्चेत्।

ततो लिङ्गं प्रतिमां वा तत्रैव विधिवत्संस्थाप्य ध्रुवाद्यौरित्यादि मन्त्रान्पठित्वा स्थिरीकृत्य बहु संपूज्य प्रार्थयेत्—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यथोक्तेन [क्तं न] कृतं यदि।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर॥
कर्तू राज्ञः प्रजानां च शान्तिर्भवतु सर्वदा।
अस्माकं शिल्पिनां चैव सुप्रीतो भव सर्वदा। इति॥

प्रासाद के जीर्णोद्धार के विषय में यह विशेष विधान है—

प्रासाद के मन्त्रों को खड्ग या छूरी में संयोजित (स्थापित) करके उस खड्ग या छूरी का पूजन नूतन प्रासाद के निर्माण-पर्यन्त करता रहे और प्रासाद का निर्माण सम्पन्न हो जाने पर वास्तुप्रतिष्ठा के समय खड्ग या छूरी में स्थापित मन्त्रों का आवाहन कर उन्हें पुनः प्रासाद में यथास्थान स्थापित करे। तब यजमान का अभिषेक करे।

तदनन्तर उस प्रासाद में लिङ्ग या प्रतिमा को विधिवत् स्थापित करके 'ध्रुवा द्यौः०'[1] इत्यादि मन्त्रों को पढते हुए उन्हें स्थिर करके बहुविध उपचारों से पूजन करके यह प्रार्थना करे—

हे महेश्वर! मैंने ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञान में यथोक्त विधि से जो भी पूजन किया है वह सब आपके अनुग्रह से पूर्ण होवे।

जीर्णोद्धारकर्ता-यजमान, राजा तथा प्रजाओं के जीवन में सर्वदा शान्ति रहे हे देव आप हम सब (यजमान और आचार्य आदि) तथा शिल्पियों के ऊपर सर्वदा प्रसन्न रहें।

१. द्रष्टव्य—पीछे-पृ० २५६ तथा २६०।

चर्मण्वतीतरणिजाशुभसङ्गमस्य
सान्निध्यभाजि कुलशालिनि मध्यदेशे ।
ख्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा
राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥

॥ इति श्रीमीमांसकशङ्करभट्टात्मज-भट्टनीलकण्ठ कृते भगवन्त-भास्करे प्रतिष्ठामयूखः समाप्तः ॥

——*——

चर्मण्वती (चम्बल) तथा यमुना के शुभ सङ्गम के निकटवर्ती सुन्दर मध्यदेश में भरेह-नगरी विश्रुत है जिसमें विष्णुभक्तिपरायण भगवन्तदेव नामक राजा राज्य करता है। [उसी राजा के राज्याश्रय में रहकर नीलकण्ठ भट्ट के द्वारा लिखित यह प्रतिष्ठामयूख नामक ग्रन्थ पूर्ण हुआ।]

॥ प्रतिष्ठामयूख की 'सरोजिनी' भाषा-टीका समाप्त ॥

विश्वविद्यालये काश्यां हिन्दूनां मानवर्धने
स्वाध्यायाध्यवसायाभ्यां गुरूणाञ्च प्रसादतः ।
नेत्रेषुखदृगब्देषु व्यतीतेषु च विक्रमात्
व्याख्या 'सरोजिनी' नाम्नी वैशाख्यां पूर्णतां गता ॥

——*——

पारिशिष्ट

अथ हनुमत्प्रतिष्ठा-विधिः

सम्पादकः—डॉ महेशचन्द्र जोशी

प्रातर्नित्यकर्म समाप्य यजमानः स्वासने प्राङ्मुखोपविश्य तिलकं कृत्वा आचम्य 'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०' इति कुशपवित्र-धारणं कृत्वा प्राणानायम्य 'अपवित्रः पवित्रो वे' ति आत्मानं सम्प्रोक्ष्य शान्तिपाठं पठित्वा ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः इत्यादि प्रकारेण प्रणम्य सुमुखश्चैकदन्तश्चेत्यादि पठित्वा वक्रतुण्डेत्यादिना भैरवाज्ञां गृहीत्वा हस्ते जलाक्षतान् गृहीत्वा देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं करिष्यमाण सप्रासादवास्तु-सनवग्रहमख हनुमत्प्रतिष्ठाकर्मणि अनधिकारिता-प्रयोजक-कायिकादि निखिल पापक्षयपूर्वक तत्राधिकारसिद्ध्यर्थं त्रिकृच्छ्र[1]प्रायश्चित्त[2] गोप्रत्याम्नाय द्वारा करिष्ये । इति जलमुत्सृजेत् । ततः पञ्चगव्यं गृहीत्वा—

ॐ यत् त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके ।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥

इति मन्त्रेण पञ्चगव्य प्राशनं कृत्वा पुनः देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं पूर्वाङ्गीकृत-कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्त-प्रत्याम्नायत्वेन इदं गो-

१. कृच्छ्रोऽयं तु गायत्र्या उदवासस्तथैव च ।
धेनुप्रदान विप्राय सममेतच्चतुष्टयम् ॥
पराशर (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० ५३)

२. प्राजापत्य क्रियाऽशक्तो धेनुं दद्यात् पयस्विनीम् ।
धेनोरभावे दातव्यं मूल्यं तुल्यं न संशयः ॥
मार्कण्डेय (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० ५३)

निष्क्रयभूतं द्रव्य' ब्राह्मणाय दातुमुत्सृजे। इति पठन् गोद्रव्यमुत्सृजेत्।

ततश्च गणपतिपूजनपूर्वकं जलयात्रां निर्वर्त्य मण्डपमागत्य सर्वान् कुम्भान् समुद्धृत्य तत्तोय मणिके क्षिपेत्।

ततश्च ज्योतिर्विदोपदिष्टे सुमुहूर्ते मङ्गलस्नानादिकं सम्पाद्य सर्वसंभारसहितः सपत्नीको यजमान आचार्यं पुरस्कृत्य मण्डपमागत्य स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य तिलकं कृत्वा आचम्य, 'पवित्रे स्थो०' इति पवित्रधारणं कृत्वा प्राणानायम्य 'अपवित्रः पवित्रो वे' ति स्वात्मानं संप्रोक्ष्य 'पृथिवी त्वया धृता लोका०' इति पठित्वाऽऽसनशुद्धिं विधाय, शिखाबन्धनं कृत्वा शान्तिपाठादिकं पठित्वा दक्षिणहस्ते कुशत्रय गन्धाक्षतपुष्पजलान्यादाय सकल्पं कुर्यात्।

संकल्पः—देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं मम समस्तपापक्षयपूर्वक दीर्घायुर्विपुलपुत्र-पौत्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मी-कीर्तिलाभशत्रुपराजय-सकलसुखधर्मार्थकाममोक्षप्राप्तिद्वारा सनवग्रहमखसप्रासादवास्तुप्रतिष्ठापूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीतये अस्यां हनुमन्मूर्तौ देवत्वसंसिद्धये हनुमत्प्रतिष्ठां करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्ति पुण्याहवाचनं, मातृकापूजनं, वसोर्धारापूजनमायुष्यमन्त्रजपं सांकल्पिकेनविधिना नान्दीश्राद्धमाचार्यादिवरणं च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं च करिष्ये।

इति संकल्पं विधाय भूतोत्सादनं, कलशे अर्घ्यपात्रोदके वा तीर्थावाहनादि कृत्वा तेनात्मानं सम्पूर्ण पूजासामग्रीं च संप्रोक्ष्य, भगवते सूर्यनारायणायार्घ्यं दद्यात्। ततः ग्रहशान्तिप्रयोगानुसारेण गणपतिपूजनादि नान्दीश्राद्धान्तं पञ्चाङ्गकर्म सम्पाद्य आचार्यादीन् वृत्वा दिग्रक्षणं, पञ्चगव्यप्रोक्षणं च कुर्यात्।

ततः प्रासादे गत्वा पञ्चगव्येन प्रासादप्रोक्षणादिकं कृत्वा वास्तुमण्डल देवानां स्थापन-पूजनादि-होमान्तं बल्यन्तं वा कर्म निर्वर्त्य

१. गवामभावे दातव्यं तुल्यं मूल्यं न संशयः।
संवर्त (प्रायश्चित्तमयूख पृ० ५३)

रक्षोघ्न-पावमानसूक्ताभ्यां त्रिसूत्र्या प्रासादं संवेष्टय परितो जलदुग्धयोः पृथगविच्छिन्ने धारे दत्वा पीठोपरिपूजितां वास्तुप्रतिमां दधिदूर्वा-सप्तधान्य-शैवाल-गन्धाक्षतपुष्पयुतेऽपक्वमृद्भाण्डे सस्थाप्य तत्पिधाय प्रासादस्य चतुःषष्टिधाभाजितपदेष्वाग्नेयकोणपदादुत्तरस्थिताकाशसंज्ञकपदे जानुमात्रगर्तं कृत्वा जलेनापूर्य गन्धपुष्पाणि प्रक्षिप्य मृद्भाण्ड तत्र निधाय गर्तं तन्मृदेव पूरयेत्। प्रासादोपरि प्रासादाद् पश्चिमे, नैऋर्त्यामैशान्यां वा रक्तध्वज-पताकारोपणमपि कुर्यात्।

ततो यागमण्डपमागत्य सर्वतोभद्रमण्डलदेवानां स्थापनं पूजनं च कृत्वा, अग्निस्थापनं, ग्रहस्थापनं च कृत्वा गणपत्यादि ग्रहमण्डलपर्यन्त देवानां होमं वास्तुहोमादिकं च निर्वत्य देवसमीपमागत्य प्रार्थयेत्—

स्वागतं देवदेवेश विश्वरूप नमोऽस्तु ते।
शुद्धेऽपि त्वदधिष्ठाने शुद्धि'कुर्मस्ते मारुते॥
मन्त्रमूर्तिर्भवान्नाथ संसारोच्छेदकारकः।
यथा पूजार्हो देवः स्यात् कुरु धर्मगति च नः॥
संसारभयभीतेन, अयं यज्ञः सुभक्तितः।
प्रारब्धस्त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नो यातु पूर्णताम्॥

इति पठित्वा नद्यां, तडागे, पुष्करिण्यां मण्डपेऽपि वा जलाधिवासं' सम्पाद्य स्नानपीठे देवं निधाय अचल-प्रतिष्ठायांदेवस्नपन'प्रकरणोक्त प्रकारेण स्नपनं कुर्यात्। चलप्रतिष्ठायां तु संक्षेपेण स्नपनं कुर्यात। तद्यथा-'आपो हि ष्ठा०' इति मन्त्रेण क्षालनं कृत्वा, 'या ओषधी०,' रिति मन्त्रेण सर्वौषधीभिर्यथाविधिमूर्त्यङ्गस्योद्वर्तनं कृत्वा शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य सप्तधान्यपिष्टैस्तु 'धान्यमसी'ति उद्वर्तनं विधाय पुनः शुद्धजलेन क्षालयेत्। ततः पञ्चगव्यैः पञ्चामृतैश्च

१. शुद्धिकर्म सहस्व तत्। पाठान्तर
२. जलाधिवास प्रयोग हेतु—द्रष्टव्य पीछे पृ० ८८-९२
३. देवस्नपनप्रयोग हेतु द्रष्टव्य पीछे पृ० ४८-७७

पृथक्पृथक्तत्तन्मन्त्रैः संस्नापयेत् । ततः 'शन्नोदेवी०' इति शुद्धोदकेन संस्नाप्य घृताभ्यङ्गं श्रीखण्डाद्युद्वर्तनमुष्णोदकेन क्षालनं च कृत्वा पुनश्चतुर्भिः कलशैर्वारुण मन्त्रैः (इमं मे वरुणेत्या'दिभिः, 'हिरण्यवर्णाः शुचयः०' इत्यादिचतसृभिर्वा) स्नापयेत् । ततः परितः पूर्वादिक्रमेण स्थापितः क्रमशः सप्तमृद्-पल्लव-कुश-शाल्युदक-प्रस्रवणोदक-यव-पुष्प-फलैश्च पूरितैरष्टभिः कलशैः स्नपनं कुर्यात् । तत्र मन्त्राः-पुरुष-सूक्तं, पावमानीयं सूक्तम्, ऋचं वाचम्, विभाड्-सौरसूक्तम् । इत्यादि । ततः सर्वौषधी जलेन संस्नाप्य 'आपो हि ष्ठे'ति तिसृभिः गङ्गोदकेन स्नापयेत् ।

संक्षिप्तचलप्रतिष्ठायां तु स्नपनात्परमग्न्युत्तारण'मपि करणीयम् । केषाञ्चिन्मते सुवर्णादि धातुमूर्तीनामग्न्युत्तारणं कर्तव्यम न तु पाषाणादि मूर्तीनाम् । ततश्च 'यदा बन्धन्०' इति प्रतिसरं बद्ध्वा, 'सुजातो ज्योतिषा सह०' इति वस्त्रं, 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्र०'मिति यज्ञोपवीतं, 'युवा सुवासा०' इति उपवस्त्रं (उत्तरीयं) दत्त्वा पीत-वस्त्रेणाच्छाद्य नाममन्त्रेण पञ्चोपचारैः संपूज्य मनोजवं मारुत-तुल्यवेगम्०' इत्यादिभिः प्रार्थयेत् । ततश्चाग्रे नैवेद्य निधाय आदर्शं च निधाय, दशदीपान्-प्रज्वाल्य 'हिरण्यगर्भ'०' इति मन्त्रेण प्रणमेत् ।

ततो रजतपात्रे मधुघृते गृहीत्वा सुवर्णशलाकया 'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने.' इत्यर्धर्चेन 'ॐ तेजोऽसि शुक्रमसी'ति मन्त्रेण च 'ॐ नमो भगवते हनुमते नमः' इति दक्षिण-सव्ये नेत्रे मन्त्रावृत्या लिखेत् (उन्मीलयेत्) । ततो अञ्जनेनाञ्ज-यित्वा भक्ष्यभोज्यादर्शादि दर्शयेत् । तदा अग्रे कोऽपि न तिष्ठेत् ।

ततः पुरुषसूक्तेन. रुद्रसूक्तेन वा नीराजनं कृत्वाऽन्नाधिवासा-

---

१. अग्न्युत्तारण' हेतु द्रष्टव्य पीछे, पृ० ३७२-३७३ ।

२. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

३. अन्नाधिवास हेतु द्रष्टव्य पीछे पृ० ९२ ।

दिकं विधाय शय्याधिवासं कुर्यात् । देवं प्राक्शिरस शय्यायां स्वापयेत् । कलशे निद्राऽऽवाहनादि कुर्यात् । ततः 'रुद्राय नमः' इति चतुष्पथे बलिं दत्त्वा किञ्चित् कालं संप्रतीक्ष्य 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' इति मन्त्रेण तथा च—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हनुमन् त्यज निद्रां महाकपे ।
साधवः सम्प्रतीक्षन्ते त्वद्दर्शनमहोत्सवाः ॥

इति मन्त्रेण शय्यातः देवमुत्थाप्य यागमण्डपमानीय पीठे (सर्वतो-भद्रपीठे) संस्थाप्य—

ॐ भूः पुरुषमावाहयामि । ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि ।
ॐ स्वः पुरुषमावाहयामि । ॐ भूर्भुवःस्वः पुरुषमावाहयामि ॥

इत्यावाह्य गन्धादि पञ्चोपचारैः सम्पूज्य न्यासान् कुर्यात् ।

प्रणवन्यास-व्याहृतिन्यास-मातृकान्यास-ऋक्षन्यास-कालन्यास-वर्ण-न्यास-तोयन्यास-विद्यान्यास-वैराजन्यासादिकं' क्रतुन्यास-गुणन्यासादिकं' च विधाय हृदयादि षडङ्गन्यासादिकं कुर्यात् । ततश्च 'अग्निमीडे०' 'इषे त्वोर्जे०' इत्यादि वेदादिमन्त्रन्यास' कृत्वा हनुमद्द्वादशाक्षरमन्त्र'न्यासादिकं कुर्यात् । तद्यथा —

[अस्य श्रीहनुमन्मन्त्रस्य श्रीरामचन्द्रऋषिः, जगती छन्दः, हनुमान् देवता ह्सौं बीजम्, ह्स्फ्रें शक्तिः, हनुमते कीलकम्, इष्टसिद्ध्यर्थे न्यासे, जपे, होमे च विनियोगः' । इति विनियोगं पठित्वा—]

श्री रामचन्द्रऋषये नमः—शिरसि ।

ॐ जगतीछन्दसे नमः—मुखे ।

---

१. द्रष्टव्य–पीछे पृ० १०१–१११

२. ,, ,, ,, ११५-११७

३. द्रष्टव्य पीछे पृ० १३६

४. हनुमद्–द्वादशाक्षरमन्त्र—ॐ ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः ।

५. द्रष्टव्य–नारदपुराण पूर्वखण्ड ७४।२-५ ।

ॐ हनुमद् देवतायै नमः—हृदि ।

ॐ ह्सौं बीजाय नमः—गुह्ये ।

ॐ ह्स्फ्रें शक्तये नमः—पादयोः ।

ॐ हनुमते कीलकाय नमः—नाभौ ।

करन्यासः—

ॐ ह्रौं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्स्फ्रें तर्जनीभ्यां नमः ।

,, ख्फ्रें मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्स्रौं अनामिकाभ्यां नमः ।

ह्स्ख्फ्रें कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्सौं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ह्रौं हृदयाय नमः । ॐ ह्स्फ्रें शिरसे स्वाहा ।

,, ख्फ्रें शिखायै वषट् । ,, ह्स्रौं कवचाय हुम् ।

,, ह्स्ख्फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्स्रौं अस्त्राय फट् ।

वर्णन्यासः—

ॐ ह्रौं नमः मूर्ध्नि । ॐ ह्स्फ्रें नमः ललाटे ।

,, ख्फ्रें नमः नेत्रयोः । ,, ह्स्रौं नमः मुखे ।

,, ह्स्ख्फ्रें नमः कण्ठे । ,, ह्सौं नमः बाह्वोः ।

,, हं नमः हृदि । ,, नु नमः कुक्षौ ।

ॐ मं नमः नाभौ । ॐ तें नमः लिङ्गे ।

,, नं नमः जानुनोः । ,, म नमः पादयोः ।

पदन्यासः—

ॐ ह्रौं नमः मूर्ध्नि । ॐ ह्स्फ्रें नमः ललाटे ।

,, ख्फ्रें नमः मुखे । ,, ह्स्रौं नमः हृदि ।

,, ह्स्ख्फ्रें नमः नाभौ । ,, ह्सौं नमः ऊर्वोः ।

,, हनुमते नमः जङ्घयोः । ,, नमः नमः पादयोः ।

ततः तत्त्वन्यासं कुर्यात् ।[१] चलार्चायां तु चलार्चा प्रकारेण, यथा—

ॐ प्रकृतितत्त्वाय नमः, बुद्धितत्त्वाय नमः, अहङ्कारतत्त्वाय नमः, मनस्तत्त्वाय नमः—हृदि । शब्दतत्त्वाय नमः—शिरसि ।

स्पर्शतत्त्वाय नमः–त्वचि । रूपतत्त्वाय नमः–हृदि । रसतत्त्वाय नमः–बस्तौ । गन्धतत्त्वाय नमः–पादयोः । श्रोत्रतत्त्वाय नमः—कर्णयोः । त्वक्तत्त्वाय नमः—सर्वशरीरे । चक्षुस्तत्त्वाय नमः—चक्षुषोः । जिह्वातत्त्वाय नमः—जिह्वायाम् । घ्राणतत्त्वाय नमः—घ्राणे । वाक्तत्त्वाय नमः—वाचि । पाणितत्त्वाय नमः—पाण्योः । पादतत्त्वाय नमः—पादयोः । पायुतत्त्वाय नमः—पायौ । उपस्थतत्त्वाय नमः—उपस्थे । पृथिवीतत्त्वाय नमः—पादयो । अप्तत्त्वाय नमः—बस्तौ । तेजस्तत्त्वाय नमः—हृदि । वायुतत्त्वाय नमः घ्राणे । आकाशतत्त्वाय नमः—शिरसि । रजस्तत्वात नमः—तमस्तत्त्वाय नमः—सत्वतत्त्वाय नमः—देहतत्त्वाय नमः—देहे ।

ततः पुरुषसूक्तन्यासं[२] कृत्वा रुद्रसूक्तन्यासमपि कुर्यात् । तद्यथा—

नमस्ते रुद्र०–पादयोः । या ते रुद्र०–जङ्घयोः । यामिषुं०–जानुनोः शिवेन वचसा०–ऊर्वोः । अद्ध्यवो०–वृषणयोः । असौ यस्ताम्रो०–कट्याम् । असौ यो०–नाभ्याम् । नमोऽस्तु०–हृदि । प्रमुञ्च०–स्तनयोः । विज्यन्धनु०–बाह्वोः । या ते हेति०–मुखे । परि ते०–चक्षुषोः । अवतत्य०–कर्णयोः । नमस्त आयु०–भ्रुवोः । मा नो महान्त०–भाले । मानस्तोके० शिरसि ।

ततो हनुमन्तं षट्कोणमण्डलोपरि पूजयेत् । तद्यथा—

मध्ये—बिन्दौ—श्री हनुमते नमः ।

षट्कोणे आग्नेयादिकोणेषु—

१. आत्मतत्त्वाय नमः–पादयोः । विद्यातत्त्वाय नमः–हृदये । शिवतत्त्वाय नमः–शिरसि । द्रष्टव्य, पीछे, पृष्ठ १२८ ।

२. द्रष्टव्य–पीछे पृ० १२९ तथा ३६७ अथवा सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० १४३ में प्रदत्त विधि से यह न्यास करे ।

आग्नेये—ह्रौं हृदयाय नमः ।

नैर्ऋत्ये—ह्स्फ्रें शिरसे स्वाहा ।

पश्चिमे—स्फ्रें शिखायै वषट् ।

वायव्ये—ह्स्रौं कवचाय हुम् ।

ऐशान्यां—ह्स्ख्फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट् ।

पूर्वे—ह्सौं अस्त्राय फट् ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ।

तद्बहिः पूर्वाद्यष्टदलेषु—

ॐ रामभक्ताय नमः ।
,, महातेजसे नमः ।
,, कपिराजाय नमः ।
,, महाबलाय नमः ।
ॐ द्रोणाद्रिहारकाय नमः ।
,, मेरुपीठकार्चनकारकाय नमः ।
,, दक्षिणाशाभास्कराय नमः ।
,, सर्वविघ्ननिवारकाय नमः ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ॥

दलाग्रेषु—सुग्रीवाय नमः । अङ्गदाय नमः । नीलाय नमः । जाम्बवते नमः । नलाय नमः । सुषेणाय नमः । द्विविदाय नमः । मैन्दाय नमः ।

अभीष्ट ··· ··· ··· तृतीयावरणार्चनम् ॥

दलसन्धिषु—रक्षोघ्नाय नमः । रिपुघ्नाय नमः । विषघ्नाय नमः । व्याधिघ्नाय नमः । चौरघ्नाय नमः । भूतघ्नाय नमः । परशस्त्रास्त्रमन्त्रघ्नाय नमः । भयघ्नाय नमः ।

अभीष्टसिद्धिं मे ··· ··· ··· चतुर्थावरणार्चनम् ॥

भूपुरे प्रथम रेखायां पूर्वादिक्रमेण—

ऐरावताय नमः । पुण्डरीकाय नमः । वामनाय नमः । कुमुदाय नमः । अञ्जनाय नमः । पुष्पदन्ताय नमः । सार्वभौमाय नमः । सुप्रतीकाय नमः ।

अभीष्टसिद्धिं ··· ··· ··· पञ्चमावरणार्चनम् ॥

भूपुर-द्वितीयरेखायां पूर्वादिक्रमेण—

लं इन्द्राय नमः । रं अग्नये नमः । मं यमाय नमः । क्षं निर्ऋतये नमः । वं वरुणाय नमः । यं वायवे नमः । सं कुबेराय नमः । हं ईशानाय नमः । (ऊर्ध्वं) ह्रीं ब्रह्मणे नमः । (अधः) अं अनन्ताय नमः ।

अभीष्टसिद्धिं मे ··· ··· ··· षष्ठावरणार्चनम् ॥

भूपुरे तृतीयरेखायां पूर्वादिक्रमेण—

वज्राय नमः । शक्तये नमः । दण्डाय नमः । खड्गाय नमः । पाशाय नमः । अङ्कुशाय नमः । गदायै नमः । त्रिशूलाय नमः । पद्माय नमः । चक्राय नमः ।

अभीष्टसिद्धिं — — — सप्तमावरणार्चनम् ।

ततः पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं बलवर्धननामाग्निं प्रतिष्ठाप्य सूर्यादि-ग्रहान् सम्पूज्य कुशकण्डिकां विधाय आघाराज्यभागौ ग्रहाहुतिं च हुत्वा प्रधानहोमं कुर्यात् । तत्र—

शान्तिकमन्त्रैः[1] पौष्टिकमन्त्रैश्च[2] हुत्वा वेदादि-होमं विधाय हनुमतो वैदिकमन्त्रेण,[3] द्वादशाक्षरमन्त्रेण चतुष्षष्ट्यक्षरेण वा तान्त्रिक-

१. शान्तिक मन्त्रों के लिए-द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ १६९–१७०

२. पौष्टिक मन्त्रों के लिए-द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ १७१

३. (क) ॐ दंष्ट्राभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्करॉं२ उत ।
हनुभ्या ँ स्तेनान् भगवस्तांस्त्वं खाद सुखादितान् ।
(यजु० ११।७८)

(ख) ॐ आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत् तिस्रो रात्रीः सुराऽऽसुता ॥ [क्रु० प० उ०]

मन्त्रेण[1] पौराणिकमन्त्रेण[2] वा घृतेन तिलैर्वा अष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा हुत्वा प्रायश्चित्ताहुत्यादि पूर्णाहुतिपर्यन्तं जुहुयात्।

ततश्च अधिवासितां पिण्डिकां (पीठं वा) प्रासादगर्भे यवेन यवार्द्धेन वा ऐशान्याम् उत्तरस्यां वा पञ्चरत्नोपरि ध्रुवसूक्तेन[3] निधाय—

ॐ आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत् तिस्रो रात्रीः सुराऽऽसुता॥

इति मन्त्रेण संपूज्य 'सर्वदेवमयीशाने०' इत्यादि मयूखोक्तमन्त्रैः[4] संप्रार्थ्य पिण्डिकायां रत्नादिन्यासं[5] कुर्यात्।

ततः ॐ विमलायै नमः। ॐ उत्कर्षिण्यै नमः। ॐ ज्ञानायै नमः। ॐ क्रियाय नमः। ॐ योगायै नमः। ॐ प्रह्वयै नमः। ॐ सत्यायै नमः। ॐ ईशानायै नमः। ॐ अनुग्रहायै नमः। ॐ ह्रीं नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः। इति पीठपूजां कुर्यात्।

(ग) अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्मां अवन्तु देवाः॥

१. (क) ॐ ह्रौ ह्स्फ्रें रूफ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः।
(ख) हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्।
(ग) ॐ ओं ऐं ह्रीं हनुमते रामदूताय लङ्काविध्वंसनायाञ्जनीगर्भसंभूताय शाकिनीडाकिनी विध्वंसनाय किलिकिलबुकारेण विभीषणाय हनुमद्देवाय ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रौं फट् स्वाहा॥ (मातृका विलास)

२. (क) मनोजवं मारुततुल्यवेग०। इत्यादि।
(ख) ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।
(मन्त्रमहार्णव, अनुष्ठानप्रकाश, पुरश्चर्यार्णव आदि में उद्धृत)

३. ध्रुवसूक्त हेतु द्रष्टव्य—पीछे पृष्ठ; २५६ तथा २६०।

४. द्रष्टव्य—पीछे, पृष्ठ २३४।

५. रत्नादिन्यास विधान हेतु द्रष्टव्य पीछे, पृष्ठ २३५–२४१।

ततो श्रीहनूमन्तं पञ्चामृतैः संस्नाप्य वैदिकमन्त्रेण तान्त्रिकमन्त्रेण च शुद्धोदकैरभिषिच्य वस्त्रालंकारगन्धाक्षतपुष्पादिभिरलंकृत्य 'ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' इति मन्त्रेणोत्थाप्य 'रथे तिष्ठन्०' इति यानोपरि स्थापयित्वा माङ्गलिक-जय-घोषपुरःसर ग्राम नगरादिवीथीषु परिभ्राम्य प्रासादद्वारमानीयार्घ्यं दत्त्वा प्रासादगर्भे प्रवेशयित्वा पिण्डिकायां (पीठे) स्थापयेत्—

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावद्देवा वसुन्धरा।
तावत् त्वं देवदेवेश! पीठेऽस्मिन् सुस्थिरो भव॥

सुप्रतिष्ठितो वरदो भव। शाश्वतो भव।
स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात् त्वमिहागतः।
सान्निध्यं सर्वदा देव हनुमन् परिकल्पय॥

इत्युक्त्वा देवं स्पृष्टवा ध्रुवसूक्तं जपेत्। तद्यथा—

ॐ इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवा वि चाचलिः।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय॥
इममिन्द्रो अदीधरद्ध्रुवं ध्रुवेण हविषा। तस्मै सोमो अधिब्रवत् तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः॥
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवा राजा विशामयम्॥
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्॥
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोममृशामसि।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत्॥

ततः प्रणवेन देवमूर्तौ षडङ्गन्यासं कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।

ॐ अस्य प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि क्रियामयवपुः परा प्राणशक्तिर्देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः, क्रों कीलकम् अस्यां हनुमन्मूर्तौ प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः।

ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्र ऋषिभ्यो नमः—शिरसि। ऋग्यजुः साम-

छन्दोभ्यो नमः—मुखे। प्राणाख्य देवतायै नमः—हृदि। आं बीजाय नमः—गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः—पादयोः। क्रों कीलकाय नमः—नाभौ।

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः।

" चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा।

" टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट्।

" तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम्।

ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानगतिविसर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्।

" यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट्।

ततः 'रक्ताम्भोधिस्थ पोतोल्लसद्०' इति प्राणशक्तिं ध्यात्वा।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः हनुमतः प्राणा इह प्राणाः।

" आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं श षं सं हं सः हनुमतो जीव इह स्थितः।

" आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः हनुमतः सर्वेन्द्रियाणि।

" आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः हनुमतः वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

ततो देवस्य हृद्यङ्गुष्ठं दत्त्वा 'ॐ मनो जूति०' 'अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु०' इत्थं प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा देवस्य मूर्ध्नि हस्तं निधाय

गायत्रीं,[1] द्वादशाक्षर मन्त्रं,[2] प्राणसूक्तं,[3] ध्रुवसूक्तं[4] च जपित्वा गर्भाधानादारभ्यव्रतविसर्गपर्यन्तं पञ्चदशसंस्कारान् संपाद्य सान्निध्यप्रार्थनं कुर्यात्—

नमस्ते त्यक्तसङ्गाय सन्तोषपरमात्मने।
ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोऽनुशालिने॥
येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्त चराचरम्।
तेन रूपेण देवेश अर्चायाः सन्निधो भव॥
सूर्याचन्द्रमसौ यावद् यावत् तिष्ठति मेदिनी।
तावत् त्वयाऽत्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया॥
पुंसामनुग्रहार्थाय अर्चायां स्वेच्छया प्रभो।
परावरेण भावेन स्थातव्यं सर्वदा त्वया॥
धामार्थ-कामसिद्ध्यर्थं शिवो भव शिवाय नः
सान्निध्यं तु महावीर स्वार्चायां परिकल्पय॥
सर्वविघ्नहरः पुंसां सर्वदुःखहरः सदा।
सर्वदा यजमानस्य इच्छासम्पत्करो भव॥
स्थापकानां मूर्तिपानां शिल्पिनां च सदा विभो।
ग्रामदेशनृपाणां च शान्तिर्भवतु सर्वदा॥
पूजकाराधकानां च भक्तानां भक्तवत्सल।
सर्वेषां च जगन्नाथ इच्छासिद्धिप्रदो भव॥

अथ हनुमद्ध्यानम्—

ध्यायेद् बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखप्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।

---

१. (क) ॐ तत्पुरुषाय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि। तन्नो हनुमत् प्रचोदयात्॥ (ख) द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ २६८ में संख्या ११।

२. ॐ ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः॥

३. प्राणसूक्त हेतु द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ २७३-२७७।

४. ध्रुवसूक्त हेतु द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ २५६ तथा २६०।

सुग्रीवादिसमस्तवानरयुत सुव्यक्ततत्त्वप्रियम्
संरक्ताऽरुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालङ्कृतम् ॥
उद्यन् मार्तण्डकोटि-प्रकटरुचियुत चारुवीरासनस्थं
मौञ्जीयज्ञोपवीताभरण-रुचि-शिखा-शोभितं कुण्डलाढ्यम् ।
भक्तानामिष्टदानप्रवणमनुदिनं वेदनादप्रमोदं
ध्यायेद् देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्धिम् ॥
बालार्कायुततेजसं त्रिभुवनप्रक्षोभकं सुन्दरं
सुग्रीवादिसमस्तवानरगणैः संसेव्यपादाम्बुजम् ।
नादेनैव समस्तराक्षसगणान् संत्रासयन्तं प्रभुं
श्रीमद्रामपदाम्बुजस्मृतिरसं ध्यायामि वातात्मजम् ॥
आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥

ततः सिन्दूरादिना सुशोभितं कुर्यात् ।

अथ ॐ भूः पुरुषमावाहयामि । ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ स्वः पुरुषमावाहयामि । ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषमावाहयामि । इत्यावाह्य । पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य द्वादशनामभिः पूजयेत्—

ॐ हनुमते नमः । अञ्जनीसूनवे नमः । वायुपुत्राय नमः । महाबलाय नमः । रामेष्टाय नमः । फाल्गुनसखाय नमः । पिङ्गाक्षाय नमः । अमितविक्रमाय नमः । उदधिक्रमणाय नमः । सीताशोकविनाशनाय नमः । लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः । दशग्रीवदर्पहन्त्रे नमः ।

एतैर्द्वादशनामभिः संपूज्य गायत्रीं जपित्वा प्रणम्य क्षमापयेत् । ततो देवस्य कर्णे 'त्वं दास हनुमानसि' इति जपित्वा नामकरणं कुर्यात् । ततः—

हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः ।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः ॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशकः ।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥

इति द्वादशनामभिः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणमेत्—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥
गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥
अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥
उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥
यत्र यत्र रघुनाथ-कीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

इत्थं संपूज्य नारिकेलं समर्प्य रक्तपताकां ध्वजं चोच्छ्रयेत् ।

अथ ब्रह्मादिमण्डलाद्यावाहित-देवानामेकैकाहुत्या होमं विधाय प्रतिष्ठाहोमं सर्वप्रायश्चित्तहोमं स्विष्टकृताहुतिं बलिदानं पूर्णाहुतिं वसोर्धारां च कृत्वा आवाहित-देवानां विसर्जनम् अग्निविसर्जनं च

कृत्वा आचार्याय मूर्तिपादिभ्यश्च दक्षिणां दत्वाऽच्छिद्रं वाचयित्वा

ॐ कृतस्य हनुमत्प्रतिष्ठाकर्मणः न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः समाश्रितबन्धुवर्गेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च यथोत्साहं भूयसीं दक्षिणां विभज्य दातुमहमुत्सृजे।' इति संकल्प्य भूयसीं दक्षिणां दत्वा, ॐ कृतस्यैतस्य हनुमत्प्रतिष्ठाकर्मणः साङ्गता-सिद्धयर्थं इदं सभूमिमण्डपं (तन्निष्क्रयीभूतद्रव्यं वा) आचार्याय तुभ्यमहं संप्रददे।' इति जलमुत्सृजेत्। आचार्यश्च 'ॐ स्वस्ति' इति ब्रूयात्। ततो हस्ते कुशजलाक्षतान् गृहीत्वा 'मया यत्कृतं यथाकाल यथादेशं यथाज्ञानं यथाशक्ति प्रतिष्ठाकर्म तेन श्रीपापापहा महाविष्णुः प्रीयताम्।' इति सकुशजलाक्षतान् भूमौ क्षिपेत्। ततः 'प्रमादात् कुर्वतां कर्म०' इत्यादि समुच्चार्य आचार्यहस्तात् तिलकाशीर्वादं गृह्णीयात्। ततो ब्राह्मणभोजनादिकं कुर्यात्। इति।

—*—

अथ बौधायनाद्युक्ता

राधाकृष्णप्रतिष्ठा[१]

आचम्य, पवित्रधारणं कृत्वा, प्राणानायम्य, 'अपवित्रःपवित्रोवे'-ति आत्मानं पूजासामग्रीं च संप्रोक्ष्य आसनशुद्धिं शिखाबन्धनं च कृत्वा तत्राधिकारप्राप्त्यर्थं कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्त-प्रत्याम्नायत्वेन गोनिष्क्रय-द्रव्यमुत्सृज्य, 'आ नो भद्रा०' इत्यादि मङ्गलमन्त्रान् पठित्वा विनाय-कादीन्नमस्कृत्य भैरवाज्ञा प्रार्थनं कृत्वा हस्ते जल-पुष्पाक्षतान् गृहीत्वा देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं मम सर्वारिष्टनिवृत्ति त्रिविधतापोप-शान्ति-सकलपापोपशमनपूर्वकं दीर्घायुर्विपुलपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसन्त-तिवृद्धि-स्थिरलक्ष्मी-कीर्तिलाभ-शत्रुपराजयसकलसुख-धर्मार्थ-काम-मोक्षप्राप्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थञ्च सनवग्रहमख-सप्रासाद राधा-कृष्णमूर्त्योः स्थिरप्रतिष्ठां चलप्रतिष्ठां वा करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धम्, आचार्यादिवरणं च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नता-सिद्धयर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं च करिष्ये। इति संकल्प्य

भूतोत्सादनं, कर्मार्थं कलशेऽर्घ्यपात्रे वा तीर्थावाहनं कृत्वा तेन जलेनात्मानं सर्वपूजोपकरणान् च संप्रोक्ष्य सूर्यनारायणायार्घ्यं दत्वा ग्रहशान्तिप्रयोगानुसारेण गणपति-पूजनादि नान्दीश्राद्धान्तं कर्म सम्पाद्य आचार्यादिवरणं कृत्वा जलयात्रां निर्वर्त्य (आरम्भदिनात्प्रागेव वा जलयात्रां कृत्वा) पञ्चगव्येन प्रोक्षणपूर्वकं मण्डपपूजनं कुर्यात्।

ततः प्रासादं गत्वा पञ्चगव्येन प्रासाद-प्रोक्षणादिकं कृत्वा वास्तु-मण्डलदेवानां पूजनं, होमादिकं च निर्वर्त्य रक्षोघ्न-पावमान सूक्ताभ्यां

१. डा० महेशचन्द्र जोशी द्वारा सवर्द्धित एवं सम्पादित।

त्रिसूत्र्या प्रासादं संवेष्ट्य तत्परितो जलदुग्धयोः पृथगविच्छिन्ने धारे दत्त्वा प्रासादस्याग्नेय-कोणपदादुत्तरस्थिताकाशसंज्ञके पदे जानुमात्र-गर्तं विधाय तस्मिन् यथोक्तविधिना वास्तुप्रतिमां निधाय तद्गर्तं तन्मृदैव पूरयेत् । प्रासादोपरिपीतध्वजपताकारोपणमपि कुर्यात् ।

ततो यागमण्डपमागत्य सर्वतोभद्रमण्डलदेवानां स्थापनं पूजनं च कृत्वा अग्निस्थापनं, ग्रहस्थापनादि होमान्तं कर्म सम्पाद्य बलिं दत्त्वा कर्मकुटीतः राधाकृष्णयोः प्रतिमे प्रासादप्रादक्षिण्येनानीय 'ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे०' इति यव-दूर्वाक्षत-पुष्प-फलानि देवपादयोर्निक्षिप्य 'रक्षोहणमि'ति प्रतिसरं बद्ध्वा गन्धपुष्पादिभिः संपूज्य वस्त्रेणाच्छाद्य नद्यां, तडागे, पुष्करिण्यां वा नीत्वा स्नानमण्डपेऽपि वा जलाधिवासं[1] विधाय स्नानपीठे निधाय अचलप्रतिष्ठायामचलप्रतिष्ठोक्तविधिना देवस्नपनं[2] चलप्रतिष्ठायां तु चलप्रतिष्ठाप्रकरणोक्तविधिना स्नपनं[3] कुर्यात् ।

चलप्रतिष्ठायां, स्थिरप्रतिष्ठायामपि स्नपनं चेत् संक्षेपेण क्रियते तदापि, राधाकृष्णप्रतिमे 'आपो हि ष्ठे'ति मन्त्रेण प्रक्षाल्य 'या ओषधी'रिति सर्वौषधीभिरुद्वर्तनं कृत्वा शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य सप्तधान्यपिष्टैः 'धान्यमसी'त्युद्वर्तनं विधाय पुनः शुद्धजलेन क्षालयेत् । ततः पञ्चगव्यैः पञ्चामृतैश्च पृथक् पृथक् तत्तन्मन्त्रैः संस्नाप्य पुनः 'शन्नो देवी'ति शुद्धोदकेन संस्नाप्य श्रीखण्डाद्यैरुद्वर्तन-मुष्णोदकेन प्रक्षालनं च कृत्वा पुनश्चतुर्भिः कलशैर्वारुणमन्त्रैः 'इमं मे वरुणे'त्यादिभिः प्रक्षालनं च कृत्वा 'समुद्रज्येष्ठे'त्यादि चतसृभि-र्मन्त्रैर्वा 'हिरण्यवर्णाः शुचय' इति चतसृभिर्वाभिषिच्य सर्वतोभद्र-वेद्याः परितः पूर्वादिक्रमेण स्थापितैः सप्तमृद-पल्लव-कुश-शाल्युदक-प्रस्रवणोदक-यव-पुष्प-फलैश्च प्रपूरितैरष्टभिः कलशैरिदं विष्णुरिति

१. जलधिवास प्रयोग हेतु द्रष्टव्य–पीछे, पृष्ठ ८८–९२ ।
२. द्रष्टव्य–पीछे, पृष्ठ ४८–६५ ।
३. द्रष्टव्य–पृष्ठ ३५९, ४२७–४२८ ।

मन्त्रेण, पुरुषसूक्तेन, पवमानसूक्तेन च स्नापयेत् । ततः शमी-पलाश-खदिर बिल्वाश्वत्थन्यग्रोध-आम्र उदुम्बर-त्वक्कषायेण 'अश्वत्थे वो०' इति मन्त्रेण संस्नाप्य 'परिवाजपति'रिति पञ्चरत्नोदकेन, संस्नाप्य ततः शुद्धोदकेन स्नापयेत् ।

ततश्च अग्न्युत्तारणं[1] कृत्वा 'यदाबन्धन्०' इति प्रतिसरं बद्ध्वा पीठान्तरे निवेश्य 'युवासुवासा' इति वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य गन्धादिभिः सम्पूज्य यथोक्तविधिना नेत्रोन्मीलनं[2] कुर्यात् । ततश्चान्नाधिवासं[3]-वस्त्रा-धिवासादिकं विधाय शय्याधिवासं कुर्यात् । ततः श्रीराधाकृष्णौ शय्यायां निवेश्य निद्रामावाह्य, सपूज्य, परितो रक्षां विधाय लोकपालादिभ्यो बलिं दद्यात् । नृसिंहमन्त्रेण च बलिं दद्यात् । ततः किञ्चित् कालं क्षिप्त्वा ''उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज०'' इत्यादिना समुत्थाप्य न्यासं[4] कुर्यात् । तद्यथा —

सर्वतोभद्रपीठोपरि संस्थाप्य श्रीराधा-विग्रहे श्रीकृष्ण-विग्रहे च पृथक् पृथक् प्रणवन्यासादारभ्य वैराजन्यासपर्यन्तं नव न्यासान् कृत्वा श्रीकृष्णप्रतिमायां मूर्तिन्यासं (विष्णुप्रतिष्ठा विषयं कृत्वा) मूर्तिद्वयेऽपि क्रतुन्यासं गुणन्यासं च कृत्वा कृष्णमूर्तावायुधन्यासं शक्तिन्यासमपि च कृत्वा मूर्तिद्वयेऽपि नाममन्त्रेण षडङ्गन्यास–'श्री-राधायै हृदयाय नमः'-इत्यादि प्रकारेण 'श्रीकृष्णाय नमः हृदयाय नमः'-इत्यादिप्रकारेण च कृत्वा नाममन्त्रेणैवाङ्गन्यासमपि कुर्यात् । ततः 'अग्निमीडे०' इत्यादि प्रकारेण वेदादिमन्त्रन्यासमुभयत्र कृत्वा कृष्ण-मूर्तौ द्वादशाक्षरमन्त्र[5]न्यासमपि कुर्यात् । तत आत्मतत्त्वाय नमः-

१. सुवर्णादिधातुमूर्तीनामेवाग्न्युत्तारणं करणीयं न तु पाषाणादिमूर्तीनां — इति । अग्न्युत्तारणमन्त्रास्तु ग्रन्थेऽस्मिन् ३७२–३७३ पृष्ठयोः प्रदत्ताः ।
२. अचलप्रतिष्ठायां तु नेत्रोन्मीलनं स्नानमण्डपे द्वितीयवेद्यां विधीयते ।
३. अन्नाधिवास हेतु द्रष्टव्य–पीछे, पृष्ठ ९२ ।
४. अचलप्रतिष्ठा के न्यास का क्रम पीछे पृ० १००–१५२ में तथा चल प्रतिष्ठा के न्यास का क्रम पृ० ३६४–३६६ में है ।
५. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

पादयो', विद्यातत्त्वाय नमः-हृदि, शिवतत्त्वाय नमः-शिरसि इति तत्त्वन्यास' द्वयोरपि कृत्वा राधामूर्तौ श्रीसूक्तन्यासं कुर्यात्—हिरण्यवर्णां०-पादयोः । तां म आवह०-जङ्घयोः । अश्वपूर्वां०-जान्वोः कांसोस्मितां०-ऊर्वोः । चन्द्रां प्रभासां० कट्याम् । आदित्यवर्णे० नाभौ । उपैतु माम्०-उदरे । क्षुत्पिपासा०-हृदि । गन्धद्वारां०-स्तनयोः । मनसः काम०-बाह्वोः । कर्दमेन०-मुखे । आपः सृजन्तु०-नेत्रयोः । आर्द्रां पुष्करिणीं०-कर्णयोः । आर्द्रां यस्करिणीं०-भ्रुवोः । तां म आवह०-ललाटे । यः शुचिः०-शिरसि । इति राधामूर्तौ श्रीसूक्तन्यास कृत्वा कृष्णमूर्तौ पुरुषसूक्तन्यास[1]मुत्तरनारायणन्यास[2] च कुर्यात् ।

चलार्चायां तु चलार्चा प्रकारेण तत्त्वन्यासादिकं कुर्यात् यथा—

ॐ प्रकृतितत्त्वाय नमः, बुद्धितत्त्वाय नमः, अहङ्कारतत्त्वाय नमः, मनस्तत्त्वाय नमः—हृदि । शब्दतत्त्वाय नमः—शिरसि । स्पर्शतत्त्वाय नमः-त्वचि । रूपतत्त्वाय नमः-हृदि । रसतत्त्वाय नमः-बस्तौ । गन्धतत्त्वाय नमः-पादयोः । श्रोत्रतत्त्वाय नमः—कर्णयोः । त्वक्तत्त्वाय नमः—सर्वशरीरे । चक्षुस्तत्त्वाय नमः—चक्षुषोः । जिह्वातत्त्वाय नमः—जिह्वायाम् । घ्राणतत्त्वाय नमः—घ्राणे । वाक्तत्त्वाय नमः—वाचि । पाणितत्त्वाय नमः—पाण्योः । पादतत्त्वाय नमः—पादयोः । पायुतत्त्वाय नमः—पायौ । उपस्थतत्त्वाय नमः—उपस्थे । पृथिवीतत्त्वाय नमः—पादयोः । अप्तत्त्वाय नमः—बस्तौ । तेजस्तत्त्वाय नमः—हृदि । वायुतत्त्वाय नमः—घ्राणे । आकाशतत्त्वाय नमः—शिरसि । रजस्तत्त्वाय नमः, तमस्तत्त्वाय नमः, सत्त्वतत्त्वाय नमः, देहतत्त्वाय नमः—देहे ।

ततः पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं बलवर्धन नामाग्निं (?)संस्थाप्य आघाराज्यभागौ ग्रहाहुतिं च हुत्वा शान्तिकमन्त्रैः[3] पौष्टिकमन्त्रैश्च[4] होमं

१. पुरुषसूक्तन्यास हेतु—द्रष्टव्य पीछे पृ० १३९ ।
२. उत्तरनारायणन्यास हेतु द्रष्टव्य पीछे पृ० १४१ ।
३. शान्तिकमन्त्रों के लिए द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ १६९—१७० ।
४. पौष्टिक मन्त्रों के लिए द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ १७१ ।

कृत्वा वेदादि होमं[1] विधाय 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०' इति मन्त्रेण 'इदं विष्णुर्विचक्रमे०' इति मन्त्रेण चाष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यष्टसंख्यायां वा प्रत्येकं तिलैराज्येन वा हुत्वा श्रीराधामन्त्रेण[2] श्रीकृष्णमन्त्रेण[3] च तावत्सङ्ख्यया हुत्वा श्रीसूक्तेन पुरुषसूक्तेन च होमं कुर्यात् । ततः 'इदं विष्णुर्विचक्रमे०' इतिमन्त्रेण प्रथमाहुतिं दत्त्वा देवचरणौ स्पृशेत् । तेनैव द्वितीयाहुतिं दत्त्वा नाभिं, तृतीयाहुतिं दत्त्वा शिरः स्पृशेत् । तेनैव मन्त्रेण चतुर्थाहुतिं दत्त्वा देवसर्वाङ्गं स्पृशेत् । ततः प्रायश्चित्ताहुत्यादिकमारभ्य पूर्णाहुत्यन्तं कृत्वा कूर्मशिलाब्रह्मशिलादीनामधिवासनं कुर्यात् ।

ततः प्रासादगर्भमध्याद् यवमात्रं यवार्द्धमात्रं वैशान्यामुत्तरस्यां वा द्वाराभिमुखसुवर्णनिर्मित-कूर्मं निधाय तस्योपरि कूर्मशिलां निधाय तदुपरि ब्रह्मशिलां 'ॐ नमो व्यापिनि स्थिरे अचले ध्रुवे' इति मन्त्रेण स्थाप्य प्रार्थयेत—

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावदेषा वसुन्धरा ।
तावत् त्वं देवदेवेशि मन्दिरेऽस्मिन् स्थिरा भव ।।

ततो ध्रुवसूक्तेन[4] ब्रह्मशिलामभिमन्त्रयेत । ततस्तदवटेषु रत्नन्यास[5]मपि कुर्यात् ।

ततः श्रीराधाकृष्णौ पञ्चामृतैः संस्नाप्य वैदिकमन्त्रेण पौराणिकमन्त्रेण वाभिषिच्य वस्त्रालंकार-गन्ध पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यादिभिरभ्यर्च्य 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' इति मन्त्रेणोत्थाप्य 'रथे तिष्ठन्०' इति

१. द्रष्टव्य—पीछे, पृष्ठ १७३ ।
२. राधामन्त्र - (क)—श्रीराधायै स्वाहा । (देवीभागवत ९।५०।१०)
(ख)— ॐ राधायै स्वाहा । (ब्रह्मवै० २।५५।६)
३. (क) ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
(ख) ॐ गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।
४. ध्रुवसूक्त हेतु द्रष्टव्य—पीछे, पृष्ठ २५६ तथा २६० ।
५. रत्नन्यास हेतु द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ २३४—२४१ ।

मन्त्रेण यानोपरि समारोप्य माङ्गलिक-जयघोषपुरस्सरं ग्राम-नगरादि वीथीषु परिभ्राम्य प्रासादद्वारमानीयार्घ्यं दत्त्वा प्रासादगर्भे प्रवेशयित्वा ज्योतिर्विदोपदिष्ट सुलग्ने ब्रह्मशिलायां पीठे वा स्थापयेत्—यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावदेषा वसुन्धरा तावद् भवद्भ्यां देवेशौ ! स्थातव्यमत्र स्वेच्छया ।। इत्युक्त्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । 'ॐ अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्राऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि क्रियामयवपुः परा प्राणशक्तिर्देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकं राधा-कृष्णयोः प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः ।। ततः—ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः (शिरसि) । ऋग्यजुःसामछन्दोभ्यो नमः (मुखे) । प्राणाख्यदेवतायै नमः (हृदि) । आं बीजाय नमः (गुह्ये) । ह्रीं शक्तये नमः (पादयो) । क्रों कीलकाय नमः (नाभौ) ।

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः (हृदये) ।

ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा (शिरसि) । ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट (शिखायाम्) । ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम् (कवचे—स्कन्धयोः) । ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानगतिविसर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं मनोबुद्ध्यहङ्कारचितात्मने अः अस्त्राय फट् (अस्त्रे) । ततः 'रक्ताम्भोधिस्थ'॰—इति प्राणशक्तिं ध्यात्वा ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः राधाकृष्णयोः प्राणा इह प्राणाः ।। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः राधाकृष्णयोः जीव इह स्थितः । आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः राधाकृष्णयोः सर्वेन्द्रियाणि ।। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः राधाकृष्णयो वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः-श्रोत्र-जिह्वा-घ्राण प्राणाः इहागत्य स्वस्तये सुखेन चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।। ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ।। ॐ एष वै

प्रतिष्ठा नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रतिष्ठितं भवति ।। इति प्रतिष्ठाप्य प्राणसूक्तं[1] ध्रुवसूक्तं[2] च जपेत् । ततः देवस्य मूर्ध्नि हस्तं निधाय गायत्रीं जपेत् ।। ॐ देवकीनन्दनाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ।।' अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्र-गदाधरम् ।। संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम् ।। ततः पुरुष-सूक्तेन देवमभिमन्त्र्य

ॐ भूः पुरुषमावाहयामि ।। ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ स्वः पुरुषमावाहयामि ।। ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषमावाहयामि ।। ततो राधिकाया मूर्ध्नि हस्तं निधाय ॐ समुद्धृतायै विद्महे विष्णुनैकेन धीमहि । तन्नो राधा प्रचोदयात्[3] ।। ततः षोडशवारं प्रणवमुच्चार्य राधाकृष्णयोः षोडशसंस्कारान् संपाद्य सान्निध्यप्रार्थनं कुर्यात् ।[4] ततो ब्रह्मरूपं विभाव्य । सप्तकुशात्मकं कूर्चं दद्यात् [ध्यानम्—] कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं नासाग्रे गजमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम् । सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपाल-चूडामणिः ।। [आवाहनम्—] आवाहयामि देवेशं श्रीराधा-वल्लभं हरिम् ।। देवकीतनयं कृष्णं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ।। राधा-कृष्णाभ्यां नमः । इत्यावाहनम् ।। ततः षोडशोपचारैः पूजयेत्[5] । [आसनम्–] राजाधिराजं श्रीकृष्णं चन्द्रादित्य-यदूद्भवम् ।। इदं सिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ।। इत्यासनम् । [पाद्यम्–] ततो दूर्वा-

---

१. प्राणसूक्त हेतु द्रष्टव्य पीछे पृ० २७३-२७७ ।
२. ध्रुवसूक्त हेतु द्रष्टव्य पीछे पृ० २५६, २६० ।
३. ॐ वृषभानुजायै विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि । तन्नो राधा प्रचोदयात् । द्रष्टव्य पीछे पृ० २६९ संख्या १५ ।
४. सान्निध्य–प्रार्थना हेतु द्रष्टव्य पीछे पृ० २७८-२७९ ।
५. राधा का षोडशोपचारपूजन ब्रह्मवैवर्तपुराण २।५५।२०-३८ में है 'कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना' देवीभाग० ९।५०।१६ के इस वचनानुसार राधा का पूजन कृष्णपूजन के पूर्व करना चाहिए ।

विष्णुक्रान्ता-श्यामाक पद्मपत्रजलेन पाद्यम् । श्रीकृष्णाऽत्राऽऽगच्छ भगवन् वासुदेव जगत्पते ॥ राधया सह गोपेश सुस्थिरो भव सर्वदा ॥ कृष्णचन्द्र महाबाहो कंसचाणूरमर्दन । यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तावत्त्वं सन्निधो भव ॥ देवकीसुत राजर्षे कृष्ण राजीवलोचन । राधावल्लभ मे देव श्रीकृष्णाभिमुखो भव ॥ सुप्रसीद जगन्नाथ महाबलपराक्रम । प्रचन्नो भव मे देव पाण्डवार्तिविनाशन ॥ त्रैलोक्यपावनस्त्व हि राधया सहितो हरे । पाद्य गृहाण देवेश नमो राजीवलोचन ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः पाद्यं समर्पयामि । [अर्घ्यम्–] परिपूर्ण परानन्द ब्रह्मादिदेवतात्मक ॥ गहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं तीर्थवारिसमन्वितम् । पयस्तण्डुल-चन्दन-पुष्प-दूर्वा कुशाग्रयुक्तजलेन अर्घ्यं समर्पयामि । [आचमनीयम् -] एला-लवग तज कर्पूरमिश्रेण जलेन राधाकृष्णाभ्यां नमः आचमनं समर्पयामि । [मधुपर्कम्-] वासुदेवाय कृष्णाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे ॥ मधुपर्कं प्रदास्यामि दीनानाथाय ते नमः ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः मधुपर्कं समर्पयामि । [आचमनीयम्–] नमः शुद्धाय बुद्धाय सत्वाय ज्ञानरूपिणे ॥ गृहाणाऽऽचमन नाथ सर्वलोकैकनायक ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः आचमन समर्पयामि ॥ [पञ्चामृतस्नानम्—] पयोदधिघृतं चैव० राधाकृष्णाभ्यां नमः । पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ॥ [शुद्धोदकस्नानम्—] ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थैस्तोयैश्च यदुनन्दन ॥ स्नापयिष्याम्यह भक्त्या स्वकरेण जनार्दन ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः स्नानं समर्पयामि । [वस्त्रम्–] शीतवातोष्णसंत्राणं पीताम्बरमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ कृष्णचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ राधाकृष्णाभ्या नमः वस्त्र समर्पयामि । आचमनं समर्पयामि । [सोत्तरीयं यज्ञोपवीतम्–] श्रीकृष्णाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्दराधन ब्रह्मसूत्र सोत्तरीय गृहाण यदुनायक ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः उपवीत उत्तरीयं च समर्पयामि । [अलङ्करणम्–] किरीट-हारकेयूर-वक्षो-कुण्डल-मेखलाः ग्रैवेय-कौस्तुभोहार-रत्नकंकण-नूपुरो ॥ एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि सुरोत्तम । अहं दास्यामि सद्भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः अलंकरणं समर्पयामि ।

[गन्धम्–] कुंकुमाऽगरु-कर्पूर-कस्तूरीमिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश राधया सहितो हरे ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः गन्धं समर्पयामि । [पुष्पमाला—] तुलसी-कुन्द-मन्दार-जाति-पुन्नाग-चम्पकैः । कदम्बकरवीरैश्च कुंकुमैः शतपत्रकैः ॥ नीलाम्बुजैर्बिल्वदलैः पुष्पमाल्यैश्च केशव । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः पुष्पमालां समर्पयामि ॥ [अथाऽङ्गपूजा—] ॐ कृष्णाय नमः पादौ पूजयामि ॥ १ ॥ ॐ राधावल्लभाय नमः गुल्फौ पूजयामि ॥ २ ॥ ॐ केशवाय नमः जानुनी पूजयामि ॥ ३ ॥ ॐ पद्मनाभाय नमः नाभिं पूजयामि ॥ ४ ॥ ॐ परमात्मने नमः हृदयं पूजयामि ॥ ५ ॥ ॐ श्रीकण्ठाय नमः कण्ठं पूजयामि ॥ ६ ॥ ॐ सर्वास्त्रधारिणे नमः बाहू पूजयामि ॥ ७ ॥ ॐ यदूद्भवाय नमः मुखं पूजयामि ॥ ८ ॥ ॐ वाचस्पतये नमः ऊरू पूजयामि ॥ ९ ॥ ॐ विश्वरूपाय नमः जंघे पूजयामि ॥ १० ॥ ॐ माधवाय नमः कटिं पूजयामि ॥ ११ ॥ ॐ विश्वमूर्तये नमः मेढ्रं पूजयामि ॥ १२ ॥ ॐ विश्वेशाय नमः जिह्वां पूजयामि ॥ १३ ॥ ॐ दामोदराय नमः दन्तान् पूजयामि ॥ १४ ॥ ॐ गोपीनाथाय नमः ललाटं पूजयामि ॥ १५ ॥ ॐ ज्ञानगम्याय नमः शिरः पूजयामि ॥ १६ ॥ ॐ सर्वात्मने नमः सर्वाङ्गं पूजयामि ॥ १७ ॥ [धूपम्—] वनस्पतिरसोद्भूतो । गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः धूपं समर्पयामि । [दीपम्—] ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमः कृष्णाय वेधसे ॥ गृहाण दीपकं विष्णो त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः दीपं दर्शयामि । [नैवेद्यम्—] उद्यद्दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिः समन्वितम् । श्रीकृष्ण

सत्यभामेश नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः नैवेद्यं समर्पयामि । [ताम्बूलम् –] पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्ली-दलैर्युतम् । एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ राधाकृष्णाभ्यां नमः । ताम्बूलं समर्पयामि । [दक्षिणा—] ॐ हिरण्यगर्भ-गर्भस्थ हेमबीजं विभावसोः । अर्प्यते देवदेवेश ह्यतः शान्तिं कुरुष्व मे ॥ दक्षिणां समर्पयामि । [आरातिक्यम्–] कर्पूरगौरमिति । आर्तिक्यं समर्पयामि । नानासुगन्धिपुष्पाणी'ति पुष्पाञ्जलिं स० । ततः प्रार्थयेत्—स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात् त्वमिहाऽऽगतः । प्रकृतिं त्वामहं(?)दृष्ट्वा बालवत्परिपालय ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं सर्वेषां च शुभासिनः ॥ सान्निध्यं तु सदा कृष्ण स्वार्चायां परिकल्पय ॥ यावच्चन्द्रावनी-सूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः । तावत् कृपास्तु देवेश स्वयं भक्त्याऽनु-कम्पया ॥ भगवन् सर्वदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् । येन रूपेण भगवन् त्वया व्याप्तं चराचरम् । तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधो भव ॥ इति स्तुत्वा नमेत् । ततः केशवादिद्वादशनामभिः तर्पणं कुर्यात्—ॐ केशवं तर्पयामि ॥ ॐ माधवं तर्प० ॥ ॐ गोविन्दं तर्प० ॥ ॐ नारायणं तर्प० ॥ ॐ विष्णुं तर्प० ॥ ॐ मधुसूदनं तर्प० ॥ ॐ त्रिविक्रमं तर्प० ॥ ॐ वामनं तर्प० ॥ ॐ श्रीधरं तर्प० ॥ ॐ हृषीकेशं तर्प० ॥ ॐ पद्मनाभं तर्प० ॥ ॐ दामोदरं तर्प० ॥ ॐ संकर्षणं तर्प० ॥ एतैर्नामभिः संतर्प्य पुष्पाणि च निवेद्य केशवादिद्वादशनामभिः तिलौदनं हरिद्रौदनं गुणौदनं च हुत्वा होमादि कुर्यात् । [उक्तं च—पूजास्त्रिष्टनवाहुत्या बलिं पूर्णा-हुतिं तथा ॥ श्रेयः सम्पाद्य दानं च अभिषेको विसर्जनम् ॥ इति ।[1]]

ततः नैमित्तिकदोषो'-पशान्त्यर्थं दिक्पालमन्त्रैर्होमं कृत्वा

१. द्रष्टव्य–पोछ, पृ० ३६४–३६६ तथा ४३१ ।

श्रीराधाया मूलमन्त्रेण नाममन्त्रेण, वा श्रीकृष्णमन्त्रेण चाष्टाष्टाहुती-र्हुत्वा श्रीसूक्तमन्त्रैः पुरुषसूक्तमन्त्रैश्च हुत्वा ब्रह्मादिमण्डलदे-वानां नाममन्त्रैश्चैकैकाहुत्या होमं कृत्वा सर्वप्रायश्चित्तहोमं लोकपाला-दिभ्यो बलिदानं च कुर्यात् । ततः पूर्वोक्तहविर्भिः कृष्णाय बलिं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुराणं नारायणं विश्वसृजं यजा-महे । त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमेव चात्मा प्रतिगृह्णीष्व हव्यम् ॥ इति मन्त्रेण अश्वत्थपर्णे हुतशेषं निवेद्य प्रदक्षिणीकृत्य, ॐ विश्वभुजे नमः । ॐ सर्वभुजे नमः । ॐ आत्मभुजे नमः । ॐ परमात्मभुजे नमः ॥ इति प्रणमेत् । ततः पूर्णाहुतिं वसोर्धारां च कृत्वा कर्मशेषं सम्पाद्य आचार्यादिभ्यो मूर्तिपब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां दद्यात् । आचार्याय गां च दद्यात् । ततो ब्राह्मणभोजनम् । प्रधानमण्डपादि आचार्याय निवेद्य भूयसीं दद्यात् ॥ 'यान्तु देवे'ति विसर्जनम् । प्रमादादिति पठित्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् ।

इति बौधायनाद्युक्ता जोशीत्युपाह्व डा० महेशचन्द्रशर्मणा सम्पादिता श्रीराधाकृष्णप्रतिष्ठा समाप्ता ॥

—*—

अथ परिशिष्टे
प्रतिष्ठा-यागकर्माधिकारसंसिद्ध्यर्थं

सर्वप्रायश्चित्तप्रयोगः

संशोधकः सम्पादकश्च

आचार्य डॉ० महेशचन्द्र जोशी

प्रतिष्ठा-यागं चिकीर्षुः प्रारम्भदिनात्पूर्वदिने तत्राधिकार-सिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं कुर्यात् । प्रायश्चित्तोपदेशार्थं समाहूतान् धर्माधिकारिणः सभ्यान्-धर्मशास्त्रविशारदान् ब्राह्मणान् प्रदक्षिणीकृत्य तेषामग्रे गत्वा प्रार्थयेत्—

समस्त-सम्पत्-समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥
आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः ।
समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्तयो रक्षन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥
(शिवपुराण ६।१२।४४-४५)

विप्रोषदर्शनात् सद्यः क्षीयन्ते पापराशयः ।
वन्दनान्मङ्गलावाप्तिरर्चनादच्युतं पदम् ॥
आधि-व्याधिहरं नृणां मृत्युदारिद्र्यनाशनम् ।
श्रीपुष्टिकीर्तिदं वन्दे विप्रश्रीपादपङ्कजम् ॥

इति प्रणम्य गोवृषनिष्क्रयीभूतं सुवर्णादि द्रव्यं सभ्याग्रे निधाय तान् पृच्छेत् 'अमुकस्य मम[1] जन्मप्रभृति अद्यदिनं यावत् ज्ञाताज्ञात-कामाकाम-सकृदसकृत्कृतकायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिक-स्पृष्टास्पृष्ट-भुक्ताभुक्त-पीतापीत-सकलपातकातिपातकोपपातक

१. पुत्रश्चेत् प्रायश्चित्तमाचरति तदा 'मम पित्रादेः' इति वदेत् ।

लघुपातक-सङ्करीकरण-मलिनीकरणापात्रीकरण-जातिभ्रंशकर-प्रकीर्णकपातकानां मध्ये संभावितानां पापानां निरासार्थमनुग्रहं कृत्वा प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्तः' । इति । ततः सभ्यैः "तव जन्म प्रभृति अद्य दिनं यावत् संभावितानां सर्वपापानां निरासार्थं षडब्द-त्र्यब्द-सार्द्धाब्दाब्दान्यतमं सर्वप्रायश्चित्तं गोनिष्क्रयद्रव्यदानप्रत्याम्नायद्वारा पूर्वाङ्गोत्तराङ्गयुतं त्वयाऽऽचरितव्यम् ।" इत्युपदिष्टो यजमानः कर्ता वा 'ॐ भवदनुग्रहः' इत्यङ्गीकृत्य पुस्तकपूजनं सभ्यानुवादक पूजनं च कृत्वा पर्षदं यथाशक्ति द्रव्यदक्षिणादानेन संपूज्य प्रणमेत् ।

ततो गङ्गादितीर्थं, नदीतडागादौ वा गत्वा स्वगृहे वा हस्ते कुश यव-जलान्यादाय देशकालौ संकीर्त्य मम जन्मप्रभृति अद्यदिनं यावत् ज्ञाताज्ञात-कामाकाम-सकृदसकृत्कृत-कायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिक-स्पृष्टास्पृष्ट-भुक्ताभुक्त-पीतापीत-सकलपातकातिपातकोपपातक-लघुपातक-सङ्करीकरण-मलिनीकरण-अपात्रीकरण-जातिभ्रंशकर-प्रकीर्णपातकानां मध्ये संभावितानां पापानां क्षयद्वारा प्रतिष्ठा-यागाधिकार सिद्ध्यर्थं श्री परमेश्वरप्रीत्यर्थं च पर्षदुपदिष्ट षडब्द-त्र्यब्दसार्द्धाब्दाब्दान्यतमं प्रायश्चित्तं (अमुकसंख्यायां कृच्छ्रप्रायश्चित्तं वा) पूर्वोत्तराङ्गयुतं गोनिष्क्रयद्रव्य-दानरूप-प्रत्याम्नायद्वाराऽहमाचरिष्ये । इति संकल्प्य वपनं दन्तधावनं च कृत्वा हस्तौपादौ च प्रक्षाल्याचम्य हस्ते जलकुशाक्षतान्यादाय 'करिष्यमाण प्रायश्चित्ताङ्गत्वेन मम समस्तपापक्षयपूर्वकं अमुक देवप्रतिष्ठायाग-कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं शरीरशुद्ध्यर्थं च भस्मादिभिरष्टौ स्नानानि करिष्ये । इति संकल्प्य क्रमशः भस्मादिस्नानानि कुर्यात् ।

भस्मस्नानम्—

वामहस्ते यज्ञियभस्म (श्रौतस्मार्ताग्निजं भस्म) धृत्वा जल-मिश्रणानन्तरं दक्षिणहस्तेन संमर्द्य वक्ष्यमाणमन्त्रेणाभिमन्त्रयेत्—

ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वँ ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि ।

इत्यभिमन्त्र्य—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्।

ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽअस्तु सदा शिवोम् ॥

,, ईशानाय नमः। इति शिरसि मर्दयेत्।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।

तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

,, तत्पुरुषाय नमः। इति मुखे मर्दयेत्।

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ॥

सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।

ॐ अघोराय नमः। इति हृदये मर्दयेत्।

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥

ॐ वामदेवाय नमः। इति गुह्ये मर्दयेत्।

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।

भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥

,, सद्योजाताय नमः। इति पादयोर्मर्दयेत् ॥

ॐ इति (प्रणवेन) सर्वाङ्गेषु मर्दयेत् ॥

गोमयस्नानम्—

गोमयमादाय—ॐ अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां रसं वने।

तासां वृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम् ॥

यन्मे रोगश्च शोकश्च पापञ्च हर गोमय।

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नोऽअश्वेषु रीरिषः ॥

मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे।

इत्यभिमन्त्र्य सूर्याय दर्शयित्वा

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ॥

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

इति मन्त्रेण दक्षिणहस्तगृहीतेन गोमयेन शिरसो नाभ्यन्तं वामहस्तगृहीतेन मन्त्रावृत्या नाभितः पादपर्यन्तं विलेपनमिति सर्वाङ्गमालिप्य स्नात्वा द्विराचामेत्।

अथ मृत्तिकास्नानम्—

शुद्धतीर्थमृत्तिकामादाय वामहस्ते कृत्वा

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।

यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः ॥

ॐ अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया कायसंचितम् ॥

इत्यभिमन्त्र्य—

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।

समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा ॥

इति मन्त्रेण गोमयवत् शिरःप्रभृत्यङ्गानि विलिम्पेत्।

ततो द्विराचम्य शुद्धोदकस्नानं कुर्यात् अथवा

आपो हि ष्ठेति तृचेन मार्जनं कुर्यात्—

ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवस्ता नऽऊर्जे दधातन।

महेरणाय चक्षसे ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव मातरः ॥

तस्माऽअरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

आपो जनयथा च नः ॥

इति स्नात्वा मार्जनं वा कृत्वा आचम्य पञ्चगव्यस्नानं कुर्यात्। तत्रादौ-

गोमूत्र स्नानम्—

ॐ तत्सवितु० ॥ इति गायत्र्या गोमूत्रस्नानम्।

ततः शुद्धोदकस्नानम्।

गोमयस्नानम्—

गन्धद्वारेति गोमयस्नानं कृत्वा शुद्धोदकस्नानं कुर्यात् ।

पयःस्नानम्—

ॐ आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥

इति पयः स्नानं कृत्वा शुद्धोदकस्नानं कुर्यात् ।

दधि स्नानम्—

ॐ दधिक्राव्णोऽअकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखाकरत्प्र णऽआयू ँ᳭षि तारिषत् ।

इति दधिःस्नानं कृत्वा शुद्धोदकस्नानं कुर्यात् ।

घृतस्नानम्—

ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि
प्रियन्देवानामनाधृष्टन्देवयजनमसि ॥

इति घृतस्नानम् । ततः शुद्धोदकस्नानंकृत्वा

कुशोदकस्नानम्—

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ।

इति कुशोदकेन स्नायात् ।

ततः कुशैर्मार्जनम्—

ॐ इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय त्वामवस्युराचके ॥ १
ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ॥
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ँ᳭स मा नऽआयुः प्रमोषीः ॥२
ॐ त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा ँ᳭सि प्रमुमुग्ध्युस्मत् ॥ ३ ॥
ॐ स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ ।

अवयक्ष्व नो वरुण ँ᳭ रराणो वीहि मृडीक ँ᳭ सुहवो न ऽएधि ॥ ४ ॥

ॐ मापो मौषधीर्हि ँ᳭ सीर्धाम्नो धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च ॥ ५ ॥

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यम ँ᳭ श्रथाय ॥
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥ ६ ॥

ॐ मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ॥
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देव किल्बिषात् ॥ ७ ॥

ॐ अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ॥
अव देवैर्देवकृतमेनो यासिषमव मर्त्यैर्मर्त्य-
कृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ ८ ॥

इत्यष्टभिर्मन्त्रैर्हस्तेन प्रत्येकं शिरसि जलं प्रक्षिपेत् ॥

ततो नद्यां प्रवाहाभिमुखोऽन्यत्र सूर्याभिमुखो मौनी मज्जेत् ।

संक्षेपेण भस्मादिदशस्नानविधिः—

वामपाणौ शुद्धं भस्म धृत्वा 'ॐ अग्निरिति भस्म०' इति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य दक्षिणहस्तेन 'ॐ ईशानाय नमः', इति शिरसि ह्यवलिम्पेत् । 'ॐ तत्पुरुषाय' नमः, इति इति मुखे, 'ॐ अघोराय नमः' इति हृदये, 'ॐ वामदेवाय नमः' इति गुह्ये, 'ॐ सद्योजाताय नमः' इति पादयोर्विलिप्य, प्रणवेन सर्वाङ्गे विलिम्पेत् ।

गोमयं गृहीत्वा ॐ अग्रं अग्र चरन्तीनां० इति मन्त्रेण 'मानस्तोके'० इति मन्त्रेण च गोमयमभिमन्त्र्य दक्षिणहस्तेन शिरसि सकृदनुलिप्य नाभेरुपरितनेष्वङ्गेषु च त्रिरनुलिप्य वामहस्तेन नाभेरधस्तात् पादपर्यन्तं त्रिरनुलिम्पेत् ।

ततः मृत्तिकामादाय ॐ अश्वक्रान्ते० इत्यभिमन्त्र्य गोमयवदनुलिम्पेत् ।

ततः 'ॐ आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्व ँ᳭ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः ॥ इति मन्त्रेण स्नायात् ।

स्रोतसोऽभावे 'ॐ इदं विष्णु०' इति जलमभिमन्त्र्य स्नायात्। अथवा 'आपो हि ष्ठा०' इति तृचेन मार्जयेत्।

ततो गायत्र्या गोमूत्रमभिमन्त्र्य गोमयवदनुलिम्पेत्। ततो दुग्धं गृहीत्वा 'ॐ आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे'॥ इत्यभिमन्त्र्यानुलिम्पेत्। ततो दधि गृहीत्वा 'ॐ दधि क्राव्णो०' इत्यभिमन्त्र्यानुलिम्पेत्। अथ घृतं गृहीत्वा 'ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि। प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥' इत्यभिमन्त्र्यानुलिम्पेत्। ततः कुशोदकमादाय 'ॐ देवस्य त्वा सवितु' रित्यभिमन्त्र्य स्नायात्। पुनर्जलेन सर्वशुद्ध्यर्थं स्नायात्।

ततश्च अघमर्षणादारभ्य-सूर्यार्घ्यदानं यावत् कर्म संक्षेपेण कुर्यात्। क्वचिदेतदघमर्षणादिकं कर्म पद्धतिषु नैव विहितम्। विहित-पक्षे तु वक्ष्यमाणप्रकारेण कुर्यात्।

तत आचम्य जले 'ॐ ऋतञ्च सत्य चे'त्यघमर्षणं कुर्यात्।

स्नानाङ्गतर्पणं[1]—

सव्येन प्राङ्मुखः, 'ॐ ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्'॥ १॥

'ॐ गौतमादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्'॥ १॥

इति देवतीर्थेन एकैकमञ्जलिं जले क्षिपेत्॥

तत उदङ्मुखो यज्ञोपवीतं कण्ठीकृत्वा प्रजापतितीर्थेन अञ्जलिद्वयं दद्यात्—

ॐ सनकादयो मनुष्यास्तृप्यन्ताम्॥ २॥

ततश्च अपसव्येन दक्षिणामुखः कृष्णतिलोदकैः अञ्जलि त्रयं दद्यात्।

ॐ कव्यवाडनलादयो देवपितरस्तृप्यन्ताम्॥ ३॥

,, अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहास्तृप्यन्ताम॥ ३॥

,, अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामह्यस्तृप्यन्ताम्॥ ३॥

,, अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहास्तृप्यन्ताम्॥ ३॥

,, अस्मन्मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यस्तृप्यन्ताम्॥ ३॥

,, आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यताम्॥ ३॥

एवं तर्पणं कृत्वा यक्ष्म-तर्पण कुर्यात्—

ॐ यन्मया दूषितं तोयं शारीरसंभवैः मलैः।
तद् दोषपरिहारार्थं यक्ष्माण तर्पयाम्यहम्॥

इति स्थले जलेन यक्ष्मतर्पणं कुर्यात्।

ततस्तीरमागत्य

ॐ अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥ १॥

इत्येकाञ्जलाञ्जलिं तटे निक्षिपेत्।

एवं स्नानाङ्गतर्पण कृत्वा सव्येनाचम्य सूर्य्यायार्घ्यं दद्यात्—

"ॐ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ १॥"

ततो जलाद्बहिर्निष्क्रम्य अहतं श्वेतं सदशं धौतं वस्त्रं परिधाय उपवस्त्रं गृहीत्वा त्रिराचम्य गृहं गच्छेत्।

विष्णुश्राद्धम्—

ततः तिलकं कृत्वा साङ्कल्पिकं विष्णुश्राद्धं कुर्यात्। देशकालौ स्मृत्वा अमुकोऽहं प्रायश्चित्ताङ्गत्वेन विष्णु-श्राद्धं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य शालग्रामशिलायां षोडशोपचारैः, श्वेतचन्दनादिभिः पञ्चोपचारैर्वा विष्णुं पूजयेत्। ततः देशकालादि संकीर्त्य अमुकोऽहं विष्णुप्रीत्यर्थं प्रायश्चित्ताङ्गविष्णुश्राद्धसम्पत्तये श्रीविष्णूद्देशेन ब्राह्मणचतुष्टयभोजनपर्य्याप्तामान्ननिष्क्रयीभूतं द्रव्यं चतुर्भ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथाविभागं विभज्य दातुमहमुत्सृजे॥ तेन पापापहा महाविष्णुः प्रीयताम्। इति।

१. यत्रैतत् स्नानं गृहे क्रियते तत्र मार्जनाघमर्षणतर्पणादि वर्ज्यानि।

ततो गोदानं कुर्यात्।

प्रायश्चित्तपूर्वाङ्गं गोदानम्—

तद्यथा— देशकालौ संकीर्त्य प्रारिप्सितप्रायश्चित्तस्य पूर्वाङ्गतया विहितं गोदानं करिष्ये। इति सकल्प्य ब्राह्मणपूजनं धेनुपूजनं च कुर्यात्। ततो गोपुच्छे देवर्षिपितृतर्पणं कृत्वा कांस्यपात्र गोपुच्छं निधाय दुग्धतिलकुशसुवर्णयुतं कृत्वा दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा देशकालौ स्मृत्वा मम समस्तपापक्षयार्थममुकदेवप्रतिष्ठा-यागार्हतासिद्धये श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमिमां गां सवत्सां सोपस्करां यथाशक्तिविभूषितां रुद्रदैवतां तुभ्यमहं संप्रददे। इत्युच्चार्य संकल्पजलयुतं गोपुच्छं विप्रहस्ते दद्यात्।

ॐ 'यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघौघनाशिनी।।
विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा'।। १।।
गावो ममाग्रतस्सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्।।

इति प्रार्थयेत्। ततो गोदानसाङ्गतासिद्ध्यर्थं विप्राय दक्षिणां दत्त्वा 'अनेन गोदानकर्मणा पापापहा श्रीमहाविष्णुः प्रीयताम्'। इति जलमुत्सृजेत्। गोदानासम्भवे यथाशक्ति तन्मूल्यं देयम्। तद्यथा— देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं अमुकदेवप्रतिष्ठा-याग-कर्मांविकारसिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तपूर्वाङ्गतया विहितं यथाशक्ति गोनिष्क्रयीभूतद्रव्यं ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे। इति संकल्प्य ब्राह्मणं संपूज्य देयद्रव्यं गृहीत्वा देशकालौ संकीर्त्य प्रायश्चित्तपूर्वाङ्गतया विहितमिदं गोनिष्क्रयीभूतं यथाशक्ति द्रव्यं तुभ्यमह संप्रददे। इति दद्यात्। नात्र दक्षिणा।

महाव्याहृतिहोमः—

ततः देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं (अमुक) प्रायश्चित्तपूर्वाङ्गतया विहितं महाव्याहृतिभिराज्येनाष्टोत्तरशतसंख्ययाऽष्टाविंशतिसंख्यया वा होमं करिष्ये। इति संकल्प्य पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं विट नामाग्नि

संस्थाप्य आचार्य-ब्रह्मणोर्वरणं कुशकण्डिकां च कृत्वाऽग्निं संपूज्य ब्रह्मणान्वारब्धो दक्षिणजान्वाच्य स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति—

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।
अत्र प्रोक्षणीपात्रे त्यागः। एवं सर्वत्र।
ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय न मम।।
,, अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम।।
,, सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम।।

इत्याघाराज्यभागौ हुत्वा अनन्वारब्धः व्याहृतिहोमं कुर्यात्—

,, भूः स्वाहा। इदमग्नये न मम।।
,, भुवः स्वाहा। इदं वायवे न मम।।
ॐ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय न मम।।
;; भूर्भुवः स्वः स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।।

एवं सप्तवारं कृत्वा अष्टाविंशतिराहुतयः, सप्तविंशतिवारं कृत्वाऽष्टोत्तरशताहुतयः सम्पद्यन्ते।

ततो ब्रह्मकूर्चन पञ्चगव्यहोमः—

ॐ इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनवे दशस्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवे ते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः
स्वाहा।।
इदं पृथिव्यै न मम।।
ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे० पांसुरे स्वाहा।।
इदं विष्णवे न मम।।
ॐ मा नस्तोके तनये० सदमित् त्वा हवामहे स्वाहा।।
इदं रुद्राय न मम।।
,, शं नो देवीरभिष्टय०—स्वाहा। इदमद्भ्यो न मम।।
ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते
न मम।।
,, भूः स्वाहा। इदमग्नये न मम।।
,, भुवः स्वाहा। इद वायवे न मम।।

;, स्वः स्वाहा । इद सूर्याय न मम ।'

ॐ त्वं नो ऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो ऽअवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा ँसि
प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥

ॐ स त्वं नो ऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो ऽअस्या उषसो व्युष्टौ ।
अवयक्ष्व नो वरुण ँ रराणो वीहि मृडीक ँ सुहवो
न ऽएधि स्वाहा ॥

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥

ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमया ऽअसि ।
अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज ँ स्वाहा ॥

इदमग्नये अयसे न मम ॥

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः
स्वाहा ॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः
स्वर्केभ्यश्च न मम ॥

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यम ँ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम स्वाहा ॥
इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये न मम ॥

ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ॥

ततो बर्हिहोमः । संस्रवप्राशनम् । ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम् । त्र्यायुषकरणम् । प्रणीतोदकेन मार्जनम् । प्रणीताविमोकः । दक्षिणादानम् । अग्निविसर्जनञ्च कुर्यात् ।

ततो हुतशेष पञ्चगव्यं पिबेत्—

यत् त्वगस्थिगतं पाप देहे तिष्ठति मामके ।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥

अथ प्रधानगोनिष्क्रय-सङ्कल्पः—

देशकालादि संकीर्त्य अमुकोऽहं मम जन्मप्रभृति अद्यदिनं यावत् ज्ञाताज्ञात-कामाऽकाम-सकृदसकृत्कृत-कायिक-वाचिक-मानसिक सांसर्गिक-स्पृष्टास्पृष्ट--भुक्ताभुक्त--पीतापीत-सकलपातकातिपातकोप-पातक-लघपातक-सङ्करीकरण-मलिनीकरणापात्रीकरण-जातिभ्रंशकर-प्रकीर्णक-पातकानां मध्ये संभावितानां पापानां निरासार्थं श्री-परमेश्वरप्रीत्यर्थञ्च पर्षदुपदिष्टं गोनिष्क्रयद्रव्यदान-प्रत्याम्नायद्वारा-ऽङ्गीकृत अमुकप्रायश्चित्तस्य संसिद्ध्यर्थं गोनिष्क्रयभूतं[1] द्रव्यं यथानाम गोत्राय ब्राह्मणाय (यथानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा) संप्रददे अथवा यथाकालं दातुमहमुत्सृजे । ॐ तत्सत् नमम । इति ।

'गोनिष्क्रयार्थं संकल्पितद्रव्यस्यार्द्धमाचार्यायार्द्धं च सभ्येभ्यो दद्यात्' ।–इत्येके ।

प्रायश्चित्तोत्तराङ्ग-व्याहृतिहोमः—

ततः देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽह मयाऽऽचीर्णस्य अमुक प्रायश्चित्तस्योत्तराङ्गत्वेन व्याहृतिहोमं करिष्ये । इति संकल्प्य पूर्ववत् 'ॐ भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम । ॐ भुवः स्वाहा । इदं वायवे न मम । स्वः ॐ स्वाहा । इदं सूर्याय न मम । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । (एवं सप्तवारं कृते अष्टाविंशत्याहुतयः सप्तविंशतिवारं कृत्वाऽष्टोत्तरशताहुतयः)।

प्रायश्चित्तोराङ्गं विष्णुश्राद्धम्—

ततः देशकालादि संकीर्त्य अमुकोहमङ्गीकृतप्रायश्चित्तस्योत्तराङ्गत्वेन विष्णुपूजनपूर्वकं विष्णुश्राद्धं करिष्ये । इति संकल्प्य शालग्रामशिलायां विष्णुं श्वेतचन्दनादिभिः संपूज्य पुनः अमुकोऽहं प्रायश्चित्ताङ्ग-विष्णु-श्राद्धसंपत्तये श्रीविष्णुद्देशेन युग्मब्राह्मण (अथवा-ब्राह्मण चतुष्टय) भोजनपर्याप्तामान्न-निष्क्रयीभूतं द्रव्यं ब्राह्मणयुग्माय (अथवा चतुर्भ्यो ब्राह्मणेभ्यो) यथाविभागं विभज्य दातुमहमुत्सृजे ।

१. कृच्छ्रादि प्रत्याम्नाय भूतानां गवां निष्क्रय द्रव्यम्–इति वा पठेत् ।

तेन श्रीपापापहा महाविष्णुः प्रीयताम् ।

प्रायश्चित्तोत्तराङ्गं गोदानम्—

अथ प्रायश्चित्तोत्तराङ्गतया विहितं गोदानम् तन्निष्क्रयदानं वा कुर्यात। तद्यथा—देशकालौ सकीर्त्य अमुकोऽहं अमुकदेवप्रतिष्ठा-याग-कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं विहित—प्रायश्चित्तस्योत्तराङ्गतया गोदानप्रत्याम्नायद्वारा यथाशक्ति गोनिष्क्रयीभूतं द्रव्यं ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सजे। ततः प्रार्थयेत्—

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

देशकालादि स्मृत्वा कृतस्य सर्वप्रायश्चित्तकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थञ्च द्वादशब्राह्मणान् यथाकालं भोजयिष्ये। तेन श्रीपापापहा महाविष्णुः प्रीयताम्।

ततस्तद्दिने उपवासमेकभक्तं वा कुर्यात्। दशदानानि च दद्यात्।

अथ दशदानानि

गो-भू तिल-हिरण्याऽऽज्यं वासो धान्यगुडानि च॥
रौप्यं लवणमित्याहुः दशदानानि पण्डिताः॥

एतत्साक्षादसम्भवे तत्तन्मौल्यं दद्यात्। एतन्मौल्यासम्भवेऽपि यथाशक्ति हिरण्यं दद्यात्। अथ दशदानप्रयोगः सक्षेपेण लिख्यते।

अथ गोदानम्—

देशादिस्मृत्वा अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयार्थं विष्णुप्रीतये च दशदानकर्मण्यादौ गोदानं करिष्ये॥ इति सङ्कल्प्य प्रतिगृहीतारं ब्राह्मणं सवत्सां गां च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय दाता ब्रूयात्—'अस्मिन् गोदानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः, अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं गोप्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे'। 'वृतोऽस्मि'। गोपुच्छं गृहीत्वा संकल्पं कुर्यात्। इमां गां सवत्सां रुद्रदैवतकां

सोपस्करां अमुकगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति।

अथ गो-प्रार्थना—

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

कृतैतद्गोदानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं दक्षिणाद्रव्यं सुवर्णमग्निदैवतं (अथ वा रजतं चन्द्रदैवतम्) अमुकगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। इति दद्यात्।

अथ भूमिदानम्—

देयद्रव्यं (देयभूमिसम्बन्धिमृतपिण्ड) ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन् भूमिदानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं भूमिप्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। ततः संकल्पः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये इमां भूमिं[1] विष्णुदैवतां तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। विष्णवे भूमिं प्रतिगृह्णामि। इत्युक्त्वा भूमेः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रतिग्रहणम्। भूमिप्रार्थना—

सर्वशस्याश्रया भूमिर्वराहेण समुद्धृता।
अनन्तशस्यफलदा अतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

कृतैतद्भूमिदानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं दक्षिणाद्रव्यं सुवर्णमग्निदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

अथ तिलदानम्—

देयद्रव्येभ्यो-तिलेभ्यो नमः। ब्राह्मणाय नमः। इति सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन् यथाशक्तितिलदानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं तिल-प्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं

१. सामान्यतः एक निवर्तन भूमि का दान विहित है। सात हाथ अथवा दस हाथ का एक दण्ड और तीस दण्ड का एक निवर्तन होता है।

वृणे। वृतोऽस्मि। अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णु-प्रीतये
इमान् तिलान्[1] प्रजापतिदैवत्यान् तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ तत्सत्
न मम। ॐ स्वस्ति।

तिलप्रार्थना—

महर्षेर्गोत्रसम्भूताः काश्यपस्य तिलाः स्मृताः।
तस्मादेषां प्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥

कृतैतत्तिलदानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं दक्षिणाद्रव्यं सुवर्णमग्नि-
दैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ
स्वस्ति।

अथ सुवर्णदानम्—

देयद्रव्यं ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन्
यथाशक्ति सुवर्णदानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं
ब्राह्मणं सुवर्ण-प्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। सुवर्ण-
प्रार्थना— हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये इदं
सुवर्णम[2]ग्निदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्र-
ददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। कृतैतत् सुवर्णदानकर्मणः
साङ्गतासिद्ध्यर्थं दक्षिणा द्रव्यं रजतं चन्द्रदैवतम् अमुकगोत्रायाऽमुक-
शर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

---

१. तिल का दान तीन, दो या एक द्रोण विहित है। १२ मुठ्ठी का एक कुडव, चार कुडव का एक प्रस्थ, चार प्रस्थ का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है।

२. सुवर्ण का दान एक निष्क या एक कर्ष तक विहित है। सोलह माषा का एक सुवर्ण और चार सुवर्ण का एक निष्क होता है।

आज्यदानम्—

देयद्रव्यं ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन्नाज्यदान-
कर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणम् आज्यप्रति-
गृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। घृतप्रार्थना—

कामधेनोः समुद्भूतं देवानाममृतम् हविः।
आयुर्वृद्धिकरं दातुराज्यं पातु सदैव माम्॥

अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये
इदमाज्य[1] सोमदैवत्य (मृत्युञ्जयदैवत्यं वा) तुभ्यमहं सम्प्रददे।
ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। कृतैतदाज्यदानकर्मणः साङ्गता-
सिद्ध्यर्थं हिरण्यमग्निदैवतं अमुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय
तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

अथ वस्त्रदानम्—

देयद्रव्य ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन् वस्त्र[2]-
दानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं वस्त्रप्रति-
गृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। वस्त्रप्रार्थना—

शीतवातोष्णसन्त्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।

अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयपूर्वकं श्रीविष्णुप्रीतये
इदं वस्त्रद्वयं बृहस्पतिदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं
सम्प्रददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। कृतैतद्वस्त्रदानकर्मणः
साङ्गतासिद्ध्यर्थंहिरण्यमग्निदैवतं रजतं वा चन्द्रदैवतममुकगोत्रायाऽ-
मुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

---

१. आज्य का दान चार, दो या एक सेटक की मात्रा में अथवा एक प्रस्थ (=३२ पल) की मात्रा में विहित है।

२. वस्त्र की लम्बाई आठ हाथ और चौड़ाई दो हाथ से कम न हो और किनारे कटे या फटे न हों।

अथ धान्यदानम्—

देय-धान्यं ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन् धान्य-दानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं धान्यप्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। धान्यप्रार्थना—

सर्वदेवमयं धान्य सर्वोत्पत्तिकरं महत्।
प्राणिनां जीवनं यस्मादतः शान्ति प्रयच्छ मे॥

अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये इमं धान्यं[1] प्रजापतिदैवतं (विश्वेदेवदैवतं वा) अमुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। कृतैतद् धान्यदानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं हिरण्यमग्निदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

अथ गुडदानम्—

गुडं ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन् गुडदानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं गुडप्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। अथ गुडप्रार्थना—

यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरश्च जनार्दनः।
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा॥
यथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः।
मम तस्मात् परां लक्ष्मीं ददस्व गुड सर्वदा॥

अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये इमं गुडं[2] सोमदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। कृतैतत् गुडदानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं हिरण्यमग्निदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

१. धान्य दान में देय धान या गेहूँ १६ पल से अधिक और ७७ सेठक या डेढ़ खारी (एक खारी = १६ द्रोण) विाहत है।

२. गुडदान ६० पल या ३ सेठक अथवा यथाशक्ति करे।

अथ रजतदानम्—

देयद्रव्यं—रजतं, ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिन् रजतदानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं रजतप्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। अथ रजतप्रार्थना—

प्रीतिर्यत्र पितॄणाञ्च विष्णु-शङ्करयोः सदा।
शिवनेत्रोद्भवं रौप्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपाप क्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये इदं रजतं[1] चन्द्र-दैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। कृतैतद्रौप्यदानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं हिरण्यमग्निदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

लवणदानम्—

देयद्रव्यं—लवण, ब्राह्मणं च सम्पूज्य, वरणद्रव्यमादाय, अस्मिंल्लवणदानकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं लवणप्रतिगृहीतृत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि। अथ लवणप्रार्थना—

यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना।
शम्भोः प्रीतिकरं नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे॥

अमुकगोत्रः अमुकोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये इमं लवणं[2] विष्णुदैवतम् अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ तत्सत् न मम। ॐ स्वस्ति। कृतैतल्लवणदानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं हिरण्यमग्निदैवतं अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्ति।

हस्ते जलमादाय एभिर्दशदानैर्मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीपापापहा

१. रजत दान तीन निष्क या तीन पल या एक पल अथवा सामर्थ्यानुसार करे।

२. लवण-दान १६ पल से अधिक ७७ सेठक या डेढ़ खारी (एक खारी = १६ द्रोण) तक या यथाशक्ति करे।

विष्णुः प्रीयताम् । इति जलमुत्सृजेत् ।

दशदान-विकल्पः—

दशदानवस्तूनामलाभे यथाशक्त्या दशदाननिष्क्रयद्रव्यं देयम् । तत्र सङ्कल्पः अद्येत्यादि० मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये गो-भू-तिल-हिरण्याऽऽज्य-वासो-धान्य-गुड-रौप्य-लवण इति दशद्रव्यनिष्क्रय-भूतं द्रव्यममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे । निष्क्रये तु दक्षिणाभावः ।

बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ।
विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं पातयन्ति हि ॥

इति वचनमनुसृत्य एका गौ तन्निष्क्रयद्रव्यं वा एकस्मै ब्राह्मणाय-दद्यात्, न तु बहुभ्यः ।

दानान्ते प्रार्थना—

इमानि दश दानानि दत्तानि मलशुद्धये ।
दानेन यज्ञपुरुषः प्रीयतां न ममेति च ॥

मया कृतं सर्व-प्रायश्चित्तमच्छिद्रमस्तु ।

व्रतच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ।
सर्वं भवतु मेऽच्छिद्रं ब्राह्मणा भवतां गिरा ॥

अस्त्वच्छिद्रमिति ब्राह्मणा वदेयुः ।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि ॥

इति जोशीत्युपाह्व आचार्य डा० महेशचन्द्रशर्मणा संकलितः संपादितश्च सर्वप्रायश्चित्तप्रयोगो दशदानविधि-सहितः समाप्तः ।

—— * ——

अथ परिशिष्टे

जलयात्राप्रयोगः

आचार्य डॉ० महेशचन्द्र जोशी

जलयात्राविधानम्—

[सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश (पृ० ९) में वसिष्ठ के नाम से जलयात्रा-विधान के बोधक अधोलिखित श्लोक उद्धृत हैं । इन्हीं को आंशिक परिष्कार के साथ प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव (पृ० ८१) में भी उद्धृत किया गया है] ।

शान्तिकं पौष्टिकं चैव जलयात्रां विना बुधः ।
कुरुते यदि वै मोहात्कर्म तस्य च निष्फलम् ॥ १ ॥
तडागादिप्रतिष्ठासु देवतायतनादिषु ।
लक्षहोमे कोटिहोमे ऽयुतहोमे तथैव च ॥ २ ॥
रुद्रादि पञ्चरुद्रेषु यज्ञे चाचरिते शुभे ।
व्रतोत्सवेषु कार्येषु महादाने तथैव च ॥ ३ ॥
जलयात्रां पुरा कृत्वा श्रेष्ठकर्म समारभेत् ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि जलयात्राविधिं शुभम् ॥ ४ ॥
पञ्चरात्रे तथा तत्र मया प्रोक्तं तु नारद[1] ।
यजमानः सपत्नीको बन्धुभिः परिवारितः[2] ॥ ५ ॥
गजेरश्वैः समायुक्तो नानारथसमन्वितः ।
संभारांस्तत्र संगृह्य कलशान्काञ्चनादिकान् ॥ ६ ॥

१. यज्ञशालामतिक्रम्य ऋत्विग्भिः ब्राह्मणैः सह । प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव, पृ० ८१ में उद्धृत ।

२. सुहृद्बन्धुजनैर्युतः—तत्रैव ।

तदभावे तु मृत्कुम्भान्नूतनान्दृढता युतान् ।
बाणसप्तरसगुणान्षष्टिरष्टोत्तरं शतम् ॥ ७ ॥
युवत्यस्त्वमलारूपाःसावित्रीमङ्गलाः शुभाः ।
शङ्खभेरीमृदङ्गाश्च[?] वेदध्वनि-समन्वितैः ॥ ८ ॥
यज्ञशालामतिक्रम्य द्विजादिजनसंयुतैः ।
सृष्टिमार्गेण गन्तव्यं सिद्धिकामैश्च नारद ॥ ९ ॥
अशुष्कं च ह्रदं गत्वा स्रवत्स्रोतं तु पावनम् ।
तडागं विमलं जीर्णं कूपं वाप्युत्तमं व्रजेत्[1] ॥ १० ॥
इन्द्रघोषस्त्वेति रक्षोच्चित्पतिर्मापवित्रकम् ।
तत्तीरे च समालिख्य यवैः स्वस्तिकमुत्तमम ॥ ११ ॥
पद्मं वापि समालिख्य स्थापयेत्कलशांस्ततः[2] ।
यजमानः सपत्नीको गच्छेत्त जलसन्निधौ ॥ १२ ॥
जलमातृश्च संपूज्याऽऽवाहयेज्जलदेवताः ।
जीवमातृस्ततः पूज्या गन्धपुष्पैर्यथाविधि ॥ १३ ॥
वारुणैर्विविधैर्मन्त्रैर्वरुणं पूजयेत्ततः ।
सप्तसागरपूजां च जले दद्यात्ततो बलिम् ॥ १४ ॥

जलयात्रा-प्रयोगः—

प्रतिष्ठा-यागारम्भदिनात् पूर्वदिवसे जलयात्रां चिकीर्षुर्यजमानः स्वगृहे यागमण्डपे वा देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं करिष्यमाण अमुक देवप्रतिष्ठा-यागकर्माङ्गत्वेन जलयात्रां करिष्ये । तत्रादौ निर्विघ्नता-सिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजन करिष्ये । इति संकल्प्य गणेशाम्बिकयोः पूजनं कृत्वा पुत्र-कलत्रबान्धवादिभिः कलशहस्ताभिः सुवासिनीभिश्च सहितः साचार्यो यजमानः शान्तिसूक्तादि (आ नो भद्रा॰ इत्यादि) वेदमन्त्रोच्चार-भगवन्नाम कीर्तन-गीतवादित्र-पुरःसरञ्च समुद्रगामिनीं नदीं, पुण्यं जलाशयं वा गच्छेत् ।

तत्र गत्वा प्रतिष्ठा-यागकर्माधिकारसिद्ध्यर्थं सर्वप्रायश्चित्तं प्रागकृतं चेत् तर्हि तदैवादौ पूर्वोक्तसर्वप्रायश्चित्तप्रयोगविधिना कुर्यात्[1]।

ततः सुस्नातः सम्यगाचान्तः कुशपवित्रहस्तो यजमानो देशकालादिसंकीर्त्य अमुकोऽहं मम सपुत्रस्त्रीबान्धवस्य सपरिवारस्य तथान्येषां जलयात्रायां समागतानां सहयोगिनां जनानाञ्च सर्वविघ्न-कल्याणपूर्वकं धर्मार्थकाममोक्षाख्य-चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्री-परमेश्वर-प्रीत्यर्थम् अमुकदेवप्रतिष्ठा-यागकर्म-साङ्गतार्थं तत्पूर्वाङ्गत्वेन गणेशाम्बिकयोः पूजनपूर्वकम अस्यां नद्याम्, अस्मिन् जलाशये वा जलपूरितकलशेषु च तीर्थावाहनं, जलमातृणां पूजनं, जीवमातृणां पूजनं, स्थलमातृणां पूजनं, वरुणपूजनं, जले आज्यहोमं; बलिदानं मत्स्यादिभ्यो दिक्पालेभ्यश्च कृत्वा क्षेत्रपालाय च मध्यमार्गे बलिदानमहं करिष्ये । इति ।

ततश्च नदीतीरे जलाशयोपान्ते वा स्थण्डिलं कृत्वा तदुपरि रक्तवस्त्रमास्तीर्य तत्र गणेशाम्बिकयोः पूजनं कुर्यात् । पुनस्तदग्रे (स्थण्डिले) रक्तोवस्त्रोपरि अक्षतादिभिः (श्वेतवस्त्रोपरि तु कुङ्कुमादिभिः) पद्माकारं वा नवकोष्ठान् वा कृत्वा तत्र दिक्षु, विदिक्षु, मध्ये च गन्ध-पुष्पादिभिः सुपूजितान् समलङ्कृतान् नदी-जलाशय-जलपूरितान् नव वर्धिनी-कलशान् 'ॐ मही द्यौः' इत्यादि मन्त्रैः स्थापयेत् ।

तत्समकालमेव सुवासिनीभिराहूतान् कलशानपि जलेनापूर्य गन्धपुष्पादिभिः संपूज्य तत्र तत्र तत्समक्षं संस्थापयेत् ।

ततो वर्धिनीकलशेषु [सममेव तत्र तत्र स्थापितेषु सुवासिनीभि-

१. जलाशयं ततो गच्छेत् गीतवादित्रनिःस्वनैः । अनिन्द्य च ह्रदं गच्छेन्नदीं वाथ समुद्रगाम् । सुवासिन्योऽग्रतः कृत्वा सर्वालंकार भूषिताः ॥—तत्रैव
२. जलाशयं समासाद्य तीरे गोमयलेपिते । चतुरस्रे कृते क्षेत्रे तत्र स्वस्तिकमालिखेत् । यवैर्वा तण्डुलैर्वाऽपि पद्ममष्टदलं लिखेत् । चत्वारः कलशाः स्थाप्याः कोणेषु च समाहितैः । तत्र सम्पूजयेद् देव वरुणं यादसां पतिम् । इत्यादि—तत्रैव ।

१. सर्वप्रायश्चित्त प्रयोग हेतु द्रष्टव्य, पीछे पृष्ठ ४६२-४७० ।

राहृतकलशेष्वपि] 'ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा०' इति वैदिक मन्त्रेण तथा—

मकरस्थं पाशहस्तमम्भसां पतिमीश्वरम् ।
आवाहये प्रतीचीशं वरुणं यादसां पतिम् ॥
आवाहयामि देवेश वरुणं जलनायकम् ।
यादःपृष्ठ-समारूढं पाशहस्तं महाबलम् ॥

इति मन्त्रेण च वरुणमावाह्य षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा संपूज्य तेषु कलशेषु वक्ष्यमाणमन्त्रैस्तीर्थान्यावाहयेत् ।

तीर्थावाहनम्—

ततो नद्यां, तडागादि-जलाशये वा जलपूरित-कलशेषु वा तीर्थावाहनं कुर्यात्—

काशी कुशस्थली मायाऽवन्त्ययोध्या मधोः पुरी ।
शालिग्रामः सगोकर्णो नर्मदा च सरस्वती ॥
झषारूढा सरोजाक्षी पद्महस्ता शशिप्रभा ।
आगच्छतु सरिज्ज्येष्ठा गङ्गा पापप्रणाशिनी ॥
नीलोत्पलदलश्यामा पद्महस्ताम्बुजेक्षणा ।
आयातु यमुना देवी कूर्मयानस्थिता सदा ॥
प्राची सरस्वती पुण्या पयोष्णी गौतमी तथा ।
उर्मिला चन्द्रभागा च सरयू गण्डकी तथा ॥
वितस्ता च विपाशा च नर्मदा च पुनः पुनः ।
कावेरी कौशिकी चैव गोदावरी महानदी ॥
मन्दाकिनी वशिष्ठा च तुङ्गभद्रा शशिप्रभा ।
अमरेशः प्रभासश्च नैमिषं पुष्करं तथा ॥
कुरुक्षेत्रं प्रयागं च गङ्गासागरसङ्गमम् ।
एता नद्यश्च तीर्थानि गुह्यक्षेत्राणि सर्वशः ।
तानि सर्वाणि आयान्तु पावनार्थं द्विजन्मनाम् ॥

इति नदीनां तीर्थानाञ्चावाहनं कृत्वा 'गङ्गादिनदीभ्यो नमः,

'पुष्करादितीर्थेभ्यो नमः' । इति पञ्चोपचारैः पूजनं कुर्यात् ।

[ततो जलमध्ये वरुणदेवस्य पूजनं कुर्यात् । इति केचित् वदन्ति]—

ततश्च यजमानाग्रे रक्तवस्त्रोपरि पंक्तित्रयं दक्षिणोत्तरं प्रकल्प्य तासु पङ्क्तिषु सप्त-सप्ताक्षतपुञ्जान् उदक्संस्थान् स्थाप्य प्रथम पंक्त्यां स्थापित-सप्ताक्षतपुञ्जेषु जलमातॄणां, तदग्रे स्थापितेषु सप्ताक्षतपुञ्जेषु जीवमातॄणां, तत्पुरतः सप्ताक्षतपुञ्जेषु स्थलमातॄणाञ्च पूजनं कुर्यात् ।[1] आसां नामानि संप्रदायभेदाद् भिद्यन्ते । यथा—रुद्रकल्पद्रुमे—मत्सी, कूर्मी, वाराही, दर्दुरी, मकरी, जलूकी, तन्तूकी चेति सप्त जलमातृकाः समाख्याताः[2] किन्तु ता एव सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाशाख्ये ग्रन्थे जीवमातृः कथिता ।[3] तत्र च जलमातृषु ऊर्मि-लक्ष्मी-जला-पाना वारुणी-जलवासिनी-आपगा चेति सप्त परिगणिताः ।[4] ग्रन्थेऽस्मिन् रुद्रकल्पद्रुममनुसृत्यैव जलमातॄणां; जीवमातॄणां स्थलमातॄणाञ्च पूजनं विहितम् ।[5]

जलमातृकापूजनम्—

यजमानाग्रे स्थण्डिले कलशान् स्थाप्य आग्नेयकोणे स्थण्डिलोपरि

---

१. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाशे पूर्वादिक्रमेणाष्टकलशोपरि जलमातॄणां पूजनम्, कुम्भोत्तरतः स्थण्डिलोपरि अक्षतपुञ्जेषु जीवमातॄणां पूजनम् तथा मध्यकलशस्य दिक्षु विदिक्षु च स्थलमातॄणां पूजनं विहितम् ।

२. मत्सी कूर्मी च वाराही दर्दुरी मकरी तथा ।
जलूकी तन्तुकी चैव सप्तैता जलमातरः ॥—रुद्रकल्पद्रुम ।

३. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १० में उद्धृत ।

४. ऊर्मिर्लक्ष्मी-जला-पाना-वारुणी-जलवासिनी ।
आपगा च क्रमेणैव सप्तैता जलमातरः ॥
(सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० १० में उद्धृत)

५. जलमातॄणां, जीवमातॄणां स्थलमातॄणाञ्च पूजायां वैदिकमन्त्राः प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णवे, पौराणिकमन्त्राश्च सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाशे द्रष्टव्याः ।

वस्त्रमास्तीर्य तत्र सप्ताक्षतपुञ्जेषु उदकसंस्थेषु जलमातॄणां नाममन्त्रेणावाहनं पूजञ्च कुर्यात्। तद्यथा—

ॐ भूर्भुवः स्वः मत्स्यै नमः। मत्सीमावाहयामि स्थापयामि।
ॐ भूर्भुवः स्वः कूर्म्यै नमः। कूर्मीमावाहयामि स्थापयामि।
ॐ भूर्भुवः स्वः वाराह्यै नमः। वाराहीमावाहयामि। स्थाप॥
ॐ भूर्भुवः स्वः दर्दुर्यै नमः। दर्दुरीमावाहयामि स्थापयामि।
ॐ भूर्भुवः स्वः मकर्यै नमः। मकरीमावाहयामि स्थापयामि।
ॐ भूर्भुवः स्वः जलूक्यै नमः। जलूकीमावाहयामि स्थापयामि।
ॐ भूर्भुवः स्वः तन्तूक्यै नमः। तन्तूकीमावाहयामि स्थापयामि।

ततश्च 'मनो जूतिरि'ति प्रतिष्ठाप्य 'ॐ भूर्भुवः स्वः मत्स्यादि सप्त जलमातृकाभ्यो नमः' इति पठन् षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्।

जीवमातृकापूजनम्—

तत्रैव पुरतः वस्त्रमास्तीर्य उदकसंस्थान् सप्ताक्षतपुञ्जान् कृत्वा तत्र कुमारी-धनदा-नन्दा विमला-मङ्गला-जया-पद्मा चेति सप्त जीवमातॄणां नाममन्त्रेणावाहनं पूजनञ्च कुर्यात्।[1] [कूर्माचल क्षेत्रे तु कल्याणी-मङ्गला-भद्रा-पुण्या-पुण्यमुखी-जया-विजया चेति सप्तजीवमातरः पूज्यन्ते।[2] केचित्तु मत्सी-कूर्मी-जलौका-दर्दुरी-जलगोधिका-

1. कुमारी धनदा नन्दा विमला मङ्गला जया।
पद्मा चेति समाख्याताः सप्तैता जीवमातरः॥ रुद्रकल्पद्रुम।
तु०—कुमारी धनदा नन्दा विपुला मङ्गलाऽचला।
पद्मा चैव समाख्याताः सप्तैता द्वारमातरः॥
(संस्कारदीपक द्वितीयभाग पृ० १६१)

2. कल्याणी मङ्गला भद्रा पुण्या पुण्यमुखी तथा।
जया च विजया चैव सप्तैता जीवमातरः॥
(संस्कारदीपक, द्वितीयभाग, पृष्ठ १६२)

मकरी-तन्तुकीति जीवमातृ-रूपेण पूजयन्ति।[1] तत्तु सम्प्रदायानुरोधेन बोद्धव्यम्।]

ॐ भूर्भुवः स्वः कुमार्यै नमः। कुमारीमावाहयामि स्थापयामि।
,, भूर्भुवः स्वः धनदायै नमः। धनदामावाहयामि स्थापयामि।
,, भूर्भुवः स्वः नन्दायै नमः। नन्दामावाहयामि स्थापयामि।
ॐ भूर्भुवः स्वः विमलायै नमः। विमलामावाहयामि स्थापयामि
,, भूर्भुवः स्वः मङ्गलायै नमः। मङ्गलामावाहयामि स्थापयामि
,, भूर्भुवः स्वः जयायै नमः। जयामावाहयामि स्थापयामि।
,, भूर्भुवः पद्मायै नमः। पद्मामावाहयामि स्थापमामि।

इत्यावाह्य 'मनोजूति' रिति प्रतिष्ठाप्य 'ॐ भूर्भुवः स्वः कुमार्यादि सप्त जीवमातृकाभ्यो नमः'। इति पठन् षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्।

स्थलमातृका-पूजनम्—

स्थण्डिलोपरि वस्त्रमास्तीर्य तदुपरि सप्ताक्षतपुञ्जानुदकसंस्थान् कृत्वा तेषु सप्तस्थलमातृकाणामावाहनं पूजनञ्च कुर्यात्।[3] तद्यथा—

ॐ भूर्भुवः स्वः ऊर्म्यै नमः।[4] ऊर्मिमावाहयामि स्थापयामि।
,, ,, ,, लक्ष्म्यै नमः। लक्ष्मीमावाहयामि स्थापयामि।

1. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० १० में उद्धृत।
2. अचलायै नमः।—पाठान्तर।
3. ऊर्मिर्लक्ष्मी महामाया पानदेवी तथैव च।
वारुणी नर्मदा गोधा सप्तैता स्थलमातरः॥ रुद्रकल्पद्रुम।
तु०—उमा लक्ष्मी-महामाया पानदेवी तथैव च।
वारुणी निर्मला गोधा सप्तैता स्थलमातरः॥
(सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११ में उद्धृत)
4. सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश पृ० ११ में उद्धृत श्लोक में उपर्युक्त 'ऊर्मि' के स्थान पर 'उमा' पाठ है।

ॐ भूर्भुवः स्वः महामायायै नमः। महामायामावाहयामि स्थापयामि।

ॐ ,, ,, पानदेव्यै नमः। पानदेवीमावाहयामि स्थाप०।

,, ,, ,, वारुण्यै नमः। वारुणीमावाहयामि ,, ।

,, ,, ,, नर्मदायै नमः।' नर्मदामावाहयामि ,, ।

ॐ ,, ,, गोधायै नमः। गोधामावाहयामि स्थापयामि।

इत्यावाह्य 'मनोजूति०' इति प्रतिष्ठाप्य 'ॐ भूर्भुवः स्वः उर्म्यादि सप्त स्थलमातृकाभ्यो नमः'। इति पठन् षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्।

वरुणपूजनम्—

ततो नद्यां जलाशये वा वरुणं पूजयेत्। तत्रादौ स्वशरीरे नाममन्त्राक्षरन्यासः। तद्यथा—

ॐ वं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ रुं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ णां मध्यमाभ्यां नमः। ॐ यं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ नं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ मं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासमपि कुर्यात्। ध्यानम्—

चन्द्रप्रभं पङ्कजसन्निषण्णं पाशाङ्कुशाभीतिवरं दधानम्।
मुक्ताविभूषाञ्चित सर्वगात्रं ध्यायेत् प्रसन्नं वरुणं विभूत्यै।'

अथवा

अच्छांशुकाभरणमाल्यविलेपनाढ्यः
पाशाङ्कुशाभयवरोद्यतदोः सरोजः।

---

१. सर्गदेवप्रतिष्ठाप्रकाश में उद्धृत श्लोक में तथा प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव में नर्मदा के स्थान पर निर्मला पाठ है।

२. शारदातिलक. २३।५७। वरुण के ध्यान का अन्य मन्त्र हयशीर्षागम से शब्दकल्पद्रुम में 'वरुण' शब्द में उद्धृत है।

स्वच्छारविन्दवसतिः सुसितः प्रसन्नः
भूयात् विभूतिविभवे वरुणश्चिरं वः।।'

वरुणावाहनम्—

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ँ स मा न आयुः प्रमोषीः।।

मकरस्थं पाशहस्तम्भसां पतिमीश्वरम्।
आवाहये प्रतीचीशं वरुणं यादसां पतिम्।।
आवाहयामि देवेशं वरुणं जलनायकम्।
यादःपृष्ठसमारूढं पाशहस्तं महाबलम्।।'

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः। आवाहनार्थे पुष्पं समर्पयामि।'

ततो 'वरुणाय नमः' (ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः) इति नाम-मन्त्रेण श्वेतगन्धाक्षत-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-नानाफल-ताम्बूल-दक्षिणाभिः संपूज्य वक्ष्यमाणमन्त्रेण नारिकेलेण अर्घ्यं दद्यात्—

ॐ श्वेताभ्रशिखराकार सर्वभूतहिते-रत।
गृहाणार्घ्यमिमं देव जलनाथ नमोऽस्तु ते।।

इत्यर्घ्यं दत्त्वा वक्ष्यमाणमन्त्रैः प्रणमेत्—

ॐ उरु ँ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेत वा उ। अपदे पादा प्रतिधातवे करुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्। नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः।।

---

१. प्रपञ्चसारतन्त्र से उद्धृत।

२. वरुण के आवाहन के अन्य मन्त्र—

एह्येहि यादोगण-वारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते।।
तीक्ष्णायुधं तीक्ष्णगतिं दिगीशं चराचरेशं वरुणं महान्तम्।
प्रचण्डपाशाङ्कुश-वज्रहस्तं भजामि देवं कुलवृद्धिहेतोः।।
आवाहयाम्यहं देवं वरुणं यादसां पतिम्।
प्रतीचीशं जगत्प्राणसेवितं पाशहस्तकम्।।

वरुणो धवलो जिष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः ।
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय ।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

इति प्रणम्य वक्ष्यमाणवैदिकमन्त्रैः पौराणिकमन्त्रैर्वा प्रार्थयेत्—

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामस्यु रा चके ।

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान-
स्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्यु
रुश ँ स मा न आयुः प्रमोषीः ॥

ॐ माऽऽपो मौषधीर्हि ँ सीर्धाम्नो
धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च ।
यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे
ततो वरुण नो मुञ्च ॥

ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं वि मध्यम ँ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥

ॐ मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देवकिल्विशात् ॥

ॐ अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यै-
र्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥

ॐ वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य
हेडो अव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा ँसि

प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ॥
अव यक्ष्व नो वरुण ँ रराणो वीहि
मृडीक ँ सुहवो न एधि ॥

ॐ मित्र ँ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताची ँ साधन्ता ॥

इति वैदिकमन्त्रैः पौराणिकमन्त्रैर्वा प्रार्थयेत् । [ततः स्नानार्थिनां कृते जले स्रुवरेखया तीर्थ-कल्पनं कुर्यात् ।[1]

नदी-जलाशय-पूजनम्—

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत् सरित् ॥

इति मन्त्रेण गन्ध-पुष्पादिभिर्नदीं जलाशयं वा संपूज्य तेनैव ('पञ्च नद्यः०' इति) मन्त्रेण तज्जले पञ्चगव्यं क्षिपेत् ।

जले आज्यहोमः—

ततश्च तज्जलाशयस्य नद्या वा जलेऽग्निं ध्यात्वा 'ॐ वरुणरूपी-वश्वानराय नमः' इति मन्त्रेण अथवा 'ॐ वडवारूपाग्नये नमः' इति मन्त्रेण जलान्तःस्थितमग्निं गन्धादिभिः संपूज्य स्रुवेण जले वक्ष्यमाण द्वादश नाममन्त्रैराज्यहोमं कुर्यात्—

ॐ अद्भ्यः स्वाहा । इदमद्भ्यो न मम ।
,, वार्भ्यः स्वाहा । इदं वार्भ्यो न मम ।
,, उदकाय स्वाहा । इदमुदकाय न मम ।
,, तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा । इदं तिष्ठन्तीभ्यो न मम ।
,, स्रवन्तीभ्यः स्वाहा । इदं स्रवन्तीभ्यो न मम ।
,, स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा । इदं स्यन्दमानाभ्यो न मम ।
,, कूप्याभ्यः स्वाहा । इदं कूप्याभ्यो न मम ।
,, सूद्याभ्यः स्वाहा । इदं सूद्याभ्यो न मम ।

१. स्रुवरेखया स्नानार्थं तीर्थं निर्दिशेत्—इत्यभिप्रायः ।

ॐ धार्याभ्यः स्वाहा । इदं धार्याभ्यो न मम ।
" अर्णवाय स्वाहा । इदमर्णवाय न मम ।
" समुद्राय स्वाहा । इदं समुद्राय न मम ।
ॐ सरिराय स्वाहा । इदं सरिराय न मम ।

ततो 'नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय०'' इति वरुणं नमस्कृत्य अर्घ्यपात्रे गन्धाक्षतपुष्पाणि क्षिप्त्वा जलेनापूर्य—

ॐ अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहाऽर्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा । (यजु० २२।२५) । इति पठित्वा 'श्वेताभ्रशिखराकार०' इति मन्त्रं पठन् अर्घ्यं[2] [वारत्रयं] दत्त्वा श्रीफलं जले प्रक्षिपेत् ।

मत्स्यादिभ्यो बलिदानम्—

मुद्ग-माष-चणक-भक्त-कोरदूष-यवादि द्रव्याणि पर्णपुटके वा मृण्मयादिपात्रे वा संस्थाप्य 'ॐ बलिद्रव्याय नमः ।' इति गन्धादिभिः संपूज्य वक्ष्यमाणमन्त्रैर्जले मत्स्यादिभ्यो बलिं क्षिपेत् ।

ॐ यस्य कूर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै देवा अधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥
बलिं गृह्णन्तु ते देवा ये केचिज्जलमाश्रिताः ।
बुभुक्षितान्नहीनाश्च कृपणा जलवासिनः ।
भूत-प्रेत-पिशाचाश्च ये केचिद् वरुणालयाः ।
तृप्तास्ते मे श्रियं दद्युर्विघ्नान् रक्षन्तु सर्वदा ।
मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ।
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूताः प्रेताः सुखावहाः ॥

इति मन्त्रैर्जलमध्ये मुद्ग-माषादि विकीर्य हस्तौ प्रक्षाल्य आचामेत् ।

१. द्रष्टव्य—पीछे, पृ० ४८० ।
२. वरुण के लिए अर्घ्य दान का मन्त्र 'श्वेताभ्र०' इत्यादि पीछे पृ० ४७९ में देखें ।

ततश्च वक्ष्यमाणमन्त्रैः प्रार्थयेत् इत्येके ।[1]

समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवं सवितारं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दांसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाऽग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिव्यं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनाऽऽपृण स्वाहा ॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा ।
अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाऽप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा ।
अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाऽशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः स त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥
समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥
उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपदा दहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन्पथि देवयाने भूयात् ॥

१. द्रष्टव्य—सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, पृ० १३ ।

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत् सरित्॥

इत्यादि मन्त्रान् पठित्वा तीर्थं प्रणम्य कलशसमीपमागत्य वरुणं प्रार्थयेत्—

प्रतीचीश नमस्तुभ्यं सर्ववैरिनिषूदन[1]।
पवित्रं कुरु मां देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यावान्विधिरनुष्ठितः।
तत्सर्वं त्वत्प्रसादेन संपूर्णं भवतु प्रभो॥[2]
त्वमापो योनिः सर्वेषां देवदानवरक्षसाम्।
स्वेदजोद्भिजजातीनां रसानां पतये नमः॥
नदी-सागरमाश्रित्य कलशेषु समाश्रितः।
प्रसादं कुरु देवेश आगच्छ यगमण्डपे॥
अभ्यर्चितो मया भक्त्या परिवारसमन्वितः[3]।
सान्निध्यं कुरु देवेश मदीये[4] यागमण्डपे॥

इति प्रार्थ्य पूर्वादि दिक्षु इन्द्रादि दिक्पालेभ्यो बलिदानं कुर्यात्। तद्यथा—
'ॐ इन्द्राय नमः।' इति क्रमेण प्रत्येकं तत्तन्नाममन्त्रेण 'ॐ इन्द्रादि दशदिक्पालेभ्यो नमः'। इत्येकतन्त्रेण वा दशदिक्पालान् गन्धपुष्पादिभिः संपूज्य, पर्णपुटके मृण्मयादि पात्रे वा माष-भक्त बलीन् निधाय पूर्वे—इन्द्राय नमः। इन्द्रानुचरेभ्यो नमः। —इति क्रमेण आग्नेयादावपि अग्न्यादिभ्यो सानुचरेभ्यो बलिं दद्यात्। अथवा—प्राच्यै दिशे स्वाहा०[5] इति मन्त्रं पठित्वा 'इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः सानुचरेभ्यो

१. सर्वाघनिषूदन। —विधान पारिजात, प्रथम खण्ड, पृ० १६।
२. तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जलाधिप॥ तत्रैव।
३. परिवारैर्जलाधिप। —पाठान्तर। ४. पवित्रे। —पाठान्तर।
५. प्राच्यै दिशे स्वाहा०। इत्यादि मन्त्र पीछे पृष्ठ ३१५ में देखें।

नमः।' इत्येकतन्त्रेण दशदिक्पालेभ्यो बलिं दद्यात्।

ततः सम्प्रदायानुरोधेन देवेभ्योऽपि माषभक्तबलिं दद्यात्—

ॐ ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादशस्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥

इति मन्त्रेण देवेभ्यो बलिं दद्यात्।

ततश्च तीर्थं प्रणम्य अक्षतपुञ्जेष्वावाहितानां जलमातृकादीनां विसर्जनं कृत्वा 'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या०' इत्यादि पठित्वा कर्मसंपूर्ति-कामो विष्णुं[1] स्मृत्वा आचार्यादिभ्यो दक्षिणां दद्यात्। सुवासिनीभ्यश्च हरिद्रादिसौभाग्यद्रव्याणि चणकादिनैवेद्यं च दद्यात्। ततः कलशानुत्थापयेत्—

ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥

इति मन्त्रं पठन् कलशानुत्थाप्य सुवासिनीनां हस्ते दद्युः। ब्राह्मणाश्च 'ॐ यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां[2] शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु॥ इति मन्त्रं पठेयुः। ततः 'आ नो भद्रा०' इति शान्तिपाठं, शाकुनसूक्तं, पावमानसूक्तं, सहस्रशीर्षेति पुरुषसूक्तञ्च पठद्भिर्ब्राह्मणैः सह सपुत्र-स्त्रीबान्धवो यजमानः सुवासिनीः पुरस्कृत्य यागमण्डपं प्रत्यागच्छेत्।

क्षेत्रपाल बलिदानम्—

अर्धमार्गे समागत्य चतुष्पथे किञ्चिद् भूमिमुपलिप्य क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्।

१. द्रष्टव्य—पीछे, पृष्ठ ३३।
२. द्रष्टव्य-पीछे, पृष्ठ ५२ टि० १; पृ० ५३ टि० १।

[अत्रैव दिक्पालबलिदानमपीच्छन्ति केचित् । तत्तु पूर्वोक्त विधिनेव कुर्यात् । पर्णपुटके वंशादिपात्रे वा माष-भक्तबलीन् स्थाप्य 'इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः सानुचरेभ्यो नमः ।' इति संपूज्य 'प्राच्यै दिशे स्वाहा०'[1] इति पठन् 'इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः सानुचरेभ्य इमं बलिं समर्पयामि ।' इत्येकतन्त्रेण इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो बलिं दद्यात् । अथवा, पूर्वे-इन्द्रं सम्पूज्य 'इन्द्राय सानुचराय नमः । इमं बलिं समर्पयामि ।' इतीन्द्राय बलिं दत्त्वाऽनेनैव प्रकारेण आग्नेयादि दिक्षु अग्न्यादीन् सम्पूज्य तेभ्यो बलीन् दद्यात् ।]

ततो गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ दर्भानास्तीर्य दर्भोपरि पाषाणं संस्थाप्य 'ॐ क्षेत्रपालाय नमः' इति नाममन्त्रेण क्षेत्रपाल गन्ध-पुष्पादिना सम्पूज्य माष-मुद्ग-भक्त-सुगन्धितैल-रक्तवस्त्रादियुतं बलिं गृहीत्वा —

ॐ नमो भगवते क्षेत्रपालाय भासुराय त्रिनेत्र ज्वालामुख अवतर अवतर कपिल पिङ्गल ऊर्ध्वकेश जिह्वाललन शत्रूंश्छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि कुरु कुरु मुरु मुरु चल चल[2] ह्लीं ह्लीं हूं हूं बलिं गृहाण स्वाहा । इति पठित्वा बलिं दद्यात् ।

ततो हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य यजमानः सुवासिनीः पुरस्कृत्य आचार्यादि ब्राह्मणैः स्वकुटुम्बिजनैर्बान्धवैश्च सहितो मण्डपं प्रति निवर्तेत । मण्डप-पश्चिमद्वारमागत यजमानं तत्रस्थाः सुवासिन्यो नीराज्य मण्डपं नयेयुः । तत्र च यजमानस्तत्प्रतिनिधिर्वा जलयात्रातः प्रत्यागताभ्यः सुवासिनीभ्यो जलकलशानादाय तज्जलं मणिके क्षिपेत् ।

इति । आचार्य डा० महेशचन्द्र जोशी-रचितो जलयात्राप्रयोगः समाप्तः ।

—*—

1. प्राच्यै दिशे स्वाहा० इत्यादि मन्त्र पीछे पृष्ठ ३१५ में देखें ।
2. चल चल लल ह्लीं ह्लीं हूं हूः बलिं गृहाण स्वाहा । विधानपारिजात, प्रथम खण्ड, पृ० १६ ।

अथ परिशिष्टे

पञ्चाङ्ग-पूजन-प्रयोगः

सम्पादकः
आचार्य डॉ० महेशचन्द्र जोशी

ज्योतिर्विदोपदिष्टे सुमुहूर्ते गणपतिपूजनादिकर्म प्रारप्स्यन् यजमानः शुभासने प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य स्वदक्षिणतः पत्नीञ्चोपवेश्य, ललाटे तिलकं कृत्वा, आचम्य, 'ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०' इति मन्त्रेण कुशपवित्रधारणं कृत्वा, प्राणानायम्य, 'अपवित्र पवित्रो वा०', 'पुण्डरीकाक्षः पुनातु' इत्यात्मानं पूजन-सामग्रीं च सम्प्रोक्ष्य, 'ॐ पृथिवी त्वया धृता लोका०' 'आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इत्यासनं संप्रोक्ष्य, चिद्रूपिणि महामाये०' इति शिखाबन्धनं कृत्वा स्वपुरतः कुङ्कुमादिना अष्टदलं कृत्वा तदुपरि गणेशं गौरीञ्च स्थापयेत् । ततः 'स्वस्ति नो मिमीता०' इत्यादि ऋग्वेदोक्तान् स्वस्तिपाठ-मन्त्रान् 'आ नो भद्राः०' इति यजुर्वेदोक्तान् शान्तिपाठमन्त्रांश्च पठित्वा 'श्रीमन् महागणपतये नमः' ॐ लक्ष्मी-नारायणाभ्यां नमः'। इत्यादि 'सुमुखश्चैकदन्तश्च०' इत्यादि च पठित्वा —

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिञ्च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इति भैरवाज्ञाग्रहणं कृत्वा हस्ते कुश-जल-पुष्पाक्षतान् गृहीत्वा संकल्प कुर्यात् ।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः । श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराह-कल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते, अमुक क्षेत्रे (अविमुक्त-वाराणसी क्षेत्रे महाश्मशाने आनन्दवने गौरीमुखे त्रिकण्टक-विराजिते भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे) बौद्धावतारे षष्ट्यब्दानां मध्ये अमुक संवत्सरे अमुकायने अमुक ऋतौ महामाङ्गल्य-प्रदे मासोत्तमे अमुकमासे, अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकनक्षत्र अमुकवासरे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थित देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं गुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकराशिः अमुकोऽहं ममात्मनः सपुत्रस्त्री-बान्धवस्य सर्वारिष्टनिवृत्ति-त्रिविधतापोपशान्ति सकलपापोपशमन-पूर्वकञ्च दीर्घायुर्विपुलपुत्र-पौत्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिवृद्धि-स्थिरलक्ष्मी-कीर्तिलाभ-शत्रुपराजय-सकल-सुख-धर्मार्थकाममोक्षप्राप्त्यर्थं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फलप्राप्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पितृतो मातृतश्च दशपूर्वान् दशापरान् पुरुषानात्मानं चोद्धर्तुं परत्रानन्तकल्पविष्णुलोकवासोत्तरं विष्णुसायुज्यप्राप्तये सनवग्रहमख-सप्रासादवास्तुप्रतिष्ठापूर्वकं अस्यां अमुकदेवमूर्तौ (आसु अमुकामुकदेव-मूर्तिषु वा) लिङ्गे वा देवकला-सान्निध्यार्थं यथाविभवदेशकालाद्यनुसारतोऽमुकदेवमूर्तं (आसाममुका-मुकदेवमूर्तीनां वा) लिङ्गस्य वा स्थिरप्रतिष्ठां (चलप्रतिष्ठां वा) करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्ति-पुण्याहवाचन, मातृकापूजनं, वसोर्धारा-पूजनमायुष्यमन्त्रजपं, सांकल्पिकेन विधिना नान्दीश्राद्धम्, आचार्या-दिवरणं, भूमिपूजनं, मण्डप पूजनं, ग्रहस्थापन-सर्वतोभद्रमण्डलदेवता-स्थापनादि कर्म च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नता सिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनञ्च करिष्ये। इति सङ्कल्प्य दिग् रक्षणं कुर्यात्।

दिग रक्षणम्—

वामहस्ते गौरसर्षपान् गृहीत्वा तदुपरि दक्षिणहस्तमधोमुखं कृत्वा दक्षिणजानूपरिनिधाय वक्ष्यमाणामन्त्रैरभिमन्त्र्य सर्वदिक्षुविकिरेत्-

ॐ रक्षोहणं वलगहनं० । रक्षोहणो वो वलगहना० । रक्षसां भागोऽसि० । रक्षोहा विश्वचर्षणि० । इति रक्षोघ्नमन्त्रैरभिमन्त्र्य अपसर्पन्तु ते भूता० । पाखण्डकारिणो भूता भूमौ ये चान्तरिक्षगाः । दिवि लोके स्थिता ये च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया। इति च पठन् प्रादक्षिण्येन सर्वदिक्षु सर्षपान् विकीर्य वामपार्ष्णिघातत्रयेण छोटि-काभिस्तालत्रयेण च सर्वान् विघ्नानुत्सार्य उदकस्पर्शं कुर्यात्।

सूर्यार्घम्—

अर्घ्यपात्रे गन्धाक्षतपुष्पाणि निक्षिप्य 'शन्नो देवी'ति जलेनापूर्य 'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥ इति तीर्थान्यावाह्य सूर्यनारायणं। ध्यायेत्—

> ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
> नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
> केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
> हारी हिरण्मयवपुः धृतशङ्खचक्रः।

इति ध्यात्वा 'एहि सूर्य सहस्रांशो०' इत्यर्घं दद्यात्।

कर्मपात्रोदकाभिमन्त्रणम्—

पूजा-कर्मार्थं स्ववामभागे जलपूरितं कलशं स्थाप्य ॐ तत्त्वा यामि० ॥ मकरस्थं पाशहस्तमम्भसां पतिमीश्वरम्। आवाहये प्रतीचीशं वरुणं यादसां पतिम्। ॐ भूर्भुवः स्वः अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम् आवाहयामि स्थापयामि। ॐ मनो जूति० ॥ ॐ वरुणाय नमः। वरुण सुप्रतिष्ठितो वरदो भव।' इति प्रतिष्ठाप्य, गन्धादिभिः संपूज्य अनामिकया कलशं स्पृष्ट्वा 'कलशस्य मुखे विष्णुः०' इत्यादि पठित्वा अङ्कुशमुद्रया तीर्थान्यावाह्य, धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, मत्स्यमुद्रयाऽऽच्छाद्य, गन्ध-पुष्पादिभिः संपूज्य, 'देवदानव संवादे०' ॥ इत्यादि मन्त्रैः कलशं संप्रार्थ्य, तस्मादुदकं गृहीत्वाऽऽत्मानं पूजाद्रव्याणि च संप्रोक्षेत्।

दीपपूजनम्—

घृतदीपं प्रज्वाल्य निर्वातस्थले अक्षतपुञ्जोपरि स्थाप्य—'दीपस्थ-देवतायै नमः। सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि' । इति सम्पूज्य, 'भो दीप देवरूपस्त्वं० ॥' अनेन पूजनेन दीपदेवता प्रीयताम् ।

शङ्खपूजनम्—

शङ्ख चन्द्रार्कदैवत्यं० ॥ इति पठन् शङ्खं जलेनापूर्य 'ॐ अग्नि ऋ॑षिः पवमानः० ॥' ॐ भूर्भुवः स्वः शङ्खस्थ देवतायै नमः । आवा-हयामि सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि, नमस्करोमि। त्वं पुरा सागरो० ॥ इति नत्वा पाञ्चजन्याय विद्महे० ॥ इत्यादि पठित्वा शङ्खमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

घण्टापूजनम्—

आगमार्थं तु देवानां० ॥ इत्यादि पठित्वा घण्टानादं कृत्वा 'ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत् ते शिरो०' । सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः । विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः घण्टास्थाय गरुडाय नमः । आवाहयामि, सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि, नमस्करोमि ।

गणपतिपूजनम्

पीठ-शक्ति पूजनम्—

ॐ तीव्रायै नमः, ज्वालिन्यै नमः, नन्दायै नमः, भोगदायै नमः; कामरूपिण्यै नमः, सत्यायै नमः, उग्रायै नमः, तेजोवत्यै नमः, मध्ये विघ्नविनाशिन्यै नमः, । ॐ सर्वशक्तिकमलासनाय नमः ।

ध्यानम्—

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरतरुविमले रत्नसिंहासनस्थम् ।
दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयवरदधृतं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ॥

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं ध्यायेत् सिद्धिविनायकम् ॥

आवाहनम्—हे हेरम्ब त्वमेह्येहि ह्यम्बिकात्र्यम्बकात्मज ।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभपितुः पितः ॥
नागस्य नागहार त्वां गणराजं चतुर्भुजम् ।
भूषितं स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः ॥
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः ।
इहागत्य गृहाण त्व पूजां यागं च रक्ष मे ॥

ॐ गणानान्त्वा० ॥ सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः ॥ आवा-हयामि स्थापयामि ।

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम् ।
लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ अम्बे अम्बिके० ॥ गौर्यै नमः । गौरीमावाहयामि, स्थापयामि ।

प्राणप्रतिष्ठा—ॐ मनो जूति० ॥ अस्यै प्राणाः० ॥ गणेशाम्बिके
सुप्रतिष्ठिते वरदे भवेताम् ।

आसनम्—पुरुष एवेदं० ॥ रम्य सुशोभनं० ॥
नाना रत्नसमायुक्तं मुक्ताहारविभूषितम् ।
स्वर्णसिंहासनं चारु प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

पाद्यम्—एतावानस्य० ॥ उष्णोदकं० ॥
गौरीप्रिय नमस्तेऽस्तु शङ्करप्रिय सर्वदा ।
भक्त्या पाद्यं मया दत्तं गृहाण प्रणतप्रिय ॥

अर्घ्यम्—त्रिपादूर्ध्वं० ॥ अर्घ्यं गृहाण० ॥

आचमनम्—ततो विरा० ॥ सर्वतीर्थ० ॥

स्नानम्—तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः० ॥ गङ्गासरस्वती० ॥

पञ्चामृतस्नानम्—पञ्चनद्यः० ॥ पयोदधि घृतञ्चैव० ॥
स्नानं पञ्चामृतैर्देव गृहाण गणनायक ।
अनाथनाथ सर्वज्ञ गीर्वाणप्रणतप्रिय ॥

वस्त्रम्—तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऋच:० ॥ युवा सुवासा:० ॥
शीतवातोष्णसन्त्राणं० ॥

उपवस्त्रम्—सुजातो ज्योतिषा० ॥
यज्ञोपवीतम्—तस्मादश्वा० ॥ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं० ॥
गन्धम्—तं यज्ञं० ॥ त्वां गन्धर्वा० ॥ श्रीखण्डं चन्दनं० ॥
कुङ्कुमम्—कुङ्कुमं कान्तिदं दिव्यं देवानां प्रीतिवर्धनम् ।
कामदञ्चापि माङ्गल्यं कुङ्कुमं प्रतिगृह्यताम् ॥

अक्षता:—अक्षन्नमी० ॥ अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ० ॥
सिन्दूरम्—सिन्धोरिव प्राध्वने० ॥
नाना परिमलद्रव्याणि—अहिरिव० ॥ अबीरञ्च० ॥
पुष्पाणि—यत्पुरुषं० ॥ ओषधीः प्रतिमो० ॥ माल्यादीनि० ॥
दूर्वा—काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती० ॥
धूपम्—ब्राह्मणोऽस्य० ॥ धूरसि धर्व० ॥ वनस्पतिरसो० ॥
दीपम्—चन्द्रमा मनसो० ॥ साज्यं च वर्ति० ॥ भक्त्या दीपं० ॥
नैवेद्यम्—नाभ्या० ॥ अन्नपते० ॥
करोद्वर्तनम्—अंशुनाते अंशुः० ॥
ताम्बूलम्—यत्पुरुषेण० ॥ उतस्मास्य० ॥
पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एला-लवंगसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

फलम्—या: फलिनी० ॥ फलेश्च० ॥
दक्षिणा—हिरण्यगर्भः० ॥ हिरण्यगर्भगर्भस्थं ॥ पूजाफलसमृद्० ।
मोदकदानम्—अद्येह अमुकोऽहं अमुककर्म निमित्तकं गणेशप्रीतये इमान् दशमोदकान् ब्राह्मणाय दास्ये । इति संकल्प्य. 'नमो ब्रह्मण्यदेवाये'ति ब्राह्मणं गन्धाक्षतपुष्पैः संपूज्य मोदकान् दद्यात्—
विघ्नेश विप्ररूपेण गृहाण दशमोदकान्० ॥ इति ।

दूर्वाङ्कुरपूजनम्—एकविंशति दूर्वाङ्कुरान् गृहीत्वा प्रतिनाम दूर्वाङ्कुरयुग्मं समर्प्यान्तिमेन सह काण्डात् काण्डादिति पठन् एकं समर्पयेत्—
ॐ गणाधिप नमस्तेऽस्तु । ॐ उमापुत्र नमस्तेऽस्तु ।
ॐ अघनाशन नमस्तेऽस्तु । ॐ विनायक नमस्तेऽस्तु ।
ॐ ईशपुत्र नमस्तेऽस्तु । ॐ सर्वसिद्धिप्रदायक नमस्तेऽस्तु ।
ॐ एकदन्त नमस्तेऽस्तु । ॐ इभवक्त्र नमस्तेऽस्तु ।
ॐ मूषकवाहन नमस्तेऽस्तु । ॐ कुमारगुरो तुभ्यं नमोऽस्तु ।
(इति द्वौ द्वौ प्रतिनाम समर्प्य)—ॐ चतुर्थीश नमोऽस्तु ते;—
'ॐ काण्डात् काण्डात्०' इत्येकं समर्पयेत् ।
नीराजनम्—अग्निर्ज्योति० ॥ इदं हविः० । अन्तस्तेजो० ॥
प्रदक्षिणा—सप्ता० ॥ ये तीर्थानि० ॥ यानि कानि० ॥
पुष्पाञ्जलि—यज्ञेन यज्ञ० ॥ राजाधिराजाय ॥ स्वस्ति साम्राज्यं० ॥ तदप्येष० ॥ विश्वतश्चक्षु० ॥ नाना पुष्प० ॥
विशेषार्घ्यम्—रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष० ॥
प्रार्थना—विघ्नेश्वराय वरदाय० ॥ इत्यादि ।
प्रणाम:—सुमुखश्चैकदन्तश्चेत्यादि पठित्वा प्रणमेत्—
विघ्नवल्लीकुठाराय गणाधिपतये नमः ।
अविरलमदजलनिवह भ्रमरकुलानीकसेवितकपोलम् ।
अभिमतफलदातारं कामेशं गणपतिं वन्दे ॥ इति प्रणमेत् ।
कर्मार्पणम्—गणेशपूजने कर्म यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तेन सर्वेण सर्वात्मा प्रसन्नोऽस्तु सदा मम ॥
अनया पूजया गणेशाम्बिके प्रीयेतां न मम ।

———*———

कलश-स्थापनम्

भूमिस्पर्शः—'ॐ मही द्यौः०' अथवा 'ॐ भूरसि०' ॥
यवप्रक्षेपः—'ॐ ओषधयः सम:०' अथवा-'धान्यमसि०' ॥
कलशस्थापनम्—ॐ आ जिघ्र० ।
कलशे जलपूरणम्-ॐ वरुणस्योत्तम्भन० ॥
कलशे कुशब्रह्म स्थापनम्—आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो० ॥
गन्ध-प्रक्षेपः—त्वां गन्धर्वा० ॥
सर्वौषधी (हरिद्रा वा)-प्रक्षेपः—या ओषधीः० ॥
पवित्र-प्रक्षेपः—पवित्रे स्थो० । अथवा दूर्वाप्रक्षेपः—काण्डात्० ॥
पञ्चपल्लव-प्रक्षेपः—अश्वत्थे वो० ॥
सप्तमृद्-प्रक्षेपः—स्योना पृथिवि० ॥
पूगीफलप्रक्षेपः—याः फलिनी० ॥
पञ्चरत्न-प्रक्षेपः—परिवाजपतिः० ॥
हिरण्य-प्रक्षेपः—हिरण्यगर्भः० ॥
वस्त्रेण रक्तसूत्रेण च वेष्टनम्—'सुजातो ज्योतिषा०' अथवा 'युवा सुवासाः'० ॥
पूर्णपात्रस्थापनम्—पूर्णा दर्वि० ॥
नारिकेलस्थापनम्—याः फलिनी० ॥
वरुणावाहनम्—तत्वा यामि० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः । अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकम आवाहयामि स्थापयामि ।
प्रतिष्ठापनम्—ॐ मनोजूति० । ॐ वरुणाय नमः । वरुण सुप्रतिष्ठितो वरदो भव ।
पूजनम्—ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः । गन्धं समर्पयामि । इत्यादिप्रकारेण गन्धादि पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

कलशे तीर्थावाहनम्—कलशस्य मुखे विष्णुः० ॥ कुक्षौ तु सागराः० ॥ ऋग्वेदोऽथ० ॥ गायत्री चात्र० ॥ गङ्गे च यमुने चैव० ॥ ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि० ॥
कलश-प्रार्थना—देवदानवसंवादे० ॥ त्वत् तोये० ॥ शिवः स्वयं० ॥ त्वयि तिष्ठन्ति० ॥ त्वत् प्रसादादिमां० ॥
वरुण-प्रार्थना—नमो नमस्ते स्फटिक० ॥
पाशपाणे नमस्तुभ्यं पद्मिनी जीवनायक ।
पुण्याहवाचनं यावत् तावत् त्वं सन्निधौ भव ॥

—*—

अथ पुण्याहवाचनम्

स्वस्ति पुण्याहवाचनार्थं युग्म-विप्रान् उपवेश्य 'भूमि-देवाग्र जन्मासि०' इत्यर्घं हस्ते दत्त्वा, 'गन्धद्वारां' इति गन्धाक्षतपुष्पादिभिः संपूज्य 'नमोऽस्त्वनन्ताय०' इति संप्रार्थ्य 'एभिर्गन्धाक्षत-पुष्प-पूगी-फलद्रव्यै। पुण्याहवाचनार्थं त्वामहं वृणे' इति वरणसामग्रीं विप्रहस्ते दद्यात् । 'ॐ वृतोऽस्मि' इति विप्रोक्तिः । ततश्च अवनिकृतजानु-मण्डलः कमल-मुकुलसदृशमञ्जलिं शिरस्याधायानन्तरं वामान्वा-रब्धदक्षिणेन पाणिना सुवर्णपूर्ण-कलशं स्वमूर्ध्ना संयोज्य अञ्जलौ धारयित्वा आशिषः प्रार्थयेत् ।
यजमानः—ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं० ॥ ॐ बृहस्पते अति० ॥
[इतः परं कूर्माञ्चलादि क्षेत्रेषु बौधायनाद्यनुसारी संक्षिप्त-पुण्याहवाचनं क्रियते । तदधो टिप्पण्यां द्रष्टव्यम्]

---

१. यजमानः—ब्राह्मं पुण्यम० ॥ भो ब्राह्मणा मम गृहे पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु ३ ।
विप्राः—ॐ पुण्याहम् ३ । ॐ पुनन्तु मा० ।
यजमानः—स्वस्तिर्या० ॥ भो ब्राह्मणा० स्वस्ति० ।
विप्राः—ॐ स्वस्ति ३ । स्वस्ति न० ॥

दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च । तेनायुः प्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु ।

ब्राह्मणाः— 'अस्तु दीर्घमायुः' इति ब्रूयुः । एवं वारत्रयं कृत्वा कलशं भूमौ धान्यराशौ स्थापयेत् । ततश्च यजमानो विप्रकरेषु जलादिकं वक्ष्यमाणक्रमेण दद्यात् ।

यज०—'शिवा आपः सन्तु' इति जलं विप्रा०—'सन्तुशिवा आपः' विप्रकरेषुदद्यात् । इति-ब्रूयुः ।

यजमानः-सौमनस्यमस्तु इति पुष्पं ,, ,, 'अस्तु सौमनस्यम्' ,, ,,

,, अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु ,, 'अस्त्वक्षतमरिष्टञ्च' ,, ,, इत्यक्षतान् ,,

,, गन्धाः पान्तु । इति ,, सुमङ्गल्यञ्चास्तु ,, ,, गन्धं ,,

,, अक्षताः पान्तु । इत्य- ,, आयुष्यमस्तु । ,, ,, क्षतान् ,,

,, पुष्पाणि पान्तु । इति ,, सौश्रियमस्तु । ,, ,,

यजमानः— सागरस्य तु० ॥ भो ब्राह्मणा० ऋद्धिं० ॥

विप्राः—ॐ ऋद्ध्यताम् ३ । ॐ सत्रस्य० ॥

यजमानः—बंधुतो० ॥ भो ब्राह्मणा० वृद्धिं० ॥

विप्राः—ॐ वृद्ध्यताम् ३ ॥ ॐ ज्यैष्ठ्यञ्च० ॥

यजमानः—पृथिव्यामु० ॥ भो ब्राह्मणा० कल्याणं० ।

विप्राः—ॐ कल्याणम् ३ । ॐ यथेमां वाचं० ।

यजमानः—सांरत्पतेश्च० ॥ भो ब्राह्मणा० श्रीरस्त्विति० ।

विप्राः—ॐ श्रीरस्तु ३ । ॐ मनस.० अथवा 'ॐ श्रीश्चते.' ।

यजमानः—शङ्खासुर० ॥ भो ब्राह्मणा० शान्ति० ।

विप्राः—ॐ शान्तिः ३ । ॐ द्यौः शान्ति० ॥ ॐ विश्वानि देव सवितर्.० । ततोदक्षिणान्ते ब्राह्मणा 'मन्त्रार्थाः सफला०' ॥ इति पठित्वा यजमानतिलकं कृत्वा आशीर्वादं दद्युः ।

पुष्पाणि दद्यात्

यज० सफलताम्बूलानि पान्तु विप्रा०—ऐश्वर्यमस्तु । ,, ,, इति ताम्बूलानि ,,

,, दक्षिणाः पान्तु इति दक्षिणां,, ,, बहुदेयं चास्तु ,, ,,

,, (पुनरत्र) आपः पान्तु ,, स्वर्चितमस्तु । ,, ,, इति जलं ,,

यजमानः—दीर्घमायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्र बहुधनमारोग्यमायुष्यञ्चास्तु ।

विप्राः—तथास्तु ।

यजमानः—यं कृत्वा सर्ववेद-यज्ञ-क्रियाकरण-कर्मारम्भाः शुभाः शोभनाः प्रवर्तन्ते तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा यजुराशीर्वचनं (ऋग्यजुः सामाथर्वाशीर्वचनं वा) बहु-ऋषिमतं समनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये ।

विप्राः—वाच्यताम् । ॐ द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्राद् ऋतुभिरिष्यत ॥ सविता त्वा सवाना ँ सुवतामग्निर्गृहपतीना ँ सोमो वनस्पतीनाम् ।
बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो
मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥
न तद् रक्षा ँसि न पिशाचास्तरन्ति
देवानामोजः प्रथमज ँ ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायण ँ हिरण्य ँ स देवेषु
कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥
उच्चा ते जातमन्धसो दिविसद् भूम्याददे ।
उग्र ँ शर्म्म महि श्रवः ॥
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ२ इयक्षते ॥

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्मा स्वस्ति चापि द्विजातयः ।
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति सर्वदा ॥
ययातिर्नहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
तुभ्य राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु नित्यशः ॥
स्वस्ति तेऽस्तु द्विपादेभ्यश्चतुष्पादेभ्य एव च ।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च सर्वेभ्यः स्वस्ति ते सदा ॥
स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
करोतु स्वस्ति वेदादिर्नित्यं तव महामखे ॥
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुर्वतां स्वस्ति तेऽनघ ।
असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः ॥
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वति कुर्वन्तु ते सदा ।
धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः ॥
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ।
विवस्वान् भगवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वदा ॥
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ।
अधस्ताद् धरणीं चाऽसौ नागो धारयते हि यः ।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥

यजमानः—व्रत-जप-नियम-तपः-स्वाध्याय-क्रतु-शम-दम-दया-दानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम् ।

विप्राः—समाहितमनसः स्मः ।

यजमानः—प्रसीदन्तु भवन्तः ।

विप्राः—प्रसन्नाः स्मः ।

[ततः केषाञ्चिन्मते किञ्चित् कलशजलं ताम्रपात्रे कृत्वा 'शान्तिरस्तु'-इत्यादि पठन् दूर्वया यजमानमूर्ध्नि सेचनं कुर्यात्, केचित् तु कलशजलं पात्रान्तरे पातयन्ति केचिच्च अक्षतान् पातयन्ति । शान्तिरस्तु इत्यादि यजमानवचनानन्तरम् 'अस्तु' इति प्रतिवचनं विप्राः सर्वत्र दद्युः ।] अथ यजमानः जलमक्षतान् वा पातयन् पठेत्—

ॐ शान्तिरस्तु । ॐ पुष्टिरस्तु । ॐ तुष्टिरस्तु । ॐ वृद्धिरस्तु । ॐ अविघ्नमस्तु । ॐ आयुष्यमस्तु । ॐ आरोग्यमस्तु । ॐ शिवमस्तु । ॐ शिवं कर्मास्तु । ॐ कर्मसमृद्धिरस्तु । ॐ धर्मसमृद्धिरस्तु । ॐ वेदसमृद्धिरस्तु । ॐ शास्त्रसमृद्धिरस्तु । ॐ धनधान्यसमृद्धिरस्तु । ॐ पुत्रपौत्रसमृद्धिरस्तु । ॐ इष्टसम्पदस्तु ।

बहिः (पात्रान्तरे वा) पातयेत्—ॐ अरिष्टनिरसनमस्तु । ॐ यत्पापं रोगमशुभमकल्याणं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ।

अन्तः (प्रथमपात्रे) पातयेत्—ॐ यच्छ्रेयस्तदस्तु । ॐ उत्तरे कर्मणि निर्विघ्नमस्तु । ॐ उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु । ॐ उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सम्पद्यन्ताम् । ॐ तिथि-करण-मुहूर्त-नक्षत्र-ग्रह-लग्न-सम्पदस्तु । ॐ तिथि-करण-मुहूर्त-नक्षत्र-ग्रह-लग्नाधिदेवताः प्रीयन्ताम् । ॐ तिथिकरणे समुहूर्ते सनक्षत्रे सग्रहे सलग्ने साधिदैवते प्रीयेताम् । ॐ दुर्गापाञ्चाल्यौ प्रीयेताम् । ॐ अग्निपुरोगाः विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम् । ॐ इन्द्रपुरोगाः मरुद्गणाः प्रीयन्ताम् । ॐ वसिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयन्ताम् । ॐ माहेश्वरीपुरोगा उमामातरः प्रीयन्ताम् । ॐ अरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम् । ॐ विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम् । ॐ ब्रह्मपुरोगाः सर्वे वेदाः प्रीयन्ताम् । ॐ ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्ताम् । ॐ श्री-सरस्वत्यौ प्रीयेताम् । ॐ श्रद्धा-मेधे प्रीयेताम् । ॐ भगवती कात्यायनी प्रीयताम् । ॐ भगवती माहेश्वरी प्रीयताम् । ॐ भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती वृद्धिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम् । ॐ सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्ताम् । ॐ सर्वा ग्रामदेवताः प्रीयन्ताम् । ॐ सर्वा इष्टदेवताः प्रीयन्ताम् ।

बहिः (द्वितीय पात्रे वा) पातयेत्—ॐ हताश्च ब्रह्मद्विषः । ॐ हताश्च परिपन्थिनः । ॐ हताश्च (अस्य कर्मणो) विघ्नकर्तारः ।

ॐ शत्रवः पराभवं यान्तु। ॐ शाम्यन्तु घोराणि। ॐ शाम्यन्तु पापानि। ॐ शाम्यन्त्वीतयः। ॐ शाम्यन्त्युपद्रवाः।

अन्तः (प्रथमपात्रे) पातयेत्—ॐ शुभानि वर्द्धन्ताम्। ॐ शिवा आपः सन्तु। ॐ शिवा ऋतवः सन्तु। ॐ शिवा ओषधयः सन्तु। ॐ शिवा वनस्पतयः सन्तु। ॐ शिवा नद्यः सन्तु। ॐ शिवा गिरयः सन्तु। ॐ शिवा अतिथयः सन्तु। ॐ शिवा अग्नयः सन्तु। ॐ शिवा आहुतय सन्तु। ॐ अहोरात्रे शिवे स्याताम्।

ॐ निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

ॐ शुक्राङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शनैश्चर-राहु-केतु-सोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः प्रीयन्ताम्। ॐभगवान्नारायणः प्रीयताम्। ॐ भगवान् स्वामी महासेनः प्रीयताम्। ॐ पुरोऽनुवाक्यया यत्पुण्यं तदस्तु। ॐ याज्यया यत्पुण्यं तदस्तु। ॐ वषट्कारेण यत्पुण्यं तदस्तु। ॐ प्रातः सूर्योदये यत्पुण्यं तदस्तु।

ततो यजमानः— एतत्कल्याणयुक्तं पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये।

ब्राह्मणाः—ॐ वाच्यताम्।

यजमानः—ब्राह्मं पुण्यमहर्यच्च सृष्ट्युत्पादनकारकम्।
वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत्पुण्याहं ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणाः मम गृहे अमुककर्मणः (सनवग्रह-सप्रासाद अमुक देव प्रतिष्ठा कर्मणः) पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु—३। (इति त्रिर्ब्रूयात्)।[1]

विप्राः—ॐ पुण्याहं पुण्याहं पुण्याहम्।
ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥

१. (अथवा) भो ब्राह्मणाः! मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणाय आशीर्वचनमपेक्षमाणाय मया क्रियमाणस्य अमुकदेवप्रतिष्ठाख्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु—३। (इति त्रिः पठेत्। एवं अन्यत्रापि पठनीयम्)।

यजमानः—पृथिव्यामुद्धृतायान्तु यत्कल्याणं पुरा कृतम्।
ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणः मम०····कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु-३ (इति त्रिर्ब्रूयात्)।

विप्राः—ॐ कल्याणं कल्याणं कल्याणम्। ॐ यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामःसमृद्ध्यतामुप मादो नमतु॥

यजमानः—सागरस्य तु या ऋद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता।
सम्पूर्णा सुप्रभावा च तां च ऋद्धिं ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणाः मम० ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु-३ (इति त्रिः पठेत्)।

विप्राः—ॐ कर्म ऋद्ध्यताम्-३। (इति त्रिः पठेयुः)। ॐ सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम। दिवं पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम देवान्स्वर्ज्योतिः॥

यजमानः—स्वस्तिस्तु याऽविनाशाख्या पुण्यकल्याणवृद्धिदा।
(लोककल्याणसिद्धिदा-पाठान्तर)।
विनायकप्रिया नित्यं तां च स्वस्तिं ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणाः० स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु-३ (इति त्रिर्ब्रूयात्)।

विप्राः—ॐ आयुष्मते स्वस्ति-३ (इति त्रिर्ब्रूयुः)। ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

यजमानः—समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका।
हरिप्रिया च माङ्गल्या तां श्रियं च ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणाः० श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु (इति त्रिः पठेत्)।

विप्राः—ॐ अस्तु श्रीः-३(इति त्रिःपठेयुः)।ॐ श्रीश्चतेलक्ष्मीश्च०

यजमानः—मृकण्डुसूनोरायुर्यद् ध्रुवलोमशयोस्तथा।
आयुषा तेन संयुक्ता जीवेम शरदः शतम्॥

विप्राः—ॐ शतं जीवन्तु भवन्तः-३ (इति त्रिः)।
ॐ शतमिन्नु॰ । पुत्रासोयत्र॰ ॥

यजमानः—शिवगौरीविवाहे या या श्रीरामे नृपात्मजे।
धनदस्य गृहे या श्रीरस्माकं सास्तु सद्मनि ॥

विप्राः—ॐ अस्तु श्रीः-३ (इति त्रिः पठेयुः) । ॐ मनसः
काममाकूतिं वाचः॰ ॥

यजमानः—प्रजापतिर्लोकपालो धाता ब्रह्मा च देवराट्।
भगवाञ्छाश्वतो नित्यं स नो रक्षतु (नोवैरक्षन्तु)
सर्वतः ॥

विप्राः—ॐ भगवान् प्रजापतिः प्रीयताम् (इति त्रिः)।
ॐ प्रजापते न त्वदेता॰ ॥

यजमानः—आयुष्मते स्वस्तिमते यजमानाय दाशुषे।
श्रिये दत्ताशिषः सन्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥

विप्राः—ॐ आयुष्मते स्वस्ति (इति त्रिः पठेयुः)। ॐ प्रति
पन्थामपद्महि स्वस्ति गामनेहसम्। येन विश्वाः परि
द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ स्वस्तिवाचनसमृद्धिरस्तु।

अथ दक्षिणा—

ॐ अद्य पुण्याहवाचनसाङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थञ्च पुण्याहवाचकेभ्यो नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो इमां (मनसोद्दिष्टां) दक्षिणां विभज्य दातुमहमुत्सृजे।

अस्मिन् पुण्याहवाचने न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्ट ब्राह्मणानां वचनाच्छ्री महागणपतिप्रसादाच्च सर्वः परिपूर्णोऽस्तु।

अथाभिषेकः—

शान्तिरस्तु-पुष्टिरस्तु इति पठता यजमानेन पात्रे प्रक्षिप्तं जलं कलशोदकं च एकस्मिन् पात्रे गृहीत्वा, अविधुराश्चत्वारो ब्राह्मणाः वामतः स्थितपत्नीसहितं सकुटुम्बं यजमानं दूर्वाऽऽम्रपल्लवैः 'ॐ देवस्य त्वा सवितुः॰ ॥ द्यौः शान्तिः॰ ॥ इत्यादि वैदिकमन्त्रैः, सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु॰ । इत्यादि पौराणिकमन्त्रैश्चाभिषिञ्चेयुः।'[1]

—*—

अथ मातृका-पूजनम्

मोदादिषड्विनायकपूजनम्—

गोधूमादि धान्यपूरिते हरिद्रारञ्जिते मृन्मयकलशे रक्तवस्त्रोपरि पूगीफलेषु धान्यपुञ्जेषु वा मोदादिषड्विनायकान् स्थाप्य पूजयेत्।

ॐ मोदाय नमः । मोदमावाहयामि, स्थापयामि ।
,, प्रमोदाय नमः। प्रमोदमावाहयामि, स्थापयामि ।
,, सुमुखाय नमः । सुमुखमा॰ ।
,, दुर्मुखाय नमः । दुर्मुखमा॰ ।
,, अविघ्नाय नमः । अविघ्नमा॰ ।
,, विघ्नहर्त्रे नमः । विघ्नहर्तारमा॰ ।

'ॐ मनो जूतिः॰' ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः मोदादिषड्विनायकाः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु। ॐ मोदादिषड्विनायकेभ्यो नमः। इति नाममन्त्रेण 'जिह्वामे॰' इति वैदिकमन्त्रेण वा षोडशोपचारैः सम्पूजयेत्।

षोडशमातृकापूजनम्—

मण्डपे आग्नेय्यां पीठोपरि वस्त्रं प्रसार्य तदुपरि कुङ्कुमादिना षोडशकोष्ठानि कृत्वा तत्र पूगीफलेष्वक्षतपुञ्जेषु वा षोडशमातृः स्थाप्य पूजयेत्—

ॐ गणानान्त्वा॰ । ॐ गणेशाय नमः। गणेशमा॰ स्थाप॰। भो गणेश इहागच्छेहतिष्ठ।
,, आयङ्गौः॰ । ,, गौर्यै नम । गौरीमा॰ स्थाप॰ । भो गौरि इहा॰।
,, हिरण्यरूपा॰ । ,, पद्मायै॰ । पद्मामा॰ स्थाप॰ । भो पद्मे इहा॰ ।

१. अभिषेकमन्त्र पीछे पृष्ठ ३२५–३२६ में देखें।

,, निवेशनः० । ,, शच्यै० । शचीमा० । स्थाप० । भो शचि० ।
,, मेधाम्मे० । ,, मेधायै० । मेधामा० । स्थाप० । भो मेधे० ।
,, सविता त्वा० । ,, सावित्र्यै० । सावित्रीमा० । स्थाप० । भो० ।
,, विज्यन्धनुः० । ,, विजयायै० । विजयामा० । स्थाप० । भो० ।
,, बह्वीनां पिता० । ॐ जयायै० । जयामा० । स्थाप० । भो जये० ।
ॐ इन्द्र आसान्नेता० । ॐ देवसेनायै० । देवसेनामा० । स्थाप० भो०
,, पितृभ्यः स्वधायि० । ,, स्वधायै० । स्वधामा० । स्थाप० । भो० ।
,, स्वाहा प्राणेभ्यः० । ,,स्वाहायै० ।स्वाहमा० । स्थाप० भो स्वधे० ।
,, आपो अस्मान्० । ,, मातृभ्यः० । मातृःआ० ।स्थाप० । भोमातरः० ।
,, रयिश्च मे० ।ॐ लोकमातृभ्यो० । लोकमातृ आ० । भो लोकमातर० ।
ॐ यत्प्रज्ञानमुत० । ,, धृत्यै० । धृतिमा० । स्थाप्य० । भो धृति०
,, त्र्यम्बकं० । ,, पुष्टयै० । पुष्टिमा० । स्थाप० । भो पुष्टि० ।
,, अङ्गान्यात्मन्० । ॐ तुष्टयै० । तुष्टिमा० । स्थाप० । भो तुष्टि० ।
,, प्राणाय स्वाहा० । कुलदेवतायै० । कुलदेवतामा० । स्थाप० । भो०

ॐ मनो जूति० ।। ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतिसहिताः श्रीगौर्यादि-षोडशमातरः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु ।

ततः श्रीसूक्तेन षोडशोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्—

ॐ गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ।।
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिः आत्मनः कुलदेवताः ।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश ।।

ब्राह्मणी कमलेन्दु सौम्य वदना माहेश्वरी लीलया
कौमारी रिपुदर्पनाशनकरी चक्रायुधा वैष्णवी ।
वाराही घनघोरघर्घरमुखी चैन्द्री च वज्रायुधा
चामुण्डा गणनाथरुद्रसहिता रक्षन्तु नो मातरः ।।

प्रार्थना— आयुरारोग्यमैश्वर्यं ददध्वं मातरो मम ।
निर्विघ्नं सर्वकार्येषु कुरुध्वं सगणाधिपाः ।।

अनया पूजया गणपतिसहिताः गौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्ताम् न मम ।

अथ घृतमातृका-पूजनम्

श्रीर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा स्वाहा प्रज्ञा सरस्वती ।
माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः ।।

वस्त्राच्छन्नपीठोपरि कुड्ये वा सर्वोपरि कुङ्कुमादिना 'श्रीः' इत्यक्षरं विलिख्य तदधः कुङ्कुमेन एकं बिन्दुं, तदधो दक्षिणोत्तर' क्रमेण द्वौ, तदधस्त्रीन्, तदधश्चतुरस्तदधः पञ्च, तदधः षट, तदधः सप्तबिन्दून् दक्षिणोत्तरक्रमेण प्रादेशमात्रे निर्माय अधस्तनेषु सप्तबिन्दुषु "ॐ वसोः पवित्रमसि···शतधारेण सुप्वा" इति पठन् घृतेन सप्तधारा उदक्संस्थाः कृत्वा "ॐ कामधुक्षः" इति पठन् गुडेन सप्तबिन्दून् मेलयेत् । ततः सप्तबिन्दुषु दक्षिणोत्तर-क्रमेण श्री-लक्ष्मी-धृति-मेधा-स्वाहा (सिद्धि)-प्रज्ञा-सरस्वतीति सप्तघृत-मातृका आवाह्य संपूजयेत्—

ॐ मनसः० । ॐ भूर्भुवः स्वः श्रियै नमः श्रियमावा० स्थाप० ।
,, श्रीश्च ते० । ,, ,, ,, लक्ष्म्यै ,, लक्ष्मीमावा० ,, ।
,, भद्रं कर्णेभिः० । ,, ,, ,, धृत्यै नमः धृतिमावा० ,, ।
,, मेधाम्मे वरुणो० । ,, ,, ,, मेधायै नमः मेधामावा० ।
,, प्राणाय स्वाहा० । ,, ,, ,, स्वाहायै ,, स्वाहामा०
,, आयज्ञोः० । ,, ,, ,, प्रज्ञायै ,, प्रज्ञामा०
,, पावकाः नः० । ,, ,, ,, सरस्वत्यै ,, सरस्वतीमा०

ॐ मनो जूति० ।। सप्तवसोर्धारा-देवताः (घृतमातृकाः) सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु । इति प्रतिष्ठाप्य 'श्र्यादि सप्तघृतमातृकाभ्यो (वसोर्धारा-देवताभ्यो) नमः' इति नाममन्त्रेण षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा संपूज्य प्रार्थयेत्—

यदङ्गत्वेन भो देव्यः पूजिता विधिमार्गतः ।
कुर्वन्तु कार्यमखिलं निर्विघ्नेन क्रतूद्भवम् ॥
अनया पूजया श्र्यादिसप्तघृतमातरः (वसोर्धारा देवताः) प्रीयन्ताम् ।

आयुष्यमन्त्र-जपः

ॐ आयुष्यं वर्च्चस्य ँ् रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इद ँ् हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम् ॥
,, न तद् रक्षा ँ् सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज ँ् ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायण ँ् हिरण्य ँ् स देवेषु
कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥
,, यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्य ँ् शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासम् ॥
ॐ यदायुष्यं चिर देवाः सप्तकल्पान्तजीविषु ।
ददुस्तेनायुषा युक्ता जीवेम शरदः शतम् ।
दीर्घा नागा नगा नद्योऽनन्ताः सप्तार्णवा दिशः ।
अनन्तेनायुषा तेन जीवेम शरदः शतम् ॥
सत्यानि पञ्चभूतानि विनाशरहितानि च ।
अविनाश्यायुषा तद्वज्जीवेम शरदः शतम् ॥

ॐ अद्य कृतैतदायुष्यमन्त्रजप-कर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं आयुष्य-मन्त्रजप कर्तृकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणाद्रव्यं दातुमहमुत्सृजे ।

अथ नान्दीश्राद्धम्

न स्वधा-शर्म-वर्मेति पितृनाम न चोच्चरेत् ।
न कर्म पितृतीर्थेन न कुशा द्विगुणीकृताः ॥
न तिलैर्नापसव्येन पित्र्यमन्त्रविवर्जितम् ।
अस्मच्छब्दं न कुर्वीत श्राद्धे नान्दीमुखे क्वचित् ॥

प्राङ्मुखोपविश्याचम्य प्राणानायम्य दक्षिणजानुं पातयित्वा पत्रावल्यां रजतादिपात्रे वा चतुर्षु स्थानेषु पूर्वादिक्रमेण

कुशवटून् दूर्वाकाण्डानि वा उदङ्मुखान् स्थाप्य देशकालौ संकीर्त्य अमुक...कर्मणि पूर्वाङ्गत्वेन संक्षिप्त-साङ्कल्पिक-विधिना नान्दी-श्राद्धं करिष्ये । इति सकल्प्य क्रमशः पाद्यादिकं दद्यात् ।

पाद्यदानम्—

ॐ सत्यवसुसञ्ज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ।[1]

,, मातृ-पितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः० ।[2]

,, पितृ-पितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः० ।[3]

,, मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः० ।[4]

आसनदानम्—

ॐ सत्यवसुसञ्ज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासन (? इमे आसने) वो नमो नमः नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तस्तथा प्राप्नुवामः ।[5]

---

१. ब्रह्मनित्यकर्मसमुच्चय में "ॐ भूर्भुवः स्वः" प्रयुक्त नहीं है ।
२. अमुकगोत्रा मातृ-पितामही-प्रपितामह्यो० । (गौडीय श्राद्धप्रकाश)
३. अमुकगोत्रा पितृ-पितामह-प्रपितामहाः । (तत्रैव)
४. अमुक (द्वितीय) गोत्रा मातामह प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः० । (तत्रैव)
५. (क) सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः इदं वः आसनम् । (ब्रह्मनित्यकर्मसमु०)
(ख) सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमः (प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)
(ग) सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानां भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां तथा प्राप्नुतां भवन्तौ । प्राप्नुवः । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश; श्राद्धप्रकाश)

ॐ मातृ-पितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं (? इमे आसने) वो नमो नमः नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्त्यो भवन्त्यस्तथा प्राप्नुवामः ।[1]

ॐ पितृ-पितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं (? इमे आसने) वो नमो नमः नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तस्तथा प्राप्नुवामः ।[2]

ॐ मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं (? इमे आसने) वो नमो नमः नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तस्तथा प्राप्नुवामः ।[3]

---

१. (क) मातृ-पितामही-प्रपितामह्यो नान्दीमुख्यः भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमः । (प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव)

(ख) गोत्राणां मातृ-पितामही-प्रपितामहीनां नान्दीमुखीनां भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां तथा प्राप्नुतां भवत्यौ । प्राप्नुवः । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश)

२. (क) पितृ-पितामह-प्रपितामहा नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमः । (प्रभुविद्या०)

(ख) गोत्राणां पितृ-पितामह-प्रपितामहानां नान्दीमुखानां भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां तथा प्राप्नुतां भवन्तौ । प्राप्नुवः । (सर्वदेवप्रतिष्ठा-प्रकाश)

३. (क) मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमः । (प्रभुविद्या०)

(ख) द्वितीयगोत्राणां मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहानां सपत्नीकां नान्दीमुखानां भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखा० । (सर्वदेवप्रतिष्ठा-प्रकाश)

गन्धादिदानम्—

गन्ध-पुष्प-धूप-दीप ताम्बूल-यज्ञोपवीत-वस्त्राणि पुरतो निधाय, [अत्रापः पान्तु । इमे वाससी । इमानि यज्ञोपवीतानि । एष वो गन्धः । इमे अक्षताः । इमानि पुष्पाणि । अयं धूपः । अयं दीपः । इदं नैवेद्यम् । इमानि ऋतुफलानि । इदं ताम्बूलम् । इदं पूगीफलम् । (प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव) ।]

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[1] ।

,, मातृ-पितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[2] ।

,, पितृ-पितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[3] ।

,, मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[4] ।

आमान्ननिष्क्रयदानम्—

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं

---

१. (क) सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखा इदं वो गन्धाद्यर्चनं यथाविभागं स्वाहा नमः । (ब्रह्मनित्यकर्म समुच्चय)

(ख) सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्मरूपेभ्य इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, श्राद्धप्रकाश)

२. अमुक गोत्राभ्यो मातृ-पितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्य इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश)

३. अमुक गोत्रेभ्यः पितृ-पितामह-प्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदं गन्धा० । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश)

४. द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदं गन्धा० । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश)

युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[1] ।

मातृ-पितामही-प्रपितामह्यो नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[2] ।

पितृ-पितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[3] ।

मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः[4] ।

सक्षीरयवमुदकदानम्—ततः सक्षीरयवकुशजलानि दद्यात् ।

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम् ।

,, मातृ-पितामही-प्रपितामह्यो नान्दीमुख्यः प्रीयन्ताम् ।[5]

,, पितृ पितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम्[6] ।

---

१. सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्मब्राह्मणभोजन पर्याप्तामान्न निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, तु० श्राद्धप्रकाश)

२. अमुक गोत्राभ्यो मातृ-पितामही-प्रतिमहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यो युग्मब्राह्मण भोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यममृतरूपेण स्वाहा सम्प० । (तत्रैव)

३. अमुकगोत्रेभ्यःपितृ-पितामह-प्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्म० । (तत्रैव)

४. द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्य नान्दीमुखेभ्यो० । (तत्रैव)

५. अमुकगोत्रा मातृ-पितामही-प्रपितामह्यो नान्दीमुख्यो प्रीयन्ताम् । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश)

६. अमुकगोत्राः पितृ-पितामह-प्रपितामहा नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम् । (तत्रैव)

ॐ मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम्[1] ।

आशीःप्रार्थना—

यजमानः कृताञ्जलिः पितॄन् प्रार्थयेत्—

गोत्रन्नो वर्धतां दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्तु । अन्नञ्च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन । एताः सत्या आशिषः सन्तु ।

ब्राह्मणाः—'सन्त्वेताः सत्या आशिषः ।'—इति ब्रूयुः ।

दक्षिणादानम्—

ॐ सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षाऽऽमलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।[2]

ॐ मातृ पितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षाऽऽमलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे[3] ।

ॐ पितृ-पितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षाऽऽमलक यवमूल-

---

१. द्वितीयगोत्रा मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहा नान्दीमुखा० । (तत्रैव)

२. (क) सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयीभूता० । (सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, श्राद्धप्रकाश, ब्रह्मनित्यकर्मसमुच्चय)

(ख) ॐ सत्यवसुसंज्ञकविश्वेदेवानां नान्दीमुखानां कृतैतद् नान्दीश्राद्धफल ...निष्क्रयीभूतं द्रव्यं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे (पञ्चाङ्गपद्धति —पं० वायुनन्दनमिश्रकृत) ।

३. ॐ अमुकगोत्राणां मातृ-पितामही-प्रपितामहीनां नान्दीमुखीनां । (तत्रैव)

निष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे[1]।

ॐ मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवःस्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षाऽऽमलक यवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे[2]।

अथ मन्त्रपाठः (यजमानकर्तृकः)—

ॐ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवां २ इयक्षते ॥ (यजु० ३३।६२)

„ इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥
(यजु० १२।५१)

'अनेन नान्दीश्राद्धं सम्पन्नम् ।' –इति यजमानोक्ते 'सुसम्पन्नम्' । इति विप्रा ब्रूयुः ।

विसर्जनम्—

ॐ वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥

" आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ॥ (यजु० ९।१८-१९)

इति विसृज्य हस्ते जलमादाय यजमानः पठेत्—

मयाऽऽचरिते अस्मिन् साङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धे (आभ्युदयिक श्राद्धे वा) न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्ट ब्राह्मणानां वचनात्श्रीनान्दीमुखप्रसादाच्च सर्वः परिपूर्णोऽस्तु । अस्तु परिपूर्णम् इति प्रतिवचनम् ।

अनेन नान्दीमुखश्राद्धकर्मणा नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम् ।

---

१. ॐ अमुकगोत्राणां पितृ-पितामह-प्रपितामहानां नान्दीमुखानां । (तत्रैव)

२. द्वितीय गोत्राणां मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहानां नान्दी०(तत्रैव)।

(परिशिष्टे) आचार्यादिवरणम्

यजमानः प्राङ्मुखोपविश्य आचार्यादीनुदङ्मुखानुपवेश्य देश-कालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं सनवग्रह-सप्रासादवास्तुप्रतिष्ठापूर्वकं अमुक-देवमूर्तेः (अमुकामुकदेवमूर्तीनां लिङ्गस्य वा) स्थिरप्रतिष्ठाकर्मणि तत्तत्कर्मकरणार्थमाचार्यादिब्राह्मणानां वरणं मधुपर्केणार्चनं च करिष्ये । इति संकल्प्य पाद्यार्घ्यादिभिर्ब्राह्मणानां पूजनं कुर्यात् । तद्यथा—आपद्घनध्वान्त० ॥ इति पाद्यम् । भूमिदेवाग्रजन्मासी-त्यर्घ्यम् । गन्धद्वारेति गन्धम् । युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषमित्यक्षतान् । नमो ब्रह्मण्यदेवायेति पुष्पमाल्यादिभिरभ्यर्च्य नमोऽस्त्वनन्तायेति संप्रार्थ्य वरणसामग्रीं, यथा—गन्ध-पुष्पाक्षत-पूगीफल(-ताम्बूल)-यज्ञोप-वीत-मुद्रिका(—अङ्गुलीयक)ऽऽसन-कमण्डलु-वासांसि पुरतः कृत्वा देश-कालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं अमुकगोत्रम् अमुक वेद-शाखाध्यायिनम् अमुकशर्माणं ब्राह्मणं सनवग्रहमख-सप्रासादवास्तुप्रतिष्ठापूर्वकम् अमुकदेवमूर्तेः (मूर्तीनां वा लिङ्गस्य वा) स्थिरप्रतिष्ठाकर्मण्याचार्य-कर्मकर्तुमेभिर्गन्धाक्षत-पुष्प-पूगीफल-(ताम्बूल)-मुद्रिका-ऽऽसन-कमण्डलु-यज्ञोपवीत-वासोभिराचार्यत्वेन त्वामहं वृणे । इति वरणसामग्रीं दद्यात् । आचार्योऽपि ॐ वृतोऽस्मि । व्रतेन दीक्षामाप्नोति० ॥ इति पठेत् । ततो 'यदाबध्नन्०' इति मन्त्रेण आचार्य हस्ते रक्षा-सूत्रबन्धनं कृत्वा—'आचार्यस्तु यथा स्वर्गे० ॥

मन्त्रमूर्तिर्भवान्नाथ संसाराघौघनाशन (संसारोच्छेदकारक) ।
प्रतिष्ठादिविधावस्मिन् कुरु कर्म यथोदितम् ॥
संसारभयभीतेन अयं यज्ञः सुभक्तितः ।
प्रारब्धस्त्वत् प्रसादेन निर्विघ्नं मे भवत्विति ॥

ॐ बृहस्पते अति० ॥ इति प्रार्थयेत् । एवमेव ब्रह्माणं वृत्वा यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा० ॥ ॐ ब्रह्म जज्ञानं० ॥ इति प्रार्थयेत् । एवमेव ऋत्विगादीनपि वृणुयात् । प्रार्थयेच्च—ऋत्विजश्च यथापूर्वं शक्राः

दीनां मखेऽभवन् । यूयं तथा मे भवत ऋत्विजोऽहंणसत्तमाः ।। द्वारपालानां पूजनमन्त्राः प्रतिष्ठामयूखोक्ता एव सन्ति ।

मधुपर्कः

आचार्यादिब्राह्मणान् प्राङ्मुखानुपवेश्य यजमानः—'साधु भवन्तः आसतामर्चयिष्ये भवतः' । इति ब्रूयात् । 'ॐ अर्चय'—इति विप्रा ब्रूयुः । ततः 'ॐ विष्टरो विष्टरो विष्टरः' । इत्याचार्योक्ते[1], 'ॐ विष्टरः प्रतिगृह्यताम् ।' इति यजमानः प्रत्येकं दद्यात् । 'ॐ प्रतिगृह्णामि' । ॐ वर्ष्मोऽस्मि०[2] ।। इति विष्टरं गृहीत्वा विप्रः स्वासनतले उदगग्रं स्थापयेत् । 'ॐ पाद्यं पाद्यं पाद्यमि'त्याचार्योक्ते 'पाद्यं प्रतिगृह्यताम्' इति यजमानोक्ते च 'ॐ पाद्यं प्रतिगृह्णामि' । 'ॐ विराजो दोहोऽसि०'[3] ।। इति पठन् विप्रः क्रमेण दक्षिण-वाम चरणौ प्रक्षालयेत् । ततः पुनरपि यजमानदत्तं विष्टरं गृहीत्वा 'वर्ष्मोऽस्मी'ति पठन् पादयोरधस्तात् प्रागग्रमुदगग्रं वा निदधाति । ततः 'ॐ अर्घो अर्घो अर्घः' । इत्याचार्योक्ते 'ॐ अर्घः प्रतिगृह्यताम्' इति यजमानोक्ते, 'अर्घं प्रतिगृह्णामि' । 'ॐ आपः स्थ०'[4] ।। इति प्रतिगृह्य 'ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि०'[5] ।। इत्यैशान्यां त्यजेत् । ततः 'ॐ आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्' । इत्याचार्योक्ते, 'ॐ आचमनीयम् प्रतिगृह्यताम्' । इति यजमानोक्ते

---

१. केनचिदन्येनोक्ते वा ।

२. ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः ।
इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ।।

३. ॐ विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ।।

४. ॐ आपः स्थ युष्माभिः सर्वान् कामानवाप्नवानि ।

५. ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ।
अरिष्टाऽस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ।।

ॐ आचमनीयम् प्रतिगृह्णामि' । 'ॐ आ मा गन् यशसा०'[1] ।। इति मन्त्रेण सकृदाचम्य द्विः तूष्णीमाचामेत् । ततः 'ॐ मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः' । इत्याचार्योक्ते यजमानः कांस्यपात्रस्थं कांस्यपात्रान्तरेण पिहितं दधि-मधु-घृतमादाय 'ॐ मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्' । इति निवेदयेत् । विप्रश्च यजमानहस्तस्थमेव तत्पात्रमुद्घाटय 'ॐ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे' । इति मन्त्रेण वीक्ष्य 'ॐ देवस्य त्वा०' इति मन्त्रेण गृहीत्वा वामहस्ते निधाय 'ॐ नमः श्यावास्या०'[2] । इति मन्त्रेण दक्षिणानामिकया सकृत्प्रदक्षिणमालोडय अङ्गुष्ठानामिकया किञ्चिद्भूमौ निक्षिप्य एवमेव पुनरपि वारद्वयमनेनैव (ॐ नमः श्यावास्या०) मन्त्रेणालोडय किञ्चिद्भूमौ निक्षिप्य 'ॐ यन्मधुनो०'[3] ।। इति मन्त्रेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां त्रिःप्राश्य (प्रतिवारं मन्त्रावृत्तिः) प्राशितशेषं असंचरे क्षिपेत् । तत आचम्याङ्गानि संस्पृशेत् ।

ॐ वाङ्म आस्येऽस्तु । (दक्षिणकर-तर्जनीमध्यमानामिकाभिर्मुखं स्पृशेत्) ।
ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु । (नासारन्ध्रद्वयं अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां स्पृशेत्) ।
ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । (अनामिकाङ्गुष्ठेन नेत्रद्वयं स्पृशेत्) ।
ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । (तथैव कर्णौ स्पृशेत्) ।
ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु । (संहिताङ्गुल्यग्रैः दक्षिणवामबाहू स्पृशेत्) ।
ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु । (इति पाणिभ्यां युगपदूरू स्पृशेत्) ।
ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु । (इति शिरः प्रभृति पादपर्यन्तं सर्वाङ्गानि उभाभ्यां हस्ताभ्यामालभेत् । ततो द्विराचामेत् ।

---

१. ॐ आ मा गन् यशसा संसृज वर्चसा तम्मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ।।

२. ॐ नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ।

३. ॐ यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यं तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ।।

ततः—'गौगौगौः' इति यजमानोक्ते, 'ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचञ्चिकितुषे जनाय, मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ (ततः उपांसु पठेत्)—मम चामुष्य (अमुक) यजमानस्य च पाप्मा हतः। (इति उपांशु पठित्वा) ॐ उत्सृजत तृणान्यत्तुम्। (इत्युच्चैर्ब्रूयात्)।

ब्राह्मण-प्रार्थना—

ब्राह्मणाः सन्तु शास्तारः (मे शस्ताः) पापात्पान्तु समाहिताः।
वेदानां चैव दातारः पातारः सर्वदेहिनाम् ॥ १
जपयज्ञैस्तथा होमैर्दानैश्च विविधैः पुनः।
देवानां च ऋषीणाञ्च तृप्त्यर्थं याजकाः स्मृताः ॥ २
येषां देहे स्थिता वेदाः पावयन्ति जगत् त्रयम्।
रक्षन्तु सततं ते मां जपयज्ञे व्यवस्थिताः ॥ ३
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्धयन्ति मलिनो जनाः ॥ ४
पावनाः सर्ववर्णानां ब्राह्मणाः ब्रह्मरूपिणः।
सर्वकर्मरता नित्यं वेदशास्त्रार्थकोविदाः ॥ ५
श्रोत्रियाः सत्यवाचश्च देवध्यानरताः सदा।
यद्वाक्यामृतसंसिक्ता ऋद्धिं यान्ति नरद्रुमाः ॥ ६
अङ्गीकुर्वन्तु कर्मैतत् कल्पद्रुमसमाशिशः।
यथोक्तनियमैर्युक्ता मन्त्रार्थे स्थिरबुद्धयः ॥ ७
यत्कृपालोचनात्सर्वा ऋद्धयो वृद्धिमाप्नुयुः।
अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ॥ ८
देवध्यानरता नित्यं प्रसन्नमनसः सदा।
अदुष्टभाषणा नित्यं मा सन्तु परनिन्दकाः ॥ ९
ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि।
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया
सुप्रसन्नैः प्रकर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम् ॥ १०

ततो मण्डपपूजनं प्रतिष्ठामयूखोक्तरीत्या यथासम्प्रदायं वा कृत्वा वास्तुपूजनं कुर्यात्।

(परिशिष्टे) वास्तुपूजनादिकर्म

मण्डपपूजनं कृत्वा चतुःषष्टिकोष्ठात्मकवास्तुमण्डले वास्तोश्चतुरस्रशरीरोपरि तत्तद्देवसम्बद्धपदे नाममन्त्रेण वास्तुदेवानामावाहनं पूजनञ्च कृत्वा ग्रहहोमान्ते स्वाहान्तनाममन्त्रेण होमञ्च कुर्यात्।

१.	ॐ शिखिने नमः	२०.	,, पुष्पदन्ताय नमः
२.	,, पर्जन्याय ,,	२१.	,, जलाधिपतये ,,
३.	,, जयन्ताय ,,	२२.	,, असुराय ,,
४.	,, कुलिशायुधाय ,,	२३.	,, शेषाय ,,
५.	,, सूर्याय ,,	२४.	,, पापाय ,,
६.	,, सत्याय ,,	२५.	,, रोगाय ,,
७.	,, भृशाय ,,	२६.	,, अहये ,,
८.	,, आकाशाय ,,	२७.	,, मुख्याय ,,
९.	,, वायवे ,,	२८.	,, भल्लाटाय ,,
१०.	,, पूष्णे ,,	२९.	,, सोमाय ,,
११	,, वितथाय ,,	३०.	,, नागाय ,,
१२.	,, गृहक्षताय ,,	३१.	,, अदितये ,,
१३.	,, यमाय ,,	३२.	,, दितये ,,
१४.	,, गन्धर्वाय ,,	३३.	,, अद्भ्यो ,,
१५.	,, भृङ्गराजाय ,,	३४.	,, आपवत्साय ,,
१६.	,, मृगाय ,,	३५.	,, अर्यम्णे ,,
१७.	,, पितृभ्यो ,,	३६.	,, सावित्राय ,,
१८.	दौवारिकाय ,,	३७.	ॐ सवित्रे ,,
१९.	ॐ सुग्रीवाय नमः	३८.	,, विवस्वते ,,

३९. ,, विबुधाधिपाय नमः ४३. ॐ रुद्राय नमः
४०. ,, जयन्ताय ,, ४४. ,, पृथिवीधराय ,,
४१. ,, मित्राय ,, ४५. ,, ब्रह्मणे ,,
४२. ,, राजयक्ष्मणे ,,

मण्डपाद् बहिः—

ईशाने— ॐ चरक्यै नमः
आग्नेये— ,, विदार्यै ,,
नैर्ऋते— ,, पूतनायै ,,
वायव्ये— ,, पापराक्षस्यै नमः
पूर्वे— ,, स्कन्दाय ,,
दक्षिणे— ,, अर्यम्णे ,,
पश्चिमे— ,, जृम्भकाय ,,
उत्तरे— ,, पिलिपिच्छाय नमः।

ततः पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिदशदिक्पालानामावाहन-पूजनञ्च कुर्यात्।

ततः कलशोपरि वास्तुप्रतिमां अग्न्युत्तारणपूर्वकं प्रतिष्ठाप्य 'वास्तोष्पते०' इत्यावाह्य, संपूज्य शिख्यादिभ्यो बलिं दत्वा प्रधान-वास्तुपुरुषाय बलिं दद्यात्।

सर्वतोभद्रदेवतास्थापनं पूजनञ्च

१. मध्येकर्णिकायाम्—ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणम् आवाहयामि स्थापयामि भो ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ।

२. उत्तरे वाप्याम्	सोमाय०	सोमम्०	सोम०।
३. ईशान्यां खण्डेन्दौ	ईशानाय०	ईशानं०	ईशान०।
४ पूर्वे वाप्याम्	इन्द्राय०	इन्द्र०	इन्द्र०।
५. आग्नेय्यां खण्डेन्दौ	अग्नये०	अग्निं०	अग्ने०।
६. दक्षिणे वाप्याम्	यमाय०	यमं०	यम०।
७. नैर्ऋत्यां खण्डेन्दौ	निर्ऋतये०	निर्ऋतिम्०	निर्ऋते०।

८. पश्चिमे वाप्याम्	वरुणाय०	वरुणम्०	वरुण०।
९. वायव्याम् खण्डेन्दौ	वायवे०	वायुम्०	वायो०।
१० वायुसोमयोर्मध्ये भद्रे	अष्ट वसुभ्यो०	वसून्०	वसव०।
११. सोमेशानयोर्मध्ये भद्रे	एकादश रुद्रेभ्यो०	एकादश रुद्रान्०	रुद्रा०।
१२. ईशानेन्द्रमध्ये भद्रे	द्वादशादित्येभ्यो०	द्वादशादित्यान्०	आदित्या०।
१३. इन्द्राग्निमध्ये भद्रे	अश्विभ्यां०	अश्विनौ०	अश्विनौ०।
१४. अग्नि-यममध्ये भद्रे	विश्वेभ्यो देवेभ्यो०	विश्वेदेवान्०	विश्वेदेवा०।
१५. यम-निर्ऋतिमध्येभद्रे	सप्तयक्षेभ्यो०	सप्तयक्षान्०	सप्तयक्षा०।
१६. निर्ऋति-वरुणमध्येभद्रे	अष्टनागकुलेभ्यो०	अष्टनागकुलान्०	नागकुला०।
१७. वरुण-वायुमध्ये भद्रे	गन्धर्वाप्सरोभ्यो०	गन्धर्वाप्सरान्०	गन्धर्वाप्सरस०।
१८. ब्रह्म-सोममध्ये वाप्यां	स्कन्दाय०	स्कन्दम्०	स्कन्द०।
१९. तत्रैव स्कन्दादुत्तरे	वृषभाय०	वृषभम्०	वृषभ०।
२०. तत्रैव नन्द्युत्तरे	शूलाय०	शूलम्०	शूल०।
२१. तदुत्तरे	महाकालाय०	महाकालम्०	महाकाल०।
२२. ब्रह्मेशानमध्येशृङ्खलायाम्	दक्षादिसप्तगणेभ्यो०	दक्षादिसप्तगणान्०	दक्षादिगणा०।
२३. ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाप्याम्	दुर्गायै०	दुर्गाम्०	दुर्गे०।
२४. तत्पूर्वे	विष्णवे०	विष्णुम्०	विष्णो०।
२५. ब्रह्माग्निमध्येशृङ्खलायाम्	स्वधायै०	स्वधाम्०	स्वधे०।
२६. ब्रह्म-यममध्ये वाप्याम्	मृत्युरोगेभ्यो०	मृत्युरोगान्०	मृत्युरोगौ०।
२७. ब्रह्मनिर्ऋतिमध्येशृङ्खलायाम्	गणपतये०	गणपतिम्०	गणपते०।
२८. ब्रह्म वरुणमध्ये वाप्याम्	अद्भ्यो०	अपः०	अपः०।
२९. ब्रह्म-वायुमध्येशृङ्खलायाम्	मरुद्भ्यो०	मरुतः०	मरुतः०।
३०. ब्रह्मणः पादमूले	पृथिव्यै०	पृथिवीम्०	पृथिवि०।
३१. तदुत्तरे	गङ्गादिनदीभ्यो०	गङ्गादिनदीः०	गङ्गादिनद्यः०।
३२. तदुत्तरे	सप्तसागरेभ्यो०	सप्तसागरान्०	सप्तसागराः०।
३३. कर्णिकापरिधौ	मेरवे०	मेरुम्	मेरो०।

३४.	सत्व बाह्यपरिधौसोमादिक्रमेण	गदायै०	गदाम्०	गदे० ।
३५.	ईशान्याम्	त्रिशूलाय०	त्रिशूलम्०	त्रिशूल० ।
३६.	पूर्वे	वज्राय०	वज्रम्०	वज्र० ।
३७.	आग्नेय्याम्	शक्तये०	शक्तिम्०	शक्ते० ।
३८.	दक्षिणे	दण्डाय०	दण्डम्०	दण्ड० ।
३९.	नैर्ऋत्याम्	खड्गाय०	खड्गम्०	खड्ग० ।
४०.	पश्चिमे	पाशाय०	पाशम्०	पाश० ।
४१.	वायव्याम्	अङ्कुशाय०	अङ्कुशम्०	अङ्कुश० ।
४२.	तद्बाह्ये उत्तरेरक्तपरिधौ सोमादिक्रमेण	गौतमाय०	गौतमम्०	गौतम० ।
४३.	ईशान्याम्	भरद्वाजाय०	भरद्वाजम्०	भरद्वाज० ।
४४.	पूर्वे	विश्वामित्राय०	विश्वामित्रम्०	विश्वामित्र० ।
४५.	आग्नेय्याम्	कश्यपाय०	कश्यपम्०	कश्यप० ।
४६.	दक्षिणे	जमदग्नये०	जमदग्निम्०	जमदग्ने० ।
४७.	नैर्ऋत्याम्	वसिष्ठाय०	वसिष्ठम्०	वसिष्ठ० ।
४८.	पश्चिमे	अत्रये०	अत्रिम्०	अत्रे० ।
४९.	वायव्याम्	अरुन्धत्यै०	अरुन्धतीम्०	अरुन्धति० ।
५०.	तद्बाह्ये कृष्णपरिधौ पूर्वे	ऐन्द्रयै०	ऐन्द्राम्०	ऐन्द्रि० ।
५१.	आग्नेय्याम्	कौमार्यै०	कौमारीम्०	कौमारि० ।
५२.	दक्षिणे	ब्राह्म्यै०	ब्राह्मीम्०	ब्राह्मि० ।
५३.	नैर्ऋत्याम्	वाराह्यै०	वाराहीम्०	वाराहि० ।
५४.	पश्चिमे	चामुण्डायै०	चामुण्डाम्०	चामुण्डे० ।
५५.	वायव्ये	वैष्णव्यै०	वैष्णवीम्०	वैष्णवि० ।
५६.	उत्तरे	माहेश्वर्यै०	माहेश्वरीम्०	माहेश्वरि० ।
५७.	ईशान्याम्	वैनायक्यै०	वैनायकीम्०	वैनायकि० ।

एवमावाह्य, ॐ मनोजूति० ॥ ब्रह्माद्यावाहितदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत । इति प्रतिष्ठाप्य 'ब्रह्मादि देवताभ्यो नमः' इति यथालब्धोपचारैः सम्पूजयेत् ।

लिङ्गतोभद्रदेवतास्थापन-पूजनञ्च

१.	(तद्बाह्ये पूर्वे)	ॐ असिताङ्ग भैरवाय नमः
२.	(आग्नेय्याम्)	रुरुभैरवाय०
३.	(दक्षिणस्याम्)	चण्डभैरवाय०
४.	(नैर्ऋत्याम्)	क्रोधभैरवाय०
५.	(पश्चिमे)	उन्मत्तभैरवाय०
६.	(वायव्याम्)	कपालभैरवाय०
७.	(उत्तरे)	भीषणभैरवाय०
८.	(ईशान्याम्)	संहारभैरवाय०

लिङ्गतोभद्र में रुद्रकल्पद्रुम आदि निबन्धग्रन्थों में इससे अधिक देवों के स्थापन का विधान नहीं है, तथापि जिन्हें अभीष्ट हो वे अन्य २४ सहित सभी ३२ देवताओं की स्थापना कर सकते हैं ।

९.	(तद्बाह्ये पूर्वादिक्रमेण)	ॐ भवाय नमः
१०.	(आग्नेय्याम्)	शर्वाय०
११.	(दक्षिणे)	पशुपतये०
१२.	(नैर्ऋत्याम्)	ईशानाय०
१३.	(पश्चिमे)	रुद्राय०
१४.	(वायव्ये)	उग्राय०
१५.	(उत्तरे)	भीमाय०
१६.	(ईशान्याम्)	महते०
१७.	(तद्बाह्ये पूर्वादिक्रमेण)	ॐ अनन्ताय नमः
१८.	(आग्नेय्याम्)	वासुकये०
१९.	(दक्षिणे)	तक्षकाय०
२०.	(नैर्ऋत्याम्)	कुलिशाय०
२१.	(पश्चिमे)	कर्कोटकाय०
२२.	(वायव्ये)	शङ्खपालाय०
२३.	(उत्तरे)	कम्बलाय०

२४. (ईशान्याम्) ॐ अश्वतराय नमः
२५. ईशानेन्द्रयोर्मध्ये शूलाय०
२६. (इन्द्राग्निमध्ये) चन्द्रमौलिने०
२७. (अग्नियमयोर्मध्ये) चन्द्रमसे०
२८. (यम-निर्ऋतिमध्ये) वृषभध्वजाय०
२९. (निर्ऋति-वरुणयोर्मध्ये) त्रिलोचनाय०
३०. (वरुण-वायुमध्ये) शक्तिधराय०
३१. (वायु-सोममध्ये) महेश्वराय०
३२. (सोमेशानयोर्मध्ये) शूलपाणये०

कुण्डपूजनम्—

भूतोत्सादनं कृत्वा, पञ्चगव्येन कुण्डं संप्रोक्ष्य देशकालौ संकीर्त्य, अमुकोऽहं अग्निप्रतिष्ठां करिष्ये, तदङ्गत्वेन कुण्डपूजनञ्च करिष्ये। इति संकल्प्य कुण्डं संमृज्य कुशोदकेन संप्रोक्ष्य 'ॐ कुण्डायनमः' इति नाममन्त्रेण कुण्डमावाह्य संपूज्य, कुण्डमध्ये 'विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन०' इति मन्त्रेण विश्वकर्माणं संपूज्य मेखलापूजनं कुर्यात्। श्वेतवर्णमेखलायाम् 'इदं विष्णु०' रिति विष्णुं, रक्तवर्णायां मध्यमेखलायां 'ब्रह्म जज्ञानमि'ति ब्रह्माणं, कृष्णवर्णायामधो मेखलायां 'नमस्ते रुद्र०' इति मन्त्रेण ('इमा रुद्राय०' इति मन्त्रेण वा) रुद्रमावाह्य, संपूज्य योनिपूजनं कुर्यात्—ॐ जगदुत्पत्तिहेतुकायै मनोभवयुतायै योन्यै नमः। ॐ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि। मा त्वा हिं्सीन्मा मा हिं्सीः ॥ (यजु० २०।१) इति योनिं संपूज्य, 'ॐ अम्बे अम्बिके०' इति योन्यां रक्तवर्णां गौरीं संपूज्य, 'ॐ नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः। जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः' ॥ (२०।९)। इति कुण्डमध्ये नाभिं संपूज्य कुण्डान्तः नैर्ऋत्यकोणे 'ॐ वास्तोष्पते प्रति०' इति (वास्तुपुरुषञ्च संपूजयेत्।

अग्निस्थापनम्—

कुण्डे स्थण्डिले वा पञ्चभूसंस्कारपूर्वकम् 'ॐ अग्निं दूतमि'त्यग्निं संस्थाप्य 'ॐ समिधाग्निं दुवस्यत०' इति घृताक्तसमिधं दत्त्वा 'चत्वारि शृङ्गा०', 'रुद्रतेजः समुद्भूतं०' इत्यादि मन्त्रैरावाह्य 'अग्नये नमः' इति वायव्यकोणेऽग्निं गन्धादिभिः संपूज्य 'ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे०' इति नत्वा तदुपरि किञ्चित् काष्ठं निदध्यात् तथा तद्रक्षार्थं च तत्र कञ्चिन्नियुज्य ग्रहस्थापनं कुर्यात्। ततः कुशकण्डिकां कृत्वा होमं समारभेत्।

ग्रह-स्थापनम्

सूर्यादि नव ग्रहाणां स्थापनम्—

१. आ कृष्णेन० ॥ सूर्याय नमः।
२. इमं देवा० ॥ चन्द्रमसे०।
३. अग्निर्मूर्द्धा० ॥ भौमाय०।
४. उद्बुध्य० ॥ बुधाय०।
५. बृहस्पते० ॥ बृहस्पतये०।
६. अन्नात्० ॥ शुक्राय०।
७. शन्नो० ॥ शनैश्चराय०।
८. कया न० ॥ राहवे०।
९. केतुं० ॥ केतवे०।

ग्रहदक्षिणपार्श्वेऽधिदेवता-स्थापनम्—

१. त्र्यम्बकं० ॥ ईश्वराय नमः।
२. श्रीश्च ते० ॥ उमायै०।
३. यदक्रन्दः० ॥ स्कन्दाय०।
४. विष्णोरराट० ॥ विष्णवे०।
५. आ ब्रह्मन्० अथवा 'ब्रह्म जज्ञानं०' ॥ ब्रह्मणे०।
६. सजोषा० ॥ इन्द्राय०।

७. असि यमो० अथवा 'यमाय त्वा०' ॥ यमाय० ।
८. कार्षिरसि० ॥ कालाय० ।
९. चित्रावसो० ॥ चित्रगुप्ताय० ।

ग्रहवामपार्श्वे प्रत्यधिदेवतास्थापनम्—

१. अग्निं दूतं० ॥ अग्नये नमः ।
२. अप्स्वन्तर० ॥ अथवा 'आपो हिष्ठा०' अद्भ्यो० ।
३. स्योना० ॥ पृथिव्यै० ।
४. इदं विष्णु० ॥ विष्णवे० ।
५. त्रातारमिन्द्र० ॥ इन्द्राय० ।
६. अदित्यैरास्ना० ॥ इन्द्राण्यै० ।
७. प्रजापते न० ॥ प्रजापतये० ॥
८. नमोऽस्तु सर्पे० ॥ सर्पेभ्यो० ॥
९. ब्रह्म जज्ञानं० ॥ ब्रह्मणे० ।

लोकपाल-स्थापनम्—

१. (नैर्ऋत्यां राहोरुत्तरे) गणानान्त्वा० ॥ गणपतये नमः ।
२. (पश्चिमे शन्युत्तरे) अम्बे अम्बिके० ॥ दुर्गायै० ।
३. (सूर्यस्योत्तरे) वातो वा० ॥ (अथवा 'वायो येते०') ॥ वायवे० ।
४. (राहोर्दक्षिणे) ऊर्ध्वा अस्य० ॥(अथवा 'घृतंघृत०')॥ आकाशाय० ।
५. (केतोर्दक्षिणे) या वाङ्कशा० ॥ अश्विभ्यां० ।
६. (गुरूत्तरे) वास्तोष्पते० ॥ वास्तोष्पतये० ।
७. (वास्तोष्पत्युत्तरे) न हि स्पश० ॥ क्षेत्राधिपतये० ।

मण्डलाद्बहिर्दिक्पाल-स्थापनम्—

१. त्रातारमिन्द्र० ॥ इन्द्राय नमः ।
२. अग्निं दूतं० (अथवा 'त्वन्नो अग्ने०') ॥ अग्नये० ।
३. असि यमो० (अथवा 'यमाय त्वा०') ॥ यमाय० ।

४. असुन्वन्त० (अथवा 'एषते निर्ऋते०') ॥ निर्ऋतये० ।
५. इमं मे (अथवा 'तत्त्वा यामि०') ॥ वरुणाय० ।
६. वातो वा० (अथवा 'आनो नियुद्भिः०') ॥ वायवे० ।
७. वयँ सोम० ॥ सोमाय० ।
८. तमीशानं० ॥ ईशानाय० ।
९. अस्मे रुद्रा० (अथवा ब्रह्मजज्ञानं०) ॥ ब्रह्मणे० ।
१०. स्योना पृथिवि० ॥(अथवा 'नमोऽस्तु सर्पे०')॥अनन्ताय०।

ग्रहमण्डलादीशाने स्थापित-कलशे—

असङ्ख्याता सह० असङ्ख्यात रुद्रेभ्यो० ।

ततो योगिनी-स्थापन-पूजनं[1] क्षेत्रपालस्थापन-पूजनञ्च नाम-मन्त्रैः कुर्यात्। ततः कुशकण्डिकां कृत्वा ग्रह-होमं, मातृका-होमं, वास्तुमण्डल-होमं, योगिनी-होमं, क्षेत्रपालहोमञ्च कृत्वा प्रधान-देवता-मन्त्रेण होमं कुर्यात् ।

पञ्चगव्यविधिः

गोमूत्रम् (एकपलम्, नीलवर्णायाः, अलाभे कपिलायाः) तत्सवितु०
गोमयम् (अर्द्धपलम्, कृष्णवर्णायाः " ") गन्धद्वारा०
पयः (सप्तपलम्, ताम्रवर्णायाः, " ") आप्यायस्व०
दधिः (पलत्रयम्, श्वेतवर्णायः, " ") दधिकाव्णो०
घृतम् (एकपलम् कपिलायाः) तेजोऽसि०
कुशोदकम् (एकपलम्) देवस्य त्वा०

ततः 'ॐ' इति प्रणवेन आलोडनं कृत्वा 'हिरण्यवर्णाः शुचयः०' इत्यादि वारुणमन्त्रैः (द्रष्टव्य पृ० ३६०) अथवा 'आपो हिष्ठा०' इत्यादिभिः प्रोक्षणं कुर्यात् ।

॥ इति प्रतिष्ठामयूखे आचार्य डा० महेशचन्द्रजोशी-रचितः
परिशिष्टांशः समाप्तः ॥

———*———

१. द्रष्टव्य—पीछे पृष्ठ ८६ में योगिनी तथा क्षेत्रपाल सूची ।

प्रतिष्ठामयूखस्य पारिभाषिक शब्दसूची

अभ्युत्तारण ३७२
अघोरकला १४७, १४८
अघोरमन्त्र ३१२, ४०६
अङ्गमन्त्र ३३४, ३३७, ३४७, ३९९
अङ्गहोम २८१...
अथर्वणसाम ३२४, ३२५, ३५२
अथर्ववेद २६, २७
अथर्वशिरस् २७
अथर्वाङ्गिरस् २७
अधिवासन १९०, २०६-९, २१३, ३३१ ३, ३६९
अन्नाधिवास ९२
अभिषेक २२२-३, ३२४-७, ३५२ ३, ३७५
अवगुण्ठन मुद्रा १४४, २५०
अवभृथ स्नान ३५३
अष्टदल १६१
अस्त्रमन्त्र २२५, ४००, ४०७, ४०८
आचार्य (गुरु, देशिक) १२, ३०, ४६, ४८, १६८, १८४, २१३, २२२-४, ३११, ३२७, ३३४, ३३९, ३५३, ३५६, ३५८, ३५९, ३७०, ३७१, ३८८, ३९३, ४०२, ४०५, ४१७, ४१८, ४२०
आयुध १६३, २८३, ३७६
आशीर्वचन,-वाद ३२८-३३०
ईशानकला १४६, १४७
उत्तरनारायण (सूक्त) १४१, ३६३
ऋग्वेद १५, १७
ऋत्विक् १२, १७, १९, २५, २७, १६८, २२३, २३८, ३५६, ४२०
कङ्कणबन्धन ९६
कपिला ३३१, कपिला परिभाषा ३३३
कलश (कुम्भ, घट) ९, ३६-६३, १९९, २०१-५, ३४०, ३५९
कला (संख्या) १४७
कलाध्वा २२८
कषाय ४८, ५८ कषाय पञ्चक २०१
कुण्ड ३०, ३१, १६८, १७२-१८६, २१८, २२३, २२४, २८१, ३३४, ३३८, ३५६, ३६३, ४०६, ४१९
कूर्मशिला १९०, २२५, २२७
कौतुक ३७४
गन्धोदक ४८, ५८, २०२, ३४१
गर्भोदक ६३
गायत्री १३५, २६४, २६६-२७३, ३७५
ग्रहस्थापन, पूजन ३४
चण्डप्रतिष्ठा ३४७-९, ३५४
जलपूजनम् ९०, ४८१ ८४
जलयात्रा ४७१ ४८६
जलाधिवास ८८ ९१
जीर्णोद्धार ३७८-४२३
तत्पुरुषकला १४७, १४८
तत्त्वन्यास १२८, १३४, २३२
तत्त्वाध्वा २२८-९
तीर्थावाहन ४२-५, ४७४
तीर्थोदक ४२, ६०
त्रिमधु ४०६
त्रिविक्रमजल ४२
त्रिसूत्री ३३
दक्षिणा ३२७, ३५३, ३७७, ४१८
दिग्बलि २१८, ३५०, ३६९, ३९८
दिगीशमन्त्र ३१०
द्वादशारचक्र १६१, १६२
द्वारतोरणपूजन १५
द्वारपाल १२, ३३४, ४०५, ४२०
द्वारपालस्थापन २८५, २८६
धातु ८, २४४-६, २४९
ध्रुवसूक्त २३० २३१, २५६, २६०, ३७५
ध्वज ३५४-५
निद्राकलश ९५, १५३-६
नृसिंहमन्त्र १५२, २५२, ३९०
नैमित्तिक दाश ३१०
पञ्चगव्य १०, ३५, २०१, २०३, ३४०, ३४१, ३५९
पञ्चपल्लव ५८, ६०
पञ्चमूर्ति १६५, १६६
पञ्चब्रह्म १४२, ३३४, ३३६
पञ्चरत्न २२७
पञ्चलोकपाल ३४
पञ्चवर्णसूत्र ३४४
पञ्चामृत ५८,३५९
पञ्चोपनिषद् (मन्त्र) ३३५
पदाध्वा २२८-९
परिचारक देवता १९०, १९५
परिवार देवता १९०, २०६, २७९-२८०, ३८१, ३८४, ४१८
परिसर ९६
पल्लवद्वादशक १९९
पवमानसूक्त १७, ३३
पाशुपतमन्त्र ३९१, ४००-४०२, ४०८, ४०९, ४१७
पिण्डिका, पिण्डी, पीठ १९० १९७, २०६, २२५, २३०, २३१, २३४, २५५, ३७८, ३८१, ३८२, ३८६, ३९४, ४०१, ४०२, ४०८, ४०९, ४११ ४१३, ४१६, ४१९
पुण्याहवाचन २२२, २२९, ३०९
पुरुषसूक्त १७, ८०, १३९, २६४, २९३, ३६१, ३६३, ३६६, ३६७, ३७५

पुष्पोदक ५८, ३४१
पूर्णाहुति १८५, २१८, २२४, ३१०, ३१२, ३२१-३२३, ३३८, ४२१
पौष्टिकमन्त्र १६८, १७१
प्रतिमा ५०, ५३,...३३३, ३७६, ३८१, ३८४, ३९३, ३९६, ४१२, ४२२, ४२३
प्रतिष्ठाकाल ५-६, -सामग्री ७-१०, -होम ३१२
प्रतिष्ठिकमन्त्र २६२
प्राणप्रतिष्ठा २५७, ३७१
प्राणसूक्त २६४, २७३-६
प्रासाद ३३, १९९-२०४, २०६-२१३, २५१, २५४, ३८५, ४२३
फलाष्टक २०१
फलोदक ५८, ३४१
बलिदान १५-३४, ९९, ...३१२, ३१५-३२०, ३३३, ३४७
बीजाष्टक ८
बृहद्रथन्तर १३६, १३७
ब्रह्ममन्त्र ३३४, ३३६
ब्रह्मशिला १९०, २२५, २२७, २३०, ४०१, ४०८-४१०
भद्रपीठ ३६, ३७, ३५९
भद्रासन ४३, ५०, ५२, २२३, ३५२
भुवनाध्वा २२८, २२९
भूतबलि ९९, १५८, ३५०
मङ्गलकलश ४१
मण्डप १०, १३, २९; ९९...२२२, ३५३, ३५६, ३५८, ३९८, ४१८, ४२०
मधुपर्क ८७, ४२०
मन्त्र (— कला) २९०, ३९८, ४०५
मन्त्राध्वा २२८, २२९
महापाशुपतास्त्र ४०२, ४०३, ४१७
महापुरुषविद्यास्तोत्र ३०७
महावेदी ३०, ४२०
महास्नान ३३४
मुखलिङ्ग ५०, ३८१
मुष्टिमुद्रा १४५
मूर्ति (अष्टमूर्ति) १९७, २२४, २३३, ४०२
मूर्तिप (ऋत्विज) १६८, १६९, १७३, २०८, २२३, २५२, २५३, २५४, ३३०, ३३४
मूर्ति-प, पपि, -अधिपपि-ईश १६३, १६४, १७६, १७७, १७८, १९७, ४१०
मूलमन्त्र १२५, १६१, २२४, २२९, २५२, ३११, ३४७, ३७०, ३७१, ३७६, ४०६, ४२०
मूलाष्टक २०१
यक्षकर्दम ४१, ५७
यजुर्वेद १८, १९,
रक्षोघ्नसूक्त ३३
रत्नन्यास २३०, २३६-२४९

रत्नाष्टक ८
रत्नोदक ६०, ३४१
रुद्रमुद्रा १४५
रुद्रसूक्त १७, २६२, २६४
रैवतसाम २६२
लिङ्गतोभद्र २५६
लिङ्गमन्त्र २९१ ३७५
लिङ्गमुद्रा १४२, १४४
लोकपाल (दिक्पाल) ४०, ४६, ६२, ६३, ८९, ९९, १७६, २२४, २३३, ३५८, ४१७
लोकपाल (पञ्च) ३४
वरुणपूजन ९१, ४७९-८०
वर्णाध्वा २२८-९
वसोर्धारा ३२३
वामदेवकला १४७, १५०
वामदेव्यसूक्त १७
वारुणमन्त्र (हिरण्यवर्णा०) ३६०
वास्तु-देव २२२, ३९८, ४०५-पीठ ३१, २२२, ४१९-, पूजन ३१-३४, -प्रतिमा ३४, -मण्डल ३५६, ४२०, -शान्ति ४१७, -शुद्धि ४०२
वाहन (देववाहन) १९०, २०६, २१८ २८६, ३७६
विद्या, विद्येश्वर ४००, ४०८
विश्वकर्मा ३५
वेदिका, वेदी १०, ३०, ३४-३७, ४३, ४८, ५०, ८७, ९३, २२२, ३३४
३५६, ३७१, ४१८
शङ्खमुद्रा २५३
शन्तातीय (-सूक्त) २२५
शशिन् (—कपूर) ५७
शान्तिकमन्त्र १६८-१७०
शान्तिकलश १७५, २२३, ४०१, ४०८
शान्तिहोम ३११, ३१२, ३३३, ३९८, ४०६, ४१७
शान्त्यध्याय २७
शृङ्गोदक ६०
श्रीसूक्त १७
षडङ्ग २२८
षोडशोपचारपूजन २९३
संस्रावकलश ३५९
सकलीकरण ६५-६७
सद्योजात कला १४७, १५१
सन्निरोधन मुद्रा २६१
सप्तधान्य १०, ३६
सप्तमृत्तिका ९, २०१, ३५९
समिधा १६८, १७३, १७६
समुद्रकलश ६२, ७६
सर्वतोभद्र ३०, १५६, ३५६, ३६३
सर्वप्रायश्चित्तहोम ३१२, ३१४
सर्वौषधी ९, ६०
सहस्रधाराकलश ६०, ३४१
सामवेद २४, २५
सुमङ्गलसूक्त (कनिक्रदद्०) १७, ६५
सुवर्णोदक ६०

सोमसूक्त	१७	स्थाप्य देवतामन्त्र	३५८
सौरसूक्त	२६४	स्नानमण्डप	३५, ४३
स्थण्डिल	२५१,३५६,३९८,४०५,४०७	स्वस्तिवाचन	३४७, ४२०
स्थूणा	१३, १४	स्विष्टकृत्	३१२, ३१३, ३५८, ३७६
स्थपतिकलश	३६, ४३	होतृ (होता)	३०

प्रतिष्ठामयूखस्थ सरोजिनी व्याख्या में उद्धृत मन्त्रसूची

अक्षन्नमी	२९९	अपां पेरु	१७६
अग्न आ याहि	१७, २२, १३६	अपां रस	२९६
	१७५, १७९	अपो देवीरुपसृ०	९५
अग्न आयू०	२०, २३	अपो देवीरुपह्व०	९५
अग्नि दूतं	१८, १७८	अप्स्वग्ने स०	५९
अग्निः प्रियेषु	२२	अभित्यं देवसवितारमु०	१८२
अग्निमीडे	१६, १३६, १७४	अभित्यं देवसवितारमो०	१८२–३
अग्नये स्वाहा	२१	अभि त्वा देव	१८३
अग्निर्ज्योति०	३०१, ३०३	अभित्वा शूर	९८, २९०
अग्निर्देवता	२२	अभिवा	२०
अग्निर्मूर्धा०	५४	अभि प्रवन्त	३२१
अग्ने पावक	३७३	अभि वस्त्रा	७९
अग्ने पित्त०	३७२	अभ्यर्षत	३२२
अघोरेभ्यो	३२, १४५, १७८, ३३६	अमोवहा	३२, १७१
अच्छन्ति त्वा०	३६२	अम्बेऽम्बिके	१९३, ३३८
अद्भ्यः सं०	१४१, ३३७, ३६२	अं शुनाते	२९७, ३०१
अन्धस्था०	३४४	अयं दक्षिण!	२७५
अन्नपते	२३, ८०, ८८	अयमग्निः	१७३
		अयं पश्चाद्	२७५
अन्यांस्ते	३७२	अयं पुरो	२७५
अपाम सोम	५९	अयाश्चाग्ने	३१४
अपामिद	३७२	अवक्रन्द	६५

असि हि वीर	१७९	आयुष्कामो	३३०
असुनीते	२७२	आ वो राजान	१८०
असुन्वन्तं समं	२३, १८०	आशुः शिशानो	२८६
असुन्वन्तम०	४७, ६४, १५७ १८०	इदं हविः	३०३
असौ यस्ता०	१८०	इदमापः प्रवहत	५३, २०५
अस्मे रुद्रा	४७, १५७	इदमुत्तरात्	२७५
अस्यै प्राणा	२६१	इदं विष्णु०	७९
अहमस्मि	२५	इन्द्रघोष०	८९
अहिरिव	२९९	इन्द्रं तं	१८१
अ कलशेषु	४१	इन्द्रं देवी	३२४
आ कृष्णेन	२२, ५१, ८८	इन्द्र मरुत्व	१७८
आ जिघ्र	९८	इन्द्रस्तं	२२५
आतिथ्य रूपं	१९४	इन्द्राय साम	२५
आ ते वत्सो	२२	इन्द्रा याहि	१६
आत्वा हार्षं	२५६, २६०	इन्द्रं वो	१६
आदित् प्रत्नस्य	१८२	इमं मे गङ्गे	५१
आदित्या रुद्रा	३५५	इमं मे वरुण	१५७, १८१
आ नो नियु०	४७, १५७, १८१	इमं स्तन	३२४
आपो अस्मान्	५७, ९५	इयमुपरि	२७५
आपो देवीः	९५	इषे त्वो०	१९, १३६, १७५
आपो न देवी०	५४	इह पुष्टिं	१७१
आपो ह यद्	३७, ५७, ३६२	ईदृक्षास एता०	३२३
आपो हिष्ठा	५५, १८०, ३६०	ईदृङ् चान्या०	३२३
आप्यायस्व मदि०	२२, ५९, ९६	इहैवैधि	३७६
आप्यायस्व स०	२१; २७, ५६, ९६	ईशानः सर्वं	१४५, ३३६
	१८२, ३४१	ईशा वास्य	१८३
आयं गौः	५७, २३२	उग्रँल्लो०	१८०
आयुर्मे पाहि	२७५	उच्छ्रयस्व वन०	३५५

उत वात पिता० १८१
उत स्मास्य ३०२
उत्तिष्ठ ब्रह्म० ९१, २५३, ३७०
उदग्ने तिष्ठ ३३
उदुत्तमं २५, ३१४
उदु त्यं १७९
उप ज्मन् ३७२
उप प्रागात् १५५
उप याम गृ० २६१
उभाभ्यां देव २०, ३३
उषस्तच्चित्र २३२
उर्वो भव ३३
ऋचं वाचं २३
ऋतजिच्च ३२३
ऋतश्च सत्यश्च ३२३
एतन्ते देव २६१
एता अर्षन्ति ३२१
एतावान० १३९, २९४
एष ते रुद्र २८६
एष वै प्रति० २६१, ३७५
ऐन्द्रः प्राणो २७६
ओषधीः प्रति ७९, ३४२
ओं उहुवा ओ ३२५
कद् रुद्राय २८
कनिक्रदज्ज० ५३, ६५
कन्या इव ३२२
कर्दमेन ५८
कस्य नूनं २६
कृणुष्व ३३
क्षत्रस्य योनि ९०
खड्गो वैश्व० २८६
गणानान्त्वा ३०
गन्धद्वारां ४८, ५४
गन्धर्वस्त्वा २९७
गयस्फानो १७९
गायन्ति त्वा २५
गृह्णा वै प्रति० २५१
गौरीर्मि० २३२, २६५, ३३८
ग्रहा ऊर्जा० ३१७
घृतं घृतपा० २९६
घृतं मिमिक्षे २९६, ३२४
घृतवती ५६, २९६
चत्वारि शृङ्गा ३२१
चन्द्रमा मन० ८०, १४०, ३०१
चित्पतिर्मा ८९
जातवेदसे १७६, १९३, २३२
जुषस्वाग्ने २२५
तं यज्ञं १४०, २९९
ततो विराड० १४०, २९४
तत्त्वा यामि २४, ४७, ५४, ६४, ९१, १५७
तत्सवि० २१, ४८, २३२, ३४२
तदयं राजा ५९
तदस्तु मित्रा २६१
तद् विष्णोः २९
तमिन्द्रं जो० १७९

तमीशानं २८, ४७, ६४, १५७, १८१, १८२
तव भ्रमास ३३
तव वायवृत २६
तस्मा अरं ५६, ३६०
तस्मादश्वा १४०, २९८
तस्माद् यज्ञात् १४०, २९५ २९८
तस्माद् विराड० २९०
तुभ्यं ता २२
तेजोऽसि ३४?-२
त्र्यम्बकं यजा० ४६, ७९, ९९, १३७, १७१, १७३
त्रातारमि० १६, २२, ४७, १३७, १५६, २२५
त्रिधा हितं ३२१
त्रिपादूर्ध्वं १४०, २९४
त्रीणि पदा ९८
त्वन्नोऽग्ने तव १७, ४७, १५६
त्वन्नोऽग्ने वरु० ६४, १५६, ३१४
त्वमग्ने अङ्गि० २२६
त्वष्टा तुरी० १७३
त्वां गन्धर्वा २९९
दधि क्राव्णो ५६, २९५, ३४१
दीर्घायुस्त २१, १३७, ३२९
देवस्य त्वा ५६, ३२५, ३४२, ३५२
देवीराप: ५६
देवीरापो ५६
देवो अग्निः ३१३
दैव्याय कर्मणे २०५
द्यौः शान्ति १७०, ३२६
द्रुपदादिव ५७
धामं ते विश्वं ३२२
धूरसि धूर्व २३१, २६०
ध्रुवं ते २३०, २५६, २६०
ध्रुवं ध्रुवेण २३०, २५६, २६०
ध्रुवा द्यौ० २३०, २५६, २६० ३७६
ध्रुवासि धरु० २३०, २५६, २६०
ध्रुवासि ध्रुवो० २३०, २५६, २६०
ध्रुवोऽसि पृथिवीं २३१
न त्वावाम् २९०
नमः शम्भ० २२, २८, ४९
नमस्ते हरसे ३७३
नमो ब्रह्मणे १७६
नमो रुद्रेभ्यो ३०
नमोऽस्तु सर्पे० २२, २८, ६५, २०४
न हि स्पश० १५८, ३१८
नाभ्या आसी० १४०, ३०१
नृषदे वेड० ३७३
पञ्च नद्यः ९१, २९५, ३४१, ३४४
पयः पृथि० ५५; ९१, २०३, २९५
परिवाज० ३४२
पवमानः सु० ३६१
पवमानः सो २०, ३३
पवित्रेण पुनी० २०, ३३, ३६१
पालाशं भवति ३२६
पावकया यश्चि० ३७३

पावका नः २३२, २६५
पुनन्तु मा देव० २०, ३३, ३६१
पुनन्तु मा पित० २०, ३३
पुनन्तु मा पिता० २०, ३३
पुनर्नो असुं २७४
पुनर्मनः २७४
पुनस्त्वादित्या ३२२, ३३०
पुरुष एवेदं १३९, २९०, २९३
पुष्टिर्न रण्वा १७१
पूर्णा दर्वि ३२३
प्रजापतये त्वा २१
प्रजापतिश्च० १४१, ३३७, ३६२
प्रतद् विष्णुः ५९
प्रति स्पशो ३३
प्र सद्य ५५
प्रसद्यो अ० ५५
प्राच्यै दिशे २५१, ३१५
प्राणदा अपा० ३७३
प्राणपा मे २७४
प्राणम्मे २७५
प्राणश्च मे २७४
प्राणाय मे २७४
प्राणाय स्वाहा २७७
प्राणो रक्षति २६२
बृहस्पते परि ९७, ९८
ब्रह्म जज्ञानं २९, ४९, ९५
१५७, २६५
ब्राह्मणोऽस्य १४०, ३१०
भद्रं कर्णे० १३, ५०
भद्रं वद दक्षि० ५२
भद्रं वद पुत्रै० ५२
भद्रमघस्ता० ५२
भासा केतुं २२५
भूताय त्वा १५८, ३२०
मधु वाता० ५७, २९६, ३४२
मनस्त आ २७७
मनो जूति० २६१, ३७५
मनो मे २७४
मरुतः परि० ३०४
महाँ इन्द्रो य २२६
महाँ इन्द्रो वज्र २२६
मा त्वा श्येन ६५
मा नस्तो० ४८, ५८
मुञ्चन्तु मा ३४४
मूर्धानं १३७, १७६, २०३, ३२२
मृगो न १८३
मो षु णः २३
यः पशूनाम० १७९
यः प्राणतो ३७, २७४, ३६१
य आत्मदा ३७, ३६१
य इन्द्र १७९
यं क्रन्दसो ३७, ३६२
यज्जाग्रतो २८९
यज्ञा यज्ञा ४८, ५७, २०३
यज्ञेन यज्ञ० १४१, ३०४
यज्ञोपवी० २९८

यते स्वाहा २१
यत्ते पवित्र २०, ३३, ३६१
यत्पुरुषं १४०, ३००
यत्पुरुषेण १४०, ३००
यथा विप्रस्य ५९
यददो वात १८१
यदि जाग्रद् २०
यदि दिवा २०
यद् देवा २०, २९
यमाय त्वाङ्गि० ४७, १५६, १७९
यमाय मधु० १९
यमाय सोमं १५६, १७९
यश्चिदापो ३७, ३६२
यस्येमे ३७, ३६२
याः फलिनी २०३, ३०१
या आपो ३६०
या ते रुद्र ४९, ५८, ९५
यासां देवा ३६०
यासां राजा ३६०
युञ्जानः ५६
युवा सुवासाः २९८
ये ते शतं ३१४
ये देवा देवानां ३७३
ये देवा देवेष्व० ३७३
येन द्यौ० ३७, ३६२
येनेदम् २९०
यो देवेभ्य १४१, ३३७, ३६२
यो वः शिव० ५५, ३६०
रथे तिष्ठन् ८९, २५४
राजाधिरा० ३०४
रुचं ब्राह्मं १४२, ३३७, ३६२
रेवतीर्नः २६२
वयं सोम २७, ४७, ६४, १५७, १८१
वयं नाम ३२१
वरुणस्यो० ५४
वसोः पवित्र० ३२४, ३४३
वाचन्ते शुन्धा० २७७
वात आ वातु १८१
वात रंहा २८६
वातो वा मनो ९८
वामदेवाय १४५, ३३६
वायो ये ६४, १८१
वायो शतं २६
वास्तोष्पते ध्रु० ३२
वास्तोष्पते प्रत० ३२, १७१
वास्तोष्पते प्रति ३२, २१८, ३१८
वास्तोष्पते शग्म० ३२
विभूषन्नग्न १८०
विभ्राड् ७९
विवस्वन्ना० ३३०
विश्वकर्मन् ३५
विश्वकर्मा त्वा २७९
विश्वतश्चक्षु ६६, ९७, २०४, २६२, ३०४, ३७१
विश्वस्मै प्राणा० २७६
विष्णोररा० ४९, २०४

विष्णोर्नु २९, १९२
वेदाहमेतं ७९, १४१, ३३७, ३६२
वैश्वदेवी २८, ३३
शतं जीव ५०, ३३०
शं ब इन्द्रा २२६
शंवती। पार० २२५
शं वो भूमिः २२६
शं वो विष्णुः २२६
शं न इन्द्रा० १७०
शं नः कनि० २२६
शं नो देवी २७, १३६, १७०
१७५, ३५२
शं नो वातः १७०
शिरो मे २७४
शिवेन मा ३६०
शिवो नामासि १७१
शुक्र ज्योति० ३२३
शुद्ध वाल: २९७
शुन्धध्वं दैव्या० २०५
श्रोर्वर्चस्व ३३०
श्रीश्च ते १३७, १४२, १९२
२३२ ३६२
सजोषा इन्द्र १७८
सद्योजातं १४६, ३३६
स नः पावक ३७३
स नो भुवन० ३०
सं ते पयांसि २२, ५९
सं ते मनो २७६
सप्त ते अग्ने ३२२, ३२३
सप्तास्यासन् १४१, ३०३
समख्ये १५८

समुद्रं वः ३४१
समुद्रज्ये० ५२, २०३, ३४३, ३६०
समुद्रस्य त्वाव० ३७२
समुद्राद्० ३२१
समुद्रं ते ३४३
सम्यक् स्रव० ३२१
सर्वेषां वा० ३२६
सहस्रशीर्षा १३९, २९०, २९३
सिञ्चन्ति परि ३४०
सिन्धोरिव २९९, ३२१
सुगं नः पन्थाम० ६४
सुगं नः पन्थाम्प्र० १५६
सुजातो ज्यो० २९८
सुपर्णोऽसि १९४, २८६
सोमं राजानं० २३, २०४
सोमो धेनुं २७
सोमो राज्ञामृतं १८२
स्तीर्णं बर्हि० ५०
स्योना पृथिवि ४०, १५७, १७८
स्वगा त्वा २०
स्वतवांश्च ३२३
स्वस्ति न १३७
स्वस्ति साम्रा० ३०४
स्वादिष्ठया पव० २५
हंसः शुचिषद् ४९, २०४, २८६
हिङ्काराय २१, ३२०
हिमस्य त्वा ३७२
हिरण्यगर्भः ३७, १६८, २६५
३०२, ३६१
हिरण्यवर्णां ७८
हिरण्यवर्णा। ७९, ३६०

———*———

प्रतिष्ठा-यागकर्म में अपेक्षित सामग्री

यागमण्डप-निर्माण-सामग्री —

१६ स्तम्ब १६ बल्ली (वलिका हेतु), ८ खम्बे चार दिशाओं के लिए, ४ खम्बे चार कोणों के लिए, ४ बल्लियाँ शिखर से मण्डप के चार कोणों को जोड़ने के लिए, शिखर में देने के लिए एक लट्टू, ८ लकड़ियाँ चार द्वारों की द्वार-शाखाओं के लिए, ४ लकड़ियाँ द्वारोपरि देने के लिए, चार तोरणों के लिए क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और वट में से प्रत्येक की सात हाथ की दो और ३।। हाथ की एक लकड़ी, पर्याप्त मात्रा में बाँस के लम्बे डण्डे, ध्वजाओं और पताकाओं को टाँगने के लिए पतले लम्बे डण्डे, मूँज की रस्सियाँ, सुतली, तार, कीलें, मण्डप को सजाने के लिए लाल, पीले, हरे आदि विभिन्न मांगलिक रंगों के वस्त्रों के थान, ध्वजाओं और पताकाओं के लिए पीत, रक्त, श्याम, कृष्ण, श्वेत, धूम्र, सुवर्ण-वर्ण (सुनहले) और मेघवर्ण के वस्त्र। चटाइयाँ आदि। यागमण्डप में वेदी और कुण्डों तथा फर्श के निर्माण की अन्य सामग्री-सीमेण्ट आदि। स्नानमण्डप की तीन वेदियों के निर्माण की सामग्री, छाजन, चँदोवा, त्रिपाल आदि।

पूजन-सामग्री —

यजमान के लिए पवित्री, पञ्चपात्र आदि, पञ्चगव्य, सिंहासन, आसन, गङ्गादितीर्थजल, पाद्यपात्र में प्रक्षेपणीय श्यामाक (सांवां), पद्म, विष्णुक्रान्ता, अर्घ्यपात्र में प्रक्षेपणीय गन्ध-पुष्प-यवाक्षत-कुशा-तिल-दूर्वा-सर्षप, आचमन पात्र में प्रक्षेपणीय एला, लवङ्ग, कर्पूर, कङ्कोल, जातीफल और मुरा, मधुपर्क हेतु दधि, मधु, घृत, (शर्करा), पञ्चामृत सामग्री, वस्त्र, उपवस्त्र, नारा,

उत्तरीय, यज्ञोपवीत, चन्दन, कुङ्कुम, कस्तूरी, गोरोचना, अक्षत, सिन्दूर, अबीर, पुष्पमालाएं, दूर्वा, तुलसी, शमीपत्र, बिल्वपत्र, अगरबत्ती, धूपम् (अगुरु, गुग्गुलु, दशाङ्गधूप आदि), दीपक, रुई, माचिस, घृत, भक्ष्य-भोज्यादि नैवेद्य, मिष्टान्न, फल तथा इलायची, लौंग, पूगीफल आदि सहित ताम्बूल, दक्षिणा, पर्याप्त मात्रा में पुष्प। (यह सामग्री पचीसों बार के पूजन के लिए पर्याप्त होनी चाहिए।)

देवतास्थापन हेतु कलश, पूर्णपात्र, यन्त्र, प्रतिमाएँ या देवताओं की संख्यानुसार पूगीफल, वास्तुमण्डल, ग्रहमण्डल, सर्वतोभद्र आदि मण्डलों की रचना हेतु रक्त (लाल), शुक्ल (सफेद), पीत, हरित, कृष्ण और धूम्रवर्णों के रंग और इन्हीं विविध रंगों के वस्त्र यजमान और ब्राह्मणों के लिए आसन, इत्यादि।

सर्वप्रायश्चित्त प्रयोग में अपेक्षित द्रव्य—

दक्षिणा, भस्म, मृत्तिका, गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत, कुशोदक, विष्णुश्राद्ध में चार ब्राह्मणों के लिए भोजन निष्क्रय द्रव्य, गोदान का निष्क्रय द्रव्य, होम हेतु आज्य और पञ्चगव्य एवं ब्रह्मकूर्च, प्रधान गोदान और पुनः प्रायश्चित्ताङ्ग गोदान का निष्क्रय।

दशदान-सामग्री—

गो, भूमि, तिल, सुवर्ण, आज्य, वस्त्र, धान्य, गुड, रजत और लवण तथा प्रत्येक दान के पूर्व विप्रवरण और पूजन की सामग्री और दक्षिणा। (दान द्रव्य परिमाण हेतु द्रष्टव्य पृ० ४६५-९ की टिप्पणियाँ)

जलयात्रा में अपेक्षित सामग्री—

यथेष्ट मात्रा में कलश अथवा कम से कम नौ (९) कलश, पूजा हेतु गन्ध-पुष्पादि, वस्त्र, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा, पञ्चगव्य, आज्य और बलिदान सामग्री।

कलश-स्थापन में अपेक्षित द्रव्य—

कलश, यव सहित सप्तधान्य—जौ, गेहूँ, धान, तिल, नीवार (तिन्नी), श्यामाक (सावाँ) और मूँग, कुश-ब्रह्मा अथवा पवित्री, दूर्वा, गन्ध, सप्तमृत्तिका—अश्वस्थान, गजस्थान, वल्मीक, सङ्गम, राजद्वार, तालाब अथवा नदी तट, वराहोत्खात-स्थल अथवा गोशाला की मिट्टी, सर्वौषधी—मुरा, मांसी अर्थात् जटामासी ? वचा, कुष्ठ, शैलेय, हरिद्रा, सटी, चम्पक और मुस्ता; पूगीफल, पञ्चरत्न—हीरा, मोती, माणिक्य, मूँगा, नीलम; हिरण्य (सुवर्ण), पञ्चपल्लव—पीपल, गूलर, पाकड़, वट और आम के पल्लव, रक्तवस्त्र, रक्तसूत्र या नारा, पूर्णपात्र, जटायुक्त नारियल।

पुण्याहवाचन, विप्रवरण, मधुपर्क आदि की सामग्री—

गन्धाक्षतपुष्पादि, कलश तथा कलश का जल अथवा अक्षत छोड़ने के लिए दो पात्र, प्रत्येक ब्राह्मण हेतु एक जोड़ा धोती, एक जोड़ा गमछा, एक जोड़ा बनियान, उत्तरीय (दुपट्टा), यज्ञोपवीत, अंगूठी, पूगीफल, (ताम्बूल), पञ्चपात्र, आचमनपात्र, टष्टा, कमण्डलु, लोटा, गिलास, थाली, गोमुखी सहित जपमाला, दक्षिणा आदि।

मधुपर्क हेतु प्रत्येक ब्राह्मण के लिए कांस्यपात्र स्थित तथा कांस्यपात्र से ही आच्छादित दधि, मधु, घृत, दो-दो विष्टर और पाद्य अर्घ्य आदि।

नान्दीश्राद्ध हेतु अपेक्षित सामग्री—

आसन, मोटक, दर्भ (कुशा), दूर्वा, पाद्यपात्र, अर्घ्यपात्र, गन्ध, श्वेतपुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, भोजन-निष्क्रय, दक्षिणा आदि।

स्नानमण्डप में अपेक्षित द्रव्य—

सहस्रधारा कलश तथा स्थपतिकलश सहित ९० कलश, पञ्चगव्य, पञ्चपल्लव, पञ्चपल्लव-कषाय (पञ्चपल्लव वाले वृक्षों पीपल, गूलर, पाकड़, वट और आम की छाल का कषाय), बालुका, मृत्तिका, भस्म, गोमय, गोमूत्र, दूध, दही, घृत, मधु, शर्करा, गन्ध (चन्दन), कुशोदक, शुद्धोदक, क्षारोदक (खारा जल), इक्षुरस (गन्ने का रस), सुरा, स्वादूदक (स्वादिष्ट जल), गर्भोदक (नारियल का

जल), सर्वौषधी, पुष्पोदक, फलाष्टकोदक सुवर्णोदक, गोश्रृङ्गोदक, धान्योदक, नवरत्नोदक, तीर्थोदक, और दश लोकपाल कलशों में निक्षेपणीय कदम्ब, शाल्मलि, जम्बू, अशोक, प्लक्ष, आम्र, वट, बिल्व, नागकसर तथा पलाश के पल्लव। रुद्र की स्थापना में रुद्राक्ष-पल्लवोदक कलश से भी स्नान विहित है। नेत्रोन्मीलन हेतु सुवर्ण-शलाका, सुवर्ण, पायस आदि भक्ष्य-भोज्यान्न, दर्पण, अभ्यञ्जन हेतु मधु और घृत, हथौड़ी और छेनी सहित शिल्पी, ऊर्णासूत्र (कङ्कण बन्धन हेतु), सम्मार्जन हेतु वस्त्र, सुगन्धित तेल, उद्वर्तन हेतु यव, शालि, गोधूम, मसूर और बिल्व का चूर्ण, आमलकचूर्ण, यक्षकर्दम, जटामांसी, सुगन्धित वस्त्र, शिल्पी को देने के लिए दो वस्त्र।

यागमण्डप में अपेक्षित द्रव्य—

मण्डप-पूजन सामग्री—मण्डप के द्वारों में स्थापनीय ८ कलश इत्यादि। देवता के लिए मधुपर्क, शय्याधिवास हेतु दरी, गद्दा, तकिया, रजाई, कम्बल आदि सहित शय्या (पलंग), निद्रा कलश, अभ्यञ्जन हेतु मधु और घृत, उपलेपन हेतु तेल और सरसों का कल्क, गन्ध-पुष्पादि पूजा-द्रव्य, सफेद परिसर, कङ्कण, राजोपचार (यथा—छत्र, व्यजन, चामर, पादुका आदि), शान्तिकलश-प्रत्येक कुण्ड के लिए एक-एक कलश, दस लोकपाल कलश, प्राकारत्रय रचना हेतु भस्म, दर्भ और तिल, पूजनसामग्री, बलिदान सामग्री, होम-सामग्री।

वास्तुपूजन-द्रव्य—

वास्तुपीठ हेतु वस्त्र, रंग, ५५ सुपारी, पूजन-सामग्री, कीलें और उनमें लपेटने हेतु सूत्र (नारा), प्रासाद-वेष्टन हेतु त्रिसूत्री, जल और दूध तथा उसकी धार देने के लिए स्तनकुम्भी, सुवर्ण की वास्तु प्रतिमा, दही, दूर्वा, सप्तधान्य, शैवाल, कच्ची मिट्टी का पात्र और उसका ढकना।

होम-सामग्री—

अग्निमन्थन तथा होम के उपकरण, अग्निपूजन-कुण्डपूजन सामग्री, पर्याप्त मात्रा में कुश, आम, देवदारु आदि की लकड़ी, आज्य, तिल, यव, तण्डुल आदि, चरु-पायस आदि, नवग्रह-होम हेतु अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, अश्वत्थ, उदुम्बर, शमी दूर्वा और कुशा तथा अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता आदि के होम हेतु पलाश-समिधा, अन्य विविध होमों के लिए भी पलाश समिधा तथा शान्तिक-पौष्टिक होम हेतु पलाश, उदुम्बर, अश्वत्थ और अपामार्ग की समिधा, विभिन्न होमों की पूर्णाहुति की सामग्री—गरी-गोला, ताम्बूल घृत आदि तथा विभिन्न अवसरों पर अपेक्षित बलिदान की सामग्री।

अपेक्षित पात्र व वस्त्र आदि—

जलयात्रा से लेकर प्रतिष्ठोपरान्त चतुर्थीकर्मपर्यंन्त विविध कृत्यों में स्थापना हेतु अपेक्षित ताम्रादि के लगभग २३० कलश, कमण्डलु, कलशाधार पात्र, कलशोपरि पूर्णपात्र, थालियाँ, सिंहासन, पाद्यपात्र, ताम्र या रजत का अर्घपात्र, शङ्ख का अर्घपात्र, आचमन पात्र, मधुपर्क हेतु कांसे की कटोरियाँ, पञ्चामृत के लिए पृथक् पृथक् पात्र, पञ्चगव्य पात्र, स्नानादि हेतु बड़ी थालियाँ, श्रृङ्गी, धूप-दहनपात्र (धूपदानी), दीपक, नैवेद्यपात्र, फल, ताम्बूल आदि रखने के पात्र, शङ्ख, घण्टा आदि वाद्य, चँवर, व्यजन आदि, आज्य पात्र, ढकने सहित चरु-पात्र, कलछुल आदि, तिल एवं यव आदि साकला (हवनीय द्रव्य) रखने के पात्र, प्रत्येक कुण्ड के लि पूर्णपात्र, चरु-पायस तथा नैवेद्य पकाने के पात्र। पर्याप्त मात्रा में कसोरे-सकोरे, परई, हंड़िया, कलशे, दिये, दोने, पत्तल आदि। मातृका-पीठ, योगिनीपीठ, क्षेत्रपालपीठ, वास्तुपीठ, ग्रहपीठ आदि के निमित्त चौकी-पीढे इत्यादि। प्रधानवेदी, मातृपीठ, योगिनी-पीठ आदि में फैलाने के लिए वस्त्र, नवग्रहों तथा विभिन्न देवताओं

को अर्पित करने के लिए वस्त्र, उपवस्त्र, उत्तरीय आदि। मण्डप के अलंकरण हेतु तथा ध्वजा-पताकादि हेतु विविध विहित रंगों के वस्त्रों के थान। चदोवा, इत्यादि। होम कर्म के उपकरण, यथा—अग्निमन्था, स्रुची, स्रुवा, प्रोक्षणी तथा प्रणीतापात्र, स्फ्य, वसोर्धारा आदि।

मण्डल देवताओं के लिए उपहार (बलि) द्रव्य–

सर्वान्न, घृतान्न, आज्यान्न, माषान्न, कृष्णव्रीह्यन्न, नवनीतोदन, यवोदन, प्रैयङ्गव (प्रियङ्गु अर्थात् ककुनी की खीर या भात), गवेधुक (?) और पायस।

प्रासाद-स्नपन-सामग्री–

प्रासाद स्नपन हेतु ८१ कलश, प्रासाद प्रोक्षण हेतु पञ्चगव्य, मध्य नवक के नौ कलशों में प्रक्षेपणीय द्रव्य,—क्रमशः (१) द्वादश प्रकार के पल्लव-शमी, गूलर, पीपल, चम्पक, अशोक, पलाश, पाकड़ वट, कदम्ब, आम, बेल और अर्जुन वृक्षों के पल्लव, (२) पद्मक, गोरोचना, दूर्वाङ्कुर, दर्भ-पिञ्जल (कुशों की गठरी), सफेद सरसों, पीली सरसों, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, जाती (चमेली) और नन्द्यावर्त (तगर) (३) जौ, धान, तिल, सुवर्ण रजत, समुद्रगामिनी नदी के तट की मिट्टी और भूमि-स्पर्श रहित गोमय, (४) सहदेवी, विष्णुक्रान्ता, भृङ्गराज, महौषधी, शमी, शतावरी, गुडुची और श्यामाक, (५) केला, सुपारी, नारियल, बेल, सन्तरा, मातुलिङ्ग (बड़ा नीबू या बिजौरा) बदरी (बेर) और आँवला—ये आठ फल, (६) अभिमन्त्रित पञ्चगव्य। (७) शमी, गूलर, पीपल, वट, और पलाश वृक्षों (की छाल) का कषाय। (८) शङ्खपुष्पी, सहदेवी, बला, शतावरी, कुमारी, गुडूची, वचा और व्याघ्री—इन आठ पौधों की जड़ें (मूलाष्टक) और (९) सप्तमृत्तिका। इनके अतिरिक्त शेष ७२ कलशों के लिए गन्धोदक। प्रासाद-प्रतिष्ठा हेतु वास्तुहोम, बलिदान आदि की सामग्री।

अधिवासन सामग्री–

प्रतिमा या लिङ्ग के जलाधिवास; वस्त्राधिवास; अन्नाधिवास; पुष्पाधिवास; शय्याधिवास; आदि तथा प्रासाद; कूर्मशिला; ब्रह्मशिला और पिण्डिका के अधिवासन और पूजन की सामग्री।

रत्नादिन्यास में अपेक्षित सामग्री–

पिण्डिका या ब्रह्मशिला की नौ दिशाओं के गर्तों में स्थापनीय—(१) बीज—यव; व्रीहि (धान); निष्पाव (मटर); प्रियङ्गु (ककुनी); तिल; माष; नीवार; शालि-धान और सिद्धार्थक (सरसों)। (२) रत्न – हीरा; मोती; वैडूर्य (पन्ना); शङ्ख; स्फटिक; पुखराज; चन्द्रकान्त; इन्द्रनील (नीलम) और पद्मराग (माणिक्य)। (३) धातु (minerals)—मनःशिला (मैनसिल); हरिताल; अञ्जन श्याम (अथवा अभावे कृष्णाञ्जन अथवा माक्षीक) कासीस; सौराष्ट्री (सुराष्ट्र की मिट्टी; तुवरी); गोरोचना; गैरिक; (गेरू) एवं पारद। (४) लोह (metals)—सुवर्ण; रजत; ताम्र; आयस (लोह); त्रपु (=रांगा); सीसा; कांस्य; आरकूट (पीपल); और तीक्ष्ण लोह। (५) ओषधि श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन; अगरु; अर्जुनवृक्ष की छाल या जड़; उशीर (खस); वैष्णवी (इसके विषय में पृष्ठ २४६ देखें); सहदेवी; लक्ष्मणा (पुत्रकन्दा या नागपत्री) और शंखपुष्प (इन सभी ओषधियों की जड़ें अथवा अभाव में टहनियाँ प्रयुक्त होंगी)।

कूर्मशिला के नीचे स्थापन हेतु पञ्चरत्न और उसके गर्त में स्थापन हेतु सुवर्ण का कूर्म।

देवता के नित्य पूजनादि में प्रयोग हेतु समर्पणीय सामग्री–

कलश; कमण्डलु; पञ्चपात्र; आचमन (पात्र); अर्घ्यपात्र तथा चन्दन; कुङ्कुम; अक्षत; सिन्दूर आदि रखने के पात्र; पुष्प रखने का पात्र; धूपदानी; दीपक; नैवेद्यपात्र; नैवेद्य बनाने के लिए पात्र; शङ्ख; घण्टा; वस्त्र; आभूषण; मुकुट; छत्र; चामर; पादुका; दर्पण

सपरिच्छद शय्या; नित्य-भोग प्रासाद की व्यवस्था हेतु विपुल धन-राशि तथा खेत; ग्राम आदि ।

प्रतिष्ठोपरान्त मूर्ति या लिङ्ग के लेपन में अपेक्षित द्रव्य–

कुङ्कुम; हरिद्राचूर्ण; सिद्धार्थकचूर्ण (सरसों का कल्क); श्वेत-चन्दन; यवचूर्ण; मन:शिलाचूर्ण; प्रियङ्गु (ककुनी) का चूर्ण; कृष्णाञ्जन; तिलचूर्ण; रक्तचन्दन; पद्मकेसर चूर्ण; गोरोचना चूर्ण; नागकेसर चूर्ण और कपिला गो का घृत ।

महास्नान में अपेक्षित द्रव्य–

एक सहस्रधारा कलश सहित कुल १२ कलश; पञ्चगव्य; दधि; क्षीर (दूध); घृत; मधु; पुष्पोदक; रत्नोदक; कुशोदक; फलोदक; गन्धोदक तथा सहदेवी व्याघ्री-बला-अतिबला-शङ्खपुष्पी-वचा-सिंही-सुवर्चला—इन ओषधियों का मिश्रित जल; शीतलजल; सहस्रधारा-कलशोदक ।

चलप्रतिष्ठा में अपेक्षित द्रव्य–

पूजा आदि में प्रयुक्त द्रव्य स्थिर प्रतिष्ठा के समान । देव-स्नपन हेतु पञ्चगव्य; पञ्चामृत; संस्रावकलश; श्रीखण्ड का अनुलेपन; उष्णोदक, अभिषेक हेतु ४ (चार) कलशों में जल; जलपूर्ण ८ (आठ) कलशों में डालने के लिए क्रमश: सप्तमृत्तिका; पल्लव (पञ्च पल्लव या द्वादश पल्लव); कुश; शाल्युदक (शालि-धान मिश्रित जल); प्रस्रवणोदक (झरने का जल); यव; पुष्प और फल; नेत्रोन्मीलन सामग्री—सुवर्ण शलाका; अभ्यञ्जन हेतु मधु; घृत; शर्करा; भक्ष्य-भोज्यादि; देवता को प्रदर्शित करने के लिए रत्न; पुष्प; मूल; फल और ओषधी; नीराजन हेतु पञ्चवर्ण के अन्न; बलिदान और होम की सामग्री ।

——*——